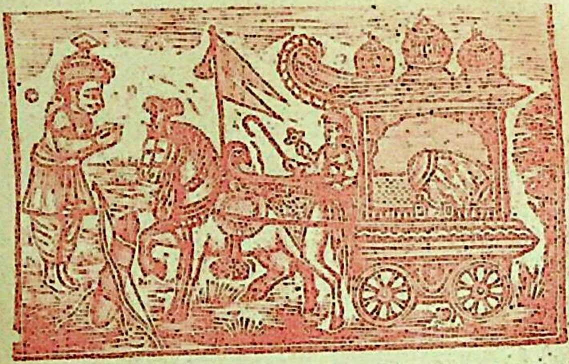
श्रीनरनारायणाय नमः ।

भगवद्गीताका चित्र.



श्लोक ।

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ॥
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ १ ॥
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ॥
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ २ ॥

श्रीः ।

श्रीमद्भगवद्गीता ।

आनंदगिरिकृतभाषाटीकासहिता ।

मंगलाचरणम् ।

ॐतत्सत् १ ॐतत्सत् २ ॐतत्सत् ३ ।

ॐ श्रीगणेशाय नमः ॐ श्रीसच्चिदानन्दस्वरूप परम अनूप श्रीमहाराजाधिराज श्रीस्वामी श्रीकृष्णचन्द्रजीमहाराजके चरणकमलोंको बारम्बार साष्टाङ्गदंडवत्नमस्कार करके श्रीमहाराजजीकी कृपा और आज्ञासे परमानन्दकी प्राप्तिकेलिये अपनी बुद्धिके अनुसार ब्रह्मविद्यायोगशास्त्र श्रीभगवद्गीताउपनिषदोंका तात्पर्यार्थ हरिद्वार मथुराजीके मध्यस्थनगरनिवासियोंके प्राकृतदेशभाषामें निरूपण करताहूं. कैसेहैं श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज कि नित्यमुक्त पूर्णब्रह्म सनातन उत्तमपुरुष शुद्ध आत्मा स्वयंप्रकाश एकरस स्वतंत्र श्रेष्ठ परात्परपरमपुरुष परमधामपरमगति परमपद परमपवित्र परमात्मा निराकार निर्विकार निरवयव निरंजन निर्गुण अद्वैत अरूप अखंड अज अमर अनल अच्युत अक्षर अव्यक्त अगोचर अप्रमेय अचिंत्य अनंत ऐसे हैं. औरभी विष्णु शिव शक्ति चिति देवादि अनंतविशेषण हैं. फिर कैसे हैं श्रीमहाराज कि चरणहस्तनेत्राद्यवयव अनुपम महासुंदर मनोहर हैं जिनके. पीतांबरादिवस्त्र धनुषादिशस्त्र वंशीचक्र (?) कडोर मुकुट पंखमोर मकरवत् आकृतिवाले कलकुंडल और रविवत् आकृतिवाले, बाले श्वेतरक्तहरितमोतियोंकेसहित जडित पंचरंगामणि मोतियोंकी माला और अनेक रंगवाले फूलोंकी माला कंठे

पैंजनी जड़ाऊ तगडी पहुँची अंगूठी छल्ले अंगदादि आभूषण धारण कररक्खे हैं जिन्होंने. बालोंमें अतर मस्तकपर केशरका प्रातिपदिक चंद्रवत् तिलक जिसके बीचमें सूर्यवत् बिंदा चंदनका लगा रक्खा है जिन्होंने. किसीसमय धूल और भस्मभी अखंड धारण करते हैं. पान इलायची चाबते रहते हैं. बाल किशोर तरुण अवस्था है जिनकी. अकेले वा युगलरूप होकर वा स्वामी सखा बनकर बनोंमें और चित्रविचित्र मंदिरोंमें लीलाविहार करते रहते हैं. मंदमुसुकान सहित बोलना है जिनका. इसप्रकार अचिंत्य अलौकिक आश्चर्य अगोचर अतर्क्य अप्रमेय अनंतप्रभावप्रभुताशक्तिबलवीर्यावध्.ानहैं. जैसे अपने बलके अनुसार आकाशमें पक्षीकी गतिहै इसी प्रकार वेद शास्त्र ऋषीश्वर मुनीश्वर शेष शारदा संत महंत महात्मा साधु भक्त पण्डित असंख्यातकल्पोंसे अबतक परमानंदस्वरूप श्रीकृष्णचंद्र महाराज मेरे स्वामीके गुणोंको पूर्वोक्तरीतिकरके वर्णन करते चले आते हैं तोभी पार नहीं पाते. परमानंदस्वरूप होनेसे श्रीमहाराज सबको प्यारे लगते हैं. आनंदस्वरूपसे किसीका बैर नहीं किसीको आनंदकी असूया करता हुआ सुनाभी न होगा और जो आनंदपदार्थको परमानंदस्वरूप श्रीकृष्णचंद्रमहाराजसे पृथक् एकगुण विलक्षण पदार्थ समझते हैं और श्रीमहाराजको आनंदजनक और आनंद गुणके रूपादिमान् पदार्थवत् समझते हैं तोभी परमानंदस्वरूपश्रीकृष्ण चंद्रमहाराजसे सिवाय श्रेष्ठ और कोई पदार्थ आनंदगुणक और आनंदजनक नहीं. श्री कीर्ति सत्य संतोष समता शम दम इत्यादि यह सब उसी भगवत्की विभूति हैं. जो कदाचित् वेदशास्त्र मूर्तिमान् होकर और शेष शारदा और ऋषीश्वर मुनीश्वर और वर्तमानकालमें जो संत महंत पंडितहैं ये सब मुझसे ऐसाकहें कि परमानंदस्वरूप श्रीकृष्णचंद्रमहाराजसे पृथक् श्रेष्ठ स्थावर वा जंगम सावयववा निरवयव प्रमेय वा अप्रमेय कोई और पदार्थहै. प्रत्युत प्रत्यक्ष अनुभवभी

करादे. तोभी मुझको उस पदार्थकी चाह नहीं और न मैं जिज्ञासाक-रताहूं और नकुछ इसबातके निर्णय करनेमें मेरा किसीसे वाक्यवादहै और जो श्रीमहाराजभी यही कहें तो उनका कहना मेरे शिरमाथेपर है परंतु मुझमें तो यह सामर्थ्य नहीं कि परमानंदस्वरूपश्रीमहारा-जसे मैं पृथक् होजाऊं. जो श्रीमहारज यह जानें कि किसी प्रकार हमसे पृथक् होसक्ता है तो श्रीमहाराजमें अनंत अचिंत्य शक्ति है. श्रीमहाराजही मुझको आपसे पृथक् करदें यह मेरी प्रीति नाता संबंध ऐसा है कि जो श्रीमहाराजभी इसको कदाचित् पृथक् किया चाहें तोभी नहीं होसक्ता फिर औरोंका तो क्या सामर्थ्य है? क्यों कि यह संबंध लौकिक वैदिक नहीं कि जो शाब्दअनुमानादिप्रमा-णोंसे जाता रहे यह अनादि तादात्म्यसंबंध है. जो श्रीमहाराजमें स-द्गुण समझकर मेरी प्रीति हुई हो तो असद्गुण जानकर जाती रहे.मेरी प्रीति स्वाभाविक सनातन है प्रमाणजन्य नहीं और जो भगवद्भक्त श्रीमहाराजको भक्तवत्सलादि सद्गुणकर लौकिक वैदिक विद्यामें नागर राजराजेश्वर सुरेश्वर ईश्वर परमेश्वर महेश्वर परात्पर दुःखदारिद्र-हर श्रीमान् सामर्थ्यवान् शोभासुंदरकी खान सुकुमार परमउदार दाता जगत्का कर्ता भर्ता अंतर्यामी जगत्स्वामी हिरण्यगर्भ विराट् विश्वरूपादि कहकर प्रत्यक्षशाब्दअनुमानादिप्रमाणोंकरके सिद्ध करते हैं. ऋषीश्वर मुनीश्वर शेष शारदादिकी साक्षी देते हैं. सो वे कहो समझो इसी प्रकार प्रीति करो उनको इतना सावकाशहै मुझको तो चरचा करनेका वा आपसे पृथक् पदार्थमें मन लगानेका न सा-वकाश है न सामर्थ्य है. मेरी प्रार्थना तो श्रीमहाराजसे यह है कि जो कुछ अबतक मुझसे मूर्खता हुइ सो तो हुई और मेरे भलेके लिये मेरे निमित्त अबतक जो कुछ आपकूं मेरी जानमें विक्षेप हुआ सोभी हुआ. परंतु अब श्रीमहाराजको मेरे निमित्त किंचिन्मात्रभी वि-क्षेप न हो. मुझको यह बड़ा आश्चर्य है कि वे कैसे आपके भक्त थे.

जिन्होंने आपसे सहायता चाही. द्रौपदी गजेंद्रादिकी ऐसी क्या क्षति होती थी जो अपने प्यारेको विक्षेपदिया. श्रीरामचंद्रअवतारमें आपने हनूमान्‌जीसे यह कहा कि हे वीर ! जो कुछ तुमने हमारी सहाय भक्ति करी सो लोकोंमें प्रसिद्ध है. उसके प्रत्युपकारमें यह वरदान देता हूं कि ऐसा कोई काल न हो जो मैं तुम्हारी सहाय करूं. हे भगवन् ! यही मैंभी चाहता हूं और लिखे देता हूं कि ऐसाही आपका चिंतवन और निश्चय मेरे लिये हो. अबतक जो जो अनुग्रह आपने मुझपर किये कहांतक कहूं, अनंत हैं. जो कुछ आपने मेरा उपकार और उद्धार अपनी तरफ देखकर किया उसकी तो अवधि होचुकी और जो कुछ मुझको करना चाहिये था उसका प्रारंभभी न होनेपाया केवल मनोराज्य करते हुए ही आपने सफल करके मुझको सनाथ और कृतार्थ कर दिया. जब कि यह आपकी महिमा है तो मैं सिवाय आपके और किसको श्रेष्ठ उत्तम ब्रह्मपरमेश्वर मानूं ? और इस जगह कैमुतिकन्याय है कि प्रथम मैं सकाम संसारके दुःखोंमें दुःखी अनेक जंजाल झगड़ोंमें फँसा हुआ था. एक समय विषयानंदमें मनको बहलानेके लिये आपकी लीलानुकरण और स्वरूपानुकरणको देखा। मैंने सो वो अनुकरण आपके स्वरूप और लीलाके सामने लेशमात्रभी नहीं था और प्राकृत भाषामें आपके गुणोंको सुना. अबतक सिवाय आपकी कृपाके नहीं जानता हूं कि इसमें क्या कारण था जो अपने आप बिना यत्नके आपके गुण स्वरूपमें प्रीति होने लगी और दुःखोंकी निवृत्ति और आनंदका आविर्भाव होने लगा. तब तो मैंने केवल आपके चरित्र और गुणोंके श्रवणकोही दुःखोंको दूर करनवाला और परमानंदको प्राप्तकरनेवाला समझा. फिर ऐसा हुआ कि वेदशास्त्रोंमें और बड़े बड़े महात्मा संत महंत पंडितोंके मुखसे आपकी बड़ाई सुनी आपका बड़ा प्रभाव सुना। फिर वेदगीतादिशास्त्र और सुपात्र

सज्जन आपके भक्तोंको प्राणोंसेभी प्यारा मैंने जानकर उनमें मन लगाया. शास्त्र और सद्गुरुवोंकी कृपा और आपके प्रथम अनुग्रहसे मुझको यह ज्ञान हुआ कि आपही साक्षात् परमानंदज्ञानस्वरूपहैं. जिसके वास्ते सब लोक नानाप्रकारके यत्न करते हैं. आपके जाननेमें कुछभी यत्न नहीं और न किसी साधनकी इच्छा है. क्योंकि आप स्वयंप्रकाश ज्ञानस्वरूप हैं. आपको बुद्ध्यादिजड़ पदार्थ कैसे प्रकाशकरसक्ते हैं. इस प्रकार अपने आप साक्षात् आप मुझको अनुभव अपरोक्ष हुए अब मैं भला आपसे कैसे पृथक् होसक्ता हूं? तात्पर्य यह कि जब गृहस्थाश्रममें संसारके अनेक झगड़ोंमें और शास्त्रार्थ जाननेके लिये मतमतांतरके झगड़ोंमें लगा हुआ था तब तो सबका त्यागकर आपके सन्मुख हुआ फिर अब आपसे कैसे जुदा होसक्ताहूं?

उपोद्घात्।

वक्तव्य अर्थको मनमें रखकर उसकी संगतिके लिये प्रथम और कथा कहना उसको उपोद्घातकथा कहते हैं. तात्पर्य गीता और गीतापर टीका जैसी और जिसवास्ते बनी सो कथा लिखते हैं. विना उपोद्घातकथा सुने गीताका तात्पर्यार्थ समझमें न आवेगा सोई सुनो. श्रीमत्परमहंसपरिव्राजश्रीस्वामी मलूकगिरिजीमहाराज मुझ आनन्दगिरि इस सज्जनमनोरंजनी टीकाकारके गुरुदेव हैं. उनके चरणकमलोंका पूजनेवाला मैं अनुचर शिष्य हूं और श्रीपंडितराज पंडितजी श्रीमोहनलालजीमहाराज रहनेवाले कुरुक्षेत्रांतर्गत कपिस्थलनगरके मेरे विद्यागुरु हैं सुयश (कीर्ति) और माहात्म्य, इन दोनों महामुनीश्वरोंका वर्तमानकालके महात्मा सज्जन लोक सबही जानते हैं मैं क्या लिखूं? ये दोनों महाराज वर्तमानकालमें साक्षात् श्रीवेदव्यास भगवान् और श्रीभगवत्पूज्यपाद श्रीशंक-

राचार्यमहाराज हैं. इन दोनों महाराजके और श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज और श्रीस्वामी आत्मागिरिजीमहाराजके कृपासहायसे और अन्य महापुरुषोंकेभी सहायसेमुख्यबीबी वीराब्राह्मणी प्रसिद्ध बीबीझुनिया देवीके निमित्त यह भाषाटीका बनाई है. जिस बीबीबीराने श्रीवीरविहारींजी महाराज और श्रीवीरेश्वरमहादेवजीमहाराजका मन्दिर सिकन्द्राबादमें बनाकर और विधिवत् संवत १९२७ में प्रतिष्ठा करके जो कुछ द्रव्य उसके पास था जिस जगह उसका सत्त्व था जो उसको आश्रय था समस्त महाराजको समर्पण करके उसी दिन विधिवत् सर्वस्वदानका संकल्प कर दिया. एक पुरानी धोती अपने पास रक्खी और कुछ अपने पास नहीं रक्खा. फिर श्रीवृन्दावनमें जाकर वास किया. पहलेभी पुष्करादि बहुत तीर्थोंका सेवन किया. श्रीजगन्नाथस्वामी श्रीकेदारनाथ बदरीनारायणस्वामी और श्रीनाथजी इनका दर्शन किया. ऐसे ऐसे पुण्य करनेसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हुआ और भगवत्तत्त्व जाननेकी उनको इच्छा हुई. सुखपूर्वक उनको ब्रह्मतत्त्व जाननेके लिये मुख्य बीबीबीराब्राह्मणीके निमित्त यह टीका बनाई गई है. विशेषकरके शांकरभाष्य और आनन्दगिरिजीके टीकानुसार मैंने अर्थ लिखा है. और किसी किसी जगह श्रीधरीटीकानुसार और किसी किसी जगह महापुरुषोंके मुखारविंदका श्रवण किया हुआ अर्थ और किसी किसी जगह अपनी बुद्धिके अनुसारभी लिखा है श्रीकृष्णचंद्रका अर्जुनसे जैसा संवाद हुआ प्रथम सो सुनना अवश्य है. इस वास्ते वो प्रसंग लिखते हैं. श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीके अर्जुन परम भक्त थे. अर्जुनको विना ब्रह्मज्ञान युद्धके प्रारम्भ समय शोक मोह हो गया. श्रीमहाराज उस समय अर्जुनके पास थे. जान गये कि अज्ञानसे इसको यह शोक मोह हुआ है. ब्रह्मज्ञान सुनानेसे दूर होगा यह विचारकर, परमकरुणाकी खान श्रीभगवान्ने समस्तवेदोंका सार ब्रह्मज्ञान

साधनोंकेसहित उपदेशकर स्वधर्ममें स्थित कर दिया. क्योंकि विनास्वधर्मका अनुष्ठान किये और विना अंतरंग उपासना किये ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं. ऐसे विक्षेप समय श्रीमहाराजने जो यह ब्रह्मज्ञान अर्जुनको उपदेश किया इसका तात्पर्य यह है,कि कोई वक्ता तो ऐसी रीतिसे कथा कहतेहैं कि जो श्रोताका चित्त भले प्रकार एकाग्र हो.तब वक्ताका तात्पर्य समझमें आता है और किसी वक्ताकी कथा विक्षेप चित्तकूंभी एकाग्र करदेती है. सिवाय इसके महत्पुरुषोंके वाक्यमें सामर्थ्य होता है. श्रीमहाराजने अर्जुनको ऐसी रीतिसे उपदेश किया कि विक्षिप्तचित्त भी एकाग्र होजावे. महात्मा सर्वज्ञजन देशकालवस्तुके सहित अधिकार समझकर कहते हैं वेदोंमें जो विस्तारपूर्वक ब्रह्मविद्याका निरूपण है वहां देशकालवस्तुके सहित अधिकार देखना चाहिये और गीतामें संक्षेप करके जो ब्रह्मज्ञान निरूपण किया है यहांभी देशकालवस्तुके सहित अधिकार देखना योग्यहै. सत्ययुग द्वापर त्रेताकालमें ब्राह्मण और राजा वनमें वास करके तपसे पापोंका नाशकर ब्रह्मविद्याका विचार करतेथे. अवस्था उनकी बहुत होतीथी. रोगी कम होतेथे. उनके वास्ते वेदोंमें ।विस्तारके सहित ब्रह्मविद्याका उपदेश युक्त है. दूसरा यह कि वा उपदेश समष्टिके वास्ते है किसी एक अपने प्यारेके वास्ते नहीं कि जो विचार २ अर्थ लिखा जावे और यह उपदेश एक अपने प्यारे सखा परमभक्तके वास्तेहै इस हेतुसे श्रीमहाराजने बहुत विचारके सहित यह गीताग्रंथ कहा है सिवाय इसके श्रीमहाराजने यह भी समझा कि अर्जुनसे ऐसी रीतिके साथ कहना चाहिये कि जो शीघ्र अर्जुनके समझमें आजावे नहीं तो प्रथम हँसी हमारी है. क्योंकि, "वक्तुरेव हि तज्जाड्यं यत्र श्रोता न बुद्ध्यते ॥" तात्पर्य कहनेवालेकी भाषा अच्छी नहीं कि जो श्रोता नहीं समझता है. अब भले प्रकार विचार करना योग्य है कि यह गीताग्रंथ कैसा उत्तम

है कि जिसका वक्ता श्रीकृष्णचंद्रमहाराज पूर्णब्रह्म और श्रोता अर्जुन और वेदव्यासजी कर्ता हैं. इन तीनोंकी महिमा जगत्में प्रसिद्ध है. परमकरुणाकर श्रीवेदव्यास नागरने यह विचारकर कि विशेष करके कलियुगमें लोग मन्दबुद्धि आलसी कुतर्की मंदभाग्य कम अवस्थावाले और रोगी ऐसे होंगे और खेती बनिज नौकरी और भिक्षा इन चारप्रकारकी आजीविकाहीमें दिनरात्रि खोवेंगे उनके उद्धारके वास्तेभी यत्न करदेना योग्य है. क्योंकि कलियुगमें वेदोंका पढ़ना सुनना तो पृथक् रहा. वेदोंकी पोथियांभी वास्ते- प्रमाण देनेके मिलनी कठिन होंगी. जो अर्थ जिसके मनमें आवेगा संस्कृतकी भाषाकी पोथी बनाकर कह दिया करेगा कि यह ग्रंथ अनादि है वा वेदोंके अनुसार है। उसी रस्तेपर- मूर्ख (अनजान) चलने लगेंगे. वो समय अब वर्तमान होरहा है. कैसे कि असंख्यात नाममात्रके पंडितोंने वेदकी पोथीभी नहीं देखी और बात तो वेदोंका प्रमाण देकर बोलते हैं. प्रत्युत बहुत लोग वेदोंसे भी परेकी बात कहते हैं. और जो जो झगड़े (उपाधि जल्प वितंडा) जीवोंके आपसमें परमार्थका निर्णय करनेके लिये फैलरहे हैं सो प्रसिद्ध हैं. एकजीवका एकजानी शत्रु होरहा है और अनेक पुरुषोंकी इस झगड़ोंमें जान जातीरही और परमार्थके जगे परमानर्थ फैल गया. तात्पर्य ऐसी ऐसी व्यवस्था समझकर व्यासजीने श्रद्धावानोंके लिये उसी अर्थको कि जो श्रीभगवान्ने युद्धके प्रारंभसमय अर्जुनकूं उपदेश किया था उसीको सबसे श्रेष्ठ समझकर युक्तिके साथ सातसो ७०० श्लोकोंमें लिखकर श्रीभगवद्गीता उपनिषद उन भगवद्गीतामंत्रोंका नाम रक्खा और उसके अठारह अध्याय किये. हरएक अध्यायके अंतमें श्रीभगवद्गीत उपनिषद्ब्रह्मविद्या योगशास्त्र उसे ग्रंथकूं लिखा. तात्पर्य यह ग्रंथ योग- शास्त्र है योगशास्त्र नहीं और इसमें ब्रह्मविद्याका निरूपण है. कर्म

उपासना और योग इनको इस ब्रह्मज्ञानका साधन कहा है. और यह श्रीभगवान्‌के कहे हुए उपनिषद् हैं सब श्लोक इसग्रंथके मंत्र है और रक्षाके लिये इसग्रंथकूँ महाभारतमें जमाथा. उन सातसा मंत्रोंमें बहुत मंत्र तो साक्षात् श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीके मुखारविंदसे प्रगट हुए हैं. और कुछ श्लोक व्यासजीके बनायेहुए हैं. इस गीताके श्लोकका चौथाभाग अर्द्धभागभी मंत्र है. इसहेतुसे मंत्रशास्त्रवाले इसगीताकूं मालामंत्र कहतेहैं और मंत्रशास्त्रकेज्ञाता विधिपूर्वक पाठ करते हैं. जो सकामपाठ करत हैं उनकूं तो मनोवांछित फल प्राप्त होता है और जो निष्कामपाठ करते हैं उनका अंतःकरण शुद्ध होकर ब्रह्मज्ञानद्वारा उनकूं परमानंदकी प्राप्ति होती ह. गीतामाहात्म्यके ग्रंथ बहुत हैं उनमें एक एक अध्यायके श्रवण और पाठ करनेका महात्म्य और अर्द्ध अर्द्धार्द्ध श्लोकोंके पढ़नेसुननेका माहात्म्य जुदा जुदा इतिहासोंक सहित लिखाहै. उन ग्रथोंसे प्रतीत होता है कि असंख्यात पापी अंत्यज आर दुराचारी प्रत्युत पशु पक्षी भूत प्रेत और राक्षसादि गीताजीके एक एक अध्याय आधे आधे श्लोकोंकूं पक्षीःराक्षसोंकेमुखसे अनजानमें अश्रद्धापूर्वक श्रवण करके और गीतापाठीके चिताके धूमका और उसके देहके भस्मका स्पर्श करके और उसके अस्थिसंबंधीजलका स्पर्श करके अंतकालमें परमपदको प्राप्त हुए. यहां कैमुतिकन्याय है कि जो अधिकारी विधि श्रद्धासहित श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठोंसे पढ़ते सुनते हैं वे मुक्तहो जावें तो इसमें क्या कहना है ? जिसको इतिहासोंके सहित गीतामाहात्म्यके श्रवण करनेकी इच्छा होवे तो पद्मपुराणमें पृथक् पृथक् अठारह अध्यायोंके अठारह माहात्म्य हैं. उनमें लक्ष्मीनारायणका और सदाशिवपार्वतीजीका संवाद है और स्कंदादिपुराणोंमें भी बहुत है. सिवाय इसके प्रत्यक्षप्रमाणमें किसी और प्रमाणकी कुछ इच्छा नहीं होती. बहुत महात्मा वर्तमानकालमें प्रत्यक्ष देखलो कि

जो केवल गीताजीके प्रतापसे महात्मा संत साधु सज्जन होगये हैं. इस गीतापर बावन टीका प्रसिद्ध हैं और दो भाष्य हैं एक तो हनूमानजीका बनाया हुआ और दूसरा श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीमच्छंकराचार्यजीका बनाया हुआ. जिसपर श्रीस्वामी आनंदगिरिजीकी टीका है और हनूमानभाष्यपर श्रीमहाराजपंडितराजमोहनलालजीकी टीका है और श्रीसंप्रदाय और माधवीसंप्रदाय और निंबार्कसंप्रदायवालेभी अपने आचार्योंके किये हुए भाष्य गीतापर कहते हैं सो उन भाष्योंकू उनके संप्रदायवाले पढ़ते सुनते हैं इसीप्रकार बावनटीकासे सिवाय हैं कम नहीं. और देशीभाषामें और यामिनीभाषामेंभी बहुत हैं और इसग्रंथमें किसीप्रकारका संशय नहीं. जैसे कोई मनुष्यकृत श्लोककूं श्रुति स्मृति बता देता है और कोई श्रुति स्मृतिको मनुष्यकृत बता देता है. जैसे श्रीमद्भागवतकूं कोई कहतेहैं कि यही व्यासकृत है और कोई कहतेहैं कि भगवतीभागवत व्यासकृत है. यह मनुष्यकृत है. तात्पर्य गीता ऐसा ग्रंथ नहीं, इस ग्रंथकूं अन्यद्वीपोंके निवासीभी सब ग्रंथोंसे श्रेष्ठ बताते हैं, सिवाय इसके बड़े बड़े पंडित साधु विरक्त षट्शास्त्रोंके पढ़े हुए कि जोराजालक्ष्मीपुत्रादि पदार्थोंका त्याग करके ब्रह्मलोकादिकूं तृणके बराबर समझकर वनवास करते हैं; वेभी एक पुस्तक गीताजीका अवश्य अपने पास रखते हैं. सदा पाठ करते रहते हैं. तात्पर्य जितनी स्तुति महिमा श्रीभगवद्गीताजीका लिखा जावे वो कमसेभी कम है जिसकूं परमानंदकी इच्छाहो वहश्रद्धा विधिसहित श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठोंसे गीता पढे सुने नित्य पाठ करे. 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे, इस श्लोकसे पूर्व जो नव श्लोक अंगकरन्यासादिके मंत्र हैं, वे सातसौ श्लोकोंकी संख्यासे पृथक् (सिवाय) है उनके सहित पाठ करना योग्य है. धर्मक्षेत्र यहांसे लेकर दूसरे अध्यायके दश श्लोकतक सत्तावन श्लोक कृष्णार्जुनसंवादके संगतिके लिये हैं. फिर समस्तगीतामें मुक्तिका साक्षात्का-

रण जो केवलज्ञाननिष्ठा उसका वर्णन है और ज्ञाननिष्ठाका उपाय जो कर्मनिष्ठा उसका निरूपण है. समस्तगीताशास्त्रमें ये दो निष्ठा हैं. उपासनाका कर्मनिष्ठाहीमें अंतर्भाव है. प्रथमके छः अध्यायोंमें कर्मकांडका वर्णन है, और सातवें अध्यायसे बारहतक उपासनाका वर्णन है, और तेरहसे अठारहतक ज्ञाननिष्ठाका निरूपण है. जैसे वेदोंमें कर्म उपासना ज्ञान तीन कांड हैं. ऐसेही गीताजीमें तीन कांड हैं. ये तीनोंकांड परस्पर सापेक्ष हैं. अर्थात् स्वतंत्र ये तीनों मुक्तिके कारण नहीं. कर्म तो उपासनाज्ञानकी अपेक्षा रखता है और उपासना प्रथम कर्मकी और फिर ज्ञानकी अपेक्षा रखती है और ज्ञान प्रथम कर्म और उपासना इन दोनोंकी अपेक्षा रखता है. कर्म करनेसे अंतःकरण शुद्ध होता है. उपासनासे चित्त एकाग्र होता है. फिर ज्ञानद्वारा मुक्ति होती है इस प्रकार ये तीनों कांड परस्पर सापेक्ष हैं. इसको क्रम समुच्चय कहते हैं. समसमुच्चय इसको समझना न चाहिये क्योंकि एककालमें एकपुरुषसे कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठा इन दोनोंका अनुष्ठान नहीं हो सक्ता. इनका स्थितिगतिवत् विरोध है. कर्ता और अकर्ताभी एककालमें कैसा समझाजावै? तात्पर्य यहहै कि प्रथम कर्मनिष्ठा मुख्य रहतीहै और ज्ञाननिष्ठा गौण जब कर्मनिष्ठा परिपाक होजाती है तब ज्ञाननिष्ठा मुख्य हो जाती है और कर्मनिष्ठा गौण फिर ज्ञाननिष्ठापरिपाक होकर समस्त दुःखोंकूं मलके सहित नाश करके परमानंदको प्राप्त कर देती है. सब संत महंत महात्मा वेदशास्त्रोंका यही सिद्धांत है. यह नियम है कि महावाक्यार्थज्ञानके विना मुक्ति कभी नहीं होती है और महावाक्यार्थका ज्ञान तब होता है जब प्रथम पदार्थका ज्ञान हो जावे. महावाक्यमें तीन पद हैं 'तत् १ त्वम् २ असि ३' तत् और त्वम् इन दो पदोंका अर्थ वाच्य और लक्ष्य भेदसे दो दो प्रकारका है. श्रीभगवद्गीतामें विचारना चाहिये कि महावाक्यार्थ किस प्रकार और कहां

निरूपण हुआ सो सुनो. समस्तगीतामें महावाक्यार्थही श्रीमहाराजने निरूपण किया है. 'तत्र तु प्रथमे कांडे कर्मतत्त्यागवर्त्मना ॥ त्वं पदार्थोविशुद्धात्मासोपपत्तिर्निरूप्यते' ॥ १ ॥ अ० प्रथम कांडमें कर्म करना. उसके फलकं न चाहना. संगरहित अर्थात् आसक्तिरहित कर्म करना इस मार्गकरके त्वंपदका अर्थ दोप्रकारका (वाच्य और लक्ष्य) निरूपण किया है. शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपजीवका त्वंपदका लक्ष्यार्थ है और अविद्यामें कार्यगुणकर्मफलमें जो सक्त सो त्वंपदका वाच्यार्थ है ॥ १ ॥ द्वितीये भगवद्भक्तिनिष्ठावर्णनवर्त्मना ॥ भगवान्परमानंदस्तत्पदार्थोविधीयते ॥ २ ॥ अ० दूसरे कांडमें भक्तिनिष्ठामार्गकरके तत्पदका अर्थ निरूपण किया अर्थात् श्रीभगवान्को परमानंदस्वरूपादिमान् जो कहा सो तो तत्पदका लक्ष्यार्थ है. और सर्वज्ञसर्वशक्तिमान्कर्त्ताहर्त्तादिस्वरूप भगवत्का तत्पदका वाच्यार्थ है॥२॥तृतीयेतु तयोरैक्यंवाक्यार्थोवर्णितः स्फुटः॥ एवमप्यत्रकांडानांसंबंधोस्तिपरस्परम् ॥ ३॥ अ०तीसरेकांडमें दोनों पदोंकी एकता लक्ष्यार्थमें निरूपणकी. सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ मुझको ही जान तू. इत्यादिश्लोकोंकरके स्पष्ट महावाक्यार्थ निरूपण किया इस प्रकार तीनों कांडोंका परस्पर संबंध है ॥ ३ ॥

अथ संकेतवर्णन।

इस टीकामें जो संकेत हैं उनको प्रथम कंठ करलेना योग्य है. क्योंकि हरएक जगह काम पड़ेगा सोई लिखते हैं. मू० यह मूलका संकेत है अ० यह अर्थका संकेत है सि० यह सिवायका संकेत है जो अर्थ मूलपदसे सिवाय श्लोकार्थके बीचमें लिखा है वो ❀ इस फूलके संकेतपर्यंत होगा टी० यह टीकाका संकेत है. जिस जगह पदका अर्थ भले प्रकार नहीं लिखा गया उसको फिर टीकामें विस्तारसहित लिखा है. पू० यह संकेत पूर्णका है पदके पूर्ण करनेके लिये

चकारएवकारादि श्लोकमें प्रायशः लिखे होते हैं. किसी जगह अर्थभी देते हैं. जिस जगे पदपूरणार्थ चकारादि होंगे वहां अर्थमें पू॰ यह संकेत लिखा होगा. उ॰ यह संकेत उत्थानिका और उपोद्घातका है ॥ यह संकेत श्लोकके अंकका है और जिसजगह वाक्य पूर्ण हुआ वहां यह चिह्न है. पर्याय शब्द (   ) इसके बीचमें लिखा जावेगा. पाठ करनेके समय सि॰ मू॰ टी॰ इनसंकेतोंको मनमेंही समझ लेना उच्चारण नहीं करना. तात्पर्य इन संकेतोंको छोड़कर शेषका उच्चारण करना योग्य है. अर्थ तो सब पदोंका लिखा जावेगा परंतु टीका सबपदोंकी न होगी.

देशभाषाकी स्तुति।

प्रथम देशभाषा सुनकर मुझको बोध हुआ है इस हेतुसे मुझको देशभाषा प्रिय लगती है. मनुष्यलोकमें देवभाषा तो कोई कोई बोलते समझते हैं. प्रायशः सब प्राकृत (देशभाषा) बोलते समझते हैं. और इस लोकमें यह चाल है कि जो देवभाषाके ग्रंथोंकूं पढ़ाते सुनाते हैं तो अर्थ उनका देशभाषाहीमें समझाते हैं और प्रसिद्ध है कि असंख्यात संत महात्मा साधु देशभाषामेंही भगवत्के गुणानुवाद सुनकर भगवत्को प्राप्त हुए और असंख्यातजन वर्तमानकालमें भगवत्के सन्मुख हैं. मैं नहीं जानता कि कोई कोई मूर्ख भाषाकी निंदा क्यों करता है और अपनी हँसी कराकर क्यों पापका भागी होता है ? हँसी तो उसकी ऐसी है कि एक आदमी देशभाषामें कथा वांचता हुआ देशभाषामें अर्थ समझाताथा. वो वक्ता देशभाषामें बोला कि देशभाषाका प्रमाण नहीं उसका पढना सुनना निष्फल है. यह सुनकर समझवाले श्रोता सब उठ खड़े हुए और देशभाषामें कहने लगे कि वक्ता तो बड़ाही मूर्ख है यह सुनकर वक्ताको क्रोध आगया. सुननेवालोंको नास्तिक मूर्ख.. शूद्र वर्ण

संकर ऐसा कहकर देशभाषामें गाली देने लगा. सुननेवालोंने वक्तासे कहा कि सुनो महाराज ! हमको तो देशभाषा प्रमाण सफल है. गालियोंका फल (दुःख) हमको होता है और तुमको तो देशभाषा प्रमाण नहीं. निष्फल है. तुमने हमारे कहनेका क्या बुरा माना ? और हम तो तुम्हारे कहनेमें वदतोव्याघात दोष समझकर और तुमकूं कृतघ्न समझकर उठ खड़े हुए जो बोलताहै उसीकी बुराई करता है जिस देश भाषाकी कृपासे तुम्हारे अनेक व्यवहार सिद्धहोते हैं उसके उपकारको नहीं मानतेहो प्रत्युत असूया करतेहो. यह सुनकर वो वक्ता चुप हुआ फिर सब श्रोता उसकी हँसी करते हुए चले गये. अकेले वक्ताजी बक्के रहे. और पापका भागी ऐसा होताहै कि जिसे देवभाषा समझनेकी तो सामर्थ्यनहीं उसको देशभाषासेभी हटादेना यह कितना बड़ा अनर्थ है.इसमें संदेह नहीं कि देवभाषा मुमुक्षुके लिये अत्यंत हितकारी है. परंतु मंदमति क्या करे प्रायशः चारों वर्ण जो अपने परम इष्टदेव मतसे अनजान हो रहे हैं और अन्य द्वीपनिवासियोंके पंजेमें फँसे चले जाते हैं इसमें यही हेतु है कि वे लोग तो सब अपनी देशभाषामें इष्टउपासनाकूं सुन पढ़कर शीघ्र समझ लेतेहैं. और यह वर्णाश्रमी देशभाषाको निष्फल अप्रमाण है ऐसा मूर्खोंसे सुनकर पशुवत् बने रहते हैं. तात्पर्य मेरा यह है कि जिसको देवभाषाके पढ़ने सुनने समझनेका सामर्थ्य है वो तो भूलकरभी देशभाषाकी पोथियोंको न पढ़े न सुने. और जो असमर्थ हैं वे देशभाषाको परमहितकारी समझें. देशभाषामें निंदा स्तुति सुनी हुई तो फलदात्री है और फिर भगवत्के गुण सुने हुए सफल क्यों न होंगे ? तात्पर्य देशभाषा बे संदेह प्रमाण (सफल) हैं. अब देशभाषामें परमानंदस्वरूपश्रीकृष्णचंद्र महाराजजीके गुणोंको सावधान होकर सुनो. जो पुरुष ब्रह्मविद्याकी प्रक्रियाको न जानता हो वो प्रथम ब्रह्मविद्याकी प्रक्रियाको याद करे जब गीताका तात्पर्य

(सिद्धांत) समझमें आवेगा क्योंकि ब्रह्मविद्यावेदांतशास्त्रमें गीता सिद्धांतग्रंथ है. प्रक्रियाके प्रकरण पृथक् हैं. सज्जनमनोरंजनी इसदेश भाषाके टीकासे पृथक् एक ब्रह्मविद्या की प्रक्रिया देशभाषामें मैंने भी वर्णन की है. जिसका नाम "आनंदामृतवर्षिणी" प्रसिद्ध है. उसको इस टीकाका अंग और एकदेश (पूर्वभाग) समझना योग्यहै जब कि आनंदामृतवर्षिणी प्रक्रिया इस टीकाका पूर्वभाग है इसी-हेतुसे वेदान्तसंज्ञाका इस टीकामें मैंने निरूपण नहीं किया. केवल सिद्धान्तपदार्थोंका निरूपण किया है और इसी हेतुसे सज्जन विद्वान् साधु महात्मा पंडितोंसे कुछ इसमें प्रार्थना नहीं करी न संबंध अधि-कारी इत्यादिकोंका लक्षण कहा. आनंदामृतवर्षिणीमें अधिकारीस-म्बन्धादिकोंका लक्षण लिखचुका हूं. सज्जन साधु अपनी सज्जनता साधुताकी तरफ देखकर बिगडी अशुद्धकविताकोभी शुद्ध करदेते हैं, और दुष्ट शुद्धमेंभी दोष निकाला करते हैं. इन दोनोंका यह स्वभाव अनादि और अभंग है. सज्जन तो यह समझते हैं की एक पुरुषसेजो कुछ प्रयत्न होसका वो उसने किया, हमको सुधार देना चाहिये. निर्दो-षकविता सर्वज्ञजनोंकी होती हैं. असर्वज्ञके कहनेमें जो दोष प्रतीतहो नेसे उसके समस्तपुरुषार्थको क्यों नाशकरना चाहिये. सिवाय इसके यहभी समझना चाहिये कि मुझको जो यह दोषप्रतीत होता है तो मैं सर्वज्ञ हूं वा अल्पज्ञ हूं! जो सर्वज्ञ गुण दोषोंका निर्णय करे तब तो सबको प्रमाण होता है. नहीं तो निन्दक दुष्ट कहलाता है. क्योंकि गुणको गुण और दोष को दोष सर्वज्ञही नियम करके कह सक्ताहै. जो अल्पज्ञ दोष निकालता हैउसके बकनेको मूर्खमानताहै. सज्जन हंसके सदृश सारग्राही होते हैं इसी हेतुसे निन्दकदुष्टोंसे भी प्रार्थना करना व्यर्थहै. सज्जनोंके चरणोंको नमस्कारकरके सज्जनमनोरंजनी यह श्री-भगवद्गीता उपनिषदोंकी टीका अर्थात् श्रेष्ठजनोंके मनको रंजन कर-नेवाली और आनंद देनेवाली है. अब इस टीकाका प्रारम्भ करता हूं.

ॐ

श्रीभगवद्गीता ।

भाषाटीकासहित ।

मू०–१ ओम् अस्य श्रीभगवद्गीतामालामंत्रस्य २ श्रीभगवान् वेदव्यासऋषिः३अनुष्टुप् छंदः ४ श्रीकृष्णः परत्मा देवता ५ ॥

अ० यह ओम् नाम परमात्माका है वास्ते मंगलाचरणके प्रथम इसका उच्चारण करते हैं १ इस श्रीभगवद्गीतामालामंत्रके २ श्रीभगवान् वेदव्यास ऋषि ३ सि० हैं. और इस मालामंत्रका ❀ अनुष्टुप्छंद ५ सि०है.और इस मंत्रके ❀ श्रीकृष्णपरमात्मा देवता५सि०है. ❀

मू०–अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्चभाषसे ॥ इति बीजम् १

अ० यह मंत्र है. अर्थ इसका आगे लिखा जावेगा यह बीज १ सि०है. इस मालामंत्रका. ❀

मू०सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकंशरणंव्रज॥इतिशक्तिः१

अ० यह शक्ति. १ सि० है. इसकी. ❀

मू०–अहंत्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामिमाशुचः ॥१॥ इति कीलकम् १

अ० यह कीलक १ सि० है इसका. ❀

मू०–नैनंछिन्दन्ति शस्त्राणिनैनंदहतिपावकः ॥ अंगुष्ठाभ्यां नमः १

अ०यह मंत्र पढ़कर दोनों हाथके तर्जनीअंगुलीसे दोनों हाथके

अंगूठोंका स्पर्श करते हैं. अंगूठेके पास जो उंगली है उसका नाम तर्जनी है. १

मू०--नचैनंक्लेदयन्त्यापोनशोषयतिमारुतः ॥
इति तर्जनीभ्यांनमः १

अ०यह मंत्र पढ़कर दोनों अंगूठोंसे दोनो तर्जनी उंगलियोंका स्पर्श करते हैं. १

मू०--अच्छेद्योयमदाह्योयमक्लेद्योशोष्य एव च ॥
इतिमध्यमाभ्यांनमः १

अ० दोनों अंगूठोंसे दोनों मध्यमाका स्पर्श करते हैं. १

मू०--नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोयंसनातनः ॥
इत्यनामिकाभ्यांनमः १

अ०दोनों अंगूठोंसे दोनों अनामिकाका स्पर्श करते हैं. १

मू०--पश्यमेपार्थरूपाणि शतशोथसहस्रशः ॥
इतिकनिष्ठिकाभ्यांनमः १

अ० दोनों अगूठोंसे दोनोंकनिष्ठिकाका स्पर्श करते हैं. १

मू०--नानाविधानिदिव्यानिनानावर्णाकृतीनिच ॥
इतिकरतलकरपृष्ठाभ्यांनमः १

अ०यह मंत्र पढ़कर प्रथम दाहने हाथके नीचे बाम हाथ रखते हैं. फिर बामे हाथके नीचे दहिना हाथ रखते हैं यह सब विधि-गुरुके बतलानेसे अच्छीतरह आजाता है.

यहांतक करन्यास हुआ.

अब अंगन्यासके मंत्र लिखते हैं।

मू०--नैनंछिन्दन्तिशस्त्राणीतिहृदयायनमः ॥ १ ॥

अ० यह मंत्र पढ़करपांचों उंगलियोंसे हृदयका स्पर्श करते हैं. १

मू०--नचैनंक्लेदयन्त्यापइतिशिरसेस्वाहा १

अ० यहमंत्र पढ़कर पांचों उंगलियोंसे शिरका स्पर्श करते हैं. १

मू०--अच्छेद्योयमदाह्योयमितिशिखायैवषट् १

अ० यह मंत्र पढकर पांचों उंगलियोंसे चोटीका स्पर्श करते हैं १

मू०--नित्यःसर्वगतःस्थाणुरितिकवचायहुम् १

अ० यह मंत्र पढ़कर दहिने हाथसे बामे खवेका और बामे हाथसे दहिने खवेका स्पर्श करते हैं १

मू०--पश्यमेपार्थरूपाणीतिनेत्रत्रयायवौषट् १

अ० दहिने हाथसे दोनों नेत्रोंको छूते हैं. १

मू०--नाना विधानिदिव्यानीत्यस्त्रायफट् १

अ० यह मंत्र पढ़कर दहिने हाथकी तर्जनी और मध्यमा ये दो उंगली बामे हाथकी हथेलीपर मारते हैं. १

यहांतक अंगन्यास हुआ.

मू०--श्रीकृष्णप्रीत्यर्थेंजपेविनियोगः इति संकल्पः १

अ० यह संकल्प पढ़कर यह चिंतवन करे कि यह पाठ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजजीके प्रसन्न होनेके लिये करताहूं. १

अथध्यानम्।

संकल्पसे पीछे श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजजीकाध्यान करना योग्यहै ध्यान. कुरुक्षेत्रके अंतर्गत ज्योतीश्वर तीर्थ पर दोनों सेनाके बीचमें रथपर सवार इस स्वरूपसे श्रीकृष्णचंद्र भगवान् अर्जुनको ब्रह्मज्ञान सुना रहे हैं. चरणकमलोंके अंगूठोंमें सोनेके छल्ले पहरे हुये. चरणोंमें कडे सोनेके पैंजनी चांदीसोनेकी. जिसमें पंचरंगी मणि जडीहुई पीली धोती जिसमें रक्त किनारी लगीहुई जिसपर अनेक प्रकार औ

नानारंगोंके वेलबूंटे बनेहुए जिसके चमकसे चंद्रसूर्यकी ज्योति फीकी प्रतीतहोती है. पहर रहे हैं पंचरंगी वेलदार अंगरखा. जिसमें कलाबत्तून और गोटा ठप्पा जगेजगे लगा हुआ है. नीचे उसके रक्तकुरता पहरे हुए गलेमें पंचरंगी मणि मोतियोंकी माला और नानारंगके फूलोंकी माला पहर रहे हैं. हाथोंमें सोनेचांदीके छल्ले अंगूठी कडे पहुँची बाजूबंद जडाऊ पहर रहे हैं. गुलानारी दुपट्टेसे कमर कसी-हुई. घूंगरूवाले बालोंमें अतर फुलेलपड़ा हुआ. सिरसे बसंती दुपट्टा किनारीदार बंधा हुआ. कानोंमें तीन तीन वाले रक्त श्वेत हरित मोतियोंके सहित लटक रहे हैं. एक हाथमें तो छडी शोभित दूसरेमें ज्ञानमुद्रा बनाये हुए १४–१५ वर्षकीसी अवस्था प्रतीत होती है. मंदमुसकानसहित अर्जुनको समझाते हैं. बिजलीकी तरह दांतोंकी चमक प्रातःकालके सूर्यवत् होठोंपर लाली. कमलवत् बड़े बड़े नेत्र हैं जिनके जिनमें सुरमा लगाहुवा रक्त डोरे खिचेहुए हैं भराहुआ चेहरा चौडी उभरी हुई छाती है जिनकी. नीलकमल नीलनीरधर नीलमणिवत् रंगहै जिनका. जिसमें उत्कट लाली झलक रही है. प्रसन्नमुख मस्तकपर प्रातिपदिक चंद्रवत् तिलक धारण कर रक्खा है जिन्होंने. ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज मेरे मनमें वास करो.

मू०–पार्थायप्रतिबोधितांभगवतानारायणेनस्वयंव्या
सेनग्रथितांपुराणमुनिनामध्येमहाभारते ॥ अद्वै-
तामृतवर्षिणींभगवतीमष्टादशाध्यायिनीमम्बत्वा
मनसादधामिभगवद्गीतेभवद्वेषिणीम् ॥ १ ॥

अ०अम्ब १ भगवद्गीते २ त्वा ३ मनसा ४ दधामि ५ नारायणेन ६ भगवता ७ स्वयम् ८ पार्थाय ९ प्रतिबोधितम् १० महाभारते ११ मध्ये १२ पुराणमुनिना १३ व्यासेन १४ ग्रथिताम् १५ अद्वैतामृतवर्षिणीम् १६ भगवतीम् १७ अष्टादशाध्यायिनीम् १८ भवद्वेषिणीम् १९ ॥ १ ॥ अ० हेमाता १ हे भगवद्गीते २ तुमको ३ मन द्वार-

के अर्थात् मनसे ४ धारण करता हूं ५ सि० हृदयमें. कैसी हो तुम कि जो ❀ नारायणभगवान्ने ६।७ आप ८ अर्जुनसे ९ कही १० सि० और ❀ महाभारतके मध्यमें ११।१२ प्राचीनमुनिव्यासने १३।१४ गूंदी १५ तात्पर्य व्यासजीने महाभारतके छठे भीष्मपर्वमें श्रीभगवद्गीता ब्रह्मविद्या कही है. १५ सि० फिरकैसी हो तुम-हेभगवद्गीते ❀ अद्वैत अमृत वर्षता है जिसमें १६ सि० पुनः ❀ भगवती १७ सि० पुनः ❀ अठारह अध्याय हैं जिसमें. १८ सि० पुनः ❀ संसारसे द्वेष है जिसका. १९ सि० ऐसी तुम हो ❀ टि० भगवान्ने जो कहे उपनिषद् उनको भगवद्गीता उपनिषद् कहते हैं. व्याकरणकी रीतिसे संबोधनमें ऐसा बोलते हैं कि हे भगवद्गीते ! बहुतजगह इसी प्रकार अक्षरोंका बदल होजाताहै. जैसे माताका हेमाता १ । २ पूर्णब्रह्मका नाम नारायणहै. भगवान्का विशेषणहै. ६ ऐश्वर्य वीर्य यश लक्ष्मी ज्ञान वैराग्य इन छहोंका नाम भग है. जिसमें ये पूर्णहों सो भगवान्. और स्त्री होतो भगवती अथवा उत्पत्ति नाश गति अगति विद्या अविद्या इन छहोंको जो जानता है सो भगवान् या भगवती. यह ग्रंथ पूर्णब्रह्म भगवान्का कहा हुआ है. इस हेतुसे बहुत प्रमाण है. ७ भेदवादी जीवब्रह्मके भेदको सिद्धांत कहते हैं. उसका खंडन करनेके लिये यह विशेषण है. १६ उन्नीसवें पदका यह अर्थ प्रतीत होता है कि गीता और संसारका वैर है. परंतु यह नहीं प्रतीत होताथा कि इन दोनोंमें बलवान् कौन है ? इसवास्ते यह विशेषण है. १७ तात्पर्य इस श्लोकका यह है कि गीताजीका पढ़नेवाला पाठ करनेवाला प्रथम गीताजीका ध्यान और स्तुति! करता है. हे गीते! तुमको साक्षात् श्रीकृष्णचंद्रने अर्जुनसे कही और व्यासजीने महाभारतके बीचमें लिखी. तुम मातासेभी सिवाय हित चाहनेवाली दुःखरूप संसारका नाश करनेवाली ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यादिकरके युक्त

हो. अठारह विद्यामें जो अर्थ है सोई तुम्हारे अठारह अध्यायोंमें है. उस अर्थके विचारनेसे सब वेदोंका सिद्धांत अद्वैत (जीवब्रह्मकी एकता) है उसका अपरोक्ष ज्ञान होजाता है. इसवास्ते हे माता ! तुमको मैं मनसे अपने हृदयमें धारण करताहूं ॥ १ ॥

मू०–नमोस्तुतेव्यासविशालबुद्धेफुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र। येनत्वयाभारततैलपूर्णःप्रज्वालितोज्ञानमयःप्रदीपः ॥२॥

व्यास १ विशालबुद्धे २ फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ३ ते ४ नमः ५ अस्तु ६ येन ७ त्वया ८ भारततैलपूर्णः ९ ज्ञानमयः १० प्रदीपः ११ प्रज्वालितः १२ ॥ २ ॥ अ० हे व्यास १ हे विशालबुद्धे २ हे फुल्ला रविन्दायतपत्रनेत्र ३ आपके अर्थ ४ नमस्कार ५ हो ६ जिन ७ आपने ८ भारततैल करके पूर्ण ९ ज्ञानरूप १० दीपक ११ प्रज्व- लित किया (जलाया) १२ टी० बड़ी बुद्धि है जिनकी २ फूले कमलके चौड़ेपत्रवत् नेत्र हैं जिनके ३ इन दो विशेषणोंका तात्पर्य यह है कि भूत भविष्यत् वर्तमान कालकी व्यवस्था व्यासजी सर्व देखते समझते हैं क्यों कि वे सर्वज्ञ हैं ॥ २ ॥

मू०–प्रपन्नपारिजातायतोत्रवेत्रैकपाणये ॥
ज्ञानमुद्रायकृष्णायगीतामृतदुहेनमः ॥ ३ ॥

कृष्णाय १ नमः २ प्रपन्नपारिजाताय ३ तोत्रवेत्रैकपाणये ४ ज्ञानमुद्राय ५ गीतामृतदुहे ६ ॥ ३ ॥ अ०–श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजी- को १ नमस्कार २ सि० है. कैसेहैं श्रीमहाराज ❀ भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष ३ सिं० हैं. पुनः ❀ छड़ी वेतकी एकहाथमें है जिनके ४ सि०पुनः ❀ ज्ञानमुद्राहै जिनकी. अर्थात् तर्जनी उंगलीसे अंगूठा मिलाये हुये अर्जुनको समझाते हैं ५. गीतारूप अमृत दुहा है जिन्होंने ६ ॥ ३ ॥

मू०—सर्वोपनिषदोगावोदोग्धागोपालनन्दनः ॥
पार्थोवत्सः सुधीर्भोक्तादुग्धंगीतामृतंमहत् ॥ ४ ॥

सर्वोपनिषदः १ गावः २ दोग्धा ३ गोपालनंदनः ४ पार्थः ५ वत्सः ६ सुधीः ७ भोक्ता ८ दुग्धं ९ गीतामृतम् १० महत् ११ ॥ ४ ॥ अ०सब उपनिषद १ गौः २ अर्थात् गौके सदृश हैं. २ दोहनेवाले ३ श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजी. ४ अर्जुन ५ बच्छा ६ सुन्दर बुद्धिवाला ७ पीनेवाला ८ दूध ९ गीतारूप अमृत १० सि० कैसा है यह. ❋बडा ११ ॥ तात्पर्य श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीने सब उपनिषदोंका सारासार अर्थ अर्जुनको निमित्त करके शुद्धान्तःकरणवालोंके लिये कहा है. गीताजीका अर्थ जानकर फिर संदेह नहीं रहता इस वास्ते महत् विशेषण है. और फिर शरीर धारण नहीं करता गीतापाठी इस वास्ते अमृत विशेषण है ॥ ४ ॥

मू०—वसुदेवसुतंदेवंकंसचाणूरमर्दनम् ॥
देवकीपरमानंदंकृष्णंवन्देजगद्गुरुम् ॥ ५ ॥

कृष्णम् १ वंदे २ जगद्गुरुम् ३ वसुदेवसुतम् ४ देवम् ५ कंसचाणूरमर्दनम् ६ देवकीपरमानंदम् ७ ॥ ५ ॥ अ०श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजीको १ नमस्कार करता हूं मैं. २ ॥ सि० कैसे हैं श्रीमहाराज ! ❋ जगत्के गुरू ३ वसुदेवजीके ४ पुत्र ज्ञानस्वरूप अथवा दीप्तिमान् मूर्तिवाले ५ कंसचाणूरके मारनेवाले ६ देवकीजीको परमानंदके देनेवाले ७ इसश्लोकमें किशोर अवस्थाका ध्यान है ॥ ५ ॥

मू०—भीष्मद्रोणतटाजयद्रथजलागान्धारनीलोत्पला
शल्यग्राहवतीकृपेणवहनी कर्णेन वेलाकुला ॥
अश्वत्थामविकर्णघोरमकरादुर्योधनावर्त्तिनीसो-
त्तीर्णाखलुपांडवैःकुरुनदीकैवर्त्तकेकेशवे ॥ ६ ॥

केशवे १ कैवर्तके २ खलु ३ पांडवैः ४ सा ५ कुरुनदी ६ उत्तीर्णा ७ भीष्मद्रोणतटा ८ जयद्रथजला ९ गांधारनीलोत्पला १० शल्यग्राहवती ११ कृपेण १२ वहनी १३ कर्णेन १४ वेलाकुला १५ अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा १६ दुर्योधनावर्त्तिनी १७ ॥ ६ ॥ अ० श्रीकृष्णचंद्रमहाराजजी मल्लाह हुयेसंते २ अर्थात् श्रीकृष्णचंद्र मल्लाह होनेसेही १ । २ निश्चय ३ पांडवनने ४ सो ५ कुरुनदी उतरी ६ । ७ अर्थात् पांडवनने कुरुवंशी दुर्योधनादिको जीता ७ सि० कैसीहै वो नदी ? ❁ भीष्म और द्रोणाचार्य किनारे हैं जिसके. ८ जयद्रथहै जल जिसमें. ९ गांधारीके पुत्र नीलेकमल हैं जिसमें. १० शल्य ग्राह है जिसमें ११ कृपाचार्य करके १२ वहनेवाली १३ कर्णकरके १४ वेलाव्याप्त होरहीहै जिसमें १५. अश्वत्थामा और विकर्ण घोरमकर हैं जिसमें १६. दुर्योधन चक्र है जिसमें १७. तात्पर्य श्रीकृष्णचंद्र महाराजजी पांडवोंके सहायकरनेवाले थे तब पांडवनने कौरवोंको जीता ॥ ६ ॥

मू०–पाराशर्य्यवचःसरोजममलंगीतार्थगन्धोत्कटंनानाख्यानककेसरं हरिकथासम्बोधनाबोधितम् ॥
लोकेसज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानंमुदाभूयाद्भारतपंकजंकलिमलप्रध्वंसि नःश्रेयसे ॥ ७ ॥

भारतपंकजम् १ नः २ श्रेयसे ३ भूयात् ४ कलिमलप्रध्वंसि ५ पाराशयवचःसरोजम् ६ अमलम् ७ गीतार्थगन्धोत्कटम् ८ नाना ९ आख्यानककेसरम् १० हरिकथासंबोधनाबोधितम् ११ लोके १२ सज्जनषट्पदैः १३ अहरहः १४ मुदा १५ पेपीयमानम् १६ ॥ ७ ॥ अ० भारतरूप कमल १ हमारे २ कल्याणके अर्थ ३ हो ४ अर्थात हमारा भला करो २ । ३ । ४ सि० कैसा है सो भारतकमल. ❁ कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला ५ व्यासजीके वचनरूपसरमें

जमा है. ६ सि० पुनः ❀ निर्मल ७ गीताका जो अर्थ सोई उत्कट तीव्र गंध है जिसमें ८. नाना भांति भांतिकी (तरह तरहकी) ९ कथा (केसर)हैं जिसमें १०. हरिकथासंबोधनोंकरके जागरहाहै. ११ अर्थात् श्रीकृष्णचंद्रमहाराजके कथाका जो ज्ञान समझना उसकरके खिला हुआ है; ११ जगत्में १२ सज्जनरूप भ्रमर १३ आनंदपूर्वक १४ दिनदिनप्रति (नित्य) १५ सि० उसकमलका रसको ❀ पीते हैं १६ तात्पर्य जिस महाभारतमें भगवत्संबंधी कथा है और जिसके बीचमें श्रीभगवद्गीता विराजमान है जिसको श्रेष्ठलोग पढ़ते सुनते हैं आनंदसहित ऐसा निर्दोष महाभारत हमारा भला करै ॥ ७ ॥

मू०--मूकंकरोतिवाचालंपंगुंलंघयतेगिरिम् ॥
यत्कृपातमहंवन्देपरमानन्दमाधवम् ॥ ८ ॥

अहम् १ तम् २ परमानंदमाधवम् ३ वंदे ४ यत्कृपा ५ मूकम् ६ वाचा ७ अलम् ८ करोति ९ पंगुम् १० गिरिम् ११ लंघयते १२ ॥ ८ ॥ अ० मैं १ तिन २ परमानंदस्वरूपलक्ष्मीजीके पतिको ३ नमस्कार करताहूं ४ जिनकी कृपा ५ गूंगेको ६ बाणीकरके ७ पूर्ण ८ करदेतीहै. ९ अर्थात् जिनकी कृपासे गूंगा तरह तरहके शब्द बोलने लगताहै. ९सि० और ❀ पंगु १० पहाड़ ११ उलंघ जाताहै १२ अर्थात् जिनकी कृपा लंगड़को पर्वतका उल्लंघन करादेतीहै १२ ॥ ८ ॥

मू०--यंब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्तिदिव्यैःस्त
वैर्वेदैःसांगपदक्रमोपनिषदैर्गायन्तियं सामगाः ॥
ध्यानावस्थिततद्गतेनमनसापश्यन्तियं योगिनो
यस्यान्तंनविदुःसुरासुरगणादेवायतस्मैनमः॥९॥

अ० ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः १ दिव्यैः २ स्तवैः ३ यम् ४ स्तुन्वन्ति ५ सामगाः ६ सांगपदक्रमोपनिषदैः ७ वेदैः ८ यम् ९ गायन्ति १०

योगिनः ११ ध्यानावस्थिततद्गतेन १२ मनसा १३ यम् १४ पश्यन्ति १५ सुरासुरगणाः १६ यस्य १७ अंतम् १८ न १९ विदुः २० तस्मै २१ देवाय २२ नमः २३ ॥९॥ अ०ब्रह्मा वरुण इन्द्र रुद्र मरुतदेवता १ दिव्य २ स्तोत्रोंकरके ३ जिसकी ४ स्तुति करतेहैं ५ सामवेदकेगानेवाले ६ अंग, पद, क्रम, और उपनिषद इन सहित७ सि० जो वेद हैं तिन ❀ वेदोंकरके ८ जिसको ९ गातेहैं १० योगी ११ ध्यानमें मनको ठहरायकर तद्गत१२ मनकरके १३ अर्थात् १३ परमेश्वरमें मनप्राप्तकरके अर्थात् लगाकर१३ जिसको१४देखतेहैं१५- देवता और असुरोंके गण१६जिसके१७अंतको १८ नहीं१९जानते हैं २० तिस २१ देवताके अथ २२ नमस्कार २३ सि० है❀॥९॥

इतिध्यानम्।

यह ध्यान समाप्तहुआ।

प्रथमाध्यायः १.

मू०—धृतराष्ट्रउवाच ॥ धर्मक्षेत्रेकुरुक्षेत्रेसमवेतायुयुत्सवः॥मामकाःपांडवाश्चैवकिमकुर्वतसंजय॥१॥

धृतराष्ट्रः १ उवाच २अ०धृतराष्ट्र१बोलताभया २ अर्थात् राजा- धृतराष्ट्र संजयसे यह बोला १।२संजय १ मामकाः २ च३पांडवाः४ एव ५ धर्मक्षेत्रे ६ कुरुक्षेत्रे ७ समवेताः ८ युयुत्सवः ९ किम् १० अकुर्वत११॥१॥अ०हे संजय१मेरे पुत्रादि (दुर्योधनादि) २ और३ पांडुके पुत्रादि पांडव (युधिष्ठिरादि) ४ पू०।५ (पादपूरणार्थ यह एवपद है ५) धर्मभूमि ६ कुरुक्षेत्रमें ७ इकट्ठे होकर ८ युद्धकी इच्छा करनेवाले ९ क्या १० करते हुवे ११ अर्थात् लड़ाई हुई वा एकता होगई १० ॥ ११ ॥ तात्पर्य राजा धृतराष्ट्र नेत्रहीन था इस वास्ते लड़ाईमें नहींगया था. संजय सज्ञाका सारथी राजाके पास

रहा. उसको व्यासजीने यह वरदान देदिया था कि जो व्यवस्था कुरुक्षेत्रमें होगी उसको तुम इसी जगह बैठे हुये साक्षात् देखोगे. जो जो व्यवस्था कुरुक्षेत्रमें हुई वो सब संजयने राजा धृतराष्ट्रसे कही. इसहेतुसे गीतामें राजा धृतराष्ट्र और संजयकाभी संवाद है. ये दोनों हास्तिनापुरमें रहे अर्थात् श्रीकृष्णार्जुनके संवादको संजयने धृतराष्ट्रसे निरूपण कियाहै ॥ १ ॥

मू०--संजयउवच ॥ दृष्ट्वातुपांडवानीकंव्यूढंदुर्योधनस्तदा॥आचा.र्यमुपसंगम्यराजावचनमब्रवीत्॥२॥

संजयः १ उवाच २अ०संजय१बोला२अर्थात् धृतराष्ट्रसे. तदा १ राजा २ दुर्योधनः ३ व्यूढम् ४ पांडवानीकम्५ दृष्ट्वा ६ तु ७ आचार्यम् ८ उपसंगम्य ९वचनम् १० अब्रवीत् ११॥ २॥अ०सि०जिस कालमें दोनों सेना सजकर युद्धकेलिये आपने सामने खडीहुई ❀ तिसकालमें १ राजा २ दुर्योधन ३सि०चक्रकमलाकारादि ❀ रची हुई ४ पांडवोंकीसेनाको ५ देखकर ६ फिर ७ गुरुके८पास जाकर ९ सि०यह ❀ वचन१०बोला११सि०किजोआगेनवश्लोकोंमेंअर्थहै ❀ टी० द्रोणाचार्य शस्त्रविद्याके गुरू हैं ८ तात्पय दुर्योधन पांडवनके सेनाको भलेप्रकार सजीहुई देखकर मनमें डरा और यह जानाकि जहां यह रचना है तो फिर ये कैसे जीते जावेंगे ? जो हमारे गुरु इससे सिवाय रचना रचें तब भलाईकी बात है. इसवास्ते राजा गुरुकेपास जाकर बोला ॥ २ ॥

मू०--पश्यैतांपांडुपुत्राणामाचार्यमहतींचमूम् ॥ व्यूढां द्रुपदपुत्रेणतवशिष्येणधीमता ॥ ३ ॥

आचार्य १ पांडुपुत्राणाम् २ एताम् ३ महतीम् ४चमूम् ५ पश्य६ धीमता ७ तव ८ शिष्येण ९ द्रुपदपुत्रेण १० व्यूढाम् ११ ॥ ३॥

अ० हेगुरो! १पांडवनके २इस ३बडी ४ सेनाको ५देखो ६ बुद्धिमान् ७ आपके ८ शिष्य ९ द्रुपदके पुत्रने १०रची है ११. तात्पर्य आपका शिष्य होकर आपका समान करता है यह देखिये ॥३॥ उ० और इस सेनामें जो शूरवीर हैं उनकोभी देखलीजिये. क्योंकि यथा योग्य जोडीके साथ लडाना चाहिये.

मू०-अत्रशूरामहेष्वासाभीमार्जुनसमायुधि ॥
युयुधानोविराटश्चद्रुपदश्चमहारथः ॥ ४ ॥

अत्र १शूराः २ महेष्वासाः ३ युधि ४ भीमार्जुनसमाः ५ युयुधानः ६विराटः ७च८द्रुपदः९च१०महारथः ११ ॥ ४॥ अ० इसमें अर्थात् इस सेनामें१सि० जो✻शूर २सि० हैं ✻ बडेबडेधनुष हैं जिनके ३ युद्धमें ४ भीमार्जुनके बराबर ५ सि० नाम उनके ये हैं ✻युयुधान ६ औरविराट७।८और द्रुपद९। १० सि० महारथ यह सबका विशेषणहै. कैसेहैं ये✻महारथ११ सि० असंख्यात शस्त्रधारियोंसे जो युद्ध करे और अस्त्रशस्त्रविद्यामें चतुरहो उसको अतिरथ कहते हैं. और दश सहस्रसे जो अकेला युद्धकरे उसको महारथ कहते हैं. और जो एकसें एक लडे उसको रथी कहते हैं. इससे कमको अर्द्धरथी कहतेहैं ११ ॥ ४ ॥

मू०-धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ॥
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैव्यश्च नरपुंगवः ॥ ५ ॥

धृष्टकेतुः १ चेकितानः २ काशिराजः ३ च ४ वीर्यवान् ५ पुरुजित् ६ कुंतिभोजः ७ च ८ शैव्यः ९ च १० नरपुंगवः ११ ॥ ५ ॥ अ० धृष्टकेतु १ चेकितान २ और काशीका राजा ३।४ सि० कैसे हैं ये✻बलवान् ५ सि० यह सबका विशेपण है✻पुरुजित् ६ और कुंतभोज ७।८ और शैब्य ९।१० सि० कैसे हैं ये✻ पुरुषोंमें उत्तम ११ सि० यह तीनोंका विशेपण है✻ ११ ॥ ५ ॥

मू०-युधामन्युश्चविक्रान्तउत्तमौजाश्चवीर्य्यवान् ॥
सौभद्रोद्रौपदेयाश्चसर्वएवमहारथाः ॥ ६ ॥

युधामन्युः १ च २ विक्रांतः ३ उत्तमौजाः ४ च ५ वीर्यवान् ६
सौभद्रः ७ द्रौपदेयाः ८ च ९ सर्वे १० एव ११ महारथाः १२ ॥ ६
अ० युधामन्यु १ [पू०२]सि० कैसा है यह ❀ तेजस्वी सुन्दर ३ औ
उत्तमौजा ४ । ५ बलवान् ६ अभिमन्यु ७ और द्रौपदीके पांचों पु
८ । ९ सि० ये ❀ सब १० ही ११ महारथ १२ सि० हैं ❀ ॥ ६

मू०-अस्माकंतुविशिष्टायेतान्निबोधद्विजोत्तम ॥
नायकाममसैन्यस्यसंज्ञार्थंतान्ब्रवीमिते ॥ ७ ॥

द्विजोत्तम १ अस्माकम् २ ये ३ विशिष्टाः ४ मम ५ सैन्यस्य ६
नायकाः ७ तान् ८ तु ९ निबोध १० ते ११ संज्ञार्थम् १२ तान् १३
ब्रवीमि १४ ॥ ७ ॥ अ० हे ब्राह्मणोंमें उत्तम! १ हमारे २ सि० सेना
में ❀ जो ३ श्रेष्ठ ४ सि० हैं और ❀ मेरे ५ सेनाके ६ सि० जो ❀ सर
दार अग्रणी ७ तिनको ८ भी ९ देखिये १० आपसे ११ भलेप्रका
जानलेनेके लिये १२ तिनको १३ अर्थात् तिनके नाम कहता हूं म
टी० अगले श्लोकमें ❀ १४ तात्पय युद्धसे प्रथमही भले प्रका
इनको समझलेना चाहिये वास्ते युद्ध करनेके ॥ ७ ॥

मू०-भवान्भीष्मश्चकर्णश्चकृपश्चसमितिंजयः ॥
अश्वत्थामाविकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैवच ॥ ८ ॥

भवान् १ भीष्मः २ च ३ कर्णः ४ च ५ कृपः ६ च ७ समितिंजयः ८
अश्वत्थामा ९ विकर्णः १० च ११ सौमदत्तिः १२ तथा १३ एव १४ च १५
॥ ८ ॥ अ० आप १ और भीष्मजी २।३ और कर्ण ४।५ और कृ
पाचार्य ६।७ समितिंजय ८ अश्वत्थामा ९ और विकर्ण १०। ११ सौम
दत्ति १२ तैसे १३ ही १४ सि० भी बहुत शूरवीर हैं ❀ ॥ ८

मू०--अन्येचबहवःशूरामदर्थेत्यक्तजीविताः ॥
नानाशस्त्रप्रहरणाःसर्वेयुद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

अन्ये १ च २ बहवः ३ शूराः ४ मदर्थे ५ त्यक्तजीविताः ६ नाना-शस्त्रप्रहरणाः ७ सर्वे ८ युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥ अ० सि० जिनके नाम पीछे कहे उन्होंसे सिवाय ❀ और १ भी २ बहुत ३ शूर ४ सि० हैं हमारे सेनामें. जिन्होंने ❀ मेरेवास्ते ५ त्यागादिईहै आशा जीवने-की ६ अनेक प्रकारसे शस्त्रचलावनेवाले ७ सब ८ युद्धमें चतुर ९ सि० हैं ❀ ॥ ९ ॥ उ० इस कथा कहनेसे राजादुर्योधनका जो आशयहै सो कहता है.

मू०--अपर्य्याप्तंतदस्माकंबलंभीष्माभिरक्षितम् ॥
पर्य्याप्तंत्विदमेतेषांबलंभीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥

तत् १ अस्माकम् २ बलम् ३ अपर्याप्तम् ४ भीष्माभिरक्षितम् ५ इदम् ६ तु ७ एतेषाम् ८ बलम् ९ पर्याप्तम् १० भीमाभिरक्षितम् ११ ॥ १० ॥ अ० सि० पीछे जो कहा ❀ सो १ हमारा २ बल ३ सि० पांडवनके साथ लडनेको ❀ समर्थ है वा बहुत है. ४ सि० क्योंकि ❀ भीष्मजी करके रक्षा कियागया है ५ अर्थात् भीष्मजी हमारे बलकी रक्षा करनेवाले हैं. कैसे हैं भीष्मजी. वृद्ध होनेसे सूक्ष्म बुद्धिवाले (चतुर) हैं ५ सि० और ❀ यह ६ पु० ७ इनका ८ बल ९ अर्थात् पीछे जो कहा डवनका बल ९ सि० सो हमारे साथ लडनेको ❀ असमर्थ है वा थोडाहै १० सि० क्योंकि संख्यामेंभी कम है. औरचंचलबुद्धिवाले ❀ भीमकरके रक्षितहै. ११ अथवाहमारा बल पांडवनकेसाथ लडनेको असमर्थ प्रतीत होता है. क्योंकि भीष्मजी सेनापति वृद्ध हैं और वे उभयपक्षीहैं (दोनोंतरफ मिले हुएहैं) भीष्मजीप्रत्यक्षतो हमारे तरफ हैं और जय पांडवनकी चाहते हैं श्रीकृष्णकी प्रसन्नताकेलिये. और पांडवनका बल हमको जीतनेको समर्थ प्रतीत होताहै. क्योंकि भीम

बलवान् जवान् एकपक्षवाला सेनाका सरदार है. सिवाय इसके श्रीकृ
ष्णचन्द्र उनको सहाय करनेवाले हैं. टी० ४।१० इन दोनों पदोंका अ
बहुत और थोडा या समर्थ और असमर्थ ऐसा दोनों प्रकारका हो
क्ता है. जो पहले पदका अर्थ थोडा वा असमर्थ कियाजावेगा तो
पीछलेपदका अर्थ बहुत वा समर्थ किया जावेगा और जो पहलेपदका
अर्थ बहुत वा समर्थ कियाजावेगा तो पीछलेपदका अर्थ थोडा वा
असमर्थ किया जावेगा ४ । १० ॥ १० ॥

मू०-अयनेषुचसर्वेषु यथाभागमवस्थिताः ॥
भीष्ममेवाभिरक्षन्तुभवन्तःसर्वएवहि ॥ ११ ॥

भवन्तः १ सर्वे २ एव ३ हि ४ सर्वेषु ५ च ६ अयनेषु ७ यथाभा
गम् ८ अवस्थिताः ९ भीष्मम् १० एव ११ अभिरक्षन्तु १२ ॥ ११ ॥
अ०सि० मेरी प्रार्थना आपसे यहहै कि ❋ आप १ सब २ [पू० ३] हि ४
सब ५ (पू० ६) मूर्चोंमें ७ अपने अपने ठिकानेपर ८ खडे हुए ९ भीष्म
जीकी १० (पू० ११) सब तरफसे रक्षा करते रहिये १२ तात्पर्य ऐसा नहो
कोई भीष्मजीको धोखेसे मारजावे. उनके जीते रहनेसे हमारा भलाहै
अथवा ऐसा न हो कि भीष्मजी पांडवनसे मिलकर हमारी सेना मर
वादें क्योंकि भीष्मजी दुपक्षी प्रतीत होते हैं. इसवास्ते नित्य उनकी
रक्षाकरतेरहना. ११ उ० राजादुर्योधनकोद्रोणाचार्यजीसे बातकरता
हुआ देख भीष्मजीने जाना कि राजाको हमारे तरफसे कुछ खटका
प्रतीत होताहै. इसवास्ते पांडवनसे लडनेकेलिये भीष्मजीने उठकर
शंख बजाया.

मू०-तस्यसंजनयन्हर्षंकुरुवृद्धः पितामहः ॥
सिंहनादंविनद्योच्चैःशंखंदध्मौप्रतापवान् ॥ १२ ॥

कुरुवृद्धः १ प्रतापवान् २ पितामहः ३ उच्चैः ४ सिंहनादम् ५ विनद्य ६
तस्य ७ हर्षम् ८ संजयन् ९ शंखम् १० दध्मौ ११ ॥ १२ ॥

अ०कुरूनमें बड़े१प्रातापवाले२भीष्मजी ३ ऊंचा ४सिंहशब्दवत् ५ शब्द करके अर्थात् बहुत हँसकर ६ तिसको अर्थात् राजाको ७ हर्ष-उत्पन्न करतेहुए ९ अर्थात् राजाको प्रसन्नकरनेके लिये १० शंख११ बजाते भये १२ ॥ १२ ॥

मू०-ततःशंखाश्चभेर्यश्चपणवानकगोमुखाः ॥
सहसैवाभ्यहन्यन्तसशब्दस्तुमुलोऽभवत्॥१३॥

ततः १ शंखाः २ च ३ भेर्यः ४ च ५ पणवानकगोमुखाः ६ सहसा ७ एव ८ अभ्यहन्यन्त ९ सः १० शब्दः ११ तुमुलः १२ अभवत् १३ ॥ १३ ॥ अ० पीछे उसके १ शंख २ और ३ नगारे ४ और ५ ढोल आनक गोमुख ६ एकबेर ७ ही ८ सि० राजादुर्योधनकी सेनामें ❋ सबतरफस बजते भये ९. सो १० शब्द ११बड़ा १२ होता भया १३. तात्पर्य ।जससमय प्रथम भीष्मजीने शंख बजाया पीछे उसके नानाप्रकारके बजने लगे. । टी० ये बाजोंके नाम हैं ६

मू०-ततःश्वेतैर्हयैर्युक्तेमहतिस्यन्दनेस्थितौ ॥
माधवःपांडवश्चैवदिव्यौशंखौप्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

ततः १ माधवः २ पांडवः ३ च ४ एव ५ दिव्यौ ६ शंखौ ७ प्रदध्मतुः ८ महति ९ स्यन्दने १० स्थितौ ११ श्वेतैः १२ हयैः १३ युक्ते १४ ॥ १४ ॥ अ०उ०जब राजा दुर्योधनके सेनामें शंखादि बाजे बजे. पीछे उसके १ सि० राजायुधिष्ठिरके सेनामें प्रथम ❋ श्रीकृष्णचन्द्र महाराज २ और अर्जुन३।४भी ५ दिव्य (अलौकिक) ६ शंखोंको ७ बजाते भये८सि० कसे हैंअर्जुनऔर श्रीमहाराजकि एक ❋ बडे ९ रथमें १० सवार हैं११. सि० कैसा है वो रथ ❋ श्वेत १२ घोडोंकरके१३युक्त १४ सि० है. अर्थात् श्वेतघोडे उस-रथमें जुडे हुए हैं ❋ ॥ १४ ॥

मू०-पांचजन्यंहृषीकेशोदेवदत्तंधनंजयः ॥
पौंड्रंदध्मौमहाशंखंभीमकर्मावृकोदरः ॥ १५ ॥

हृषीकेशः १ पांचजन्यम् २ धनंजयः ३ देवदत्तम् ४ वृकोदरः ५ भीमकर्मा ६ पौंड्रम् ७ महाशंखम् ८ दध्मौ ९ ॥ १५ ॥ अ०उ० जिनशंखोंको माधवादिने बजाया उनके नाम कहते हैं. इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज १पांचजन्यनामवाले २ सि०शंखको बजाते भये ❀ अर्जुन ३ देवदत्तनामवाले ४ सि० शंखको बजाते भये ❀ भीम भयंकरकर्म है जिनका ६ सि०सो ❀ पौंड्रनाम है जिसका७ सि० उस ❀ महाशंखको८बजाता भया ९ तात्पर्य श्रीमहाराजने पांचजन्यशंख बजाया अर्जुनने देवदत्त शंख बजाया भीमने पौंड्रशंख बजाया ॥ १५ ॥

मू०-अनन्तविजयंराजाकुन्तीपुत्रोयुधिष्ठिरः ॥
नकुलःसहदेवश्चसुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

कुन्तीपुत्रः १ राजा २ युधिष्ठिरः ३ अनन्तविजयं ४ नकुलः ५ च६ सहदेवः ७ सुघोषमणिपुष्पकौ ८ ॥ १६ ॥ अ० कुन्तीके पुत्र १ राजा २ युधिष्ठिर ३ अनन्तविजयनामवाले ४ सि० शंखको बजाते भये ❀ नकुल ५ और ६ सहदेव ७ सुघोषऔरमणिपुष्पकशंखको ८ सि० बजाते भये ❀ तात्पर्य राजाने अनन्तविजयशंख बजाया नकुलने सुघोषशंख बजाया सहदेवने मणिपुष्पक शंख बजाया ॥ १६ ॥

मू०-काश्यश्चपरमेष्वासः शिखंडीचमहारथः ॥
धृष्टद्युम्नोविराटश्चसात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥

काश्यः १ च २ परमेष्वासः ३ शिखंडी ४ च५महारथः ६ धृष्टद्युम्नः ७ विराटः ८ च ९ सात्यकिः १० च ११ अपराजितः १२॥ १७॥ अ० काशीकाराजा१ [पू०२] श्रेष्ठहै धनुष जिसका ३ और शिखं-

डी ४ । ५ महारथ ६ धृष्टद्युम्न ७ और विराट८।९और सात्यकि१०। ११सि०कैसे हैं ये तीनों ❀अपराजित १२ सि० हैं ❀ टी० न जीतसके दूसरा जिसको उसे अपराजित कहते हैं १२.तात्पर्य ये सब पृथक्. पृथक् (अपना अपना) शंख बजाते भये. इस श्लोकका अन्वय आगले श्लोकके साथ है ॥ १७ ॥

मू०-द्रुपदोद्रौपदेयाश्चसर्वशःपृथिवीपते ॥
सौभद्रश्चमहाबाहुःशंखान्दध्मुःपृथक्पृथक् ॥१८॥

पृथिवीपते १ द्रुपदः२द्रौपदेयाः ३ च४ सौभद्रः५च६महाबाहुः ७ सर्वशः ८ पृथक् ९ पृथक् १० शंखान् ११ दध्मुः १२ ॥१८॥ अ० उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है. हे राजन् ! १ द्रुपद २ और द्रौपदीके पांचों पुत्र ३ । ४ और अभिमन्यु ५।६बड़ी हैं भुजा जिसकी७.सि० ये सब और जो पीछे कहे ❀ सब तरफसे ८ पृथक् पृथक् ९ । १० सि० अपने अपने ❀ शंखोंको ११ बजाते भये १२ ॥ १८ ॥

मू०-सघोषोधार्त्तराष्ट्राणांहृदयानिव्यदारयत् ॥
नभश्चपृथिवींचैवतुमुलोव्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

सः १ घोषः २ धार्तराष्ट्राणाम् ३ हृदयानि ४ व्यदारयत् ५ नभः ६ च ७ पृथिवीम् ८ च ९ एव १० तुमुलः ११ न[ा]नादयन् १२॥१९॥ अ०सो १ घोष २ दुर्योधनादिके ३हृदयको [४।५] फाडताभया अर्थात दुर्योधनादि उस शब्दको सुनकर डरे. मारेड[र] उनका हृदय कम्प-नेलगा, मानो फटने लगा५.आकाश६और[पृ]थ्वीको ८ व्याप्तकरके अर्थात् अकाश और पृथिवीमें६।७व्याप्तहोक[र] पू०९।१०] बहुत ११ शब्दपरशब्द होता भया १२सि०दुर्योधनादिके हृदयको फाडता भया ❀ तात्पर्य पृथिवीसे लेकर आकाशपर्यन्त वह शब्द व्याप्त होगया ॥ १९ ॥

मू०-अथव्यवस्थितान्दृष्ट्वाधार्त्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ॥

प्रवृत्तेशस्त्रसम्पातेधनुरुद्यम्यपांडवः॥२०॥हृषी
केशंतदावाक्यमिदमाहमहीपते॥अर्जुनउवाच॥
सेनयोरुभयोर्मध्येरथंस्थापयमेऽच्युत ॥ २१॥

अथ १ कपिध्वजः २ धार्तराष्ट्रान् ३ व्यवस्थितान् ४ दृष्ट्वा ५ शस्त्रसम्पाते ६ प्रवृत्ते ७ पांडवः ८ धनुः ९ उद्यम्य १० ॥ २०॥ पृथिवीपते १ तदा २ हृषीकेशम् ३ इदम् ४ वाक्यम् ५ आह ६ अर्जुन उवाच–अच्युत ७ मे ८ रथम् ९ उभयोः १० सेनयोः ११ मध्ये १२ स्थापय १३ ॥ २१ ॥ अ० उ० बीसवें श्लोकका इक्कीसवें श्लोकके साथ संबन्ध है. शंखादिका शब्द सुनकर जो व्यवस्था दुर्योधनादिकी हुई सो तो कही, और वोही शब्द सुनकर अर्जुनने जो किया सो संजय धृतराष्ट्रसे कहताहै. जब दोनों तरफ बाजा बजने लगा. पीछे उसके १ अर्जुन २ दुर्योधनादिको ३ भले प्रकार खड़े हुए ४ देखकर ५ शस्त्रोंका चलना ६ प्रवृत्त हुआ चाहता था अर्थात् हथियार चलानें ही चाहतेथे. उस समय ७ अर्जुन ८ धनुषको ९ उठाकर १० अर्थात् तीरकमान दुरुस्त करके संवारिके १० टी० हनूमान्‌जी अर्जुनके ध्वजामें रहतेथे इस व्युत्पत्तिसे अर्जुनका नाम कपिध्वज है ॥ २० ॥ हे राजन् ! धृतराष्ट्र १ सि० जिसकालमें हथियार चलनेवालेथे ❁ तिसकालमें २ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजसे ३ यह ४ वाक्य ५ बोला ६. अर्जुनबोला हे अच्युत! ७मेरे ८ रथको ९ दोनों १० सेनाके ११ बीचमें १२ खडा करो १३. टी० भक्तिका प्रताप देखना चाहिये कि भक्त भगवान्‌पर आज्ञा करते हैं और जो भक्त चाहते हैं वैसाही श्रीभगवान् करते हैं १३ ॥ २१ ॥

मू०–यावदेतान्निरीक्ष्येऽहंयोद्धुकामानवस्थितान्
कैर्मयासहयोद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥२२॥

एतान् १ योद्धुकामान् २ अवस्थितान् ३ यावत् ४ अहम् ५

निरीक्ष्ये ६ अस्मिन् ७ रणसमुद्यमे ८ मया ९ कैः १० सह ११ योद्धव्यम् १२ ॥ २२॥ उ० कबतक वहां रथ खड़ा किया जावे यह शंका करके अर्जुन कहताहै कि. अ० ये जो युद्धकी कामनावाले खड़े हुए हैं इनको १ । २ । ३ जबतक ४ मैं ५ देखूं अर्थात् यह मैं देखने चाहता हूं कि ६ इस रणके प्रारम्भसमय ७ । ८ मुझको ९ किनके १० साथ ११ युद्ध करना योग्यहै. १२ तात्पर्य अर्जुनका तमाशा देखनेमें नहीं है १२ ॥ २२ ॥

मू०—योत्स्यमानानवेक्ष्येऽहंयएतेत्रसमागताः ॥
धार्त्तराष्ट्रस्यदुर्बुद्धेर्युद्धेप्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

योत्स्यमानान् १ अहम् २ अवेक्ष्ये ३ एते ४ ये ५ अत्र ६ युद्धे ७ समागताः८ दुर्बुद्धेः ९ धार्तराष्ट्रस्य १० प्रियचिकीर्षवः ११ ॥२३ ॥ अ० सि० इन ❋ युद्ध करनेवालोंको १ मैं २ देखूं ३ सि०तो कि ❋ ये ४ जो ५ इस युद्धमें ६ । ७ आये हैं ८ सि० कैसेहैं ये ❋ दुष्टबुद्धिवाले दुर्योधनकी ९ । १० जय चाहते हैं ११ ॥ २३ ॥

मू०—संजयउवाच ॥ एवमुक्तोहृषीकेशोगुडाकेशेन
भारत ॥ सेनयोरुभयोर्मध्येस्थापयित्वारथोत्तमम् ॥
॥ २४ ॥ भीष्मद्रोणप्रमुखतःसर्वेषांचमहीक्षिताम् ॥
उवाचपार्थपश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥

भारत १ गुडाकेशेन २ एवम् ३ उक्तः ४ हृषीकेशः ५ उभयोः६ सेनयोः ७ मध्ये ८ भीष्मद्रोणप्रमुखतः ९ सर्वेषाम् १० च ११ महीक्षिताम् १२ रथोत्तमम् १३ स्थापयित्वा १४ इति १५ उवाच १६ पार्थ १७ एतान् १८ समवेतान् १९ कुरून् २० पश्य २१॥२४॥२५॥ अ० सि० इनदोनों श्लोकोंका अन्वय एक है ❋ संजय धृतराष्ट्रसे

कहता है. हे राजन् ! १ अर्जुनकरके २ इसप्रकार ३ कहेहुए श्रीभगवान् ५ अर्थात् अर्जुनने श्रीभगवान्‌से जब यह कहा कि मे रथ दोनों सेनाके बीचमें खड़ा कीजिये. यह सुनकर श्रीभगवान् दोनों सेनाके ६।७ बीचमें ८ भीष्म और द्रोणाचार्यके सामने ९ औ सबराजाओंके १०। ११। १२ सि० सामने ❀ उत्तम रथको १३खड़ करके १४ यह १५ बोले १६ हे अर्जुन ! १७ इन १८ मिले हुए १९ कौरवोंको २० देख २१ तात्पर्य ये सब योद्धा प्रत्यक्ष हैं इनक तूँ देख ॥ २४ ॥ २५ ॥

मू०–तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथपितामहान् । आचार्य्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथ

अथ १ पार्थः २ तत्र ३ पितॄन् ४ स्थितान् ५ अपश्यत् ६ पितामहान् ७ आचार्यान् ८ मातुलान् ९ भ्रातॄन् १० पुत्रान् ११ पौत्रान् १२ सखीन् १३ तथा १४ ॥ २६ ॥ अ० सि० ढाई श्लोकत एक अन्वय है ❀ जब श्रीभगवान्‌ने कहा कि अर्जुन ! देख इनको पीछे उसके १ अर्जुन २ तिससेनामें ३ चाचा आदिको ४ सि० युद्धके लिये ❀ खड़े हुए५ देखता भया. ६ तात्पर्य अर्जुनने चाचाआदिको देखा. पितामहको ७ आचर्योंको मामाओंको ९ भाइयोंको १० भतीजेआदिकोंको ११ पौत्रोंको १२ मित्रों १३ सि० जैसे चाचा आदिकोंको देखा अर्जुनने ❀ तैसेही १४ सि० आचार्यादिकोंको देखा ❀ छठे पदवाले क्रियाका सब कर्मोंके साथ सम्बन्ध है ॥ २६ ॥

मू०–श्वशुरान्सुहृदश्चैवसेनयोरुभयोरपि ॥ तान्समीक्ष्यसकौंतेयःसर्वान्बंधूनवस्थितान्॥२७॥कृपयापरयाविष्टोविषीदन्निदमब्रवीत्॥अर्जुनउवाच॥दृष्ट्वेमंस्वजनंकृष्णयुयुत्सुंसमुपस्थितम्॥२८॥ सीदंतिममगा

त्राणिमुखंचपरिशुष्यति॥ वेपथुश्चशरीरेमेरोमहर्ष-
श्चजायते ॥ २९ ॥

श्वशुरान् १ सुहृदः २ च ३ एव ४ तान् ५ सर्वान् ६ बन्धून् ७ अवस्थितान् ८ समीक्ष्य ९ उभयोः १० अपि ११ सेनयोः १२ सः १३ कौंतेय १४ ॥ २७ ॥ परया १ कृपया २ आविष्टः ३ विषीदन् ४ इदम् ५ अब्रवीत् ६ अर्जुनः ७ उवाच ८ कृष्ण ९ इमम् १० स्वजनम् ११ युयुत्सुम् १२ समुपस्थितं १३ दृष्ट्वा १४ ॥ २८ ॥ मम १ गात्राणि २ सीदन्ति ३ मुखं ४ च ५ परिशुष्यति ६ मे ७ शरीरे ८ वेपथुः ९ च १० रोमहर्षः ११ च १२ जायते १३॥ २९ ॥अ० ससुरोंको १ और सुहृदोंको २।३ भी ४ सि० देखा अर्जुनने ❀ तिन ५ सब ६ सम्बान्धियोंको ७ सि० युद्धमें मरनेकेलिये ❀ जमें हुए ८ देखकरके ९ सि० वे सब कोनसे हैं? इस अपेक्षामें यह कहते हैं कि ❀ दोनों १० ही ११ सेनाके १२ सि० संबंधियोंको देखकरके ❀ सो १३ अर्जुन १४ ॥ २७ ॥ परमकृपाकरके १।२ युक्त ३ दुःखमें भराहुआ ४ यह ५ बोला ६ सि० जो अध्यायके समाप्ति पर्यन्त कहना है ❀ अर्जुन ७ बोलता भया ८ हे कृष्ण! ९ युद्धकी इच्छा करनेवाले अपने संबंधी इनको १०।११ १२ सि० रणमें मरनेकेलिये ❀ स्थित हुए १३ देखकर १४ ॥ २८ ॥ मेरे १ हाथ पांव आदि अंग २ ढीले हुए जाते हैं ३ और मुख ४।५ सूखता है ६ मेरे ७ शरीरमें ८ कम्पा ९ और १० रोमावली ११ भी १२ उत्पन्न होतीहै १३ ॥ २९ ॥

मू०—गांडीवंस्रंसतेहस्तात्त्वक्चैवपरिदह्यते ॥
नचशक्नोम्यवस्थातुंभ्रमतीवचमेमनः ॥ ३० ॥

हस्तात् १ गांडीवम् २ स्रंसते ३ त्वक् ४ च ५ एव ६ परिदह्यते ७ अवस्थातुम् ८ न ९ च १० शक्नोमि ११ मे १२ मनः १३ भ्रमति १

इव १५ च १६ ॥ ३० ॥ अ० सि० मेरे ❀ हाथसे १ गांडीवध
नुष २ गिरताहै ३ और त्वचा ४।५ भी ६ सि० मारेशोकके ❀ ज
लतीहै ७ सि० इसयुद्धमें ❀ खडा रहनेको ८ नहीं समर्थहूं मैं ९।१०
११, मेरा १२ मन १३ सि० ऐसा हो रहाहै ❀ भ्रमताहै १४. जैसे १५
१६ सि० कोई ❀ तात्पर्य मेरे मनमें नानाप्रकारके संकल्प विकल्प
उत्पन्न होतेहैं ॥ ३० ॥

मू०—निमित्तानिचपश्यामिविपरीतानिकेशव ॥
नचश्रेयोऽनुपश्यामिहत्वास्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

केशव १ विपरीतानि २ निमित्तानि ३ च ४ पश्यामि ५ आहवे ६
स्वजनम् ७ हत्वा ८ न ९ च १० श्रेयः ११ अनुपश्यामि १२
॥ ३१ ॥ अ० हे केशव! १ विपरीतशकुनोंको २।३ [पृ० ४] देखता हूं
मैं ५ सि० इसहेतुसे ❀ युद्धमें ६ अपने सम्बन्धियोंको ७ मारकर ८
पीछे कल्याण मैं नहीं देखताहूं ९।१०।११।१२ तात्पर्य अपने स
म्बन्धियोंको मारकर मुझको अपना भला नहीं प्रतीत होताहै ॥ ३१ ॥

मू०—नकांक्षेविजयंकृष्णनचराज्यंसुखानिच ॥
किंनोराज्येनगोविन्दकिंभोगैर्जीवितेनवा ॥ ३२ ॥

कृष्ण १ विजयं २ न ३ कांक्षे ४ राज्यं ५ सुखानि ६ च ७ न ८
च ९ गोविंद १० राज्येन ११ किं १२ वा १३ भोगैः १४ जीवितेन १५
नः १६ किम् १७ ॥ ३२ ॥ अ० उ० इनको मारकर पीछे तेरी
विजय होगी तुझको राज मिलेगा, सुख होगा; यह भला होगा वा
नहीं? यह शंका करके कहता है. हे कृष्ण। १ विजय २ नहीं ३ चाह
ता हूं मैं ४ राज्य और सुखको ५।६ भी ७ नहीं ८।९ सि—चाहता
मैं ❀ हे भगवन्! १० राज्यकरके ११ क्या १२ और १३ भोगोंकर
१४ जीवनेकरके १५ हमको १६ क्या? १७. तात्पर्य न कुछ राज्य

करनेमें आनन्दहै. केवल परमानन्दस्वरूप आत्माके यथार्थ जानने-मेंही परमानन्द है ऐसे समझनवालेको विवेकी कहते हैं ॥ ३२ ॥

मू०—येषामर्थेकांक्षितंनोराज्यंभोगाःसुखानिच ॥
तइमेऽवस्थितायुद्धेप्राणांस्त्यक्त्वाधनानिच ॥ ३३ ॥

नः १ येषाम् २ अर्थे ३ राज्यम् ४ भोगाः ५ सुखानि ६ च ७ कांक्षितम् ८ ते ९ इमे १० युद्धे ११ प्राणान् १२ धनानि १३ च १४ त्यक्त्वा १५ अवस्थिताः १६ ॥३३॥ अ० हमको १ जिनके २ वास्ते ३ राज्य ४ भोग ५ सुखभी ६।७ इच्छितहै अर्थात् जिनके वास्ते राज्य भोग सुख हम चाहते हैं८वे९ सि० ही ❀ ये१० युद्धमें ११ प्राणोंको १२ और धनको १३।१४ त्यागकर १५ खडेहैं १६ अर्थात् प्राण और धनकी आशा त्यागकर वा प्राण और धन त्यागनेके लिये खडे हैं १६ ॥ ३३ ॥

मू०—आचार्याःपितरःपुत्रास्तथैवचपितामहाः ॥
मातुलाःश्वशुराःपौत्राः श्यालाःसम्बन्धिनस्तथा ३४॥

आचार्याः १ पितरः २ पुत्राः ३ तथा ४ एव ५ च ६ पितामहाः ७ मातुलाः ८ श्वशुराः९पौत्राः १० श्यालाः ११ तथा १२ सम्बंधिनः १३ अ० उ० वे येहैं—गुरु १ चाचा आदि २ भतीजे आदि३[पू०४।५।६] पितामह ७ मामा ८ श्वशुर ९ पौत्र १० साले ११ सि० जैसे ये हैं ❀ तैसेही १२ सि० और ❀ सम्बंधि १३ सि० हैं ॥ ३४ ॥

मू०—एतान्नहंतुमिच्छामिघ्नतोपिमधुसूदन ॥
अपित्रैलोक्यराज्यस्यहेतोःकिंनुमहीकृते ॥ ३५ ॥

एतान् १ घ्नतः २ अपि ३ न ४ हन्तुम् ५ इच्छामि ६ मधुसूदन ७ त्रैलोक्यराज्यस्य ८ हेतोः ९ अपि १० किम् ११ नु १२ मही-कृते १३ ॥३५॥ अ० इन मारनेवालोंकोभी १।२।३ नहीं४मारनेकी५

इच्छा करता हूं मैं अर्थात् मैं यह जानता हूं कि ये दुर्योधनादि हमको मारेंगे तो भी इनको मारनेकी हमको इच्छा नहीं ६ हे कृष्णचन्द्र! ७ त्रैलोक्यराज्यके ८ हेतुसे ९ भी १० अर्थात् जो इनके मारनेमें मुझको तीनों लोकोंका राज्य मिले तो भी इनको नहीं मारूंगा क्या ११ फिर १२ पृथिवीकी प्राप्तिकेलिये १३ सि० मारूं ❋ ॥ ३५ ॥

मू०-निहत्यधार्त्तराष्ट्रान्नःकाप्रीतिःस्याज्जनार्दन ॥
पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

जनार्दन १ धार्तराष्ट्रान् २ निहत्य ३ नः ४ का ५ प्रीतिः ६ स्यात् ७ एतान् ८ आततायिनः ९ हत्वा १० अस्मान् ११ पापम् १२ एव १३ आश्रयेत् १४ ॥ ३६ ॥ अ० हेजनार्दन ! १ दुर्योधनादिको २ मारकर ३ हमको ४ क्या ५ सुख ६ होगा ? अर्थात् किंचिन्मात्रभी सुख न होगा ७ सि० प्रत्युत ❋ इन आततायियोंको ८ । ९ मारकर १० हमको ११ पापही १२ । १३ आश्रय है अर्थात् उलटा हमको पापही लगेगा १४. टी० अग्निका देनेवाला, विष खिलानेवाला, शस्त्र हाथमें लेकर मारनेके वास्ते जो आवे, धनका हरनेवाला, खेत मकानादिका हरनेवाला, स्त्रीका हरनेवाला, ये छः आततायी कहलाते हैं दुर्योधनादिमें ये सब दोष थे. नीतिशास्त्रमें लिखा है कि जो आततायी सामने आजावे तो सामर्थ्यवान् विना विचार आततायीको मार डाले; मारनेवालेको दोष नहीं, परन्तु इसवाक्यसे विशेषवाक्य धर्मशास्त्रका यह है कि सदोषकोभी नहीं मारना. प्रत्युत वाणीसेभी उसको दुःख न देना मनमें उसका बुरा करनेका संकल्प करना यही आशय अर्जुनका है ९ ॥ ३६ ॥

मू०-तस्मान्नार्हावयंहंतुंधार्तराष्टान्स्वबान्धवान् ॥
स्वजनंहिकथंहत्वासुखिनःस्याममाधव ॥ ३७ ॥

तस्मात् १ स्वबान्धवान् २ धार्तराष्ट्रान् ३ हन्तुम् ४ वयम् ५ न ६

अर्हाः ७ माधव ८ स्वजनम् ९ हि १० हत्वा ११ कथम् १२ सुखिनः १३ स्याम १४ ॥ ३७ ॥ अ० उ० किसी जीवमात्रको भी मारना अयोग्य है और यह तो दुर्योधनादि हमारे संबन्धीहैं. तिसकारणसे १ अपनेसंबंधी दुर्योधनादिकोंको २।३ मारनेकेवास्ते ४ हम ५ नहीं योग्यहैं ६।७ अर्थात् इस योग्य हम नहीं कि अपनेही संबंधियोंकोमारें.७हे कृष्णचन्द्र ! ८ अपने संबंधियोंको ९ ही १० मारकर ११ किस प्रकार १२ सुखी १३ होंगे ? अर्थात् अपने संबंधियोंको मारकर हमको किसी प्रकार भी सुख न होगा १४ ॥ ३७ ॥

मू०—यद्यप्येतेनपश्यन्तिलोभोपहतचेतसः ॥ कुलक्षयकृतंदोषंमित्रद्रोहेचपातकम् ॥ ३८ ॥ कथंनज्ञेयमस्माभिःपापादस्मान्निवर्त्तितुम् ॥ कुलक्षयकृतंदोषंप्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

यद्यपि १ एते २ कुलक्षयकृतम् ३ दोषम् ४ मित्रद्रोहे ५ च ६ पातकम् ७ न ८ पश्यंति ९ लोभोपहतचेतसः १० ॥ ३८ ॥ जनार्दन १ कुलक्षयकृतम् २ दोषम् ३ प्रपश्यद्भिः ४ अस्माभिः ५ अस्मात् ६ पापात् ७ निवर्त्तितुम् ८ कथम् ९ न १० ज्ञेयम् ११ ॥ ३९ ॥ अ० उ० जिसपापका तूं विचार करता है यह ज्ञानदुर्योधनादिकोंभी है नहीं? यह शंका करके कहता है. यद्यपि १ ये २ सि० दुर्योधनादि कुलके क्षय करनेमें(नाशकरनेमें)जो दोष है उसको ३।४ और मित्रद्रोहमें जो पातकहै उसको ५।६।७ नहीं ८ देखते हैं ९ सि० क्योंकि लोभ करके मेला होगया है अन्तःकरण जिनका १० तात्पर्य दुर्योधनादिका अन्तःकरण लोभ करके मेला हो गया है. इस हेतुसे वे दोनों पातकोंको नहीं समझते हैं.सो वे यद्यपिनहीं समझते हैं तो समझो॥३८॥सि० परन्तु ❋ हे कृष्णचन्द्र १ कुलक्षयकृतदोषके देखने वाले हमने ४।५ इस पापसे ६।७ निवृत्त होनेको ८ किसप्र-

नहीं १० जाननेको योग्य है ? ११ तात्पर्य–कुलके नाश करनेमें और मित्रके द्रोहमें जो दोषहै उसको हम आपकी कृपासे ज्ञानचक्षुकरके देखते समझते हैं. हे भगवन्‌ ! देख समझकरभी इस पापसे हम क्यों न बचें ? अर्थात् इसपापसे निवृत्त होना चाहिये यह हमको जानना योग्य है ॥ ३९ ॥

मू०–कुलक्षयेप्रणश्यन्तिकुलधर्माःसनातनाः ॥
धर्मेनष्टेकुलंकृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥

कुलक्षये १ सनातनाः २ कुलधर्माः३प्रणश्यन्ति ४धर्मे ५ नष्टे ६ कृत्स्नम् ७ कुलम् ८ अधर्मः ९ अभिभवति १० उत ११ ॥ ४० ॥ अ०कुलके नाशहोनेमें १ सनातन कुलके धर्म२।३नाश होजाते हैं ४ धर्मनाश होनेमें ५।६ समस्त कुल ७।८ अधर्मी ९ हो जाता है १० [पू०११] ॥ ४० ॥

मू०–अधर्माभिभवात्कृष्णप्रदुष्यन्तिकुलस्त्रियः ॥
स्त्रीषुदुष्टासुवार्ष्णेयजायतेवर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

कृष्ण १ अधर्माभिभवात् २ कुलस्त्रियः३प्रदुष्यन्ति४वार्ष्णेय ५ दुष्टासु ६ स्त्रीषु ७ वर्णसंकरः ८ जायते ९ ॥ ४१ ॥ अ०हेकृष्ण-चन्द्र ! १ अधर्मके बढनेसे २ कुलकी स्त्री ३ भ्रष्ट होजाती हैं ४ हे भगवन्‌ ! स्त्रीदुष्ट (भ्रष्ट)होनेसे ६।७ वर्णसंकर ८ उत्पन्न होताहै. ९ वा०वृष्णिवंशमें जो उत्पन्न हो उसको वार्ष्णेय कहते हैं. यह नाम श्रीकृष्णभगवान्‌का है ॥ ५ ॥ ४१ ॥

मू०–संकरोनरकायैवकुलघ्नानांकुलस्यच ॥
पतन्तिपितरोह्येषांलुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

कुलघ्नानाम् १ कुलस्य२च ३संकरः ४ नरकाय ५ एव ६ एषाम् ७ पितरः ८ हि ९ पतन्ति १० लुप्तपिंडोदकक्रियाः ११ ॥ ४२ ॥ अ०कुलनाश करनेवालोंके १ कुलका २ वर्णसंकर ३ भी४नरकके-

वास्ते ५ ही ६ सि०है. और ❀ इनके अर्थात् कुलघ्नोंके ७ पितरभी ८ । ९ पतित हो जातेहैं अर्थात् स्वर्गसे वेभी नरकमें गिर पडते हैं १० . सि०क्योंकि ❀ लोप होगईहै पिंड और जलकी क्रिया जिनकी अर्थात् न कोई उसको जलदाता रहताहै न पिंड देनेवाला. वर्णसंकर (स्त्री भ्रष्टहुएबाद जो प्रजा होती है सो)आपभी नरकमें जाता है और जिसकुलमें उत्पन्न होता है वो कुलभी नरकमें जाता है ११ ॥ ४२ ॥

मू०—दोषैरेतैःकुलघ्नानांवर्णसंकरकारकैः ॥
उत्साद्यंतेजातिधर्माःकुलधर्माश्चशाश्वताः ॥ ४३ ॥

वर्णसंकरकारकैः १ एतैः २ दोषैः ३ कुलघ्नानाम् ४ शाश्वताः५ जातिधर्माः ६ कुलधर्माः ७ च८ उत्साद्यंते ९॥४३॥ अ० वर्णसंकर करनेवाले इन दोषोंने १।२।३ अथात् कुलका नाश करना मित्रोंसे कपट करना आदि जो दोष हैं इनदोषोंने ३ कुलघ्नोंके ४ सनातन५ कुलधर्म ६ और जातिधर्म ७।८ लोप किये हैं ९. तात्पर्य—यही दोष जातिधर्म और कुलधर्मोंका लोप करते हैं ९ ॥ ४३ ॥

मू०—उत्सन्नकुलधर्माणांमनुष्याणांजनार्दन ॥
नरकेनियतंवासोभवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

जनार्दन १ उत्सन्नकुलधर्माणाम् २ मनुष्याणाम् ३ नरके ४ नियतम् ५ वासः ६ भवति ७ इति ८ अनुशुश्रुम ९ ॥ ४४ ॥ अ० हे जनार्दन ! १ लोप हो जाते हैं कुलके धर्म जिनके २ सि० ऐसे ❀ पुरुषोंका ३ नरकमें ४ सदा ५ वास ६ होताहै ७. यह पीछे सुनते रहे हैं हम ९ सि० पुराणादिमें ❀ ॥ ४४ ॥

मू०—अहोबतमहत्पापंकर्तुंव्यवसितावयम् ॥
यद्राज्यसुखलोभेनहंतुंस्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥

अहोबत १ वयम् २ महत्पापम् ३ कर्तुम् ४ व्यवसिता: ५ यत् ६ राज्यसुखलोभेन ७ स्वजनम् ८ हन्तुम् ९ उद्यताः १० ॥ ४५ ॥ अ०उ०सन्ताप करनेसे भी पाप दूर हो जाता है, जो आगेको पाप न करनेका नियम करे यह समझकर अर्जुन सन्ताप करता है. अर्जुनने अपने सम्बन्धियोंके साथ युद्धकरनेका जो मनोराज्य किया इसकोभी पाप समझा. बडेकष्टकी बात है! ऐसीजगह अहोबत बोला करतेहैं अर्जुन कहता है कि, अहोबत १ हम २ बडापापकरनेको ३।४ निश्चितहुए अर्थात् हमने बडा पाप करनेका निश्चय किया५. जो ६ राज्यसुखका लोभ करके ७ अपने सम्बन्धियोंको मारनेको ८।९ उद्यत हुए १०. तात्पर्य—अपने सम्बन्धियोंको मारनेके लिये हमने यत्न किया १० ॥ ४५ ॥

मू०—यदिमामप्रतीकारमशस्त्रंशस्त्रपाणयः ॥
धार्तराष्ट्ररणेहन्युस्तन्मेक्षेमतरंभवेत् ॥ ४६ ॥

शस्त्रपाणयः १ धार्तराष्ट्राः २ यदि ३ माम् ४ अप्रतीकारम् ५ अशस्त्रम् ६ रणे ७ हन्युः ८ तत् ९ मे १० क्षेमतरम् ११ भवेत् १२ ॥ ४६ ॥ अ०उ० प्राणधारीको प्राणसेभी श्रेष्ठ परमधर्म अहिंसा है यही समझकर अर्जुन कहता है. शस्त्र हैं हाथमें जिनके १ सि०ऐसे * दुर्योधनादि २ जो ३ मुझ अप्रतीकार अशस्त्रको ४।५।६ रणमें ७ मारें ८ तो ९ मेरा १० बहुत भला ११ हो १२ टी० जो अपने साथ बुराई करे उसके साथ बुराई न करे उसको अप्रतीकार कहते हैं ५. धनुषादिशस्त्र अर्जुनने उस समय हाथमेंसे रख दियेथे इसहेतुसे अर्जुनने अपने आपको अशस्त्र कहा ६ ॥ ४६ ॥

मू०—संजयउवाच ॥ एवमुक्त्वाऽर्जुनःसंख्येरथोपस्थउपाविशत् ॥ विसृज्यसशरंचापंशोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥

अ० संजयः १ उवाच २ अर्जुनः ३ संख्ये४ एवम्५ उक्त्वा ६ सशरम् ७ चापम् ८ विसृज्य ९ रथोपस्थे १० उपाविशत् ११ शोकसंविग्नमानसः १२ ॥४७॥ अ० संजय धृतराष्ट्रसे कहताहै१।२ सि० हे राजन्! ❋ अर्जुन ३ रणमें ४ इस प्रकार५ कहकर ६ सहित शरके ७ धनुषको८विसर्जन करके९अर्थात् कमानका चिल्ला उतार और तीर तरकशमें रखकर ९ रथके पीछले भागमें १० बैठ-गया ११ शोकमें डूब गया है मन जिसका १२ तात्पर्य-अर्जुनको उस समय अत्यन्त शोक मोह हुए ॥ ४७ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः २.

मू०—संजयउवाच ॥ तंतथाकृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुले-क्षणम् ॥ विषीदन्तमिदंवाक्यमुवाचमधुसूदनः ॥ १ ॥

मधुसूदनः १ तम् २ इदम् ३ वाक्यम् ४ उवाच ५ तथा ६ कृपया७आविष्टम्८ अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ९ विषीदन्तम् १० ॥ १ ॥ उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि हेराजन्! अ० श्रीभगवान्१तिस सि० अर्जुनसे ❋ यह ३ वाक्य ४ बोलते भये ५ सि० कैसाहै अर्जुन ? ❋ तिस प्रकार ६ कृपाकरके ७ युक्तहै ८ अर्थात् जो ग अर्जुनकी पीछले अध्यायमें कही और आंसुवोंकरके पूर्ण व्याकुल हो रहे हैं नेत्र जिसके ९ अर्थात् अर्जुनके नेत्रोंमें आंसू गये और विषादको प्राप्त हो रहा है १० ॥ १ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच॥ कुतस्त्वाकश्मलमिदंविषमे समुपस्थितम्॥अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २

अर्जुन १ त्वा २ इदम् ३ कश्मलम् ४ विषमे ५ कुतः ६ स-

स्थितम् ७ अनार्यजुष्टम् ८ अस्वर्ग्यम् ९ अकीर्तिकरम् १० ॥ २ ॥ अ०
हे अर्जुन ! १ तुमको २ यह ३ कायरपना ४ रणमें ५ कहांसे ६ प्राप्त
हुआ ७ ? सि० कैसाहै यह कायरपना ? ❀ नहीं श्रेष्ठ जो हैं जन उनक-
रके सेवन करनेके योग्य है अर्थात् तू तो उत्तम श्रेष्ठ है. यह तेरे
योग्य नहीं अश्रेष्ठोंके योग्य है ८. फिर कैसाहै यह कायरपना ! सि०
कि ❀ स्वर्गकोप्राप्त करनेवाला नहीं ९ सि० प्रत्युत ❀ अयश करने-
वाला है १० ॥ २ ॥

मू०—क्लैब्यंमास्मगमःपार्थनैतत्त्वय्युपपद्यते ॥
क्षुद्रंहृदयदौर्बल्यंत्यक्त्वोत्तिष्ठपरंतप ॥ ३ ॥

पार्थ १ क्लैब्यम् २ मास्मगमः ३ एतत् ४ त्वयि ५ न ६ उपपद्यते ७
परंतप ८ क्षुद्रम् ९ हृदयदौर्बल्यम् १० त्यक्त्वा ११ उत्तिष्ठ १२ ॥
॥ ३ ॥ अ० हे अर्जुन ! १ नपुंसकपनेको २ मत प्राप्त हो. ३ यह ४
तुझमें ५ नहीं ६ शोभा पाता है ७. हे परंतप अर्जुन ! ८ नीचताको ९
और हृदयके दुर्बलताको १० त्याग कर ११ सि० युद्धके लिये ❀
खडा हो १२ ॥ ३ ॥

मू०—अर्जुनउवाच ॥ कथंभीष्ममहंसंख्येद्रोणंचम-
धुसूदन॥इषुभिःप्रतियोत्स्यामिपूजार्हावरिसूदन ॥४॥

मधुसूदन १ संख्ये २ द्रोणम् ३ च ४ भीष्मम् ५ प्रति ६ इषुभिः ७ अहम् ८
कथं ९ योत्स्यामि १० अरिसूदन ११ पूजार्हौ १२ ॥ ४ ॥ अ० उ०
नपुंसकपनेसे मैं युद्ध नहीं करता हूं यह न समझिये. किंतु मुझको
युद्ध करनेमें अन्याय प्रतीत होता है, यह अर्जुन. प्रकट करता है
हे मधुसूदन ! १ रणमें २ द्रोणाचार्य ३ और ४ भीष्मपितामहके ५
सन्मुख ६ अर्थात् द्रोणाचार्य और भीष्मजीके साथ ६ बाणोंकरके ७
मैं ८ कैसे ९ युद्ध करूं ९ हे वैरियोंको मारनेवाले श्रीकृष्णचंद्र ! १० सि०
भीष्म और द्रोणाचार्य ये दोनों ❀ पूजा करनेके योग्य हैं ११. तात्पर्य-

जिनपर फूल चढ़ाना योग्यहै उनके साथ लड़ना यह वाणीसे कहनाभी अयोग्यहै. फिर तीरोंसे उनके साथ कैसे लड़ना चाहिये ? यह अभिप्राय ॥ ४ ॥

मू०—गुरूनहत्वाहिमहानुभावाञ्छ्रेयोभोक्तुंभैक्ष्यमपीहलोके ॥ हत्वार्थकामांस्तुगुरूनिहैवभुंजीयभोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

महानुभावान् १ गुरून् २ अहत्वा ३ हि ४ भैक्ष्यं ५ अपि ६ भोक्तुं ७ श्रेयः ८ इह ९ लोके १० अर्थकामान् ११ गुरून् १२ हत्वा १३ तु १४ इह १५ एव १६ रुधिरप्रदिग्धान् १७ भोगान् १८ भुंजीय १९ ॥ ५ ॥ अ० बड़ा प्रभाव है जिनका १ सि० ऐसे ❋ गुरुवोंको २ न मारके ३ तो ४ भिक्षाका अन्न ५ भी ६ भोगना ७ श्रेष्ठ है. ८ इसलोकमें ९ । १० अर्थात् यही बात श्रेष्ठ है कि गुरुको कभी न मारना, गुरुके न मारनेसे भीख माँगकर खाना श्रेष्ठ है और अर्थकी कामनावाले ११ गुरुके १२ मारको १३ तो १४ इसलोकमें १५ ही १६ रुधिर (रक्त)के सनेहुए भोगोंको १७ । १८ हम भोगेंगे १९. तात्पर्य-वे भोग हमको नरक प्राप्त करेंगे १९ टी० 'अर्थकामान्' यह भोगोंका भी विशेषण हो सक्ता है ॥ ५ ॥

मू०—नचैतद्विद्मःकतरन्नोगरीयो यद्वाजयेमयदिवानोजयेयुः ॥ यानेवहत्वानजिजीविषामस्तेऽवस्थिताःप्रमुखेधार्त्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥

नः १ कतरत् २ गरीयः ३ एतत् ४ न ५ च ६ विद्मः ७ यद्वा ८ जयेम ९ यदि १० वा ११ नो १२ जयेयुः १३ यान् १४ हत्वा १५ न १६ जिजीविषामः १७ ते १८ एव १९ धार्तराष्ट्राः २० प्रमुखे २१ अवस्थिताः २२ ॥ ६ ॥ अ० उ० पीछे बहुतजगह और इस अध्यायमें भी इसके पीछले श्लोकमें अर्जुनको विपर्यय हुआ सो स्पष्ट प्रतीत

होता है. और इसछठे श्लोकमें संशय और इससे अगले आठवें श्लोकमें अज्ञान स्पष्ट प्रतीत होता है. अज्ञान, संशय, और विपर्यय ये तीनों ब्रह्मज्ञानसे जाते हैं. ब्रह्मविद्याश्रवण करनेसे अज्ञान, मनन करनेसे संशय और निदिध्यासन करनेसे विपर्ययका नाश होताहै. अर्जुन कहता है हेभगवन्!हमको १ सि० भिक्षाका अन्न श्रेष्ठ है वा गुरुआदिकोमारकर राज्यभोगना श्रेष्ठहै इनदोनोमें ❋ क्या२ श्रेष्ठहै?३यह४ हम नहीं ५ । ६ जानते हैं ७सि० और जो इनके साथ हम लड़ैंभी तोभी हमको यह संशयहै कि ❋ यद्वा८सि० उनको हम जीतेंगे९ यदिवा १० । ११ हमको १२ वे जीतेंगे ? १३ सि० और जो हम उनको जीत भी लेंगे तोभी हमारी जीत किसी कामकी नहीं क्योंकि ❋जिनको१४ मारके १५नहीं १६ जीना चाहते हैं हम वे १७ । १८ ही १९ दुर्योधनादि२० सन्मुख२१सि०मरनेको ❋खड़े हैं २२॥६॥

मू०-कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामित्वांधर्मसंमूढचेताः ॥ यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितंब्रूहितन्मेशिष्यस्तेऽहंशाधिमांत्वांप्रपन्नम् ॥ ७ ॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः१ धर्मसम्मूढचेताः२त्वां ३ पृच्छामि४ मे५ यत् ६ निश्चितम् ७ श्रेयः ८ स्यात् ९ तत् १० ब्रूहि ११ अहम् १२ ते १३ शिष्यः १४ त्वाम् १५ प्रपन्नम् १६ माम १७ शाधि १८॥ ७ ॥अ०उ०अर्जुनको जब अत्यन्त शोक सन्ताप हुआ और कर्तव्याकर्तव्यका विचार भी जातारहा, तब फिर धीरज करके मनको सावधान किया और यह विचार किया कि वेदों महात्माओंके मुखसे मैंने यह सुनाहै कि शोकके समुद्रको आत्मा को जाननेवाला तरता है. धन, धर्म, कर्म, और पुत्रादिकरके जीवकी मोक्ष नहीं होताहै ॥ "तरतिशोकमात्मवित् नकर्मणानप्रजया धनने त्यागेनैकेनअमृतत्वमानशुः" ॥ इन श्रुतियोंका अर्थ वेसन्देह

सत्यहै-क्योंकि धर्म कर्म मैं सब जानताहूं, करताहूं, धर्मका अवतार साक्षात् मेरे भाईहैं- वेदोक्तकर्मकांडके जाननेमें और अनुष्ठान करनेमें मुझको किंचित सन्देह नहीं और भेदोपासना (परमेश्वर के भक्तिका) फल साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज मेरे स्वामी, सखा भाई मेरेपास हैं, तोभी यह मुझको शोक है. इसी हेतूसे स्पष्ट यह प्रतीत होता है कि, शोक आत्माके ज्ञानसेही नाश होता है-वोह मुझको नहीं- यह पूर्वोक्त विचार कर अर्जुन ब्रह्मविद्या श्रवण करनेके लिये प्रथम ब्रह्मविद्यामें अपना अधिकार प्रगट करताहै दो श्लोकोंमें अर्थात् ब्रह्मविद्याके अधिकारीका लक्षण करताहै- दीनतारूप दोष-करके दूषित होगया है स्वभाव जिसका १ अर्थात् जो आत्माको नहीं जानता है उसको कृपण कहते हैं. 'कृपणता, कृपणपना, दीनता' इन सब पदोंका एकही अर्थ है ॥ "योवाएतदक्षरमविदित्वा गार्ग्यस्माल्लोकात्प्रैतिसकृपणः" । यह बृहदारण्यउपनिषद्श्रुति है. तात्पर्यार्थ इसका यह है कि, जो विनाआत्मज्ञानके मरजाताहै वो कृपण दीन है- इस पदमें अर्जुनका तात्पर्य यही है कि, मैंभी अब-तक कृपण अज्ञानी हूं १ सि० और ❋ ब्रह्ममें संमूढ है चित्त जिसका २ सि० सो मैं ❋ आपसे ३ बूझताहूं ४ मुझको ५ जो ६ निश्चित श्रेय ७। ८ हो ९ सो १० कहो ११ सि०शिष्य वा पुत्रसे सिवाय और किसीसे ब्रह्मज्ञान नहीं कहना- यह शंका करके कहता है कि ❋ मैं १२ आपका १३ शिष्य १४ सि० हूं. बाणी करके अनन्यगुरुभक्तको गुरुने ज्ञान सुनाना योग्य है. यह शंका करके कहता है कि ❋ मैं आपको शरणागत १५। १६ सि० हूं आपही मेरी रक्षा करनेवाले हैं. सब प्रकार मुझको आपकाही आश्रय है- आप ❋ मुझको १७ उपदेश कीजिये. १८ टी०—जो कारण कि

-याजावे उसको धर्मकहते हैं 'धारयतीति धर्मः' इस व्युत्पत्तिसे धर्म
एक ब्रह्मका नाम है. वेदोक्तधर्मको तो अर्जुन भलेप्रकार जानता
उस धर्ममें अपनेको मूढ क्यों कहता ? २. एक अनित्य श्रेय है
जैसे ब्राह्मणादि आशीर्वाद दियाकरते हैं तुम्हारा श्रेय (कल्याण
भला) हो. ऐसे श्रेयको मैं नहीं बूझता हूं किंतु जो निश्चय सदा
रहै. तात्पर्य मेरा मोक्षसे है. परमश्रेय मोक्षकोही कहते हैं. जि
दुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति नित्य कहते हैं, उ
साधन मुख्य साक्षात् मुझसे कहो यह मेरा तात्पर्य है ७।८ ॥

मू०—नहिप्रपश्यामिममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमि
द्रियाणाम् ॥ अवाप्यभूमावसपत्नमृद्धंराज्यंसु
णामपिचाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

भूमौ १ असपत्नम् २ ऋद्धम् ३ राज्यम् ४ च ५ सुराणाम् ६ आ
पत्यम् ७ अपि ८ अवाप्य ९ इन्द्रियाणाम् १० उच्छोषणम्
यत् १२ शोकम् १३ मम १४ अपनुद्यात् १५ न १६ हि १७
श्यामि १८ ॥ ८ ॥ अ०उ० वेदोंमें यह कथाहै कि, नारदजीने
कादिकनसे यह प्रश्न किया कि महाराज ! मुझको सब विद्या सां
आती हैं और जैसा उनमें कहा है वैसाही मैं अनुष्ठान करताहूं.
ब्रह्मलोकके पदार्थोंपर्यन्त सब पदार्थ मुझको प्राप्त हैं; परन्तु
शोक नहीं गया. सनकादि महाराजने उत्तर दिया कि, आत्म
तुमने नहीं पढी होगी. नारदजीने कहा कि, यह तो मैंने नामभी
सुना, नहीं तो मैं अवश्य पढता. सनकादिने नारदजीसे यह
कि, उसी विद्यासे शोकका नाश होता है. फिर नारदजीने ब्रह्म
सनकादिकनसे ब्रह्मजिज्ञासाकरके श्रवण की. तब उनका शोक
हुआ. यही विचार करके अर्जुन कहता है इस मंत्रमें पृथिवीमें
सि० तो ❀ शत्रुरहित पदार्थोंके भरेहुए राज्यको २।३।४ सि०
होकर ❀ और ५ देवतोंके ६ आधिपत्यको ७ भी ८ प्राप्तहोक
सि० परलोकमें ❀ अर्थात् देवतोंके अधिपति (स्वामी) इन्द्र

विष्णु शिवादि होकर ९ इन्द्रियोंको १० सुखानेवाला सन्तापकरनेवाला ११ जो १२ शोक १३ मेरा १४ दूर हो(नाश हो)१५ सि०यह बात मैं विनाब्रह्मज्ञानके ❀ नहीं देखताहूं १६।१७।१८. सि० क्यों कि, नारदजीने वैष्णवमहात्मासे बरसों अंगोंकेसहित वेद और सब विद्या शास्त्र पढे, बरसों अनुष्ठान किये. भेदभक्ति की ब्रह्माजीके साक्षात् पुत्र विष्णुभगवान्के परम प्यारे जब उनकाही विना ब्रह्मविद्याके शोक नाश न हुवा, तो फिर मेरा कैसा होगा ? इस श्लोकसे साफ प्रतीत होताहै कि, शोक आत्मज्ञानसेही नाश होता है. सिवाय आत्मज्ञानसे और कोई कर्म उपासना योगादि साक्षात् मुख्य उपाय नहीं. भेदवादी उपासक जो यह कहते हैं कि केवल मूर्तिमान् विष्णु शिव राम कृष्णादि देवताओंके दर्शन करनेसे शोक दूर होजाता है. विचार करना चाहिये कि जैसा दर्शन अर्जुनको था ऐसा तो इस समय भेदवादियोंको स्वप्नमें भी होना कठिन है. अर्जुनका तो शोक मोह विना ब्रह्मविद्याके गया ही नहीं, तो औरोंका विना ब्रह्मज्ञानके कैसे नाश होगा ? देवताओंके दर्शनादि अंतःकरणकी शुद्धिके हेतु हैं. फिर ज्ञानद्वारा मोक्षके हेतु हैं ॥ ८ ॥

मू०—संजयउवाच ॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशंगुडाकेशःपरंतप॥ नयोत्स्यइतिगोविन्दमुक्त्वातूष्णींबभूवह ॥९॥

संजयः १ उवाच २ परंतप ३ गुडाकेशः ४ हृषीकेशम् ५ एवम् ६ उक्त्वा ७ न ८ योत्स्ये ९ इति १० गोविन्दम् ११ उक्त्वा १२ तूष्णीम् १३ बभूव १४ ह १५ ॥९॥ अ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है १।२ सि० कि, हे राजन् ! ❀ परंतप ३ अर्जुन ! ४ श्रीकृष्णचन्द्रसे ५ इस प्रकार ६ कहकर ७ सि० कि, जैसा पीछे कहा ❀ और अभी ❀ नहीं ८ युद्ध करूंगा ९ यह १० गोविन्दजीसे ११ कहकर १२ चुप १३ होगया १४ [पृ०१५] टी० निद्रा

अर्जुनके वशमें थी इस हेतूसे गुडाकेश अर्जुनका नाम है. ४ इन्द्रि-
योंके स्वामी हैं श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज ! इस हेतुसे हृषीकेश श्रीमहा-
राजका नाम है. ९ तत्त्वमस्यादि वेदोंके महावाक्योंकरकेही श्रीकृष्ण-
चन्द्रमहाराजकी प्राप्ति होती है, इस व्युत्पत्तिसे श्रीमहाराजका
नाम गोविन्द है. ११ तात्पर्य अर्जुनका यह है कि युद्धसे प्रथम ब्रह्म-
ज्ञान मुझको उपदेश करदीजिये. क्योंकि जो यह पूर्वोक्त अपना
संशय, विपर्यय मेरा बनारहा, और मैं मारागया तो मैं किसी
दीनही रहा, मुझको परमगति न होगी. विचारकरना चाहिये
अर्जुन कैसे संकोच (अनवकाशके) समय ब्रह्मज्ञान श्रवणके
लिये कैसी श्रीमहाराजसे प्रार्थना करता है. मैं आपका चेला
आपको शरणागत हूं मुझको उपदेश कीजिये. राज्यादि मुझको न
चाहते हैं अब इस समयके लालामुन्सीसाहुकारादि कहते कि
साहब शास्त्रोंको सुननेका किसको सावकाश है. यहां मरनेकोभी
काश नहीं. ऐसे कामियोंके पास जब यमदूत आवेंगे तब
गति उनको प्रतीत होगी. यमदूतोंसेभी यही कहना चाहिये कि
हमको मरनेका अवकाश कहां है? तुमको सूझता नहीं कि हम
काममें लगेहुए हैं. जैसे गृहस्थ अतिथि अभ्यागतोंसे कह देते हैं

मू०–तमुवाचहृषीकेशःप्रहसन्निवभारत ॥
सेनयोरुभयोर्मध्येविषीदन्तमिदंवचः ॥ १०

भारत १ उभयोः २ सेनयोः ३ मध्ये ४ विषीदन्तम् ५ तम्
प्रहसन् ७ इव ८ हृषीकेशः ९ इदम् १० वचः ११ उवाच
॥ १० ॥ अ० उ० जब अर्जुन चुप होगया. पीछे फिर क्या
इस अपेक्षामें संजय कहता है कि हे राजन् ! १ दोनों सेनाके
मध्यमें ४ अतिदुःखित तिसको ५ । ६ उपहास करते हुए
अर्थात् जैसे किसीका उपहास कररहेहैं ऐसे ८ श्रीभगवान्

अतिदुःखित तिसके प्रति ९ अर्थात् अर्जुनसे ८ यह १० वचन ११ बोले १२ ॥ सि० जो आगे समाप्तिपर्यन्त कहनाहै ॥ टी० विनाब्रह्मज्ञानके बडे बडे लोगोंका उपहास होताहै अर्जुनका उपहास श्रीमहाराजने किया तो इसमें क्या आश्चर्य है? ६।७ इतिहास—एक समय बडे बडे ब्रह्मज्ञानी और भेदवादीभक्तभी श्रीरामचंद्रजीमहाराजके पास बैठेथे हनूमान्जी सेवामेंथे. श्रीमहाराजनेअपनी सेवाभक्तिका महात्म्य प्रकट करनेकेलिये हनूमान्जीसे यह बूझा कि तुम कौन हो? हनूमानजीने सोचाकि जो यह कहता हूं कि आपका सेवक दास हूं तो यह सब ब्रह्मज्ञानी मुझको अज्ञानी समझकर मेरा उपहास करेंगे. और ये समझेंगे कि इनकी सेवाभक्ति कैसी है जो अबतक आत्मज्ञान न हुवा. और जो मैं ब्रह्म हूं यह कहताहूं तो ये सब भक्त यह समझेंगे कि इनकी कैसी यह भक्ति है और श्रीमहाराजमें कैसा यह भाव है कि जो अपनेहीको ब्रह्म कहते हैं. फिर तात्पर्य श्रीमहाराजका समझकर हनूमान्जी यह बोले कि देहदृष्टि करके तो आपका दास हूं और जीवबुद्धिकरके आपका अंशहूं. और वास्तव जो आप हैं शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्मस्वरूप सोई मैं हूं. श्लोक—देहदृष्ट्यातुदासोहंजीवबुद्ध्यात्वदंशकः ॥ वस्तुतस्तुतदेवाहमितिमेनिश्चितामतिः ॥ यह सुनकर सब प्रसन्न हुए. समस्त श्रीभगवद्गीताका सारार्थ यही है. समस्तगीताशास्त्रमें इसीका विस्तारार्थ उपाय और उपेय अंगांगीवत् कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका निरूपण है ॥ १० ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच॥अशोच्यानन्वशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्चभाषसे॥ गतासूनगतासूंश्चनानुशोचंतिपंडिताः ११॥

श्रीभगवान् १ उवाच २। त्वम् १ अशोच्यान् २ अन्वशोचः ३ प्रज्ञावादान् ४ च ५ भाषसे ६ पंडिताः ७ गतासून् ८ अगतासून् ९ च १० न ११ अनुशोचन्ति १२ ॥ ११ ॥ अ० उ० परमकृपाकी

ख्यान श्रीभगवान् अर्जुनको ब्रह्मज्ञान सुनाते हैं. समस्तगीताशा केवल एक ज्ञाननिष्ठाकाही निरूपण है.अष्टांगयोग सांख्ययोग भक्तियोग और कर्मयोगादिका जो किसीजगह प्रसंग है वो ज्ञाननिष्ठाका अंगही श्रीमहाराजने कहा है और जैसे श्रीरामायणमें चरित्रोंसे सिवाय और भी अनेक कथा हैं. परन्तु मुख्य श्रीरामचरित्र हैं. इसी प्रकार इस श्रीभगवद्गीता उपनिषद्ब्रह्मविद्यायोगशास्त्रमें ज्ञाननिष्ठाका निरूपण है. उसीको मैं आनन्दगिरिनामवाला मत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीस्वामीमलूकगिरिजीमहाराजका शिष्य (सेवक दास)श्रीमहाराज जो मेरे स्वामी गुरुदेव उनकेचरणकमलोंको पूजनेवाला श्रीमहाजराके कृपासे निरूपण करताहूं श्रीभगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि, हे अर्जुन ! १ । २ तू; शोचकरनेकेयोग्य जो नहीं हैं तिनके निमित्त २ सि० तो ❀ शौच करता है ३ पंडितोंके सरीखे ४ । ५ शब्दोंको बोलता है ६ अर्थात् पंडितों सरीखी बातें कहताहै. राजसुखभोगोंकरके हमको क्या है इत्यादि पंडित ७ जीतेमरेहुवोंका ८ । ९ । १० नहीं ११ शोच करते हैं टी०भीष्मद्रोणादिक निमित्त व्यवहारमें भी शोच करना वे जोग्य क्योंकि वे सदाचारी हैं मरकर सद्गतिको प्राप्त होंगे. और परमार्थ भी शोचकरना न चाहिये, क्योंकि वे नित्य अविनाशी हैं अर्थात् वाच्यार्थमें शोच बनताहै न लक्ष्यार्थमें२.उनके विना हम कैसे जीवें इनको कैसे सुख होगा? ९ सि०यह सब अज्ञानका धर्म है. विद्वान्को यह नहीं होता,इस हेतुसे प्रतीत होता है कि तु ज्ञानी पंडित नहीं दोचार बातें पंडितोंकेसी सीखकर बोलता है, अहिंसा परमधर्म इत्यादि ❀इतिहास—एक पुरुषके दो लडके जवान बहुत गुणवान् व्याहे हुए दैवयोगसे एकहीदिन एकही कालमें मरगये. नगरके लोग उसको समझाने लगे. पंडितोंने अनेक श्लोक उसको ज्ञान वैराग्यके सुनाए और इस मंत्रका उत्तरार्ध भी सुना

वो पुरुष सुनतेही इस आधे श्लोकके प्रसन्नमुख होकर उत्तरदिशाको चला. पंडितोंने बूझा कहां जातेहो? उसने उत्तर दिया कि, मैंने दुःखरूप गृहस्थाश्रमका संन्यास किया. विद्वत्संन्यासी होकर बिचरूंगा. पंडितोंने कहा कि, अभी तुम्हारी तरुण अवस्था है और तुम्हारे घरमें तीन तरुणस्त्री हैं. एक तुम्हारी दो तुम्हारे लडकोंकी और मा बाप तुम्हारे वृद्ध विद्यमान् हैं. दोनों लडके तुम्हारे घरमें मरेपडे हैं. क्या यही समय संन्यासका है. किंचित् तुमको मरे जीवतोंका शोच नहीं. उसने उत्तर दिया कि जो श्लोक तुमने पढा उसका अर्थ विचारकर तुमको भी तो अनुष्ठान करना योग्यहै. नहीं तो "परउपदेशकुशल बहुतेरे ॥ जेआचारहिंतेनरनघनेरे" बिना अनुष्ठानके पंडिताई किसकामकी है. मरेजीवतोंका शोच उसीको है जिसने यह मंत्र कहा है. मेरा शोच करना निष्फल है. और यह वेदकी आज्ञाहै कि जिससमय वैराग्यहो उसीसमय संन्यास करे. "यदहरेव विरजेत्तदहरेवप्रव्रजेत्"॥यह कहकर उसीसमय विरक्त होगया. विचारना चाहिये कि गीताका सुनना इसको कहतेहैं, जिस श्लोकका उत्तरार्ध सुनकर यह पुरुष कृतार्थ हुवा. इसका अर्थ सबही जानते हैं कहतेहैं सुनतेहैं,परन्तु उनका कहना जानना और सुनना सब निष्फल है. क्योंकि रोटीके जानने कहने सुननेसे पेट किसीका नहीं भरताहै,खानेसेही पेट भरता है, यही आशय गीताके अर्थका है ऐसा पुरुष कोई होगा कि सत्यसंतोषत्यागवैराग्यभक्तिशमदमादिका अर्थ और फल न जानता होगा, परन्तु सुन समझकर अनुष्ठान नहीं करतेहैं इसी हेतुसे भटकते रहतेहैं. भगवद्वाक्यमें विश्वास करके अनुष्ठान करनेके लिये कमर बांधना चाहिये, या सोचना योग्य है. देखो तो सही. श्रीमहाराजतो अपने मुखारविन्दसे यह कहते हैं कि मरेजीवतोंका शोच नहीं करना,यह बात भलेकी है वा नहीं ? शोचकरनेमें क्या बुराई है ? न शोच करनेमें क्या भलाई है, और शोच वास्तव

है या भ्रान्ति है? यह मुझमें कबसे है, इसका क्या स्वरूप है, क्या अधिष्ठान है? जीवगतहै, वा अन्तःकरणगत है? एकरस रहता है; वा घटता बढता रहता है? किस बातसे बढता है, किस साधनसे घटता है, क्या इसके समूल निवृत्तिका उपाय है, ऐसा २ विचार करके समस्त गीताके अर्थका अनुष्ठान करना योग्य है. जब गीताका अर्थ जानना सुनना कहना सफल है ॥ ११ ॥

मू०—नत्वेवाहंजातुनासंनत्वंनेमेजनाधिपाः ॥
नचैवनभविष्यामःसर्वेवयमतःपरम् ॥ १२ ॥

जातु १ अहम् २ न ३ आसम् ४ न ५ तु ६ एव ७ त्वम् ८ न ९ इमे १० जनाधिपाः ११ न १२ अतः १३ परम् १४ वयम् १५ सर्वे १६ न १७ भविष्यामः १८ न १९ च २० एव २१ ॥ १२ ॥ अ०

उ० आत्मा नित्य हैं, इस हेतुसे शोच करना न चाहिये, आत्माको अद्वैत नित्य सिद्ध करते हुए शोच न करनेमें हेतु कहते हैं पीछे क्या कभी १ मैं २ नहीं ३ होताभया ४ सि० यह ❀ नहीं ५ [पू० ६।७ अर्थात् पीछे मैं था सि० और ❀ तू ८ सि० क्यापीछे ❀ नहीं ९ सि० था यह नहीं. अर्थात् तु भी पीछे था, और ❀ ये १० राजा ११ सि० क्या पीछे ❀ नहीं १२ सि० थे. यह नहीं अर्थात् यह भी पीछे थे, तू और मैं और ये सब राजा वर्तमानमें विद्यमान् नहीं है और ❀ इसमें १३ पीछे ❀ १४ अर्थात् इस स्थूलशरीरत्यागसे पीछे १४ हम १५ सब सि० क्या ❀ नहीं १७ होंगे १८ सि० यह ❀ नहीं १९ पू० २०।२१ अर्थात् तू और मैं और ये राजा अवश्य आगेको भी होंगे. क्योंकि सच्चिदानन्दरूप आत्मा एक नित्य है, तात्पर्य तू और ये राजा और मैं सब वास्तव एकही त्रिकालाबाध्य हैं. त्वंपदार्थकी तत्पदार्थके साथ लक्ष्यार्थ शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपमें ऐक्यता जनना योग्यहै, इस मंत्रमें जीवोंको नानात्व जो प्रतीत होताहै, यह औपाधिक भेद है. वास्तव जीव

एकही है. अथवा समस्त श्लोकका अन्वय करके 'सर्वे वयम्' इन दोनों पदोंको हेतु करदेना अर्थात् जीव एकही है 'कुतः कियंतः सर्वे वयम्' अर्थात् तू और मैं और ये राजा क्या आगे न होंगे, यह नहीं. अवश्य होंगे. 'कुतः कियंतः सर्वे वयम्' बहुवचन आदरके लिये है अर्थात् सब जीव आत्माही है ॥ १२ ॥

मू०—देहिनोऽस्मिन्यथादेहेकौमारंयौवनंजरा ॥
तथादेहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्रनमुह्यति ॥ १३ ॥

देहिनः १ यथा २ अस्मिन् ३ देहे ४ कौमारम् ५ यौवनम् ६ जरा ७ तथा ८ देहांतरप्राप्तिः ९ धीरः १० तत्र ११ न १२ मुह्यति १३ ॥ १३ ॥ अ०उ० आप अपनेको जो नित्य कहते हो, यह तो सत्य है, परन्तु जीव नित्य कैसे होसक्ता है ? प्रत्यक्ष जन्म लेताहै, मरताहै, यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं. जीवको १ जैसे २ इस देहमें (स्थूलदेहमें) ३।४ कौमार५ यौवन ६ जरा ७ सि० अवस्था होती हैं ❀ तैसे ही ८ दूसरे देहकी प्राप्ति ९ सि० होजाती है ❀ धीरजवाला १० तहां अर्थात् देहोंके उत्पत्तिनाशमें ११ नहीं १२ मोहको प्राप्त होता है अर्थात् जीवको जराजन्मवान् नहीं मानता है १३. तात्पर्य जैसे जीव स्थूल शरीरमें प्रथम बालक कहा जाता है, फिर उसीको जवान कहते हैं, फिर उसीको बूढा कहते हैं. जीव तीनों अवस्थामें वास्तव एकही रस रहताहै. तैसे ही दूसरे देहमें एकरस रहताहै. मरना उत्पन्न होना देहोंका धर्म है. जीव सदा एकरस नित्यहै. यथा 'अहम्' और जैसे मुसाफर एकसराय छोडकर दूसरे सरायमें बसकर अपनेको मराजन्मा नहीं मानता, तैसे ही जीव मुसाफरके तरह और शरीर सरायकेतरह है. यह समझकर शरीर छूटनेका कुछ शोच करना न चाहिये आगे बहुत शरीर मिलेंगे. सरायके तरह आत्मा असंख्यात बरसोंका मुसाफर है. नयेशरीरमें जाकर पीछलेकी गति

दुःखसुखादि भूल जाताहै, और दूसरे अवस्थामें जैसे जीव अन्यजात नहीं होजाता, अपनेको वोही मानता है जो बालकावस्थामें मानता था, तैसे ही दूसरे शरीरमें भी वोही एकरस सच्चिदानन्द आत्माको समझना चाहिये. सदाचारी पुण्यात्मापुरुष तो देहके छूटनेसे आनन्दको प्राप्तहोते हैं. क्योंकि इसदेहके पीछे सुन्दर दिव्यदेहकी प्राप्ति होगी. बुरामकान छूटकर जो अच्छा मंदिर मिले तो उसके निमित्त क्या शोक करना चाहिये ? ॥ १३ ॥

मू०–मात्रास्पर्शास्तुकौन्तेयशीतोष्णसुखदुःखदाः ॥
आगमापायिनोनित्यास्तांस्तातिक्षस्वभारत ॥ १४ ॥

कौन्तेय १ मात्रास्पर्शाः २ तु ३ शीतोष्णसुखदुःखदाः ४ आगमापायिनः ५ अनित्याः ६ भारत ७ तान् ८ तितिक्षस्व ९ ॥ १४ ॥ अ० उ० न जानिये दूसरा देह कैसा मिलेगा, शीतोष्णादिका उसमें आराम होगा वा नहीं, इस हेतुसे वर्तमान इष्टपदार्थोंके वियोगमें दुःख प्रतीत होता है. इसदेहके छूटतेही सब इष्टपदार्थोंका वियोग हो जायगा, यह शंका करके श्रीमहाराज यह मंत्र कहते हैं कि–हे अर्जुन! १ इन्द्रियोंके वृत्तियोंका शब्दादिविषयोंके साथ जो सम्बन्ध है इसको मात्रास्पर्श कहते हैं २ अर्थात् देखना भोजनादि ये सब २ शीतोष्णसुखदुःखको देनेवाले ३ । ४ सि० किसीकालमें शीत किसीकालमें गरमी कभी ये अनुकूल कभी प्रतिकूल इसहेतुसे कभी सुख कभी दुःख बनाही रहता है. कैसेहैं ये भोजनादिपदार्थ कि दिनरात्रिवत् ❋ आनेजानेवाले ५ सि० हैं. इसीहेतुसे सबपदार्थ ❋ अनित्य ६ हे अर्जुन ! ७ तिनको ८ अर्थात् जाग्रत् अवस्थाके भोगोंको ८ सि० स्वप्नपदार्थवत् समझकर ❋ सहनकर ९ अर्थात् तिनके निमित्त वृथा हर्ष विषाद मत कर हर्ष विषादके वश मत हो ९ तात्पर्य इष्टपदार्थोंका संयोगवियोगादि झूंठी भ्रान्ति है. वास्तव

आत्माका न किसीके साथ सम्बन्ध है,न वियोग है. सिवाय आत्मा के और कोई पदार्थ सुखदाई नहीं.सो नित्य प्राप्त है. सिवाय इसका विचारकर जो सहन करता है उसको दुःख कम होता है. नहीं तो सहना सबकोही पडताहै अनित्यपदार्थोंमें क्या तो हर्ष करना, क्या शोक करना कितने कालकेलिये क्योंकि क्षणपीछे हर्ष क्षणपीछे शोक होताही रहताहै इनको अनित्य समझकर इनके वश नहीं होना यही इनका सहना है. इष्टपदार्थके लिये तो यत्न नहीं करना, और उसके वियोगमें कुछ दुःख नहीं मानना और अनिष्टपदार्थोंसे उद्वेग नहीं करना, वर्तमानमें जैसा हो वोही हर्ष शोक रहित भोगना,यही एक अनुष्ठान बहुत है ॥ १४ ॥

मू०—यंहिनव्यथयन्त्येतेपुरुषंपुरुषर्षभ ॥
समदुःखसुखंधीरंसोऽमृतत्वायकल्पते ॥ १५ ॥

पुरुषर्षभ १ एते २ यम् ३ पुरुषम् ४ न५ व्यथयन्ति ६ समदुःखसुखम् ७ धीरम् ८ सः ९ हि १० अमृतत्वाय ११ कल्पते १२ ॥ १५ ॥अ०उ०प्रयत्नकरके दुःख दूर करदेना चाहिये और सुख सम्पादन करना चाहिये. शीतोष्णादिको क्यों सहना यह शंका करके श्रीभगवान्का इस मंत्रमें आशय यह है कि प्रयत्नकरनेसे उन का सहना हजार ज़गह श्रेष्ठतम है,क्योंकि सहनेका बडा फल है, सो हमसे सुन. सिवाय इसके यह नियम नहीं कि प्रयत्न करनेसे अवश्यही दुःखशीतोष्णादि दूर हो जावें प्रत्युत प्रयत्नकरना दूने दुःखका हेतुहै क्योंकि एक तो प्रथम दुःख था, दूसरे यत्नमें महादुःख हुवा और जब वो कार्य सिद्ध न हुवा तब और भी महादुःख हुवा,सहनेसे प्रयत्नकरनेमें क्लेशही क्लेश है इसहेतुसे सहनाही श्रेष्ठतमहै सोई सुन.हे अर्जुन!१ ये २ सि०मात्रास्पर्श शीतोष्णादि ❋ जिसपुरुषको ३।४ नहीं ५ विषादके वश करते हैं ६ सि० कैसा है वो पुरुष ❋समान है सुखदुःखजिसको७सि० और बुद्धिमान् ❋ धीर ८सि०है जो

❀सो ९ ही १० मुक्तिके वास्ते ११ योग्य है वा समर्थ है १२ अर्थात् जो मानापमानादिको प्रारब्धकर्मका भोग समझकर सहताहै, उनकी निवृत्तिके लिये यत्न नहीं करता है सोई मुक्तिके योग्य है वोही मुक्तहोगा. तात्पर्य दुःखादिमें आत्माकी कुछभी क्षति नहीं समझता है इसमें हेतु यह है कि विचारवान् है. विचारवान् ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीही अपमानादिको सहसक्ता है, और वोही मोक्षका अधिकारीहै; इसवास्ते ज्ञान संपादन करना योग्यहै ॥ १५ ॥

मू०—नासतोविद्यतेभावोनाभावोविद्यतेसतः ॥
उभयोरपिदृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

असतः १ भावः २ न ३ विद्यते ४ सतः ५ अभावः ६ न ७ विद्यते ८ अपि ९ तु १० अनयोः ११ उभयोः १२ अन्तः १३ तत्त्वदर्शिभिः १४ दृष्टः १५ ॥ १६ ॥ उ०अ० परमार्थ दृष्टिकरके तो शीतोष्णादिपदार्थ वास्तव तीनोंकालमें नहीं-नित्य अखंड पूर्ण आत्माही है उसका अभाव नहीं होता, और शीतोष्णादि पदार्थोंका भाव नहीं होता यह विचारकर विद्वानोंको शीतोष्णादि बाधा नहीं करते जोकोई-यह कहे कि शीतोष्णादिका सहना अत्यन्त कठिन है; वो कैसे सहा जावे? कदाचित् अत्यंत सहनेमें आत्माका नाश न होजाय. उसके उत्तरमें यह कहते हैं. असत्की १ सत्ता २ नहीं ३ है ४ सत्की ५ असत्ता ६ नहीं ७ है ८ सि० यह नहीं समझना कि इनका निर्णय किसीने नहीं कियाहै ❀ अपितु ९।१० इन दोनोंका ११।१२ अन्त १३ तत्त्वदर्शी पुरुषोंने १४ देखा है १५ अर्थात् ब्रह्मज्ञानियोंने इन-दोनों सत् और असत्का तत्त्व यही निर्णय किया है कि सत्स्वरूप आत्मा निर्लेप असंस्पर्श पदार्थ है. और असत्स्वरूपशीतोष्णादिका आत्मामें गंधमात्रभी नहीं. सो वेदोंने भी यह कहा है. मंत्र॥ "ननिरोधोनचोत्पत्तिर्नबद्धोनचसाधकः ॥ नमुमुक्षुर्नवैमुक्तइत्येषापरमार्थ-

ता"॥ तात्पर्य इस मंत्रका यहीहै कि, सिवाय आत्माके कभी कुछ हुआ ही नहीं. फिर निवृत्ति किसकी करना चाहिये ? और जो किसीको सिवाय आत्माके कुछ प्रतीत होता है वो भ्रान्ति है. क्योंकि भले प्रकार कोईभी किसीपदार्थका करामलकवत् निःसंशय निश्चय नहीं करते. कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है सबका सम्मत नहोने सेही स्पष्ट प्रतीत होताहै कि, वास्तव सिवाय आनंदस्वरूप आत्माके और कुछ नहीं. सिवाय इसके इसबातको ऐसे समझोकिजैसे दसमहल्लोंका नाम एक नगर है, बीस हवेलियोंका नाम एक महल्लाहै, मृत्तिकापाषाणकाष्ठादिका नाम हवेली है, पृथिवीके परमाणुवोंका जो संघात है उसको मृत्तिकाकाष्ठादि कहते हैं, ऐसे विचार करते करते परमाणु एक पदार्थ सिद्ध होता है. परमाणुउसको कहते हैं. जो किनका; नेत्रकातो विषय नहीं परन्तु अनुमानद्वारा ऐसा निश्चय करते हैं कि, मकानमें पृथिवीके किनके उडते नहीं दीख पडते, झरोखेके चांदनीमें दीख पडते हैं. इसहेतुसे प्रतीत होता है कि औरभी इससे सूक्ष्म होंगे सूक्ष्मसेभी सूक्ष्म किनकेको परमाणु कहते हैं. जब यह जीव अनुमानमें चतुर हो जाता है, तब इसको प्रत्यक्षानुमानशब्दादिप्रमाणोंसे आत्माका भाव और जगत्का अभाव साक्षात् प्रतीत होने लगता है. यह विचार बहुत सूक्ष्म है अवश्य इसका मनन करना योग्य है. जैसे पीछे विचार करते करते सबपदार्थोंका अभाव होगया सब कल्पित प्रतीत होने लगे. एक परमाणु रहगया. जब भले प्रकार बुद्धि निर्मल हो जाती है तब वोभी कल्पित प्रतीत होने लगता है. फिर उसका अत्यन्ताभाव हो जाता है. इसवास्ते जबतक यह विषय समझमें न आवे तबतक अंतःकरणके शुद्धिका उपाय कर्मोपासना करे ॥ १६ ॥

मू०–अविनाशितुतद्विद्धियेनसर्वमिदंततम् ॥
विनाशमव्ययस्यास्यनकश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥

येन १ इदम् २ सर्वम् ३ ततम् ४ तत् ५ तु ६ अविनाशि ७ विद्धि ८ अस्य ९ अव्ययस्य १० विनाशम् ११ कर्तुम् १२ कश्चित् १३ न १४ अर्हति १५ ॥ १७ ॥ अ० उ० सामान्यकरके तो आत्माको नित्य प्रतिपादन किया. अब फिर विशेषकरके दूसरे प्रकारसे आत्माको नित्य प्रतिपादन करते हैं. जैसे पीछले श्लोकमें आत्माको सच्छब्दकरके निरूपण किया, तैसेही इसमंत्रमें अविनाशी शब्दकरके निरूपण करते हैं. आत्मा अतिसूक्ष्मपदार्थ है. इसवास्ते श्रीमहाराज उसको अनेकशब्दों करके वरणन करते हैं; पुनरुक्ति समझना न चाहिये. इसप्रकरणमें बहुतजगह तो अर्थमें पुनरुक्ति प्रतीत होतीहै. जैसे सत् नित्य और अविनाशी इन शब्दोंका एकही अर्थ है और बहुत जगह एक वो शब्द लिखाहै. यह वारंवार अनेकयुक्तियोंके साथ उपदेशवास्ते जल्दसमझनेके हैं. पुनरुक्तिदोष नहीं. जिसकरके अर्थात सत्स्वरूपआत्माकरके परमानन्दस्वरूपआत्मासे १ यह २ सब ३ सि० जगत् ❀ व्याप्त ४ सि० हो रहाहै ❀ तिसको अर्थात् आत्माको ५ ही ६ [तू] अविनाशी ७ ज्ञान ८ इस अविनाशीका अर्थात् अविनाशि निर्विकारका ९ । १० नाश करनेको ११ । १२ कोई १३ नहीं १४ योग्य है. वा नहीं समर्थ है. १ अर्थात् ऐसा कोई समर्थ नहीं कि जो आत्माका नाश करे. वा कम करे. तात्पर्य यह जगत् आत्मा करके व्याप्त है. इसको ऐसा समझना चाहिये कि आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है. विचार करो जगत्में ऐसा कोईभी बुरा वा भला पदार्थ नहीं कि जिसमें कुछ आनन्द नहो आनन्दकरके यह जगत् पूर्ण है और आनन्दकरकेही इसकी स्थिति है. वोही आनन्द तीनों अवस्थामें अविनाशीहै, साक्षात् स्वयंप्रकाश है. इसहेतुसे प्रत्यक्ष ज्ञानस्वरूप है ॥ १७ ॥

मू०–अन्तवन्तइमेदेहानित्यस्योक्ताःशरीरिणः ॥
अनाशिनोऽप्रमेयस्यतस्माद्युद्ध्यस्वभारत ॥ १८ ॥

इमे १ देहाः २ अन्तवन्तः ३ उक्ताः ४ शरीरिणः ५ नित्यस्य ६ अनाशिनः ७ अप्रमेयस्य ८ तस्मात् ९ युध्यस्व १० भारत ११ ॥ १८ ॥ अ०उ०सत्पदार्थ आत्माको तो नित्य सिद्ध किया,अब असत्पदार्थ देहादि अनात्माको अनित्य सिद्ध करते हैं. अर्थात् असत्पदार्थोंका अभाव कहते हैं ये १ सि० आविद्यकभौतिककल्पित ❀देह २ अन्तवाले ३ अर्थात् अनित्य कहेहैं ४. देहधारीजीवके५ अर्थात् अध्यारोपमें आत्माको देही शरीरी कहतेहैं और विवर्तवादमें उसको नित्य कहतेहैं. वास्तव वो अनिर्वाच्य है. और देहोंका भाव वास्तव है नहीं.देहोंको अनित्य कहना, जीवको नित्य कहना, यह सब विवर्तवाद है. सि०कैसाहै वो आत्मा कि ❀सदा एकरूप है ६ अर्थात् सदा उसका एक सच्चिदानन्द निर्विकार नित्यमुक्त रूप है. इसीहेतुसे सो, अविनाशीहै७.सि० जो ऐसा है तो सबको सत्त्वादिपदार्थोंवत् समझमें क्यों नहीं आताहै ? यह शंकाकरके कहते हैं कि सो आत्मा ❀अप्रमेय है ८ अर्थात् बुद्ध्यादिका विषय नहीं.क्योंकि बुद्धिका आदि है. इसीहेतुसे बुद्धिसे परे श्रेष्ठ है. बुद्धिका साक्षी है. यही उसकी पहचान है. जैसे कोई यह कहे कि मेरी आंख मुझको दिखाओ. उत्तर उसका यही है कि जिसकरके तू सबको देखता है,वोही तेरी आंख है, ऐसेही जिसकरके बुद्धिकोभी ज्ञान है, वो ज्ञानस्वरूपस्वयंसिद्ध है और जो अबभी इतने विशेषणोंसे आत्माका स्वरूप तेरे समझमें न आया होगा, क्योंकि आत्मा अतिसूक्ष्महै.जब कि आत्मा अतिसूक्ष्महै तिसकारणसे अर्थात् इसीवास्ते ९[तू] युद्ध कर १०.हे अर्जुन ! ११सि० यह मैं तुझसे कहता हूं ❀तात्पर्य स्वधर्मका अनुष्ठान करनेसे अन्तःकरणशुद्धिद्वारा आत्माका स्वरूप समझमें आजाता है; चर्चा चतुराईका वहां कुछ काम नहीं, अथवा जब कि आत्मा नित्य है, न उसका नाश है, न उसको दुःखसुखादिका सम्बन्ध है, तिसकारणसे हे अर्जुन ! स्वधर्म मत त्याग, सुखदुः-

खादिका सहन कर. 'नित्यस्य अनाशिनः अप्रमेयस्य' ये तीनों 'शरीरिणः' इसपदके विशेषण हैं. अर्थात् सदा एकरस अविनाशी अप्रमेय देहधारी ऐसे जीवके शरीर अन्तवाले कहे हैं. अविनाशीका देहके साथ आविद्यक सम्बन्ध है, इस हेतुसे देह प्रवाहरूप करके नित्य प्रतीत होतेहैं वास्तव नित्य अनित्य हैं नहीं ॥ १८ ॥

मू०-यएनंवेत्तिहन्तारंयश्चैनंमन्यतेहतम् ॥
उभौतौनविजानीतोनायंहन्तिनहन्यते ॥ १९ ॥

यः १ एनम् २ हन्तारम् ३ वेत्ति ४ यः ५ च ६ एनम् ७ हतम् ८ मन्यते ९ तौ १० उभौ ११ न १२ विजानीतः १३ अयम् १४ न १५ हन्ति १६ न १७ हन्यते १८ ॥ १९ ॥ अ० उ० भीष्मादिके मरनेमें अर्जुन, जो शोक करता था कि ये मरेंगे,वो तो श्रीमहाराजने दूर किया परन्तु अर्जुनको अपने निमित्तभी यह शोक है कि भीष्मादिके मारनेमें मुझको पापहोगा, इसकोभी दूर करतेहैं अर्थात् श्रीमहाराज अर्जुनसे यह कहतेहैं, कि जैसे मारना हननरूपक्रियाके कर्मको अर्थात् भीष्मादिको नित्य निर्विकार अविनाशि समझा तैसे ही कर्ताको अर्थात् अपनेको अकर्ता समझ. तात्पर्य किसीक्रियामेंभी आत्मा कर्ता या कर्म नहीं, यह अब श्रीमहाराज कहते हैं जो १ इसको अर्थात् आत्माको २ सि० हननक्रियामें ❁ मारनेवाला अर्थात् कर्ता३ जानताहै४और जो५।६ इसको अर्थात् आत्माको ७ मराहुवा ८ अर्थात् कर्म मानताहै ९. वे १० दोनों ११ नहीं १२ जानते १३ सि० कि ❁ यह १४ अर्थात् आत्मा १४न१५ सि० किसीको ❁ मारताहै १६न१७ मरताहै १८. तात्पर्य जो आत्माको किसीक्रियामेंभी कर्ता कर्म जानते हैं वे पापपुण्यके भागी होते हैं तू तो आत्माको अक्रिय यानी अकर्ता जानकर युद्धकर; तुझको पाप न होगा; आत्मा न कर्ता है, न कर्म है ॥ १९ ॥

मू०—नजायतेम्रियतेवाकदाचिन्नायंभूत्वाभवितावान-भूयः ॥ अजोनित्यः शाश्वतोऽयंपुराणोनहन्यतेहन्य-माने शरीरे ॥ २० ॥

अयम् १ कदाचित् २ न ३ जायते ४ वा ५ न ६ म्रियते ७ वा ८ भूत्वा ९ भूयः १० भविता ११ न १२ अयम् १३ अजः १४ नित्यः १५ शाश्वतः १६ पुराणः १७ शरीरे १८ हन्यमाने १९ न २० हन्यते २१ ॥२०॥ अ०—उ० उत्पन्नहोना, व्यवहारिक सत्ताको प्राप्त होना, बढना औरका औररूप होजाना, घटनेलगना, नाशहोजाना, ये छह्धर्म देहके, आत्माके नहीं; सोई इस श्लोकमें कहते हैं यह आत्मा १ कभी २ न ३ जन्मताहै ४, या ५ न ६ मरताहै ७ और ८ होकर ९ फिर १० रहनेवाला ११ सि० ऐसा भी यह आत्मा ❀ नहीं १२ अर्थात् जिनका जन्म होताहै, वे अवश्य मरतेहैं, आत्माको न जन्महै न नाश है. क्योंकि, सादि पदार्थोंका नाश होताहै आत्मा अनादि है, परन्तु छः अनादिपदार्थोंमें अविद्यादि पदार्थ भी अनादि कहे जाते हैं, उनका ज्ञानकालमें नाश सुना जाताहै अर्थात् अविद्यादि पदार्थोंकाभी जन्म नहीं. क्योंकि, वे अनादि हैं परन्तु होकर अर्थात हुवे फिर नहीं रहतेहैं ऐसा भी यह आत्मा नहीं. यह अर्थ है. (नवें पदसे लेकर बारवें पद तक) १२ सि० फिर कैसा है ❀ यह (आत्मा) १३ जन्मरहित १४ एकरस १५ नित्य १६ सनातन १७ सि० है ❀ शरीरके मारेजानेमें १८।१९ नहीं २० माराजाताहै २१ अर्थात् शरीरके नाश होनेमें आत्माका नाश नहीं होताहै २१ ॥२०॥

मू०—वेदाविनाशिनंनित्यंयएनमजमव्ययम् ॥
कथंसपुरुषःपार्थकंघातयतिहन्तिकम् ॥ २१ ॥

यः १ एनम् २ अविनाशिनम् ३ नित्यम् ४ अजम् ५ अव्ययम् ६ वेद ७ पार्थ ८ सः ९ पुरुषः १० कम् ११ कथम् १२ हन्ति १३

कन्न १४ घातयति १५ ॥ २१ ॥ अ०—उ० ज्ञानदृष्टिकरके सब क्रियामें आत्मा प्रेरकभी निर्विकार है. इस हेतुसे मैं तेरा प्रेरकभी असंग हूं मेरे निमित्तभी तुझको किसीप्रकारका शोच करना न चाहिये अर्थात् यहभी मतसमझ कि श्रीभगवान् मुझको हिंसामें प्रेरते हैं. कभी ऐसा न हो कि, इस पापके यही भागी हों. इस श्लोकमें यही कहते हैं—जो १ इस (आत्मा)को २ अविनाशी ३ नित्य ४ अज ५ निर्विकार ६ जानताहै ७ हे अर्जुन ! ८ सो ९ पुरुष १० किसको ११ किसप्रकार १२ मारताहै अर्थात् आत्मा किसीको किसीप्रकार नहीं मारताहै १३. सि० और ॐ किसको १४ सि० किस प्रकार ॐ मरवाता है १५ अर्थात् किसीको किसीप्रकारभी नहीं मरवाताहै. आत्मा किसी क्रियामें कर्ताका प्रेरक नहीं. तात्पर्य श्री महाराजने जैसे अपनेको निर्विकार अकर्ता असंग ऐसा निरूपण किया वैसे ही जीवकोभी निर्विकार कहा. इस कहनेसे जीव ब्रह्मकी एकता स्पष्ट सिद्ध है. इस प्रकरणका यही सिद्धान्त है ॥ २१ ॥

मू०—वासांसिजीर्णानियथाविहायनवानिगृह्णातिनरो-पराणि ॥ तथाशरीराणिविहायजीर्णान्यन्यानिसंयाति-नवानिदेही ॥ २२ ॥

यथा १ नरः २ जीर्णानि ३ वासांसि ४ विहाय ५ अपराणि ६ नवानि ७ गृह्णाति ८ तथा ९ जीर्णानि १० शरीराणि ११ विहाय १२ अन्यानि १३ नवानि १४ संयाति १५ देही १६ ॥ २२ ॥ अ०—उ० आत्माको तो मैंने अविनाशी निर्विकार समझा. आत्मा निमित्त तो मुझको अब किसी प्रकारका शोच नहीं अर्थात् आत्मा किसी क्रियामें न कर्ताहै, न प्रेरक, न कर्म है. और आत्माके नाश करनेमें वा कम करनेमें न कोई साधन है परन्तु आत्माका शरीरसे जो वियोग होता है इसके निमित्त तो शोच करना चा-

हिये. यह शंका करके कहते हैं. जैसे १ मनुष्य २ जीर्ण ३ वस्त्रोंको ४ त्यागके ५ और ६ नये ७ सि० वस्त्रोंको ❀ ग्रहण करता है ८. तैसेही ९ जीर्ण १० शरीरोंको ११ त्यागके १२ और १३ नये १४ सि० शरीरोंको ❀ प्राप्त होता है १५ आत्मा जीव १६ सि० न जानियें दूसरा शरीर कैसा मिले. पहलेसे अच्छा न मिले इसके निमित्तभी शोच करना न चाहिये. क्योंकि धर्मात्मापुरुषोंको बेसन्देह उत्तम शरीर मिलते हैं. पापियोंको यह शोच करना चाहिये धर्मात्मापुरुषोंको पुण्यके तारतम्यतासे देवतोंके शरीर मिलतेहैं. पापात्मा नरकमें जाते हैं. उनको नारकीशरीर मिलते हैं. मिलेहुए कर्मकरनेवालोंको मनुष्योंके शरीर मिलते हैं. ज्ञानी महापुरुष मुक्त होते हैं. तात्पर्य विना ब्रह्मज्ञानके सबको दूसरा शरीर मिलता है. चौदहवें अध्यायमें विशेष निरूपण करेंगे.इस प्रसंगको गरुडपुराणादिकी प्रक्रियाभी इसी सिद्धान्तसे मिलजाती है श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठोंके मुखसे श्रवण करनेसे ॥ २२ ॥

मू०–नैनंछिन्दन्तिशस्त्राणिनैनंदहतिपावकः ॥
नचैनंक्लेदयन्त्यापोनशोषयतिमारुतः ॥ २३ ॥

एनम् १ शस्त्राणि २ न ३ छिन्दन्ति ४ पावकः ५ एनम् ६ न ७ दहति ८ आपः ९ एनम् १० न ११ च १२ क्लेदयन्ति १३ मारुतः १४ न १५ शोषयति १६ ॥२३॥ अ०–उ० पीछे कहाथा कि आत्मा किसी प्रकार भी नहीं माराजाताहै अर्थात् आत्मा किसी साधन-करके साध्य (सिद्ध) होनेके योग्य नहीं. उसीको अब स्फुट कहते हैं–इस आत्माको १ शस्त्र २ नहीं ३ छेदन करते हैं ४, अग्नि ५ इसको ६ नहीं ७ जलाताहै ८ जल ९ इसको १० नहीं ११ १२ गलाताहै १३ पवन १४ नहीं १५ सुखाताहै १६. तात्पर्य अन्य और भी किसी साधन करके साध्य नहीं. आत्मा स्वयंसिद्ध निर्विकार है. निरवयव होनेसे क्रिया सावयव है. इसीहेतुसे आत्मा अक्रिय है ॥२३॥

मू०–अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएवच ॥
नित्यःसर्वगतःस्थाणुरचलोऽयंसनातनः ॥ २४ ॥

अयम् १ अच्छेद्यः २ अदाह्यः ३ अक्लेद्यः ४ अशोष्यः ५ एव ६ च ७ नित्यः ८ सर्वगतः ९ स्थाणुः १० अचलः ११ सनातनः १२ अयम् १३ ॥ २४ ॥ अ०–उ० शस्त्रादिसाधनोंकरके आत्मा इस हेतुसे साध्य नहीं कि आत्मा निर्विकारादि विशेषणों करके विशेषित है. यह कहते हैं, डेढ श्लोकमें.–यह (आत्मा) १ नहीं है छेदनकरनेके योग्य २ नहीं है जलानेके योग्य ३ नहीं है गलानेके योग्य ४ नहीं है सुखानेके योग्य ५ । ६ । ७ अर्थात् आत्मा न छिदसक्ताहै न जलसक्ताहै न गलसक्ताहै सि० क्योंकि ❀ नित्य ८ सब जगह व्याप्त ९ स्थाणुवत् स्थिर १० निश्चल ११ सनातन १२ सि० है ❀ यह १३ सि० आत्मा ❀ (यहां पदोंमें पुनरुक्ति प्रतीत होतीहै इसका उत्तर प्रथमही हम लिखआये हैं) ॥ २४ ॥

मू०–अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ॥
तस्मादेवंविदित्वैनंनानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

अयम् १ अव्यक्तः २ अयम् ३ अचिन्त्यः ४ अयम् ५ अविकार्यः ६ उच्यते ७ तस्मात् ८ एवम् ९ एनम् १० विदित्वा ११ अनुशोचितुम् १२ न १३ अर्हसि १४ ॥ २५ ॥ अ०–उ० यह आत्मा १ अव्यक्त २ मूर्तिरहित २ सि० है ❀ यह आत्मा ३ अचिन्त्य ४ सि० है अर्थात् चितवन करनेमें नहीं आताहै. अन्तःकारणका विषय नहीं ❀ यह आत्मा ५ अविकारी ६ कहा है ७ सि० इस क्रियाका नित्यादि सब पदोंके साथ सम्बन्ध है. जब कि यह आत्मा ऐसा है ❀ तिस कारणसे ८ इस प्रकार ९ इस आत्माको १० जानकर ११ पीछे शोच करनेको १२ नहीं १३ योग्यहै तो १४ तात्पर्य जो लक्षण आत्माका पीछे निरूपण किया उसको जानसमझकर शोच नहीं रहताहै २५

मू०—अथचैनंनित्यजातंनित्यंवामन्यसेमृतम्॥
तथापित्वंमहाबाहोनैवंशोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥

अथ १ च २ एनम् ३ नित्यजातम् ४ मन्यसे ५ वा ६ नित्यम् ७ मृतम् ८ महाबाहो ९ तथा १० अपि ११ एवम् १२ न १३ शोचितुम् १४ त्वम् १५ अर्हसि १६ ॥ २६ ॥ अ०—उ० जो कदाचित् देहोंके साथ आत्माको जन्ममरण तू समझता हो, तोभी शोच करना न चाहिये यह कहते हैं—और जो १। २ सि० कदाचित् ❀ इस आत्माको ३ नित्यजात ४ मानताहै ५ अर्थात् जीवका देहोंके साथ सदा जन्म होताहै ५. वा ६ सदा ७ मरताहै ८ सि० देहोंके साथ ❀ हे अर्जुन! ९ तोभी १०। ११ सि० जैसे अगले श्लोकमें कहता हूं ❀ इसप्रकार १२ नहीं १३ शोच करनेको १४ तू १५ योग्यहै १६ ॥ २६ ॥

मू०—जातस्यहिध्रुवोमृत्युर्ध्रुवंजन्ममृतस्यच ॥
तस्मादपरिहार्येऽर्थेनत्वंशोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

हि १ जातस्य २ मृत्युः ३ ध्रुवः ४ मृतस्य ५ च ६ जन्म ७ ध्रुवम् ८ तस्मात् ९ अपरिहार्ये १० अर्थे ११ त्वम् १२ शोचितुम् १३ न १४ अर्हसि १५ ॥२७॥ अ०—जब कि १ जन्मवालेको २ मरण ३ निश्चय ४ सि० है अर्थात् जो उत्पन्न हुआ है वो अवश्य मरेगा, इसमें प्रमाण प्रत्यक्ष व्यवहार है ❀ और मरेहुएको ५। ६ जन्म ७ निश्चय ८ सि० है अर्थात् जो मरताहै उसका जन्म अवश्य होता है. क्योंकि कर्ता होकर मराहै. अपने कियेहुए कर्मोंका भोग करनेकेलिये अवश्य जन्म लेगा. विनाभोग वा विनाज्ञान कर्मोंका कभी नाश नहीं होता है ❀ तिस कारणसे अवश्यं भाविकाममें १०।११ तू १२ शोच करनेको १३ नहीं १४ योग्यहै १५. टी०जो काम अवश्य होनेवालाहै, जिसको कुछ इलाज २९. वातें

हार प्रतीकार नहीं. उसमें क्या शोच करना चाहिये ? जो होनाहै वो अवश्य होगा और जो न होना है वो कभी न होगा. "यदभावि न तद्भाविभाविचेन्नतदन्यथा ॥ अवश्यंभाविभावानांप्रतीकारोभवेद्यदि ॥ तदादुःखैर्नलिप्येरन्नलरामयुधिष्ठिराः ॥ "जो भाविका प्रतीकार होता, तो राजानल, राम, युधिष्ठिरादिको क्योंदुःख होता ?१०।११ तात्पर्य भीष्मादिका इन देहोंसे एकदिन अवश्य वियोग होना है तू क्यों शोच करता है ? वियोग अवश्य भावी है, और राजधनादिके निमित्त भी शोच मत कर. क्योंकि क्या तो भीष्मादि धनकोछोड कर मरजावेंगे, अथवा पहले धनही उनको छोडदेगा, इस हेतुसे तू मत शोचकर ॥ २७ ॥

मू०–अव्यक्तादीनिभूतानिव्यक्तमध्यानिभारत ॥
अव्यक्तनिधनान्येवतत्रकापरिदेवना ॥ २८ ॥

भारत १ भूतानि २ अव्यक्तादीनि ३ व्यक्तमध्यानि ४ अव्यक्तनिधनानि ५ एव ६ तत्र ७ का ८ परिदेवना ९ ॥२८॥ अ०–उ० जैसे सीपीमें चांदीकी, रस्सीमें सर्पकी भ्रान्ति है. इसी प्रकार यह जगत् प्रतीत होताहै, फिर क्यों शोच करताहै यह कहते हैं–हे अर्जुन! १ सि० पृथिव्यादि ये सब(अपने कार्य अन्तःकरणादि शरीर पुत्रादिके सहित) पंच ❋ भूत २ सि० ऐसे हैं कि ❋ अव्यक्त अदर्शन अनुपलब्धि आदि है जिनका, अर्थात् आदिमें ये भूत अदर्शनरूप थे, इनका दर्शनमात्र भी नहीं था ३. सि० और ❋ व्यक्त है मध्य जिनका ४ अर्थात् उत्पत्तिसे पीछे नाशसे पहले बीचमें प्रतीत होते हैं शुक्तिमें रजतवत्. सि० और अव्यक्तही है मरण जिनका ५ अर्थात् इनका जो अदर्शन है वोही इनका मरण है. नाश हुए पीछे भी ये नहीं दीखते हैं, यह अभिप्राय है ५. निश्चय (निस्सन्देह)६ यह जगत् अविद्याभ्रान्तिसे प्रतीत होता है, वास्तव नहीं है

तहां ७ अर्थात् ऐसे पदार्थोंके निमित्त (जिनकी गति पीछे कही)७ क्या ८ शोक प्रलाप विलाप ९ सि० करना चाहिये. भ्रान्तिके सर्पसे काटा हुआ कोई नहीं मरता है. जो आदि और अन्तमें नहीं वो वर्तमानमेंभी नहीं. श्रुति यही कहे है, 'आदावन्तेचयन्नास्तिवर्तमानेपितत्तथा' ॥ ❀ तात्पर्य यह संसार स्वप्नवत् है। इस संसारमें ये भीष्मादि और यह सब सेना और इनकेसाथ युद्धकरना राज्य भोगना ये सब स्वप्नके पदार्थ हैं. इनके निमित्त वृथा विलाप मत कर ॥"शोकनिमित्तस्य प्रलापस्य नावकाशोऽस्तीत्यर्थः ॥ कः शोकनिमित्तोविलापः प्रतिबुद्धस्यस्वप्नदृष्टबन्धुष्विव शोकोनयुज्यते इत्यर्थः"॥ २८॥

मू०—आश्चर्यवत्पश्यतिकश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदतितथैवचान्यः ॥ आश्चर्यवच्चैनमन्यःशृणोतिश्रुत्वाप्येनंवेदनचैवकश्चित् ॥ २९ ॥

कश्चित् १ एनम् २ आश्चर्यवत् ३ पश्यति ४ तथा ५ एव ६ च ७ अन्यः ८ आश्चर्यवत् ९ वदति १० अन्यः ११ एनम् १२ आश्चर्यवत् १३ च १४ शृणोति १५ कश्चित् १६ श्रुत्वा १७ अपि १८ एनम् १९ न २० च २१ एव २२ वेद २३ ॥ २९ ॥ अ०—उ०आत्माका जानना एक आश्चर्य अलौकिक अद्भुत बात है. आत्माके जाननेमें बहुत प्रयत्न करना चाहिये—कोई १ इस आत्माको२ सि० शमदमादिसाधनसम्पन्न हुवा ज्ञानचक्षुकरके असंख्यातपुरुषोंमें जो देखता है, सो ❀ आश्चर्यवत् ३ देखताहै ४. अर्थात् लौकिकपदार्थोंकी तरह आत्माका देखना नहीं बनसक्ता है और तैसेही ५।६।७ अन्य और कोई एक महात्मा ८ आश्चर्यवत् ९ कहता १० सि० आत्माको ❀ अन्य और कोई महात्मा ११इस आत्माको१२ आश्चर्यवत् १३ ही १४ सुनताहै १५ कोई १६ सि० साधनरहितपुरुष तत्त्वमसि 'अहंब्रह्मास्मि' इत्यादिमहावाक्योंको ❀ सुनकर १७ भी १८ इस आत्माको १९ नहींही २०।२१।२२ जानता है २३. तात्पर्य

त्रिलोक वा चौदहलोक वा चौदहसेभी सिवाय जिसके मतमें कोई और ऊंचा वैकुंठादिलोकहो, उनमें जितने नामरूपवाले इन्द्रियान्तःकरणके विषय जितनेपदार्थ हैं, उन सब पदार्थोंको लौकिक कहतेहैं, जो पुरुष आत्माको लौकिकपदार्थवत् सुना चाहता है, वा देखा चाहता है, वा कहा चाहता है, यह कभी नहीं होसक्ता. क्योंकि आत्मा लौकिक पदार्थवत् नहीं, अलौकिक आश्चर्यवत् है, जो इन्द्रियान्तःकरणका विषय तो है नहीं, सो सुनाजावे, कहाजावे, देखाजावे, जानाजावे, अनुभव कियाजावे (करामलकवत्) यही आश्चर्य है ॥२९॥

मू०—देहीनित्यमवध्योऽयंदेहेसर्वस्यभारत ॥
तस्मात्सर्वाणिभूतानिनत्वंशोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

भारत १ अयम् २ देही ३ सर्वस्य ४ देहे ५ नित्यम् ६ अवध्यः ७ तस्मात् ८ सर्वाणि ९ भूतानि १० त्वम् ११ शोचितुम् १२ न १३ अर्हसि १४ ॥ ३० ॥ अ०—उ० ग्यारहवें श्लोकसे आत्माका और अनात्माका जो विवेक निरूपण करते हुए चले आतेहैं, इस प्रकरणको अब समाप्त करते हैं—हे अर्जुन! १ यह २ सि० शुद्धसच्चिदानन्द ❀ आत्मा ३ सबके ४ देहमें ५ सि० ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यन्त ❀ नित्य ६ अवध्य ७ सि० है. अर्थात् इसका वध नहीं हो सक्ता, यह मर नहीं सक्ता. तात्पर्य किसी क्रियाका विषय नहीं अविकारी अक्रिय है ❀ तिसकारणसे ८ सब भूतोंको ९। १० अर्थात् कर्तृकर्मादिरूपभूतोंके निमित्त १० तू ११ शोच करनेको १२ नहीं १३ योग्य है. १४ तात्पर्य मरे जीवतोंके निमित्त तू शोच मत कर. जो पंडितोंकेसी बातें करताहै. तो फिर सच्चाही पंडित होना चाहिये. पंडित ब्रह्मज्ञानीका नाम है सो होना चाहिये. इत्यभिप्रायः ॥ ३० ॥

मू०—स्वधर्ममपिचावेक्ष्यनविकम्पितुमर्हसि ॥
धर्म्याद्धियुद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्यनविद्यते ॥३१॥

स्वधर्मम् १ अपि २ च ३ अवेक्ष्य ४ विकम्पितुम् ५ न ६ अर्हसि ७ हि ८ धर्म्यात् ९ युद्धात् १० अन्यत् ११ श्रेयः १२ क्षत्रियस्य १३ न १४ विद्यते १५ ॥ ३१ ॥ अ०—उ० लौकिकरीतिसे अब श्रीमहाराज अर्जुनको समझातेहैं. आठ श्लोकोंमें अर्जुनने पीछे कहा था कि महाराज! अपने सम्बन्धियोंको युद्धमें मारता हुआ समझ कर मेरा शरीर कम्पता है, उस वाक्यका स्मरण करके श्रीमहाराज कहते हैं, कि प्रथम तो विचारदृष्टिकरकें तुझको घबराना न चाहिये. सिवाय इसके अपने धर्मका स्मरण करकेभी तुझको घबराना योग्य नहीं, क्योंकि परमार्थदृष्टिकरके तो कम्पनका सावकाश है ही नहीं— और अपने धर्मकोभी १।२।३ देखकर ४ कंपाकरनेको ५ [तू]नहीं योग्यहै ६।७ सि० और यह जो तूने पीछे कहा कि रणमें अपने सम्बन्धियोंको मारकर अपना भला नहीं देखता हूं, यह मत समझ ❀ क्योंकि ८ धर्मयुक्तयुद्धसे ९।१० सि० सिवाय पृथक् ❀ अन्यत ११ सि० भिक्षाटनादिमें ❀ क्षत्रियका १२ कल्याण (भला) १३ नहीं है १४।१५. सि० इन आठोंश्लोकोंमें (इकतीसवेंसे अठतीसवें तक) प्रकरणका अर्थतो यहीहै. जो अक्षरार्थहै परन्तु तात्पर्य इन आठश्लोकोंका परमार्थभीहै. उसको ऐसे समझोकि क्षत्रियार्जुनके जगे तो मुमुक्षु वा ज्ञानी और युद्धके जगह अन्तःकरणइंद्रियादिका निरोध ❀ श्रीमहाराजविद्वानोंको समझाते हैं, कि विचारदृष्टिकरकेभी शरीरादिका निरोध करना चाहिये, घबराना योग्य नहीं. और अपने धर्मकोभी देखकर इन्द्रियादिकोंका विषयोंसे निरोध करना योग्य है; क्योंकि शास्त्रका तात्पर्य बहिर्मुखतामें नहीं और जो पुरुष ज्ञाननिष्ठ नहीं पूर्वमीमांसाको वा उपासनाको इष्टधर्म समझता है, तोभी अन्तः करणादिके निरोधरूप धर्मसे पृथक् अन्यत् बहिर्मुख होना इत्यादि उनका भला करनेवाला नहीं ॥ ३१ ॥

मू०—यदृच्छयाचोपपन्नंस्वर्गद्वारमपावृतम् ॥
सुखिनःक्षत्रियाःपार्थलभन्तेयुद्धमीदृशम् ॥ ३२॥

पार्थ १ ईदृशम् २ युद्धम् ३ सुखिनः ४ क्षत्रियाः ५ लभन्ते ६ अपावृतम् ७ स्वर्गद्वारम् ८ यदृच्छया ९ च १० उपपन्नम् ११ ॥३२॥

अ०—उ० आनंदका मार्ग अपने आप तुझको प्राप्त हुआ है, तू तो बड़भागी है. शोच क्यों करताहै ?—हे अर्जुन ! १ ऐसे युद्धको २।३ सुखी क्षत्रिय ४।५ अर्थात् स्वर्गादिजन्यसुखके भोगनेवाले ५ प्राप्त होतेहैं ६ अर्थात् ऐसा युद्ध भाग्यवान् क्षत्रियोंको प्राप्त होता है. सि० कैसाहै यह युद्ध कि ❋ खुला स्वर्गका दरवाजा ७।८ और यदृच्छाकरके ९।१० प्राप्त हुआ है ११ अर्थात् विनाबुलाये विनाप्रार्थना (इच्छा किये) अपने आप प्राप्त हुआ है ११. सि० परमार्थ यह है कि यह मनुष्यशरीर सुदुर्लभ बडे भाग्यसे अपने आप ईश्वरकी कृपाकरके प्राप्त हुआ है. इसमें अन्तःकरणादिकोंका निरोध करना. कैसा है कि खुला हुआ मोक्षद्वार है. परमानंदजीवन्मुक्तिके भोगनेवाले महात्मा संघातका निरोध करते हैं इस शरीरके प्राप्त होनेका फल शब्दादि भोग नहीं और परलोकके भोग भी अनित्य होनेसे दुःखदेनेवाले हैं. इस शरीरसे मोक्षमार्गमेंही प्रयत्नकरना योग्यहै ❋ ॥ ३२ ॥

मू०—अथचेत्त्वमिमंधर्म्यंसंग्रामंनकरिष्यसि ॥
ततःस्वधर्मंकीर्तिंचहित्वापापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

अथ १ चेत् २ त्वम् ३ इमम् ४ धर्म्यम् ५ संग्रामम् ६ न ७ करिष्यसि ८ ततः ९ स्वधर्मम् १० कीर्तिम् ११ च १२ हित्वा १३ पापम् १४ अवाप्स्यसि १५ ॥ ३३ ॥ अ०—उ० व्यतिरेकद्वारकरके पक्षान्तर यह कहते हैं, कि जो तू युद्ध न करेगा तो तेरी बड़ी क्षति होगी—और १ जो २ तू ३ इसधर्मयुक्तसंग्रामको ४।५।६ न करेगा ७।८ सि० तो ❋ तिसकारणसे ९ अपने धर्मको १० और

कीर्तिको ११।१२ त्यागकर १३ पापको १४ प्राप्त होगा १५. सि० परमार्थ यह है कि, जो इंद्रियादिकोंका निरोधरूप अपने धर्मको न करोगे तो तुम्हारा धर्म जाता रहनेसे तुम्हारी कीर्तिभी नाश हो जायगी, ऐसा पापकरनेसे नरकको प्राप्त होगे. तात्पर्य धर्मात्मा वेही हैं जिनका संघात निरोध है. और जिनका यश सज्जनोंमें होवे,वेही सुयशवाले हैं. नहीं तो अपने अपने पेशे जातीमें कोई न कोई एकप्रधान कहलाता है ❋॥ ३३ ॥

मू०–अकीर्तिंचापिभूतानिकथयिष्यंतितेऽव्ययाम् ॥
संभावितस्यचाकीर्त्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

भूतानि १ ते २ अकीर्तिम् ३ च४ कथयिष्यन्ति ५ अव्ययाम्६ संभावितस्य ७ च ८ अकीर्तिः ९ मरणात् १० अपि ११ अतिरिच्यते १२ ॥ ३४ ॥अ०–उ०यह नहीं समझना कि अकीर्ति होनेसे मेरी क्या क्षति होगी ? दोचार वर्ष कहकर सब चुप होजावेंगे अपितु तेरी अकीर्ति सदा बनी रहेगी. यह कहते हैं.–छोटे बडे सब स्त्रीपुरुषप्राणीमात्र १ तेरी २ अकीर्तिको ३ भी ४ कहेंगे५ सि० और तुझको नरकभी होगा. कैसीहै वो अकीर्ति कि ❋सदाबनीरहेगी. यह तात्पर्य है६ सि०फिर इससे मेरी क्या क्षति होगी ? यह शंका करके कहतेहैं कि अकीर्ति सबके वास्ते ही बुरी है❋और प्रतिष्ठावाले पुरुषकी ७।८ अकीर्ति९ सि०तो मरनेसे १० भी ११ सिवायहै १२.सि०परमार्थ यह है,कि जिस कीर्तिके वास्ते तुम दिनरात प्रयत्न करते हो. यह चाहते हो कि हमारानाम बना रहे सो परमधम जो संघातका निरोधकरना इसके न करनेसे सदा जीतेजी और मरकर दूसरे जन्ममें इसप्रकार सदा अकीर्ति बनी रहेगी,जीतेजी तो लोगोंकी निन्दा सहनीपडेगी, और मरकर यमराजके सामने दुर्दशा होवेगी वो क्लेश मरनेसे भी अधिक है ❋ ॥ ३४ ॥

मू०–भयाद्रणादुपरतंमंस्यन्तेत्वांमहारथाः ॥
येषांचत्वंबहुमतोभूत्वायास्यासिलाघवम् ॥ ३५ ॥

महारथाः १ त्वाम् २ भयात् ३ रणात् ४ उपरतम् ५ मंस्य
येषाम् ७ च ८ त्वम् ९ बहुमतः १० भूत्वा ११ लाघवम् १
यास्यसि १३ ॥ ३५ ॥ अ०–उ० लोक यह नहीं समझेंगे कि
अर्जुन युद्धमें हिंसा पाप समझकर उपराम हुआ है. यह न
समझेंगे, समझेंगे तो फिर क्या ? यह शंका करके श्रीमहाराज य
कहते हैं.–शूरवीर दुर्योधनादि १ तुझको २ सि० मरनके
भयसे ३ रणसे ४ हटा हुआ ५ मानेंगे अर्थात् यह समझेंगे कि
मरनेका भयकरके अर्जुन रणमेंसे भाग गया (हटगया) ६
सि० जो वे ऐसाही समझेंगे तो मेरी इसमें क्या क्षति होगी ? य
शंका करके श्रीमहाराज यह कहते हैं ❀ जिनका अर्थात् दुर्यो
धनादिका ७ और ८ सि०सिवाय उनके अन्य बहुत पुरुषोंका ❀
तू ९ बडा १० सि०कहलाता है. दुर्योधनादि तुझको बहुत गुण
वाला मानते हैं ऐसा ❀ होकर ११ छुटाईको १२ प्राप्त होगा १३
अर्थात् वेही दुर्योधनादि कि जो तुझको बहुत गुणवाला शूरवीर
मानते हैं तुझको कातर नपुंसक मूर्ख बतावेंगे, यह तेरी क्षति होगी
जिनके वीचमें तू बहुगुणवाला माना जाता है, उनकेही वीचमें छुटा
ईको प्राप्त होगा १३ परमार्थ यहहै कि जितेन्द्रिय महात्मा महापुरुष
अजितेन्द्रिय बहिर्मुखोंको ऐसा समझेंगे कि शरीर इन्द्रिय प्राण और
अन्तः कारणका निरोध करना तो कठिन समझ रक्खा है. रोचक वा
क्योंका आश्रय लेकर भोग भोक्ते हैं. धन्य समझ और धन्यसाधन.
किंचिन्मात्रभी शास्त्रका तात्पर्य न समझा अग्निको अग्निसे बुझाते हैं.
अन्तःकरणादिके निरोधको बखेडा बताते हैं. महात्मालोक ऐसे
पुरुषोंको आलसी प्रमादी विषयी बहिर्मुख मानते हैं. ज्ञानभक्ति

कर्मका आश्रा लेकर जो बहिर्मुख अजितेन्द्रिय होंगे, तो नीचताको प्राप्त होजावेंगे ॥ ३५ ॥

मू०—अवाच्यवादांश्चबहून्वादिष्यंतितवाहिताः ॥
निन्दन्तस्तवसामर्थ्यंततोदुःखतरंनुकिम् ॥ ३६ ॥

तव १ सामर्थ्यम् २ निन्दन्तः ३ तत्र ४ अहिताः ५ बहून् ६ अवाच्यवादान् ७ च ८ वदिष्यन्ति ९ ततः १० दुःखतरम् ११ किम् १२ नु १३ ॥३६॥ अ०—उ०तुझको छोटाभी समझेंगे—और तेरे १ पराक्रमकी निन्दा करते हुऐ २।३ तेरे ४ बैरी ५ सि०तेरे निमित्त ❀बहुतअवाच्यवचनोंको ६।७भी अर्थात् न कहनेके योग्य जो वचन तिनकोभी ८ कहेंगे ९ सि०इससे मेरी क्या क्षती होगी? यह शंका करके कहते हैं ❀तिससे १०अर्थात् समर्थ होकर दुर्वाक्य सुननेसे सिवाय और १० विशेष दुःख ११ क्या? १२ सि० होगा. ❀'नु' यह शब्द वितर्कमें बोला जाता है. जैसे कोई किसीको नानाधिक्कार देकर बोलेकि और इसकुकर्मसे सिवाय क्या होगा ऐसेही अर्जुनको तानादेकर श्रीमहाराज कहते हैं कि, दुर्वाक्य सहनेसे सिवाय और क्या दुःख होगा?यह इस नुशब्दका तात्पर्यार्थहै १३ परमार्थ यह है, कि संसारमें जो अजितेन्द्रिय बहिर्मुख हैं. और देवयोगसे उनको धन प्राप्त होगयाहै, वा राज्यादि अधिकार मिलगया, उनको कोई बुरा न कहे, उनके अवगुण समझकर चुप रहे. यह नहीं समझना किंतु वेद वेदान्तपातंजलशास्त्र उनकी निन्दा करते हैं. सिवाय उनके सज्जन साधुलोक निस्पृही सब उनको बुरा समझतेहैं. प्रसंगसे कहभींदेते हैं और जो गृहस्थलोक मुखपर नहीं कहते पीछे बुरा कहते हैं. विचारो इससे सिवाय उन नि[illegible] इमा-विशेष दुःख क्या होगा? और उनसे सिवाय और कौन [illegible] १४ वेद शास्त्र महात्मा बुराई कहें ! ॥ ३६ ॥

[illegible] लेकर

[illegible]

मू०—हतोवाप्राप्स्यसिस्वर्गंजित्वावाभोक्ष्यसेमहीम् ॥
तस्मादुत्तिष्ठकौन्तेययुद्धायकृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

हतः १ वा २ स्वर्गम् ३ प्राप्स्यासि ४ वा ५ जित्वा ६ महीम् ७ भोक्ष्यसे ८ कौन्तेय ९ तस्मात् १० उत्तिष्ठ ११ युद्धाय १२ कृतनिश्चयः १३ ॥ ३७ ॥ अ०—उ० पीछे अर्जुनने कहाथा कि न जानिये ये मुझको जीतेंगे वा मैं इनको जीतूंगा उस वाक्यका स्मरण करके श्रीमहाराज यह कहते हैं:—कि तेरा दोनों प्रकार भला होगा सि० युद्धमें ❀ जो मरगया १।२ सि० तू तो मरकर ❀ स्वर्गको ३ प्राप्त होगा. ४ और ५ सि० जो जीतगये तो ❀ जीतकर ६ पृथिवीको ७ भोगेगा अर्थात् राज्य करेगा ८. हे अर्जुन ! ९ तिसकारणसे १० उठ खडा हो अर्थात् दोनों प्रकार अपनी भलाई समझकर युद्ध कर ११. सि० कैसा है तू ❀ युद्धके लिये १२ किया है निश्चय जिसने १३ अर्थात् युद्ध करनेका निश्चय करके तो तू यहाँ आया है. अब क्यों कायरपना करताहै ! तात्पर्य पहलेही अर्जुनने युद्धकरनेका निश्चय करलियाहै. कुछ श्रीमहाराजका तात्पर्य युद्ध करानेमें नहीं. तो युद्धकर खडा हो यह प्रासंगिक लौकिक रीति है, अभिप्राय श्रीमहाराजका परमार्थमेंही है, परमार्थ यह है, कि श्रीमहाराज भक्तोंसे कहते हैं, जो तुम शरीर इन्द्रिय प्राण और अन्तःकरण इनका निरोध करतेरमरगये इस परमधर्ममें तो बडे बडे लोकोंको प्राप्त होगे, और जो अन्तःकरणादिको तुमने जीतलिया (वशमें करलिया) तो ज्ञानद्वारा जीवतेही जीवन्मुक्तिका आनन्द भोगोगे. ऐसा विचारकर सावधान होके इन्द्रियादिकोंका रोध करो. दोनों पक्षमें आनन्दहै नरशरीर दुर्लभ है ॥ नरतनुपाक्योंका उदेही ॥ पलटिसुधातेशठविपलेहीं ॥ ३७ ॥

किंचिन्मात्रः सुखेसमेकृत्वालाभालाभौजयाजयौ ॥
अन्तःकरणादिनायुयुज्यस्वनैवंपापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

पुरुषोंको आल०

सुखदुःखे १ समे २ कृत्वा ३ लाभालाभौ ४ जयाजयौ ५ ततः ६ युद्धाय ७ युज्यस्व ८ एवम् ९ पापम् १० न ११ अवाप्स्यसि १२ ॥ ३८ ॥ अ०उ० पीछे अर्जुनने कहाथा कि युद्ध करनेमें मुझको पाप होगा, इस वाक्यका स्मरण करके श्रीमहाराज यह कहते हैं.—सुखदुःखको १ समान २ करके ३ अर्थात् इन दोनोंको फलमें बराबर समझकर ३ लाभको और अलाभको ४ जयको और अजयको५ सि० भी समान समझकर ❋ पीछे उसके ६ युद्धकेवास्ते ७ चेष्टाकर ८ अर्थात् युद्धकर८. इसप्रकार९ [तू] पापको १० नहीं११ प्राप्त होगा १२ तात्पर्य सुखदुःखका कारण लाभ और अलाभ है. लाभालाभका कारण जय और अजय है. इन सबमें रागद्वेषरहित होकर युद्ध कर. कभी पाप न होगा. परमार्थ यह है कि अन्तःकरणादिके निरोधकालमें सुखदुःखको इष्टानिष्टके प्राप्तिको बराबरसमझना चाहिये, हर्ष शोक न करना. प्रथम अन्तःकरणादिके निरोधकालमें विघ्न दुःख अपमानादि बहुत होते हैं, और फिर सुखसन्मानादिभी बहुत हैं, दोनोंमें हर्षशोकत्यागकरके अंतःकरणका निरोध करताही रहे. इस प्रकार बन्धनको नहीं प्राप्त होगें. और जो दुःखसुखविघ्नसन्मानादिके झपट्टेमें आगये वा स्वर्गादिफलमें फँसगये तो फिर बन्धनसे छूटना कठिन है. तात्पर्य अन्तःकरणादिका निरोध निष्काम होकर करना योग्य है. इसप्रकार बहिरंगकर्मोंके त्यागमें पाप न होगा ॥ ३८ ॥

मू०-एषातेऽभिहितासांख्येबुद्धियोंगेत्विमांशृणु ॥
बुद्ध्यायुक्तोययापार्थकर्मबन्धंप्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

एषा १ सांख्ये २ बुद्धिः ३ ते ४ अभिहिता ५ योगे ६ तु ७ इमाम् ८ शृणु ९ पार्थ १० यया ११ बुद्ध्या १२ युक्तः १३ कर्मबन्धम् १४ प्रहास्यसि १५ ॥ ३९ ॥ अ०-उ० ग्यारहवें श्लोकसे लेकर तीसवें श्लोकतक बीसश्लोकोंमें अर्जुनका शोक मोहदूरकरनेकेलिये अक्ष

ज्ञानका उपदेश किया-फिर आठश्लोंकोमें लौकिक न्यायकरके अर्जु-
नको समझाया, अब उस लौकिकन्यायको समाप्तकरके ज्ञाननिष्ठा
अर्जुनको तत्परकरनेके लिये ज्ञाननिष्ठाकाजो साधन भगवद्भक्त्यादि
निष्कामकर्मयोग उसको फलके सहित निरूपण करतेहैं. हे अर्जुन
ग्यारहवें श्लोकसेलेकर तीसवें श्लोकतक बीसश्लोकोंमें जो तुझको ज्ञान-
का उपदेश कियो यह १ आत्मतत्त्वके विषय २ ज्ञान ३ तेरे अर्थ
तुझसे कहा ५. सि० मैंने ❋ अर्थात् यह तो मैंने ब्रह्मज्ञानोपदेश
किया, परन्तु यह अत्यंत सूक्ष्म अलौकिक आश्चर्यपदार्थ है. जो तेरे
समझमें न आयाहो तो इसकी प्राप्ति और समझकेलिये इसका साधन
भगवद्भक्त्यादि निष्कामकर्म- योगविषय ६ भी ७ सि० ज्ञानमें अ-
कहता हूं ❋इसको ८तू सुन ९हे अर्जुन! १०सि०यह वो ज्ञान तुझको
सुनाता हूं, कि तू ❋ जिसज्ञानकरके ११।१२ युक्त १३सि०हुआ
अर्थात् जिसज्ञानका अनुष्ठान करके अन्तःकरणशुद्धिद्वारा कर्मके
बन्धको अर्थात् धर्माधर्मरूपबन्धनको १४ भलेप्रकार त्याग देगा
अर्थात् बन्धनसे छूटजायगा (मुक्तहोजायगा) १५ ॥ ३९ ॥

मू०—नेहाभिक्रमनाशोऽस्तिप्रत्यवायोनविद्यते ॥
स्वल्पमप्यस्यधर्मस्यत्रायतेमहतोभयात् ॥ ४० ॥

इह १ आभिक्रमनाशः २ न ३ अस्ति ४ प्रत्यवायः ५ न ६ विद्यते
अस्य ८ धर्मस्य ९ स्वल्पम् १० अपि ११ महतः १२ भयात् १३
त्रायते १४ ॥ ४० ॥ अ०—उ० जैसे खेतीआदिमें फलपर्यंत अनेक
विघ्न होते हैं ऐसेही इस भगवदाराधनादिनिष्कामकर्मयोगमें भी हों
तो फिर अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानकी प्राप्ति कठिन प्रतीत होती
तात्पर्य फलके प्राप्तिपर्यंत यत्न निर्विघ्न समाप्त होना, निष्कामकर्मयो-
गका कठिन प्रतीत होताहै, यह शंका करके कहते हैं.—निष्कामकर्म-
योगमें १ सि० किसीप्रकारका बीचमेंही विघ्न होजावे तोभी ❋ प्र-

म्भका नाश २ नहीं है ३ । ४ सि० जैसे किसीने माघमासमें प्रातः कालस्नानकरनेका प्रारंभकिया और दोचारदिनके पीछे उस महीनेके बीचमें कुछ विघ्न होगया कि जिसकरके वो निष्काम पुरुष महीना-भर स्नान न कर सका तो उस थोडेही कालके स्नान करनेका अर्थात् प्रारंभमात्रकाभी नाश नहीं होता है. तात्पर्य वो सकामकर्मवत और खेतीआदिकर्मवत् निष्फल नहीं जाता है, एक न एक दिन अवश्य-ही निष्कामपुरुषको निष्कामकर्मयोगके फिर सन्मुख करके अन्त करणशुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठकरके मुक्त करेगा. द्वितीयशंका यह है कि जैसे मंत्रका जप वा पाठ विधिवत् न होसके तो उसमें उलटा पाप होता है, अथवा रोग दूर करनेके लिये औषधि खाते हैं. जो कदाचित् वैद्यके समझमें रोग न आवे तो उलटा औषधि खानेसे ही प्राणी मर जाता हैं. यह निष्काम कर्मभी ऐसाही होगा, क्योंकि प्रथम तो धर्मकर्मभक्ति आदिका स्वरूप यथार्थ जानना ही कठिन है. सब पंडितआचार्योंका एक सिद्धान्त नहीं, और जो किसी एक मतमें निश्चयभी किया तो उस कर्मका अनुष्ठान विधिवत् होना कठिन है; और जो दूसरेके वाक्यमें विश्वास करके अनुष्ठान किया और बतला-नेवालेने बुद्धिके भ्रमसे वा मतमतान्तरकरके खेंचसे यथार्थ न बतला या तो फलदेना तो पृथक् रहा, उलटा पाप लगनेसे डर लगता है. यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं, कि ये दोष सकामकर्मयोगमें हैं. निष्कामकर्मयोगमें ❀ प्रत्यवाय (पाप) ५ नहीं है ६।७ इस धर्मका ८।९ थोडा १०भी ११ सि० अनुष्ठान किया हुआ प्रारम्भमात्रभी ❀ बडे भयसे १२।१३ अर्थात् दुःखालयसंसारसे १३ रक्षा करता है १४ तात्पर्य भगवदाराधनादि निष्कामकर्मयोग थोडाभी अपने शक्तिके अनुसार किया हुआ अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञाननिष्ठाको प्राप्त करके जन्ममरण (दुःखरूपसंसार) से छुडाकर पूर्णब्रह्मपरमानंदस्वरूप

आत्माको प्राप्त करता है. पीछले पूर्वपक्षमें कहे हुए दोष सब सक मकर्मोंमें हैं. निष्कामकर्म और सकामकर्मोंका बडा भेद है ॥ ४०

मू०-व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेहकुरुनन्दन ॥
बहुशाखाह्यनन्ताश्चबुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१

कुरुनन्दन १इह २ व्यवसायात्मिका ३ बुद्धिः ४ एका ५अव्यव यिनाम् ६ बुद्धयः ७ अनन्ताः ८ च ९ बहुशाखाः १० हि ११ ॥४१॥ अ०-उ० जब कि निष्कामकर्मयोगका यह अद्भुतमाहा आप कहते हो तो सबलोग इसीका अनुष्ठान क्यों नहींकरते? सा मान् परमेश्वरका दर्शन वैकुंठ स्वर्गादिफल क्यों चाहते हैं? यह शं करके श्रीमहाराज यह कहते हैं-कि हे अर्जुन! १ इस मोक्षमार्गमें सि० मुमुक्षुअन्तर्मुखव्यवसायीपुरुषोंके विषय ❀ निश्चयस्व वाली ३ अर्थात् निश्चय करनेवाली आत्माकी ३ बुद्धि अर्थात् ज्ञान एक ५ सि० ही है ❀ तात्पर्य इस अर्थमें जिसबुद्धिका निश्चय अर्थात् निश्चल है जो बुद्धि इस अर्थमें कि निष्काम भगवदाराधना कर्मयोगकरके अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञान होकर निःस परात्परपरमानन्दपूर्णब्रह्मआत्माको (जिसको परमगति कहते हैं) प्राप्त होता है. इसका नाम व्यवसायात्मिका बुद्धि है, सो यह मो मार्गमें एकही है, अर्थात् इस एक ज्ञानके सिवाय और दूसरा ज्ञान, मोक्षका हेतु नहीं और जिनका यह निश्चय नहीं उनको अ वसायी बहिर्मुख प्रमाणजनितविवेकबुद्धिरहित कहते हैं. उनके ज्ञान ७ अनन्त ८ और ९ बहुतशाखाभेदवाले १० भी ११ सि ❀ तात्पर्य वैदिकमार्ग तो सनातनसे एक ही चला आता है, कि पूर्वनिरूपण किया. स्मार्तमतसे उसका विरोध नहीं; और कल्पि तमत अनन्त हैं. और एकएकमेंभी नानाभेद हैं. जिसवास्ते न लोगोंने कल्पित किये हैं. श्रौतस्मार्तसनातनमार्गको छोड दिया इसका हेतु तेंतालिसवें श्लोकमें श्रीमहाराज कहेंगे ॥ ४१ ॥

मू०—यामिमांपुष्पितांवाचंप्रवदन्त्यविपश्चितः ॥
वेदवादरताःपार्थनान्यदस्तीतिवादिनः ॥ ४२ ॥

याम् १ वाचम् २ पुष्पिताम् ३ प्रवदन्ति ४ पार्थ ५ इमाम् ६ वेदवादरताः ७ अविपश्चितः ८ न ९ अस्ति १० अन्यत् ११ इति १२ वादिनः १३॥४२॥अ०-उ०प्रमाणजनितविवेकबुद्धिरहित बहिर्मुख अव्यवसायी जिसको आप कहतेहैं वे क्या विनाप्रमाणके कर्मउपासना करते हैं, यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं—यह कि उनके प्रमाणोंको सुन. । सि० वेदोंकेसिद्धान्तकातात्पर्य जाननेवाले महात्मा व्यवसायिनः ❀ जिस वाणीको १।२ पुष्पिता ३ कहतेहैं ४. तात्पर्य जैसे किसीवृक्षमें फूल तो बहुत सुंदर दीखें परन्तु फल उसमें नहीं लगता है, वा लगताहै तो कडवा, ऐसेही वेदोंमें रोचक वाक्य हैं अर्थात् अर्थवादवालीश्रुति है, सुननेमें तो वे बहुत प्रिय प्रतीत होती हैं फल उनका कुछ नहीं, अर्थात् जो फल उसका अव्यवसायी कहते हैं वो फल उस श्रुतिका नहीं; जैसे व्रततीर्थादिका माहात्म्य अर्थवाद है, तात्पर्य उनका अन्तःकरणकी शुद्धि और चित्तकी एकाग्रता इसमें हैं, स्वर्गवैकुंठपुत्रादिमें नहीं ऐसेऐसे वाणीको कि जिसको वेद पुष्पित कहते हैं हे अर्जुन ! इसको ५।६ सि० ही अव्यवसायिनः मोक्षका साधन सिद्धान्त कहते हैं. कैसेहैं वे अव्यवसायिनः ❀ वेदवादमें है प्रीति जिनकी ७ अर्थात वेदोंमें अर्थवाद (रोचकवाक्य) हैं, वे उनको प्रिय लगते हैं, और वास्ते चरचा करनेके (अपनी पंडिताई दिखानेके लिये) उन अर्थवादोंको कंठकरलेते हैं ऐसे. ७ अविवेकी मन्दमति बहिर्मुख ८ सि० फिर कैसेहैं ये लोक कि आप अज्ञानी बने तो बने, ब्रह्मज्ञानकोभी खंडन करते हुए ब्रह्मज्ञानियोंको अज्ञानी बनाते हैं. तात्पर्य वे यह कहते हैं कि जो हमारा मत है अर्थात् वेदसिद्धान्त है इससे सिवाय नहीं ९ हैं १० अन्यत् ११ सि०

और कोईमतसिद्धान्त अद्वैतब्रह्मज्ञान ज्ञाननिष्ठा संन्यास जो ज्ञा कहते हैं यही सिद्धान्त है ❀ यह १२ कहनेका स्वभाव है जिनका १३ तात्पर्य वेदान्तमें दोष निकालनेका यही बकनेका स्वभाव है जिनका औरभी इनके विशेषण अगले श्लोकमें हैं ॥ ४२ ॥

मू०—कामात्मानःस्वर्गपराजन्मकर्मफलप्रदाम् ॥
क्रियाविशेषबहुलांभोगैश्वर्यंगतिंप्रति ॥ ४३ ॥

कामात्मानः १ स्वर्गपराः २ जन्मकर्मफलप्रदाम् ३ भोगैश्वर्यंगतिम्४ प्रति ५ क्रियाविशेषबहुलाम् ६ ॥ ४ ॥अ०—उ० ऐसा अनर्थ वे क्यों करते हैं? इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं—कि वे कामी विषयी अर्थात् बहिर्मुख १ सि० हैं. फिर कैसे हैं कि ❀ स्वर्गही है परमपुरुषार्थका अवधि जिनको २ सि० इस विशेषणसे स्पष्ट यह प्रतीत होताहै कि यज्ञ दान व्रत तीर्थ और भगवदाराधनादि जो करते हैं ये तो कैवल्यमोक्षके लिये नहीं करते. किन्तु भोगोंके लिये करते हैं स्वर्गपद तो उपलक्षण है अर्थात वैकुंठ गोलोकादि सावयवलोक सब आगये.पीछले श्लोकमें जो कहाथा कि वे इस पुष्पितावाणीको सिद्धान्त कहतेहैं उस वाणीके विशेषण और भी सुन. कैसी है वो वाणी ❀ जन्मकर्मफलकी देनेवाली ३ सि० है अर्थात उस वाणीके अनुसार जो कर्म किया जाता है उस कर्मका यही फल है, कि बारम्बार संसारमें जन्म होना, जन्मही उस कर्मका फल है. फिर कैसी है ❀ भोग और ऐश्वर्य इनके प्राप्तिके प्रति ४ ५ सि०तात्पर्य भोगैश्वर्यके प्राप्तिके लिये साधन है वो वाणी. उस वाणीके अनुसार अनुष्ठान करनेसे भोगकी और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है. फिर कैसी है वो वाणी ❀ क्रियाविशेष बहुत हैं जिसमें ६ सि० अर्थात् उस वाणीमें नानाप्रकारकी क्रिया हैं, और एक एक क्रियाका अन्त न हो प्रतीत होता है. क्योंकि अनन्त अर्थात् बहुत हैं. हे अर्जुन

उन अव्यवसायियोंके ऐसे ऐसे वाक्योंका प्रमाण है ऐसी ऐसी वाणी वक्ते हुए संसारमें भ्रमते रहते हैं ऐसे पुरुषोंको साक्षात् मोक्षकी साधनरूप व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं उत्पन्न होती है. अगले श्लोकके साथ इसका अन्वय है ❋॥ ४३ ॥

मू०–भोगैश्वर्यप्रसक्तानांतयापहृतचेतसाम् ॥
व्यवसायात्मिकाबुद्धिःसमाधौनविधीयते ॥ ४४ ॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानाम् १ तया २ अपहृतचेतसाम् ३ समाधौ ४ व्यवसायात्मिका ५ बुद्धिः ६ न ७ विधीयते ८॥ ४४ ॥ अ०–उ० भेदवादी सदा ब्रह्मज्ञानसे विमुख रहकर संसारमें भ्रमते हैं. यह कहते हैं श्रीमहाराज,–भोग और ऐश्वर्य इनमें जो आसक्तहै १ सि०और ❋तिसकरके २ अर्थात् उस पुष्पितावाणी करके २ हरागयाहै चित्त जिनका ३ अर्थात् उस पुष्पितावाणी करके उनकी विवेकबुद्धि आच्छादित होगई याने ढकगई है. उनके ३ अन्तःकरणमें ४ व्यवसायात्मिका बुद्धि ५ । ६ नहीं ७ उत्पन्न होती है वा नहीं स्थिर होती ८.तात्पर्य उनका चित्त शान्त नहीं होता है. क्योंकि सदा इस लोक परलोकके विषयोंमें तत्पर रहते हैं. टी० जो समाधान किया जावे उसकोभी समाधि कहते हैं, इस व्युत्पत्तिसे यहां समाधिका अर्थ अन्तः करण है ४ ॥ ४४ ॥

मू०–त्रैगुण्यविषयावेदानिस्त्रैगुण्योभवार्जुन ॥
निर्द्वन्द्वोनित्यसत्त्वस्थोनिर्योगक्षेमआत्मवान् ॥

त्रैगुण्यविषयाः १ वेदाः २ अर्जुन ३ निस्त्रैगुण्यः ४ भव ५ निर्द्वन्द्वः ६ नित्यसत्त्वस्थः ७ निर्योगक्षेमः ८ आत्मवान् ९ ॥ ४५ ॥ अ०–उ०जब कि वेदोंहीमें पुष्पितावाणी याने रोचक . अर्थात् निष्फल वाक्यहैं, तो उन वाक्योंके कहनेवालेका और उन वाक्योंके अनुसार अनुष्ठान करनेवालेका क्या दोष है ? यह शंका करके

श्रीमहाराज कहते हैं–कि क्या वेदोंमें केवल पुष्पितावाणीही है, साक्षात् मोक्षका साधन क्या उसमें नहीं ? अर्थात् वेदोंमें रोचक वाक्यभी हैं, और साक्षात् मोक्षके साधनमंत्रभी हैं. प्रत्युत मारणउच्चाटनादिमंत्र बहुत हैं. परन्तु मुमुक्षु को सिवाय साक्षान्मोक्षसाधनोंके और वाक्योंसे कुछ काम नहीं इस गीताशास्त्रमें ब्रह्मविद्या यह में साक्षात् मोक्षका साधन निरूपण करताहूँ. समस्त वेद वाक्योंसे यहां कुछ प्रयोजन नहीं, जो उनका प्रमाण दिया जावे. मुमुक्षुका प्रयोजन केवल मोक्षके साधनोंसे है, सोई सुन. सत्त्वगुणी रजोगुणी तमोगुणी कामनावाले पुरुषों के विषय १ सि०भी हैं❀ वेद २ अर्थात् जैसेको तैसा फल देनेवालेभी हैं और साक्षात् मोक्षका साधनभी हैं वेद २ हे अर्जुन ! ३ सि०परन्तु तुझको तोमैं ब्रह्मविद्या साक्षात् मोक्षका साधन सुनाताहूँ. इस समय तू तो गुणातीत निष्काम ४ हो ५ सि०रोचकवाक्योंकी तरफ दृष्टि मतकर, गुणातीत होनेका साधन यह है,❀द्वन्द्वरहित ६ सि०हो अर्थात् प्रारब्धवशात् जो सुखदुःख इष्टानिष्टादि प्राप्त हो सबको सहनकर सुखदुःखादिके प्राप्तिमें हर्ष विषादके वश मतहो निर्द्वन्द्व होनेमें हेतु यह साधनहै कि ❀ नित्यसत्त्व जो आत्मा उसमें स्थित ७ सि०हो अर्थात् आत्मनिष्ठ हो, अथवा सदा सत्त्वगुणमें दीर्घकालस्थिति होसक्ती है, इसीवास्ते यह कहते हैं कि ❀ योगक्षेमरहित सि०हो अर्थात् जो पदार्थ लौकिक प्राप्त नहीं उसके प्राप्तिका तो उपाय मत कर, और जो प्राप्तहै उसके रक्षामें प्रयत्न मत कर. पूर्वोक्त साधनोंका हेतु यह साधन है कि❀अप्रमत्त ९सि० हो अर्थात् प्रमादी प्रमत्त मत हो. सदा चैतन्य अनालस्य रहना योग्य है, विषयोंसे विमुख कर आत्माके सन्मुख होना चाहिये, पूर्वोक्तसाधन जिसको नहीं उससे मोक्षमार्गमें प्रयत्न होना कठिन है ❀ ॥ ४५ ॥

मू०—यावानर्थउदपानेसर्वतःसंप्लुतोदके ॥
तावान्सर्वेषुवेदेषुब्राह्मणस्यविजानतः ॥ ४६ ॥

यावान् १ अर्थः २ उदपाने ३ सर्वतः ४ संप्लुतोदके ५ तावान् ६ सर्वेष ७ वेदेषु ८ विजानतः ९ ब्राह्मणस्य १० ॥४६॥ अ०–उ० इसलोकपरलोकके सुन्दरभोगोंसे हटाकर निष्काम गुणातीत होना आप कहते हो, इसमें क्या आनन्द है ? यह तो रूखीसूखी शिला प्रतीत होतीहै. यह सुन्दरकर्म उपासना करके स्वर्गवैकुंठादिमें जाकर आनन्द भोगना योग्य है. यह शंका करके श्रीमहाराज कहतेहैं कि, सि० जैसे ❀ जितना १ प्रयोजन २ उदपानमें ३ सि० जगेजगे यत्रकुत्र भ्रमनेसे सिद्ध होता है अर्थात् जलपान कियाजावे जिसमें उसको उदपान कहते हैं, कूपसरसारितादिकोंकानाम उदपानहै, कूपादिकोंके जलोंमें स्नान करना तीरना और नावका चलना इत्यादि प्रयोजन एकजगह सिद्ध नहीं होसक्ते. जहां तहां भ्रमनेसे सिद्ध होता है. तात्पर्य जितना प्रयोजन उदपानमें जहां तहां भ्रमनेसे सिद्ध होता है. वो ❀ समस्त ४ समुद्रमें ५ सि० एकजगहही सिद्धहोजाताहै. तात्पय जैसे समुद्रमें सब प्रयोजन उदपानोंका सिद्ध होजाता है तैसाही जितना ❀ सब वेदोंमें ६ । ७ सि०जो फल है अर्थात् समस्त वेदोक्तकर्म उपासनायोगादिका अनुष्ठान करनेसे जो फल (जगेजगे स्वर्गवैकुंठादिमें भ्रमनेसे) परिच्छिन्न आनन्द प्राप्त होता है ❀उतनाही ८ अर्थात् वो सब फल प्रत्युत उससेभी विशेष पूर्णनिरतिशयानन्दफल ८ परमार्थतत्त्वके जाननेवाले परमहंस ब्रह्मविज्ञानीब्राह्मणको ९।१० सि० प्राप्त होता है. तात्पर्य स्वर्गवैकुंठादि साधन हैं आनन्दके. मुख्यफल परमानन्द है. सोई गुणातीत निष्काम ब्रह्मज्ञानीका स्वरूप है. पूर्णपरमानन्द विद्वानोंकोही प्राप्त होता है. सिवाय ब्रह्मविदोंके औरोंको पूर्णपरमानन्द नहीं प्राप्त होता है. जैसे कूपादि

जलोंसे सब प्रयोजन नहीं सिद्ध होता है, इसी हेतुसे गुणातीतनिष्काम ब्रह्मनिष्ठा होनाही सबसे श्रेष्ठ है ❀ ॥ ४६ ॥

मू०–कर्मण्येवाधिकारस्तेमाफलेषुकदाचन ॥
माकर्मफलहेतुर्भूर्मातेसंगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

ते १ अधिकारः २ कर्मणि ३ एव ४ मा ५ फलेषु ६ कदाचन ७ कर्मफलहेतुः ८ मा ९ भूः १० ते ११ अकर्मणि १२ संगः १३ मा १४ अस्तु १५ ॥४७॥ अ०–उ० जो ब्रह्मज्ञानीको सब फलकी प्राप्ति होती है, तो ब्रह्मज्ञानकाही अनुष्ठान करके इसलोक परलोकके सब भोगोंको भोगना योग्यहै, अल्पफलदायक ऐसे कर्म उपासनाओं योगादिका अनुष्ठान करना कुछ आवश्यक नहीं, प्रयोजन तो हमारा फलसे है सो ज्ञाननिष्ठासेही प्राप्त हो जायगा, यह शंकाकरके श्रीमहाराज कहते हैं–कि तेरा १ अधिकार २ सि० तो ❀ कर्ममें ३ ही ४ सि० है और नहीं है ५ फलमें ६ कभी ७ सि० तेरा अधिकार अर्थात् साधन अवस्थामें सिद्धअवस्थामें वा किसीअवस्थामेंभी तेरा अधिकार स्वर्गवैकुंठादिफलभोगोंमें नहीं; क्योंकि, तू मुमुक्षु है. तूने परम श्रेयका साधन मुझसे बूझाहै. हे अर्जुन ! मुमुक्षुका अधिकार अन्तःकरणके शुद्धिके लिये कर्मोंमें तो है, परंतु स्वर्गवैकुंठादिके भोगोंमें अधिकार नहीं. क्योंकि प्रथम तो वे अनित्यादिदोषोंकरके दूषित हैं, और मोक्षमें प्रतिबन्ध है इसहेतुसे ❀ कर्मोंके फलमें हेतु ८ मत ९ हो १० अर्थात् मनमें कर्मोंके फलकी तृष्णा मत रख, कि जिससे कर्मोंके फलके प्राप्तिका हेतु तुझको होनापड़े. तात्पर्य कर्मोंके फलमें प्राप्तिमें हेतु तृष्णा है, उसको त्याग. और १० तेरा ११ अकर्ममें १२ प्रीति याने निष्ठा १३ मत १४ हो १५ अर्थात् जबतक अन्तःकरण शुद्ध होवे, तबतक कर्ममें तेरी निष्ठा रहे. यह उपदेश भी है, और आशीर्वाद भी है, वास्ते निर्विघ्नताके ॥ ४७ ॥

मू०–योगस्थःकुरुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाधनंजय ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योःसमोभूत्वासमत्वंयोगउच्यते ॥४८॥

धनंजय १ योगस्थः २ संगम् ३ त्यक्त्वा४सिद्ध्यसिद्ध्योः५समः६ भूत्वा ७ कर्माणि ८ कुरु ९ योगः १० समत्वम् ११ उच्यते १२ ॥ ४८ ॥अ०–उ०कर्म करनेका विधि कहतेहैं–हे अर्जुन! १योगमें स्थित हुआ २ सि० कर्मोंमें और कर्मोंके फलमें ❀आसक्तिको ३ त्यागकर ४ सि०और कर्मोंकी ❀सिद्धि और असिद्धिमें ५ सम होकर ६।७कर्मोंको ८ कर ९. योग १० समताको ११ कहतेहैं १२. तात्पर्य समतामें स्थित होकर कर्म कर ॥ ४८ ॥

मू०–दूरेणह्यवरंकर्मबुद्धियोगाद्धनंजय ॥
बुद्धौशरणमन्विच्छकृपणाःफलहेतवः ॥ ४९ ॥

धनंजय १ बुद्धियोगात् २ कर्म३ दूरेण ४ हि ५ अवरम् ६ बुद्धौ ७ शरणम् ८ अन्विच्छ९ फलहेतवः १० कृपणाः ११ ॥ ४९ ॥अ०– हे धनञ्जय! १ ज्ञानयोगसे २ कर्म ३ अत्यन्त ४।५निकृष्ट ६ सि०हैं अर्थात् श्रेष्ठ नहीं. इसवास्ते ❀ज्ञानमें ७ रक्षा करनेवालेकी ८ प्रार्थनाकर ९. तात्पर्य अभयप्राप्तिका जो कारण परमार्थज्ञानका उसकी प्रार्थना (जिज्ञासा कर) उसको शरण हो. परमार्थज्ञानका आश्राले. कामनावाले फलके तृष्णावाले १० दीन याने अज्ञानी ११ सि०होते हैं ❀तात्पर्य कर्मोंसे अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञाननिष्ठ होना चाहिये स्वर्गादिकी इच्छा नहीं रखना ॥ ४९ ॥

मू०–बुद्धियुक्तोजहातीहउभेसुकृतदुष्कृते ॥
तस्माद्योगाययुज्यस्वयोगःकर्मसुकौशलम् ॥ ५० ॥

बुद्धियुक्तः १ इह २ सुकृतदुष्कृते ३ उभे ४ जहाति ५ तस्मात् ६ योगाय ७ युज्यस्व ८ योगः ९ कर्मसु १० कौशलम् ११ ॥ ५० ॥ अ०–ज्ञानयुक्त १ जीतेही २ पुण्य और पाप इन दोनोंको ३।४

त्यागदेताहै ५. तिस कारणसे ज्ञानयोगकेवास्ते ७ प्रयत्नकर ८ ज्ञानयोग ९ कर्मोंमें १० चतुरता ११ सि० है ❋ तात्पर्य कर्मकरनेमें चतुरता क्याहै कि बन्धनरूप कर्मोंमेंसे ज्ञानको प्राप्त होजाना अर्थात् कर्म करके अकर्म होजाना यही कर्म करनेमें चतुरता है. नहीं तो जो कर्म करनेसे इसी जन्ममें ब्रह्मज्ञान न हुआ तौ कर्मोंका करना निष्फल हुआ ॥ ५० ॥

मू०—कर्मजंबुद्धियुक्ताहिफलंत्यक्त्वामनीषिणः ॥
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताःपदंगच्छन्त्यनामयम् ॥ ५१ ॥

बुद्धियुक्ताः १ हि २ मनीषिणः ३ कर्मजम् ४ फलम् ५ त्यक्त्वा ६ जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः ७ अनामयम् ८ पदम् ९ गच्छन्ति १० ॥ ५१ ॥

अ०—ज्ञानयुक्त १ ही २ पंडित ३ कर्मसे प्राप्तहुए ४ फलको ५ त्याग करके ६ जन्मरूप बन्धनसे छूटे हुए ७ समस्तउपद्रवरहितपदको ८।९ प्राप्त होते हैं १० . तात्पर्य कर्मोंसे जो उत्पन्न होते हैं, (प्राप्त होते हैं) स्वर्गवैकुंठादि फलविशेष उनका त्यागकरके ज्ञानी पंडित ही मुक्त होतेहैं, कभी उपासकयोगी पंडित अपने किये हुए कर्मोंके फलको प्राप्त होते हैं; मोक्षको नहीं प्राप्त होते ॥ ५१ ॥

मू०—यदातेमोहकलिलंबुद्धिर्व्यतितरिष्यति ॥
तदागन्तासिनिर्वेदंश्रोतव्यस्यश्रुतस्यच ॥ ५२ ॥

यदा १ ते २ बुद्धिः ३ मोहकलिलम् ४ व्यतितरिष्यति ५ तदा ६ श्रोतव्यस्य ७ श्रुतस्य ८ च ९ निर्वेदम् १० गन्तासि ११ ॥ ५२ ॥

अ०—उ० यह कर्म करते करते मैं किसकालमें ब्रह्मज्ञानका अधिकारी हूंगा, और मेरा चित्त शान्त होकर आत्मामें कब आत्माकार होगा, इस अपेक्षामें श्रीमहाराज अर्जुनकेप्रति दो श्लोकोंमें यह कहते हैं,—जिसकालमें १ तेरी २ बुद्धि ३ मोहरूपकींचको ४ भलेप्रकार तरेगी ५. तात्पर्य देहादिपदार्थोंमें जो तेरी आत्मबुद्धि है, देहादिपदा-

थोंको जो तू अपना आत्मा समझता है; वा उनमें ममता करना. वा उनके साथ आत्माकी एकता करना, वा तादात्म्याध्यास करना इसीको मोहरूप कींच कहते हैं; यह अविवेक तेरा जब दूर होगा, तिसकालमें ६ श्रुत और श्रोतव्यके ७।८।९ वैराग्यको १० [तू] प्राप्त होगा ११. अर्थात् पीछे जो जो सुनाहुआ है; और आगेको जो जो सुननेके योग्य समझ रक्खा है. इन सबसे तुझको वैराग्य होजायगा; न कुछ सुननेकी इच्छा करेगा, और न पीछले सुनेमें कुछ संशय रहेगा; इसप्रकार शुभाशुभ कर्मोंसे उपराम होकर जब फिर ब्रह्मज्ञानको प्राप्त होगा ॥ उक्तंच। "ग्रन्थमभ्यस्यमेधावी विचार्यचपुनः पुनः॥पलालमिवधान्यार्थीत्यजेद्ग्रन्थमशेषतः"॥इसका अर्थ यहहै कि मुमुक्षु प्रथम ग्रन्थोंका भलेप्रकार अभ्यासकरके वारंवार विचारकरे, फिर अपने स्वरूपको प्राप्त होकर ग्रन्थोंको त्याग देता है, जैसे धानकी इच्छावाला पुरालको त्याग देताहै. और धानका ग्रहणकरता है; श्रुतश्रोतव्यसे वैराग्य होना; इसको कहते हैं ॥ ५२ ॥

मू०—श्रुतिविप्रतिपन्नातेयदास्थास्यतिनिश्चला ॥
समाधावचलाबुद्धिस्तदायोगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

यदा १ ते२ बुद्धिः ३ समाधौ ४ निश्चला५अचला६स्थास्यति७ तदा ८ योगम् ९ अवाप्स्यसि१०श्रुतिविप्रतिपन्ना११॥५३॥अ०—सि०और ❀ जिस कालमें१ तेरी२ बुद्धि ३ आत्मामें४ विक्षेपरहित५ विकल्परहित ६ स्थित होगी ७ तिसकालमें ८ समाधियोगको ९ प्राप्तहोगा [तू] १० सि०अबतक कैसी है तेरी बुद्धिकि अनेकशास्त्रपुराणेतिहासादि, और श्रुतिस्मृत्यादिकोंका ❀ श्रवण करनेसे विक्षेपको प्राप्त हुई है ११ तात्पर्य जबतक पूर्वापरवाक्योंका अविरोध समन्वय नहीं समझेगा तबतक चित्तकी शांति कभी न होगी. और वेदशास्त्रमें अवश्य श्रद्धाविश्वासकरके आत्मनिष्ठ होना योग्यहै रोचकवाक्योंमें नहीं अटकना यही इसप्रकरणका अभिप्राय है ॥ ५३ ॥

मू०-अर्जुनउवाच ॥ स्थितप्रज्ञस्यकाभाषासमाधि स्थस्यकेशव ॥ स्थितधीःकिंप्रभाषेतकिमासीतव्रजेत- किम् ॥ ५४ ॥

केशव १ समाधिस्थस्य २ स्थितप्रज्ञस्य ३ का ४ भाषा ५ स्थितधीः ६ किम् ७ प्रभाषेत ८ किम् ९ आसीत १० किम् ११ व्रजेत १२ ॥ ५४ ॥ अ०-उ० ब्रह्मज्ञानीके लक्षण जाननेकी इच्छा करके अर्जुन श्रीभगवानसे प्रश्न करता है-हे केशव ! १ सि०स्वभावसेही जो * निर्विकल्पसमाधिमें स्थित है सि० और अहंब्रह्मास्मि इस महावाक्यार्थमें दृढ * स्थित है बुद्धि जिसकी तिसकी ३ क्या ४ भाषा५सि०है, अर्थात् और लोग उसको कैसा कहते है कहाजावे अन्यकरके उसको भाषा कहतेहैं तात्पर्य उसका लक्षण क्या है, और आत्मस्वरूपमेंही * निश्चय है बुद्धि जिसकी सो ६ कैसे ७ बोलताहै ? ८ कैसे ९ बैठता है ? १० कैसे ११ चलताहै ? १२. अर्थात् उस ज्ञानीका बोलना बैठना और चलना किसप्रकारका है ? यह तीन प्रश्न उसज्ञानीके प्रति हैं कि जो सविकल्पसमाधिमें स्थित है और पहला प्रश्न निर्विकल्पसमाधिवालेज्ञानीके प्रति है. तात्पर्य ब्रह्मज्ञानीकी किसीसमय निर्विकल्पसमाधि स्वाभाविक बनीरहतीहै, किसी समय प्रयत्नसे और किसीसमय सविकल्प अंतःकरणकी वृत्ति होजातीहै ज्ञानीकी. अर्जुन दोनों प्रकारके ज्ञानियोंका लक्षण बूझताहै५४॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ प्रजहातियदाकामान्सर्वान्पार्थमनोगतान् ॥ आत्मन्येवात्मनातुष्टःस्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ॥ ५५ ॥

पार्थ १ यदा २ सर्वान् ३ कामान् ४ प्रजहाति ५ मनोगतान् ६ आत्मना ७ आत्मनि ८ एव ९ तुष्टः १० तदा ११ स्थितप्रज्ञः १२ उच्यते १३ ॥ ५५ ॥ अ०-उ०साधककेलिये जो ज्ञानके साधन

हैं, वेही सिद्धिके स्वाभाविक लक्षण हैं. अर्जुनके प्रश्नके अनुसार ज्ञानीका लक्षण श्रीमहाराज निरूपणकरतेहैं, और साधककेलिये यही अन्तरंगज्ञानकेहैं. अध्यायके साधन समाप्तिपर्यन्त. प्रथम अब प्रथम प्रश्नका उत्तर दोश्लोकोंमें कहतेहैं—हे अर्जुन ! १ जिसकालमें २ सब कामनाको ३ । ४ त्यागदेताहै ५ सि० जो महापुरुष. कैसी हैं वे कामना कि इसलोकपरलोकके पदार्थोंकी सूक्ष्मवासना ❀ मनमें प्रवेश होरही हैं ६. तात्पर्य जिसकालमें सूक्ष्मवासनासहित समस्त (इसलोकपरलोककी) वासना त्यागदेताहै, और पूर्णानन्दस्वरूप ऐसे आत्मा करके ७ आत्मामें ८ ही ९ तृप्त १० सि० है. जिसकालमें जो माहापुरुष उसको ❀ तिसकालमें ११ स्थितप्रज्ञ १२ कहते हैं, १२ तात्पर्य ब्रह्माकारवृत्तिमें निश्चल होरही है बुद्धि जिसकी उसको महात्मा ब्रह्मज्ञानी कहते हैं और निर्विकल्प समाधिसहित ब्रह्मज्ञानका साधन समस्तवासनाका त्याग सार है. " वासनासंपरित्यागः " यही वासिष्ठमें भी कहा है ॥ ५५ ॥

मू०—दुःखेष्वनुद्विग्नमनाःसुखेषुविगतस्पृहः ॥
वीतरागभयक्रोधःस्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

दुःखेषु १ अनुद्विग्नमनाः २ सुखेषु ३ विगतस्पृहः ४ वीतरागभयक्रोधः ५ स्थितधीः ६ मुनिः ७ उच्यते ८ ॥ ५६ ॥ अ०— दुःखोंमें नहीं होताहै, उद्विग्न या क्षोभित या विक्षिप्त मन जिसका २ सुखोंमें ३ नाश होगई है इच्छा जिसकी ४ जाते रहे हैं राग भय और क्रोध जिससे ५ सि० ऐसे महात्माको ❀ ब्रह्मज्ञानी ६ परमहंस या संन्यासी ७ कहते हैं ८. सि० विद्वान पंडित और दुःखसुखादिमेंसम होना ही ब्रह्मज्ञानके साधन हैं ❀ ॥ ५६ ॥

मू०—यःसर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्यशुभाशुभम् ॥
नाभिनन्दतिनद्वेष्टितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ ५७ ॥

यः १ सर्वत्र २ अनभिस्नेहः ३ तत् ४ तत् ५ शुभाशुभम् ६ प्राप्य
न ८ अभिनन्दति ९ न १० द्वेष्टि ११ तस्य १२ प्रज्ञा १३ प्रति
ता १४ ॥ ५७ ॥ अ० उ० कैसे बोलता है ज्ञानी, इस दूसरे प्रश्न
उत्तर कहते हैं–जो १ सर्वत्र २ सि० पुत्र पोथी और देहादिपदार्थ
में ❀ स्नेह (प्रीति) रहित ३ सि० है आर ❀ तिसतिस ४।५ शुभ
और अशुभको ६ प्राप्त होकर ७ अर्थात् जो शुभपदार्थ है, या
अपनेको इस प्रिय अनुकूल ऐसा है, तिसको प्राप्त होकर तो ७ न
१० हर्ष करता है ९. सि० और जो अशुभ पदार्थ है याने अपने
अनिष्ट अर्थात् प्रतिकूल है. तिसको प्राप्त होकर ❀ नहीं १
द्वेष करताहै ११. सि० जो महापुरुष ❀ तिसकी १२ बुद्धि १
निश्चल १४ सि० है ब्रह्मस्वरूपमें. और जो पूर्वोक्त साधन करे
उसकी वृत्ति ब्रह्माकार हो जावेगी ❀ तात्पर्य बोलनेसे राग द्वेषादि
दोष सबके प्रतीत हो जाते हैं, यह बात प्रसिद्ध है. परन्तु ज्ञानी
नहीं प्रतीत होते हैं, क्योंकि ज्ञानी हर्षद्वेषादिके कारण हुए सन्ते
उदासीन हुआ बोलता है. यह उदासीनवत् बोलना यही ज्ञानी
लक्षण है. इत्यभिप्रायः ॥ ५७ ॥

मू०–यदासंहरतेचायंकूर्मोंगानीवसर्वशः ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥५

यदा १ अयम् २ सर्वशः ३ इन्द्रियाणि ४ इन्द्रियार्थेभ्यः ५ संह
च ७ तस्य ८ प्रज्ञा ९ प्रतिष्ठिता १० कूर्मः ११ अंगानि १२ इ
॥ ५८ ॥ अ०–जिसकालमें १ यह सि० योगी ❀ सबतरफ
इन्द्रियोंको ४ इन्द्रियोंके अर्थोंसे ५ संकोचकरलेताहै ६ और ७
चित्तमें स्मरणभी नहीं करता है, तिस कालमें ❀ तिसविद्वान्
बुद्धि ९ निश्चल १० सि० सच्चिदानन्दस्वरूप ऐसे आत्मामें हो
इसीसाधनसे मुमुक्षुकी होजायगी. इन्द्रियोंके निरोधमें विद्वान्

यास दुःखनहीं होता है, इसबातको दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं. श्रीमहाराज ❀ कछवा ११ सि० अपने हाथ पांव ❀ अंगोंका १२ जैसे १३ सि० स्वाभाविकसंकोच करलेता है, इसीप्रकार विद्वान् स्वाभाविक विषयोंसे इन्द्रयोंको निरोध करलेताहै ❀ ॥५८॥

मू०—विषयाविनिवर्तन्तेनिराहारस्यदेहिनः ॥
रसवर्जंरसोऽप्यस्यपरंदृष्ट्वानिवर्तते ॥ ५९ ॥

निराहारस्य १ देहिनः २ विषयाः ३ विनिवर्तन्ते ४ रसवर्जम् ५ अस्य ६ परम् ७ दृष्ट्वा ८ रसः ९ अपि १० निवर्तते ११ ॥५९ ॥

अ०—उ० इन्द्रियोंकी विषयोंमें प्रवृत्ति न होना यह लक्षण जो ब्रह्मज्ञानीका श्रीमहाराज कहते हैं. इसमें तो अतिव्याप्ति दोष आता है. क्योंकि ऐसे तो निराहारी रोगीभी होतेहैं यह, शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं—कि, निराहारीजीवके १।२ सि० भी ❀ विषय ३ निवृत्त हो जाते हैं ४ सि० यह तो सत्य है, परन्तु ❀ रसवर्जित ५ सि० निवृत्त होते हैं ❀ अर्थात् विषयोंसे राग उसका नहीं दूर होता है. तात्पर्य विषयोंमें उसकी तृष्णा और सूक्ष्मकामना बनी रहती है और इस ब्रह्मज्ञानीका ६ पूर्णब्रह्मसच्चिदानन्दआत्माको ७ देखके ८ अर्थात् आनन्दस्वरूप आत्माको प्राप्तहोकर ज्ञानीका ८ रस ९ भी १० निवृत्त होजाताहै ११. सि० इसप्रकार समझनेसे पूर्वोक्तलक्षणमें अतिव्याप्तिदोष नहीं ❀ ॥ ५९ ॥

मू०—यततोह्यपिकौन्तेयपुरुषस्यविपश्चितः ॥
इन्द्रियाणिप्रमाथीनिहरन्तिप्रसभंमनः ॥६०॥

कौन्तेय १ यततः २ हि ३ विपश्चितः ४ पुरुषस्य ५ अपि ६ इन्द्रियाणि ७ प्रमाथीनि ८ प्रसभम ९ मनः १० हरन्ति ११॥६०॥

अ०—उ० विनाइन्द्रियोंके संयम किये ज्ञान होना दुर्लभ है, इसवास्ते साधनअवस्थामें तो इन्द्रियोंके निरोध करनेमें अत्यंत प्रयत्न

करना योग्य है, यह दो श्लोकोंमें कहते हैं– १हे अर्जुन! [सि० मोक्ष
*प्रयत्न करनेवालेके २ [सि० इन्द्रिय*भी ३ [सि० और ४
विद्वान् विवेकी पुरुषके४।५ भी६ इन्द्रिय ७ प्रमथनस्वभाववाले या
क्षोभकरनेवाले ८ बलकरके ९ मनको १० हर लेतेहैं ११ अर्था
जबरदस्तीसे मनको विषयोंमें विक्षिप्त करदेते हैं. जब कि विद्वानके
इन्द्रियभी विद्वानके मनको विषयोंमें विक्षिप्त करदेते हैं, तो फिर मुमुक्षु
साधकको तो साधनअवस्थामें भलेप्रकार चैतन्यरहकर प्रयत्न करन
योग्यहै. इतिहास–एकसमय व्यासजी जैमिनिको(अपनेशिष्यको
यही श्लोक सुना रहेथे. जैमिनिजीने कहा कि आपका कहना त
सब सत्य है. परन्तु यह नहीं हो सक्ता कि जो इंद्रिय विद्वान्के मन
कोभी विषयोंमें विक्षिप्त करदेवें अविद्वान्के मनको विक्षिप्त करसक
व्यासजीने उनको बहुत समझाया, परन्तु व्यासजीके इसवाक्य
उनको विश्वास न आया. व्यासजीने कहा कि इस श्लोकका अर्थ फि
किसीकालमें तुमको समझावेंगे,यह कहकर चलदिये.उसीदिन दो
डीदिन रहे ऐसी मायारची की दसग्यारह स्त्री तरुण मायाकी रच
और आपभी एक सुन्दरस्वरूप स्त्री बनकर, और जैमिनिके कुटी
सामने जाकर हंसी,चोहल खेल विहारका प्रारम्भ करादिया.जिसका
लमें बारीकवस्त्र उनस्त्रियोंका पवनसे जो उडा और गेंद उछालते हु
जो हाथ उन स्त्रियोंने ऊपरको किये उसकालमें उदर, जंघा, स्त
इत्यादि अंग उनास्त्रियोंके जैमिनिजीको दीखगये. फिर उसीकाल
ऐसा बादल होगया जैसा भादोंमें होता है.अंधेरा होगया, मन्दम
बरसने लगा, पवन चलने लगा वे सबमायाकी स्त्री तो लोप होग
व्यासजीक जो स्वरूप स्त्रीका बना हुवाथा वोही एक रहगया.
वह स्त्री जैमिनिजीके पास गई, और कहा कि, महाराज! मेरेसंग
सहेली न जानिये कहां गई मैं अकेली रहगईहूं, अब रातको क
जाऊं आप आज्ञा करो तो रातभर एक मकानमें मैं भी पडीरह

प्रथम तो जैमिनिजीने उसको रात्रिके समय अपने पास रहनेको बहुत मना किया; फिर उसकी दीन बोली सुनकर कुछ दया आगई उस स्त्रीसे यह कहा कि, इस दूसरे मकानमें जाकर भीतरसे सांकल लगा ले. यहां एक भूत रात्रिके समय आयाकरता है. वो मेरे सरीखी बोली बोलेगा, उसके कहनेसे किवाड़ मत खोलिये, नहीं तो वो भूत तुझको खा जायगा. व्यासजीने मनमें कहा कि विद्वान् होनेमें तो इसके सन्देह नहीं, यत्न तो बड़ा कियाहै. जैमिनिजीका वो वाक्य सुनकर मकानके भीतर जाकर उस स्त्रीने भीतरसे सांकल लगाय ली. वो स्त्रीरूपी व्यास फिर निजस्वरूप (व्यास) होकर ध्यानमें बैठ गये. जैमिनिजी जब ध्यान करने बैठे, तब उस स्त्रीकी याद होगई बारबार मनको निरोध करें, मन शान्तही न हो. जैमिनिजी ध्यान जप छोडकर उठे, और उस मन्दिरके द्वारपर जाकर कहा, कि हे प्रिये! मैं जैमिनिहूं तुझसे बचनेके लिये भूतकी झूँठी कथा तुझको सुनाईथी. अब तू बेसन्देह कपाट खोलदे. तेरे बिना मुझको निद्रा नहीं आती है. इसीप्रकार प्रार्थना करते करते हारगये. मारे काम और विरहके फिर कोठेपर जाकर छत उखाडकर भीतर कूद पड़े. व्यासजीने एक थप्पड़ जैमिनिजीके मुखपर मारकर कहा कि तू विद्वान् वा अविद्वान्? जैमिनिजी लज्जाको प्राप्त हुए. व्यासजीने कहा कि तुम्हारे विद्वत्तामें और साधुतामें सन्देह नहीं जो चाहिये था वोही तुमने किया. कदाचित् इसप्रकार विद्वान् धोखा खाकर अनर्थ कर बैठे उसको कभी प्रत्यवाय याने पातक नहीं. थोडेदिन हुए ऐसीही एक व्यवस्था दक्षिण देशमें हुई, उसको भी सुनो. दैवयोगसे एक स्त्री, भूलीहुई रात्रिके समय किसी महात्माके कुटीपर चली आई. महात्माने इसीप्रकार भूतकी कथा सुनाकर दूसरे मकानमें सुवा दिई. रात्रिके समय थोडी रात रहे वे महात्माभी छत उखाडकर कूदे. सो उनके शरीरमें एक लकडी घुस गई, उससे बडा भारी घाव हो गया. वो स्त्री इनको पह-

चानकर घबराई. पछताती हुई कहने लगी कि, मुझसे बडा अपरा हुआ, जो किवाड न खोले. महात्माने उसको समझादिया और कहा, कि तू शोच मत कर और जो मैं मर जाऊं तो यह लि हुआ मेरा लोगोंको दिखा देना. यह कह उसीसमय महात्माने अप रक्तसे वो सब व्यवस्था संस्कृत श्लोकोंमें लिख दी. नाम उस व्य स्थाका रक्तगीता लिखकर परमधामको प्राप्त हुए. सो वो रक्तगी प्रसिद्ध है और वो संसारसे उपराम करनेवाली है. तात्पर्य सार उसका यही है कि जो इस श्लोकका अर्थ है ॥ ६० ॥

मू०–तानिसर्वाणिसंयम्ययुक्तआसीतमत्परः ॥
वशेहियस्येन्द्रियाणितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥

तानि १ सर्वाणि २ संयम्य ३ युक्तः ४ मत्परः ५ आसीत यस्य ७ इन्द्रियाणि ८ वशे ९ तस्य १० हि ११ प्रज्ञा १२ प्रतिष्ठिता ॥ ६१ ॥ अ०–उ० जब कि इन्द्रिय यह अनर्थ करते हैं, तो इसी वास्ते–तिन सब इन्द्रियोंको १।२ सि० विषयोंसे ❀ रोक करके सावधान हुआ ४ मुझ सच्चिदानन्दपरायण ५ सि० हुआ अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप अद्वैत हूं, सिवाय मुझ सच्चिदानन्दपूर्णब्रह्मके कुछ पदार्थ तीनों कालमें नहीं. इस ध्यानमें तत्पर हुआ ❀ बैठता जिसके ७ इन्द्रिय ८ वशमें ९ सि० हैं ❀ तिसकी १० ही ११ बुद्धि निश्चल १२ सि० है, सच्चिदानन्दस्वरूपपूर्णब्रह्ममें वो ज्ञानी बैठता है, इस प्रश्नका उत्तर इसमंत्रमें कहा ❀ तात्पर्य ज्ञानी इन्द्रियोंका निरोध करके आत्मामें मग्न हुआ बैठा रहता है ॥ ६१

मू०–ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते
संगात्संजायतेकामःकामात्क्रोधोऽभिजायते ॥ ६२
क्रोधाद्भवतिसंमोहःसंमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥ स्मृति
भ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

विषयान् १ ध्यायतः २ पुंसः ३ तेषु ४ संगः ५ उपजायते ६ संगात् ७कामः ८संजायते ९ कामात् १० क्रोधः ११ अभिजायते१२ ॥ ६२॥ क्रोधात् १ संमोहः २ भवति ३ संमोहात् ४ स्मृतिविभ्रमः५ स्मृतिभ्रंशात् ६ बुद्धिनाशः ७ बुद्धिनाशात् ८ प्रणश्यति ९ ॥ ६३ ॥अ०–उ० इन्द्रियोंके निरोध न करनेमें जो अनर्थ होताहै उसको तो निरूपण किया. अब अन्तःकरणके निरोध न करनेमें जो अनर्थ होता है, सो दो श्लोकोंमें कहते हैं–सि० गुण बुद्धि करके ❀ विषयोंका ध्यान करनेसे १।२ पुरुषकी ३ तिनमें अर्थात् स्त्रीशब्दादि विषयोंमें ४ आसक्ति ५ होजातीहै ६. आसक्त हो जानेसे ७ सि० फिर अधिक ❀ कामना ८होजातीहै९. कामनासे १० क्रोध ११सि० उत्पन्न होताहै ❀ ॥ ६२ ॥क्रोधसे १ अविवेक २ होजाताहै ३ अर्थात् मुझको यह करना योग्यहै, वा नहीं; इस विचारका अभाव होजाताहै. अविवेक होनेसे ४ स्मृतिका विभ्रम ५ सि०होजाताहै अर्थात् जो कुछ शास्त्र आचार्योंसे सुन रक्खाथा उस अर्थके स्मृतिका अभाव होजाताहै. उससमय कुछ नहींस्मरण होताहै, सिवाय उसविषयके कि जिसका चिंतवन करनेसे जिसविषयमें चित्त आसक्त होगया है, फिर ❀स्मृतिका अभाव होजानेसे ६ वा विचल जानेसे वा भ्रंश होजानेसे६ बुद्धिका नाश ७ सि०हो जाताहै अर्थात् समझकर फिरभी चैतन्य होजावे यह बुद्धि नहीं रहती है ❀ बुद्धिका नाश होनेसे ८ नाश होजाताहै ९. सि० वोही पुरुष. जिसका विषयोंमें चिंतवन करनेसे सूक्ष्मसंग होगयाथा अर्थात् वो पुरुष मोक्षमार्गसे भ्रष्ट होता है. उस तरफसे तो मानो मरगया. ऐसे आदमीको मुरदेके बराबर समझना चाहिये, कि जो सच्चिदानन्दरूपसे विमुख होकर विषयोंके सन्मुख है, वो जीताहुआही मुरदाहै, क्योंकि परमपुरुषार्थ जो मोक्षहै उसके योग्य नहीं तात्पर्य सब अनर्थोंका और पापदुःखोंका मूल मनोराज्यहै क्योंकि प्रथम स्त्रीशब्दादि पदार्थोंमें गुणसमझकर अर्थात्

स्त्री आदिको किसी एक अंशमें सुखदेनेवाला समझकर जो पुरुष उ
विषयोंका मनमें ध्यान करता रहताहै. फिर चिंतवन करते क
पदार्थोंमें सूक्ष्म आसक्ति होकर अधिक कामना होजातीहै.फिर उस
प्राप्तिके प्रयत्नोंमें नानाप्रकारके उपद्रव होजाते हैं. उपाधि बढ़ते बढ़
पशुवत् मनुष्य होजाताहै ❀ इन दोनों श्लोकोंका अर्थ आनन्दामृ
वर्षिणीके ९ वेंअध्यायमें औरभी स्पष्ट लिखा है ॥ ६३ ॥

मू०-रागद्वेषवियुक्तैस्तुविषयानिन्द्रियैश्चरन् ॥
आत्मवश्यैर्विधेयात्माप्रसादमधिगच्छति ॥ ६४ ॥

विधेयात्मा १ इन्द्रियैः २ विषयान् ३ चरन् ४ तु ५ प्रसादम्
अधिगच्छति ७ रागद्वेषवियुक्तैः ८ आत्मवश्यैः ९॥६४॥अ०-उ
श्रोत्रादि इन्द्रियों करके शब्दादि विषयोंको न भोक्ताहो, ऐसा तो क
भी ब्रह्मज्ञानी भगवद्भक्त उपासक योगी कर्मी इत्यादि नहीं दीख
है, और इन्द्रियोंके असंयममें आप अनर्थ कहते हो तो फिर ब्रह्मज्ञा
नीमें और अज्ञानीपुरुषोंमें क्या भेद हुआ ? यह शंका करके श्रीमह
राज दो श्लोकोंमें ज्ञानीके भोगनेकी रीति फलके सहित निरूपण क
ते हैं-विवेकी ब्रह्मज्ञानी आत्मोपासक १ इन्द्रियोंकरके २ विषयोंक
भोक्ता हुआ ४ भी ५ निजानन्दको ६ प्राप्त होताहै ७. सि०कैसे
वे इन्द्रिय कि, जिनकरके विषयोंको भोक्ताहुआ मुक्त होजाताहै
रागद्वेषरहित ८ सि० हैं अर्थात् भोगसमय ज्ञानीका विषयों
रागद्वेष नहीं. एक तो ज्ञानीमें और अज्ञानीमें यह भेद है, और द
ज्ञानीके इन्द्रिय ❀ मनके वशमें हैं ९. टी० आठवां और ९ वां
दोनोंपद 'इन्द्रियैः' इस दूसरे पदके विशेषण हैं ८।९ ॥ ६४ ॥

मू०-प्रसादेसर्वदुःखानांहानिरस्योपजायते ॥
प्रसन्नचेतसोह्याशुबुद्धिःपर्यवतिष्ठते ॥ ६५ ॥

प्रसादे १ अस्य २ सर्वदुःखानाम् ३ हानिः ४ उपजायते ५ प्र

प्रचेतसः ६ हि ७ बुद्धिः ८ आशु ९ पर्यवतिष्ठते १० ॥६५॥ अ०-उ० निजानन्दको प्राप्त होनेसे क्या होता है इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं.-निजानन्दको प्राप्त होनेसे १ इसके अर्थात् परमहंस ज्ञानीमाहापुरुषके २ दुःखोंकी ३ हानि ४ होजाती है ५ अर्थात् आध्यात्मिकादि सबदुःखोंका नाश होजाता है५.सि० और ❋ निजानन्दको प्राप्त हुआहै अन्तःकरण जिसका अर्थात् आत्मामें स्थित हुआहै चित्त जिसका- उसकी ६ ही ७ बुद्धि८(शीघ्र)जलदी९निश्चल होती है १० सि० उसीआत्मामें- ❋टी०प्रसाद प्रसन्नता सुख आनन्द आत्मा इन शब्दों का एकही अर्थ है इसजगह विषयानन्दकी प्रसन्नतासे तात्पर्यार्थ नहीं १ ॥ ६५ ॥

मू०-नास्तिबुद्धिरयुक्तस्यनचायुक्तस्यभावना ॥
नचाभावयतःशान्तिरशान्तस्यकुतःसुखम् ॥ ६६ ॥

अयुक्तस्य १ बुद्धिः २ न ३ अस्ति ४ अयुक्तस्य ५ भावना ६ न ७ च ८ अभावयतः ९ शान्तिः १० न ११ च १२ अशान्तस्य १३ सुखम् १४ कुतः १५ ॥ ६६ ॥ अ०-उ० यति अन्तर्मुखज्ञानीको जो आनन्द पीछे निरूपणकिया वो अयति याने बहिर्मुख अज्ञानीको नहीं होताहै, यह श्रीमहाराज इस मंत्रमें कहते हैं-सि० प्रथमतो ❋ अयतीको १ बुद्धि २ सि० हि ❋ नहीं ३ है ४ अर्थात् प्रथम तो आत्माका निश्चय करनेवाली व्यवसायात्मिकाबुद्धि बहिर्मुखअज्ञानीको नहीं उदय होती है. इसी हेतुसे ४ अज्ञानीको ५ आत्माका ध्यान ६ नहीं अर्थात् जब कि वो आत्माको जानताही नहीं तो फिर आत्माका ध्यान वो कैसे करेगा,इसी हेतुसे वो आत्मध्यान रहित है ७और८ध्यानरहितको९शान्ति१०नहीं११. फिर१२ विक्षिप्त चित्तवालेको १३ सुख १४ कहाँसे १५ अर्थात् किसप्रकार हो सक्ता है?तात्पर्य विना ब्रह्मज्ञानके परमानन्दकी प्राप्ति नहीं ॥६६॥

मू०—इन्द्रियाणांहिचरतांयन्मनोनुविधीयते ॥
तदस्यहरतिप्रज्ञांवायुर्नावमिवाम्भसि ॥ ६७ ॥

चरताम् १ इन्द्रियाणाम् २ यत् ३ मनः ४ हि ५ अनुविधीयते ६ तत् ७ अस्य ८ प्रज्ञाम् ९ हरति १० अम्भसि ११ वायुः १२ नावम् १३ इव १४ ॥ ६७ ॥ अ०—उ० अयुक्तपुरुषकी बुद्धि आत्मामें निश्चल क्यों नहीं होती ? इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं.—सि० अज्ञानीके इन्द्रियोंका विषयोंके साथ जिस समय संबंध है अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय जब शब्दको सुनता है, नेत्र जिस समय रूपको देखता है इसी प्रकार सब इन्द्रियोंको समझलेना. उस सम्बन्ध समय ❀ विषय संबन्धी १ इन्द्रियोंके २ सि० साथ ❀ जो ३ मन ४ भी ५ सि० कर्म अकेले इन्द्रियके साथभी उसी विषयमें ❀ प्रवृत्त होजावे ६ अर्थात् जिस रूपादि विषयमें चक्षुरादि इन्द्रिय प्रवृत्त हो रहाहो उस काल जो मनभी उसी विषयमें उस इन्द्रियके साथ प्रवृत्त होजावे, तो सो ७ सि० इन्द्रिय कि जिसका साथी मन हुवा है, वोही इन्द्रिय ❀ इस अज्ञानीकी ८ बुद्धिको ९ हरलेताहै १० अर्थात् विषयोंमें विक्षिप्त करदेताहै १० सि० इसमें दृष्टान्त यह है कि ❀ जलमें ११ पवन १२ नावको १३ जैसे १४ सि० उलट पुलट करताहै, झकोले देताहै और जिस समय नावको मल्लाह सँभालता है, उसी प्रकार ज्ञानी मनको सावधान करते हैं. अज्ञानीका ऐसा सामर्थ्य नहीं ❀ तात्पर्य जब कि यह व्यवस्थाहै कि एक इन्द्रियके साथ मन लगा हुआ अनर्थ करता है, तो फिर क्या कहनाहै, जो सब इन्द्रियोंके साथ मिलकर मन अनर्थ करावे. मृग हस्ती पतंग मच्छी भ्रमर ये पांचों शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध विषयोंमेंसे क्रमसे एक विषयके मारे हुए मरते हैं. अज्ञानी जीव मनुष्यके तो पांचों प्रबल होरहेहैं इस कारणसे अज्ञानीकी बुद्धि आत्मामें निश्चल नहीं होती है. इत्यभिप्रायः ॥ ६७ ॥

मू०-तस्माद्यस्यमहाबाहोनिगृहीतानिसर्वशः ॥
इन्द्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥

महाबाहो १ यस्य २ इन्द्रियाणि ३ इन्द्रियार्थेभ्यः ४ सर्वशः ५ गृहीतानि ६ तस्मात् ७ तस्य ८ प्रज्ञा ९ प्रतिष्ठिता १० ॥ ६८ ॥ अ०-उ० शरीर प्राण इन्द्रिय और अन्तःकरण इनका जो निरोध याने संयम अर्थात् इनको वश करनाहै यहीतो मोक्षका अन्तरंग साधनहै. और यही मुक्तपुरुषोंका लक्षण है. स्थितप्रज्ञके प्रकरणमें पीछे जितने मंत्र कहे, और आगे जो और मंत्र कहनेके रहेहैं, उन सबका तात्पर्य यही है और सोई तात्पर्य श्रीमहाराज इसमंत्रमें कहते हैं-हे अर्जुन! १ जिसके २ इन्द्रिय ३ शब्दादिविषयोंसे ४ सबप्रकारकरके ५ निरुद्धहैं ६, तिसकारणसे ७ तिसकी ८ अर्थात् परमहंसविद्वान् ब्रह्मज्ञानीकी ८ बुद्धि ९ निश्चल १० सि० है परमानन्द स्वरूपमें वा ज्ञानीकी बुद्धि श्रेष्ठ याने सर्वोत्कृष्ट है, यह जानना योग्य है, और साधक पक्षमें जिज्ञासुकी याने मुमुक्षुकी बुद्धि निश्चल होजाती है, ब्रह्ममें इंद्रियादिकोंका निरोधकरनेसे ❋ इत्यभिप्रायः ॥ ६८ ॥

मू०-यानिशासर्वभूतानांतस्यांजागर्त्तिसंयमी ॥
यस्यांजाग्रतिभूतानिसानिशापश्यतोमुनेः ॥ ६९ ॥

सर्वभूतानाम् १ या २ निशा ३ तस्याम् ४ संयमी ५ जागर्त्ति ६ यस्याम् ७ भूतानि ८ जाग्रति ९ सा १० निशा ११ पश्यतः १२ मुनेः १३ ॥ ६९ ॥ अ०-उ० सब प्रकारकरके इंद्रियोंका निरोधहोना अर्थात् निष्कर्महोना यह पूर्वोक्तलक्षण तो असंभावित प्रतीत होता है. यह शंका करके श्रीमहाराज यह मंत्र कहते हैं, तात्पर्य इस मंत्रका यहहै, कि ज्ञाननिष्ठा जो ज्ञानीकीहै, वहां क्रिया और कारकका गन्ध-मात्रभी नहीं. निष्क्रिय ब्रह्मज्ञानीको कोई ज्ञानीही जानसक्ताहै कर्म-निष्ठ पुरुष नैष्कर्म ज्ञान निष्ठाको क्याजानें क्योंकि कर्मनिष्ठा और

ज्ञाननिष्ठाका दिनरात्रिवत् अन्तरहै इस हेतुसे अज्ञानीजीव कर्मनिष्ठों का यह लक्षण असम्भावित प्रतीत होताहै सोई इसमंत्रमें दिखातेहैं- सबभूतोंकी १ अर्थात् अज्ञानीजीव कर्मनिष्ठ इन्होंको १ जो २ सि० रात्रिवत् ज्ञाननिष्ठा ❀ रात्रि २ सि० है ❀ तिसमें अर्थात् ज्ञान निष्ठामें ४ ब्रह्मज्ञानी सर्वकर्मसंन्यासी५ जागताहै६-तात्पर्य ज्ञाननिष्ठ अज्ञानीकर्म निष्ठोंके लिये रात्रिवत्है. क्योंकि ज्ञाननिष्ठाकी अव्य स्था अज्ञानी नहीं जानतेहैं. और न उनका उसमें कुछ व्यापार होताहै और वोही ज्ञाननिष्ठा ज्ञानियोंको दिनवत् है, क्योंकि ज्ञानी उसमें विचरतेहैं, और जिसमें ७ अर्थात् कर्मनिष्ठामें ७ अज्ञानी कर्मनिष्ठप्रा ८ जागते हैं ९ अर्थात् जिसकर्मनिष्ठामें कर्मनिष्ठ व्यापार करते कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं ९ सो अर्थात् कर्मनिष्ठा १० सि० रात्रिवत् ❀ रात्रि ११ सि०है,किसकी ब्रह्मतत्त्वको ❀ देखते ज्ञानी संन्यासीकी १२।१२ तात्पर्य ज्ञानीका कर्मनिष्ठामें किंचि लेशमात्रभी व्यापार नहीं, इस हेतुसे कर्मनिष्ठा विद्वान्की रात्रिहै इस मंत्रमें समुच्चयकाभी खंडन स्पष्ट प्रतीत होता है ॥ ६९ ॥

मू०–आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठंसमुद्रमापःप्रविशन्तिय द्वत् ॥ तद्वत्कामायंप्रविशन्तिसर्वेसशान्तिमाप्नोतिनका मकामी ॥ ७० ॥

यद्वत् १ आपः २ समुद्रम् ३ प्रविशन्ति ४ आपूर्यमाणम् अचलप्रतिष्ठम् ६ तद्वत् ७ सर्वे ८ कामाः ९ यम् १० प्रविशन्ति १ सः १२ शान्तिम् १३ आप्नोति १४ कामकामी १५ न १६॥७० अ०–उ० ऐसे कर्मसंन्यासी की जिसको कर्मनिष्ठा रात्रिवत् उनके शरीरका निर्वाह कैसा होताहै, इस अपेक्षामें यह मंत्रभी क हैं और चौंसठवें मंत्रमें इसशंकाका उत्तर अन्यप्रकारसे देभी चुके इस मंत्रका तात्पर्य यह है कि विना इच्छा कियेहुए संसारके

पदार्थ प्राप्त होजाता तो कितनी बातहै. प्रत्युत सब सिद्धिऋद्धि महात्माके सामने हाथ जोड़के खड़ी रहती हैं. सदा यह इच्छा रखतीं हैं कि जिनके वास्ते परमेश्वरने हमको रचाहै, कभी कृपा करके वेभी तो हमको सफल करें. दृष्टान्तके सहित इस बातको श्रीमहाराज इसमंत्रमें कहतेहैं–जैसे १ सि० विनाबुलाये नदीसरोवरादिके ❀ जल २ समुद्रमें ३ प्रविष्ट होते हैं ४ सि० कैसा है वो समुद्र ❀ सब तरफसे भराहुआ ऐसा पूर्ण है५. सि० और ❀ अचलहै प्रतिष्ठा याने मर्यादा जिसका ६ सि० यहतो दृष्टान्त है ❀ तैसे ही ७ सब ८ भोग ९ सि० प्रारब्धके प्रेरेहुए ❀ जिसको१० अर्थात् निष्कामज्ञानीको १० प्राप्त होते हैं ११. सि० कसाहै ❀ सो १२ सि० ज्ञानी ❀ शान्तिको १३ प्राप्त है १४. भोगोंकी कामना करनेवाला १५ नहीं १६ अथवा जो भोगोंकी कामनावालाहै सो शान्ति और ब्रह्मानन्द इनको नहीं प्राप्त होता है ॥ ७० ॥

मू०–विहायकामान्यःसर्वान्पुमांश्चरतिनिस्पृहः ॥
निर्ममोनिरहंकारःसशान्तिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

यः १पुमान् २ सर्वान् ३कामान् ४ विहाय५निस्पृहः ६ निर्ममः ७ निरहंकारः ८ चरति ९ सः १० शांतिम् ११ अधिगच्छति १२ ॥ ७१ ॥ अ०–उ० चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठासेही पुरुष मोक्षको प्राप्त होता है गृहस्थ याने कर्मनिष्ठ मोक्षके भागी नहीं. शुभ कर्मकरनेसे शुभलोकोंको प्राप्त होते हैं, यह नियम याने विधि है. और जो कदाचित् कोई कहे कि कर्मनिष्ठ गृहस्थभी विना संन्यास किये मुक्त होजातेहैं; तो चतुर्थाश्रमका महात्म्य वृथाहै। वेदोंमें प्रतिपादन किया है, क्या काम है शीतोष्णादिके सहनेका ? क्यों संन्यास करना चाहिये ? और जनकादिके कथाका तात्पर्य परार्थमें है, स्वार्थमें नहीं. अर्जुनने बूझाथा 'ज्ञानी कैसे चलताफिरता है?' इस चाथ प्रश्नका उत्तर इसमंत्रमें कहते हुए चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वकज्ञाननिष्ठा

का माहात्म्य और लक्षण श्रीमहाराज निरूपण करतेहैं—जो १ पुरुष२ सबभोगोंको ३।४ त्यागके ५ इच्छारहित ६ ममतारहित ७ अहंकार रहित ८ विचरताहै ९ सो १० शान्तिको अर्थात् मोक्षको ११ प्राप्त होता है अर्थात् जिसमें ये लक्षण नहीं वो मोक्षकी आशा न रक्खे, यह नियमविधि है १२. तात्पर्य कोई ज्ञानरहित त्यागी ऐसे होते हैं, कि उनको त्यागनेके पीछे फिर उस त्यागे हुए पदार्थकी इच्छा हो जाती है. ज्ञानी देहादिकपदार्थोंके रहनेकीभी इच्छा नहीं रखते हैं, फिर पीछे त्यागे हुए पदार्थकी इच्छा तो क्यों करने लगेंगे ? इसवास्ते उसको 'निस्पृहः' यह विशेषण है और कोई ऐसे होतेहैं कि, उनकेपास त्यागनेके पीछे आपहीआप पदार्थ विना इच्छा प्राप्त होतेहैं. परन्तु उनमें उनकी ममता होजातीहै और ज्ञानीके पास जो विनाइच्छा पदार्थ प्राप्त होतेहैं उनमें ज्ञानीकी ममता नहीं होतीहै, इसवास्ते 'निर्ममः' यह ज्ञानीका विशेषण है. और कोई ऐसे त्यागी होतेहैं कि न तो उनको इच्छा होती है, और जो प्रारब्ध इच्छासे पदार्थ आजावे उसमें ममताभी नहीं होती है. परन्तु इन तीनों बातोंका अहंकार बना रहताहै. ज्ञानीको अहंकारभी नहीं होता यह ज्ञानीका लक्षण है. इसको ज्ञाननिष्ठा कहते हैं ॥ ७१ ॥

मू०—एषाब्राह्मीस्थितिःपार्थनैनांप्राप्यविमुह्यति ॥
स्थित्वास्यामन्तकालेपिब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥

पार्थ १ एषा २ ब्राह्मी स्थितिः ३ एनाम् ४ प्राप्य ५ न ६ विमुह्यति ७ अन्तकाले ८ अपि ९ अस्याम् १० स्थित्वा ११ निर्वाणम् १२ ब्रह्म १३ अधिगच्छति १४ ॥ ७२॥ अ०—उ० ज्ञान निष्ठाकी महिमा वर्णन करते हुए इस स्थितप्रज्ञके प्रकरणको श्रीभगवान् समाप्त करते हैं—हे अर्जुन ! १ यह २ सि० जो पूर्वोक्त सर्वकर्मसंन्यासपूर्वक ❀ ब्रह्मज्ञाननिष्ठामें स्थिति सि० ३ इसको ४ प्राप्त होकर ५ सि० कोई सन्यासी ❀ नहीं ६ मोह

प्राप्त होता है ७. सि० ब्रह्मचर्याश्रमसेही जो संन्यासाश्रम ग्रहण करके ज्ञाननिष्ठामें स्थित रहतेहैं, वे महात्मा मोक्षको प्राप्त होवें तो इसमें क्या कहना है ? ❀ अन्तकालमें ८ भी अर्थात् अवस्थाके चौथे भागमेंभी ९ इसमें १० अर्थात् ब्रह्मनिष्ठाम चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक १० स्थित होकर ११ निर्वाणब्रह्मको १२ । १३ अर्थात् समस्त अनर्थोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति है लक्षण जिस मोक्षका उसको १३ प्राप्त होताहै १४ ॥ ७२ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ३.

मू०-अर्जुनउवाच ॥ ज्यायसीचेत्कर्मणस्तेमता बुद्धिर्जनार्दन ॥ तत्किंकर्मणिघोरेमांनियोजयसि केशव ॥ १ ॥

केशव १ चेत् २ कर्मणः ३ बुद्धिः ४ ज्यायसी ५ ते ६ मता ७ जनार्दन ८ तत् ९ माम् १० घोरे ११ कर्मणि १२ किम् १३ नियोजयसि १४ ॥१॥ अ०-उ० अर्जुनने समझा कि श्रीभगवान्को ज्ञाननिष्ठा सम्मतहै, क्योंकि द्वितीय अध्यामें ज्ञाननिष्ठाकी बहुत प्रशंसा की और यह भी कहा कि चतुर्थाश्रमसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठाही मोक्षका हेतु है. जो श्रीमहाराजको ज्ञाननिष्ठा श्रेष्ठ प्रिय ऐसीहै, तो मुझको कर्ममें क्यों लगातेहैं ? यह विचारकर अर्जुन कहता है-हे केशव! १ जो २ कर्मसे ३ ज्ञान ४ श्रेष्ठ ५ आपको ६ सम्मत ७ सि० है ❀ हेजनार्दन !८ तो ९ मुझको १० हिंसात्मक ११ कर्ममें १२ क्या १३ प्रेरतेहो ? १४ अर्थात् जब कि आप ज्ञाननिष्ठाको ही मोक्षका हेतु समझते हो तो फिर मुझसे यह क्यों कहते हो कि तूतो कर्महीं कर ? तेरा तो कर्ममें ही अधिकार है १४ ॥ १ ॥

मू०—व्यामिश्रेणेववाक्येनबुद्धिंमोहयसीवमे ॥
तदेकंवदनिश्चित्ययेनश्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ २ ॥

व्यामिश्रेण १ इव २ वाक्येन ३ मे ४ बुद्धिम् ५ मोहयसि ६ इव ७ तत ८ एकम् ९ निश्चित्य १० वद ११ येन १२ अहम् १३ श्रेयः १४ अवाप्नुयाम् १५ ॥२॥ अ०—उ०किसीजगह तो श्रीमहाराज ज्ञानकी महिमा कहतेहैं, और किसीजगह कर्मकी-इस मिलेहुए वाक्यमें स्पष्ट नहीं प्रतीत होता, कि इनदोनोंमें श्रेष्ठ क्या है ? यह विचारकर अब अर्जुन यह कहताहै—मिलेहुएवत् वाक्य करके १।२।३ मेरी ४ बुद्धिको ५ मानो भ्रांत करतेहो ६। ७ अर्थात् मुझको ऐसा प्रतीत होताहै कि, मानो जैसे कोइ मिलेहुए वाक्यकरके मोहको प्राप्त करता है. वास्तव न आप मुझको मोह करतेहो और न आपका वाक्य मिलाहुआ, न सन्देहजनक है. क्योंकि आप परमकरुणा, दया, और कृपा, इनकी खान हैं. हे करुणाकर ! मेरे इस अज्ञान दूर करनेकेलिये इन दोनों ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठामें एक जो श्रेष्ठहो तिस एकको ८। ९ निश्चय करके १० आप कहो ११ जिसकरके अर्थात् ज्ञानकरके वा कर्म करके १२ मैं १३ कल्याणको १४ प्राप्त हूंगा १५ ॥ २ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ लोकेऽस्मिन्द्विविधानिष्ठा पुराप्रोक्तामयाऽनघ ॥ ज्ञानयोगेनसांख्यानांकर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥

अनघ १ अस्मिन् २ लोके ३ द्विविधा ४ निष्ठा ५ मया ६ पुरा ७ प्रोक्ता ८ सांख्यानाम् ९ ज्ञानयोगन १० योगिनाम् ११ कर्मयोगेन १२॥३॥ अ०—उ०इसमंत्रमें तात्पर्य श्रीमहाराजका यह है, कि हे अर्जुन ! जो मैंने 'स्वतंत्र पृथक् पृथक् दो निष्ठा' स्वतंत्र दो पुरुषोंके निमित्त कहीहों तो यह तेरा प्रश्न बनसक्ताहै, कि कर्मनिष्ठा

और ज्ञाननिष्ठा इनदोनोंमेंसे एक श्रेष्ठ मुझसे कहो. और जबकि मैंने एकनिष्ठाकोही दोप्रकारकी (एक पुरुषके निमित्त अधिकार भेदसे उत्तरोत्तर) कहीहै, और एकपुरुषको ही अधिकारभेदसे दो प्रकारका अधिकारी कहा है, तो इस हेतुसे यह प्रश्न तुम्हारा बे जोगहै. क्योंकि स्वतंत्र एकनिष्ठासे कल्याण नहीं होसक्ता, और न दोनोंके समसमुच्चयसे होसक्ताहै. क्रमसमुच्चयसे कल्याण होता है, यह मैंने पीछे कहाहै. मिलाहुआ वाक्य नहीं कहा. फिर भी अब भले:प्रकार स्पष्ट कहताहूं सावधान होकर सुन. हे अर्जुन ! १ इस जनके विषय २ ३ अर्थात् मुमुक्षु दोनोंनिष्ठाका अधिकारी एकही पुरुष है, इस एक पुरुषके निमित्त ३ दो हैं प्रकार जिसके ४ सि० ऐसी एक ❀ निष्ठा ५ मैंने ६ पहले अर्थात द्वितीय अध्यायमें वा वेदोंमे ७ कही है ८. सि० वे दो प्रकार ये हैं ❀ विरक्तसंन्यासीपरमहंस शुद्धान्तःकरणवालोंको ९ ज्ञानयोगकरके १० अर्थात् विरक्तोंके लिये ज्ञाननिष्ठा कही है, और ज्ञानके प्रथमभूमिकावाले १० कर्मयोगियोंको ११ कर्मयोगकरके १२ अर्थात् मलिनान्तःकरणवालोंको कर्मनिष्ठा कही है; क्यों कि कर्म करनेसेही अन्तःकरण शुद्ध होकर ज्ञान होताहै १२ तात्पर्य दोनों निष्ठाओंका केवल एकब्रह्मनिष्ठाहीमें है.जबतक अन्तःकरण शुद्ध होकर उपरति याने वैराग्य न होवे तबतक कर्म करना योग्य है और जब अन्तःकरण शुद्ध होकर वैराग्यादिका आविर्भाव होजावे तब कर्मोंका संन्यासकरके ज्ञाननिष्ठ होजावे. टी० "लोकस्तु भुवने जने" इत्यमरः॥ श्रीधरजीनेभीयही अर्थ कियाहै॥३॥

मू०—नकर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यंपुरुषोऽश्नुते ॥
नचसंन्यसनादेवसिद्धिंसमधिगच्छति ॥ ४ ॥

कर्मणाम् १ अनारम्भात् २ पुरुषः ३ नैष्कर्म्यम् ४ न ५ अश्नुते ६ संन्यासात् ७ एव ८ सिद्धिम् ९ च १० न ११ समधिगच्छ-

ति १२ ॥ ४ ॥अ०—उ० दो निष्ठा आप कहतेहो. एकमेंतो कर्मोंका अनुष्ठानकरना पडताहै, और एकमें कर्म नहीं करना पड़ता मेरे जानमें पहलेसेही वो एक निष्ठा श्रेष्ठ है कि जिसमें कर्म करना न पड़े. यह शंका करके कहतेहैं.—सि० विना अन्तःकरण शुद्ध हुए ❀ कर्मोंके १ अनारम्भसे अर्थात् कर्मोंके न करनेसे मनुष्य ३ ज्ञाननिष्ठाको ४नहीं५प्राप्त होता है ६अर्थात् विना अन्तः करण शुद्ध हुए कर्मोंके केवल ६ त्यागसे ७ ही ८ सि० कि ज्ञानहुए ❀ मोक्षको ९ भी १० नहीं ११ प्राप्त होता है १२.अर्थ विना अन्तःकरण शुद्ध हुए केवल चतुर्थाश्रम याने संन्यास ग्रहण करनेसे ज्ञानको वा मोक्षको नहीं प्राप्त होताहै कोईभी १२. तात्प विना अन्तःकरण शुद्ध हुए जो कर्म त्याग देता है. उसको न इसलोक में सुख, न परलोकमें और उसको न स्वर्ग, न मोक्ष, न ज्ञान प्राप्त होता है. इसवास्ते जबतक अन्तःकरण भलेप्रकार शुद्ध न होवे तब तक भगवदाराधनादिककर्मोंका अनुष्ठान करतारहे, फिर ज्ञाननिष्ठा अधिकारी हो जायगा ॥ ४ ॥

मू०—नहिकश्चित्क्षणमपिजातुतिष्ठत्यकर्मकृत् ॥
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

जातु १ कश्चित् २ हि ३ क्षणम् ४ अपि ५ अकर्मकृत् ६ तिष्ठति ८ हि ९ सर्वः १० प्रकृतिजैः ११गुणैः १२अवशः १३ कर्म कार्यते १५ ॥ ५ ॥ अ०—उ० अन्तरंग कर्मोंका अज्ञानी त्यागसक्ताहै, ज्ञानीही उनके त्यागनेमें समर्थ है. क्योंकि उनका त्याग स्वरूपसे नहीं होसक्ता. विचारदृष्टि करके उनमें आसक्त नहीं उनको मिथ्याकल्पित, मायिक, अनात्मधर्म, समझना यही उनका त्याग है. यह अज्ञानीसे नहीं होसक्ता, सोई कहते हैं. कश्चित् कोई २ भी ३ अर्थात् ब्रह्मज्ञानरहित कोई अज्ञानी ३ पलमात्र

भी ९ अकर्मकृत् ६ नहीं ७ ठहरता है ८ अर्थात् अज्ञानी कर्म नकरता हुआ अक्रिय हुआ पलभरभी किसी कालमें नहीं रहता- तात्पर्य सदा कुछनकुछ करताही रहता है ८ क्योंकि ९ सब १० अर्थात् अज्ञानी प्राणीमात्र १० प्रकृतिसे उत्पत्ति है जिनकी तिन सत्त्वरजतमगुणोंकरके ११ । १२ सि० प्रेराहुआ ❋ अवश हुआ अर्थात् परतंत्र हुआ गुणोंके वश हुआ अज्ञानीजीव१३कर्म १४ करताहै १५. तात्पर्य अज्ञानी जीवसे सत्त्वादिगुण बलकरके कर्म करवाते हैं. मायाकरके प्रेरित परवशहुआ कर्म करताहै- यह मायाकी प्रबलता ज्ञानसेही दूरहोती है ॥ ५ ॥

मू०–कर्मेन्द्रियाणिसंयम्ययआस्तेमनसास्मरन् ॥
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मामिथ्याचारःसउच्यते ॥ ६ ॥

कर्मेन्द्रियाणि १ संयम्य २ मनसा ३ इन्द्रियार्थान् ४ स्मरन् ५ यः ६ आस्ते ७ सः ८ विमूढात्मा ९ मिथ्याचारः १० उच्यते ११ ॥ ६ ॥ अ०–उ० मलिनअंतःकरणवाला जो कर्म त्यागदेताहै; उसकी श्रीभगवान् बुराई कहते हैं–कर्मेन्द्रियोंको १ रोककरके २ सि० और❋मनसे ३ शब्दादिविषयोंको ४ स्मरण करता हुआ ५ जो ६ बैठाहै अर्थात् कर्मोका अनुष्ठान नहीं करता ७ सो ८ मलिनअन्तःकरणवाला ९ सि० कर्मत्यागी❋मिथ्याचारी १० कहाहै ११ अर्थात् ऐसे त्यागीको दम्भी कपटी ऐसा कहते हैं, और झूंठाहै मौन आसनादि आचार जिसका ११ ॥ ६ ॥

मू०–यस्त्विन्द्रियाणिमनसानियम्यारभतेऽर्जुन ॥
कर्मेन्द्रियैःकर्मयोगमसक्तःसविशिष्यते ॥ ७ ॥

यः १ तु २ इन्द्रियाणि ३ मनसा ४ नियम्य ५ अर्जुन ६ कर्मेन्द्रियैः ७ कर्मयोगम् ८ असक्तः ९ आरभते १० सः ११ विशिष्यते १२ ॥ ७ ॥ अ०–उ० मलिनअन्तःकरणवाले कर्मत्यागीसे

कर्मकरनेवाला श्रेष्ठ है यह कहते हैं-[सि० मलिनमनवालातो कप
है ❀ और जो १। २ ज्ञानेन्द्रियोंको ३मनकरके४[सि० विषयोंसे
रोककर ५ हे अर्जुन! ६ कर्मेन्द्रियोंकरके ७ कर्मयोगको ८ आस
हुआ ९ करताहै १० सो ११ विशेष है १२. [सि० पूर्वोक्तसे
तात्पर्य फलकी इच्छासे रहित है, और कर्मामें जो आसक्त है,
अन्तःकरण शुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानको प्राप्तहोगा; इसहेतुसे विशेषहै॥७

मू०-नियतंकुरुकर्मत्वंकर्मज्यायोह्यकर्मणः॥
शरीरयात्रापिचतेनप्रसिध्येदकर्मणः॥८॥

हि १ अकर्मणः २ कर्म ३ ज्यायः ४ नियतम् ५ कर्म ६ त्वम्
कुरु ८ ते ९ अकर्मणः १० देहयात्रा ११ अपि १२ च १३ न
प्रसिध्येत् १५॥८॥ अ०-जब कि १ न करनेसे २ कर्म ३ श्रेष्ठ
[सि०है. इसहेतुसे ❀ वेदोक्त ५ निष्कामकर्मको ६ तू ७ कर ८[सि
नहीं तो ❀ तुझ अकर्मीकी९।१० देहयात्रा ११ भी १२ और
[सि०मोक्षभी ❀ नहीं १४ सिद्ध होगा १५. टी० कर्मोंका अनुष्ठा
न करनसे करना श्रेष्ठ है २। ३. जो तू अपना स्वधर्मकर्म युद्ध
करेगा, तो तुझको भोजनवस्त्रादिभी देहके रक्षाके लिये न
मिलेंगे, और विना अन्तःकरण शुद्ध हुए तुझको ज्ञानका अभा
होनेसे तू मुक्तभी न होगा. इत्यभिप्रायः ९। १०॥८॥

मू०-यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्रलोकोऽयंकर्मबन्धनः॥
तदर्थंकर्मकौंतेयमुक्तसंगःसमाचर॥९॥

यज्ञार्थात् १ कर्मणः २ अन्यत्र ३ कर्मबन्धनः ४ अयम् ५ लोक
कौन्तेय ७ मुक्तसंगः ८ तदर्थम् ९ कर्म १० समाचर ११॥९
अ०-उ० इस लोकके वा परलोकके पदार्थोंकी कामना करके
कर्म कियाजाताहै वो बन्धका हेतु है, यह कहते हैं-सि० "यज्ञो वै
विष्णुः" यह श्रुति है यज्ञनाम विष्णुका है, विष्णु सच्चिदानन्द

कको कहते हैं. तात्पर्यार्थ यज्ञशब्दका 'तत्त्वं' इन पदोंके लक्ष्यार्थमें है ❀ यज्ञनारायणार्थ १ कर्मसे २ पृथक् ३सि० जो और सकाम कर्म है. तिन ❀ कर्मकरके बन्धनको प्राप्त होता है ४. यह ५ जीव६ हे अर्जुन! ७सि०तू तो ❀ निष्कामअसंगहुआ ८परमेश्वरार्थ९ कर्म १० कर ११ अर्थात् पूर्णब्रह्मसच्चिदानन्दस्वरूप जो आत्मा है उसके प्राप्तिके लिये ११. तात्पर्य अज्ञानके निवृत्तिके लिये कर्मोंका अनुष्ठान कर. अज्ञानकी जो निवृत्ति है यही आत्माकी प्राप्तिहै ॥ ९॥

मू०—सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः॥
अनेनप्रसविष्यध्वमेषवोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥

प्रजापतिः१ सहयज्ञाः२ प्रजाः३ सृष्ट्वा४ पुरा५ उवाच६ अनेन ७ प्रसविष्यध्वम् ८ एषः ९ वः १० कामधुक् ११ अस्तु १२ ॥ १० ॥

अ०—उ० सर्वथा न करनेसे सकामकर्म करनाही श्रेष्ठ है. अब चार श्लोकोंमें-यह कहतेहैं कि, ब्रह्माजीका वाक्य इसमें प्रमाणहै—ब्रह्माजी १ सहितयज्ञोंके प्रजाको २। ३ रचकर अर्थात् यज्ञ और प्रजाको रचकर ४ पहले ५सि० प्रजासे यह ❀ बोले ६सि० कि हेकर्मनिष्ठावालीप्रजा! ❀इसकरके अर्थात् कर्म यज्ञ करके ७ [तुम] उत्तरोत्तर बढ़ोगे ८ यह यज्ञ ९ तुमको १० कामधुक् ११ हो अर्थात् वांछितफल देनेवाला हो १२ यह मेरा आशीर्वाद है ॥ १० ॥

मू०—देवान्भावयताऽनेनतेदेवाभावयन्तुवः॥
परस्परंभावयन्तः श्रेयःपरमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

अनेन १ देवान् २ भावयता ३ ते ४ देवाः ५ वः ६ भावयन्तु ७ परस्परम् ८ भावयन्तः ९ परम् १० श्रेयः ११ अवाप्स्यथ १२ ॥ ११ ॥अ०—उ०बढ़नेका प्रकार निरूपण करतेहैं—इसयज्ञकरके१ देवताओंको २ [तुम] बढ़ाओ ३. तात्पर्य देवता यज्ञकरनेसे बढ़ते हैं. उनका भोजन यज्ञही है. सि० और यज्ञका भाग पानेवाले ❀

वे ४ देवता ५ तुमको ६ बढाओ ७. सि० इसप्रकार ❀ परस्
आपसमें ८ बढ़ते हुए ९ सि० तुम और देवता ❀ परमकल्याण
१०। ११ अर्थात् स्वर्गजन्यसुखको ११ प्राप्त होंगे १२. टी०
करनेसे देवता तुमको ३ वांछित फल देंगे ७॥ ११॥

मू०—इष्टान्भोगान्हिवोदेवादास्यन्तेयज्ञभाविताः॥
तैर्दत्तानप्रदायैभ्योयोभुंक्तेस्तेनएवसः॥ १२॥

यज्ञभाविताः १ देवाः २ वः ३ इष्टान् ४ भोगान् ५ हि ६ दास्
न्ते ७ तैः ८ दत्तान् ९ एभ्यः १० अप्रदाय ११ यः १२ भुंक्ते
सः १४ स्तेनः १५ एव १६ ॥ १२॥ अ०—यज्ञकरके
हुए वा प्रसन्नहुए १ देवता २ तुमको ३ सि० स्त्रीपुत्रअन्नवस्त्र इत्
दि ❀ प्यारे ४ भोगोंको ५ हि ६ देंगे ७. तात्पर्य देवता मोक्ष
देसक्तेहैं. मोक्षकी प्राप्ति तो सर्वकर्मसंन्यासपूर्वक ज्ञाननिष्ठासे
होतीहै. तिनकरके ८ दियेहुवोंको अर्थात् देवताओंके दिये भोगों
इनके ९ अर्थ १० तात्पर्य उनही देवतोंके अर्थ न देकर ११ अ
साधुको भोजन कराना इत्यादि पंचयज्ञ न करके ११ जो
भोजन करता है १२ सो १४ चोर १५ सि० है ❀ निश्चयसे
तात्पर्य नित्य विनापंचयज्ञकिये भोगभोगना अनर्थका हेतु है॥

मू०—यज्ञशिष्टाशिनःसन्तोमुच्यन्तेसर्वकिल्बिषैः॥
भुंजतेतत्वघंपापायेपचन्त्यात्मकारणात्॥ १३

यज्ञशिष्टाशिनः १ सन्तः २ सर्वकिल्बिषैः ३ मुच्यन्ते ४
तु ६ आत्मकारणात् ७ पचन्ति ८ ते ९ पापाः १० अघम्
भुंजते १२॥ १३॥ अ०—उ० गृहस्थोंको नित्य नियमकरके
यज्ञकरना योग्य है, जो करतेहैं उनकी श्रीमहाराज स्तुति
और जो नहीं करते उनकी निन्दा करतेहैं.—यज्ञमेंका बचाहुआ
भोजन करतेहुए १।२ सबपापोंसे ३ छूट जातेहैं ४. और जो

आत्माके वास्ते अर्थात् केवल अपनाही और अपने कुटुम्बका पेट भरनेके वास्ते ही ७ पाक करतेहैं ८ (पचंति—यह क्रिया उपलक्षणमात्र है) तात्पर्य जो केवल कुटुम्बके लिये रसोई मन्दिरादि बनाते हैं वस्त्रादिकोंका भोग भोगते हैं, साधु या परमेश्वर इनका उन पदार्थोंमें नाममात्रभी नहीं, वे ९ पापी १० पापको ११ भोजन करते हैं १२ सि० " खंडनीपेषणीचुल्लीउदकुम्भीच मार्जनी ॥ पंचसूनागृहस्थस्य ताभिःस्वर्गंनविंदति॥" अ०—ओखली चक्की चूल्हा जलरखनेकी जगह बुहारी जिसको सोहरनी सोहनी और झाडू भी कहते हैं. इन पांचमें दिनप्रति अनेक हत्या पांचप्रकारसे होती रहतीं हैं इसहेतुसेही गृहस्थोंका अन्तःकरण मलिन रहता है, और स्वर्ग नहीं मिलता है ॥ " स्वाध्यायोब्रह्मयज्ञश्चपितृयज्ञस्तुतर्पणम् ॥ होमोदेवोबलिर्यज्ञोनृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥" अ०-वेदशास्त्रादिका पढ़ना वा पाठ करना इसको ब्रह्मयज्ञ कहते हैं. तर्पणको पितृयज्ञ कहते हैं. हवन करना और बलि वैश्वदेव कर्म करना इन दोनोंको देवयज्ञ कहते हैं. अतिथि अभ्यागतोंका पूजन करके उनको भोजन कराना, वस्त्रादिदेना, इसको नरयज्ञ कहतेहैं. तात्पर्य पठन पाठन तर्पण होम बलि वैश्वदव कर्म विरक्तसाधुओंको भोजन कराना इन पांच यज्ञ करनेसे नित्यके नित्य पांचों हत्या दूर होती हैं. जो नहीं करते हैं उनकी चढ़ती रहती हैं ॥ १३ ॥

म०—अन्नाद्भवन्तिभूतानिपर्जन्यादन्नसम्भवः ॥
यज्ञाद्भवतिपर्जन्योयज्ञःकर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥

अन्नात् १ भूतानि २ भवन्ति ३ पर्जन्यात् ४ अन्नसम्भवः ५ यज्ञात् ६ पर्जन्यः ७ भवति ८ यज्ञः ९ कर्मसमुद्भवः १०॥१४॥ अ०—उ० कर्म करनेसेही वृष्टिद्वारा अन्नादिपदार्थोंकी प्राप्ति होती हैं. इसहेतुसेभी कर्मकरना योग्य है यह तीनश्लोकोंमें कहते हैं.—अन्नसे १

मनुष्यादि प्राणी २ होते हैं ३ अर्थात् अन्नका परिणाम जो शुक्रशो-
णित स्त्रीपुरुषोंका वीर्य, येदोनों मिलकर मनुष्यादिप्राणी उत्पन्न
होते हैं ३. वर्षासे ४ अन्न होता है ५. यज्ञसे ६ वर्षा ७ होतीहै ८. यज्ञ
कर्मसे १० होता है. सि० ऋत्विज् और यजमान इनका जो व्यापार
है, वोही कर्म है. उससे यज्ञ सिद्ध होता है ॥ १४ ॥

मू०–कर्मब्रह्मोद्भवंविद्धिब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥
तस्मात्सर्वगतंब्रह्मनित्यंयज्ञेप्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

कर्म १ ब्रह्मोद्भवम् २ विद्धि ३ ब्रह्म ४ अक्षरसमुद्भवम् ५ ब्रह्म ६
सर्वगतम् ७ तस्मात् ८ यज्ञे ९ नित्यम् १० प्रतिष्ठितम् ११॥१५॥
अ०–कर्मको १ वेदसे उत्पन्न हुआ २ जान तू ३. वेदको ४ मायोपाधि
ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ ५ सि० जान. माया मिथ्याहै ❀ ब्रह्म ६ पूर्ण है ७
तिसकारणसे ८ यज्ञमें ९ नित्य १० स्थित है ११ सि० भूतादि
पदार्थ जितने पीछे कहे उन सबका कारण मायोपहित ब्रह्महै, सो पूर्ण
है, तिसकारणसे यज्ञमेंभी स्थितहै ❀ तात्पर्य यद्यपि ब्रह्म पूर्णहै
परन्तु उसकी प्राप्ति निष्कामकर्म करनेसे अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ब्रह्म
ज्ञान होकर होतीहै, इसवास्ते यज्ञमें ब्रह्म नित्यस्थित है, यह कहा १५

मू०–एवंप्रवर्तितंचक्रंनानुवर्तयतीहयः ॥
अघायुरिन्द्रियारामोमोघंपार्थसजीवति ॥ १६ ॥

एवम् १ चक्रम् २ प्रवर्तितम् ३ यः ४ न ५ अनुवर्तयति ६
पार्थ ७ सः ८ इह ९ मोघम् १० जीवति ११ अघायुः १२ इन्द्रिया-
रामः १३ ॥ १६ ॥ अ०–उ० ईश्वरसे वेद, वेदसे कर्म, कर्मसे मेघ,
मेघसे अन्न, अन्नसे प्राणी, और प्राणी जब वेदोक्त कर्म करते हैं
फिर मेघादि होते हैं. ऐसाही फिर करते हैं फिर होते हैं–इसप्रकार
चक्र २ सि० परमेश्वरने लोगोंके पुरुषार्थके सिद्धिके लिये ❀ प्रवृ-
त्त किया है ३. जो ४ सि० कर्मका अधिकारी इसमें ❀ नहीं

प्रवृत्त होता अर्थात् कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता ६ हे अर्जुन ! ७ सो ८ इस संसारमें ९ वृथा १० जीवताहै ११. सि० कैसा है सो❀ पापरूप अवस्था है उसकी १२ सि० और ❀ इन्द्रियों करके विषयोंमें विहार है जिसका १३. सि० सो पृथिवीपर भार है. आप डूबा और औरोंको भी डुबाता है ❀ ॥ १६ ॥

मू०-यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्चमानवः ॥
आत्मन्येवचसंतुष्टस्तस्यकार्यंनविद्यते ॥ १७ ॥

यः १ तु २ मानवः ३ आत्मरतिः ४ एव ५ तृप्तः ६ च ७ आत्मनि ८ एव ९ च १० संतुष्टः ११ स्यात् १२ तस्य १३ कार्यम् १४ न १५ विद्यते १६ ॥ १७ ॥ अ०-उ० अज्ञानियोंको अन्तःकरणके शुद्धिकेलिये निष्काम कर्मयोग कहकर, और सर्वथा न करनेसे सकाम करनाही अच्छा है, यह कहकर, अब ज्ञानीको कर्मका अनुपयोग दो श्लोकोंमें कहते हैं अर्थात् ज्ञानीको कर्म करना कुछ आवश्यक नहीं और जो आत्माको यथार्थ पूर्णानन्द ब्रह्मस्वरूप नहीं जानताहै, उसको तो अज्ञानकी निवृत्तिके लिये अवश्यही निष्काम कर्म करना योग्य है. यह श्रीमहाराज. कहते हैं-जो १।२ मनुष्य ३ सि० ऐसाहै कि ❀ आत्माहीमें है प्रीति जिसकी ४ । ५ अर्थात् आत्मासे पृथक्पदार्थमें जिसकी प्रीति नहीं ५ और आत्माहीमें तृप्त है ६।७ अर्थात् इसलोकके औरपरलोकके पदार्थोंके प्राप्तिसे तृप्ति नहीं जानताहै ७ और आत्मामेंही ८। ९। १० संतुष्ट ११ है १२ अर्थात् आत्मासे पृथक्पदार्थकी न इच्छा रखताहै, और न उसकी दृष्टिमें आत्माके सिवाय श्रेष्ठ पदार्थ है. ऐसा जो विरक्त ज्ञानी या संन्यासी है १२ तिसको १३ करनेके योग्य १४ सि० कुछभी कर्म ❀ नहीं १५ है १६. तात्पर्य जोकोई कदाचित् कर्मकांडी ब्राह्मणादिक यह कहे संन्यासियोंसे, कि जैसे भिक्षाटनादि कर्म तुम करतेहो ऐसेही

तीर्थयात्रा देवपूजादिकर्मकरनेमें तुम्हारी क्या क्षति है ? उत्तर इसका
प्रसिद्ध स्पष्टहै, कि जिसकी जहां प्रीति होती है वो उसी जगह तत्पर
रहता है. इस हेतुसे ज्ञानी आत्मामें परायण रहते हैं. उनको देवपू
जादिकर्म करनेका सावकाशही नहीं, आर भिक्षाटनादि विद्वान्के
गौणकर्म है बाल्यभोजनवत्. और उसके विना तो शरीरकी स्थिति
नहीं होसक्ती. देवपूजादिकर्मकेविना विद्वान्की क्या क्षति होती है, अ
सुन्दर सच्चिदानन्ददेवको छोड, जडपाषाणादिदेवताका आराधन
करै? तात्पर्य सिवाय आत्मनिष्ठाके विद्वान्को और कुछ कर्तव्य नहीं
सो वो निष्ठा ज्ञानीकी स्वाभाविक है, कर्तव्य नहीं. ज्ञानी शुद्ध
स्वरूप, सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त, नित्यनिर्विकार पूर्णब्रह्म
"ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति" ॥ १७ ॥

मू०—नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥
नचास्यसर्वभूतेषुकश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥

तस्य १ कृतेन २ एव ३ अर्थः ४ न ५ अकृतेन ६ इह ७ कश्चन
न ९ सर्वभूतेषु १० अस्य ११ कश्चित् १२ अर्थव्यपाश्रयः १
च १४ न १५ ॥ १८ ॥ अ०—उ० वेदमें लिखाहै कि ज्ञानमा
र्गमें देवता विघ्न करते हैं यह सत्य है, परन्तु ज्ञानसे पहले वि
करते हैं, ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त नहीं होनेदेते. मतमतान्तरके पंडितों
बुद्धिमें बैठकर और राजादिकोंके मनमें स्थित होकर प्राणीको कर्म
प्रेरतेहैं, आर उनके विघ्न करतेहैं. और ज्ञानहुए पीछे तो वही दे
ज्ञानीको अपना आत्मा जानतेहैं, चाहतेहैं आत्माके बराबर; यह
तो वेदमेंही लिखाहै. श्रीभगवान् भी सातवें अध्यायमें क
'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्' तात्पर्य कोई यह शंकाकरे कि देवतोंका भय
रके, वा कुछ देवतोंसे आशाकरके तो ज्ञानीको कर्म करना योग्य
इस शंकाको दूरकरनेके लिये यह मंत्र श्रीमहाराज. कहतेहैं— जो

ज्ञानी देवतोंकोभी जीतचुका, फिर अब उसको कर्म करनेसे और न करनेसे क्या प्रयोजन है ? यह कहतेहैं—इत्यभिप्रायः. तिसको अर्थात् ज्ञानीको १ सि० कर्म ❀किये करके २ भी३ सि०किसीसे इसलोक वा परलोकमें कुछ ❀प्रयोजन ४ नहीं५ सि० और ❀न कियेसे६ सि० भी ❀इस लोकमें ७ कुछ८ सि ०उस ज्ञानीको पाप (प्रायश्चित्त)❀नहीं ९ सि०होता. और ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यन्त ❀सबभूतोंमें १० इसका ११ अर्थात् ज्ञानीका ११ कोई १२ अर्थमें आश्रा १३ भी १४ नहीं १५. तात्पर्य देवतामनुष्यादिसे ज्ञानीका व्यवहारमें वा परमार्थमें कुछ प्रयोजन नहीं. क्योंकि ज्ञानीके शरीरका निर्वाह तो प्रारब्धवशात् हुए चलाजाताहै, उसको कोई अधिक या न्यून नहीं करसक्ता और न उसके स्वरूपको कोई अधिक न्यून करसक्ता फिर कर्म करनेमें क्या तो उसकी क्षति और क्या उसको लाभ ?॥ १८ ॥

मू०—तस्मादसक्तःसततंकार्यंकर्मसमाचर ॥
असक्तोह्याचरन्कर्मपरमाप्नोतिपूरुषः ॥ १९ ॥

तस्मात् १ सततम् २ असक्तः ३ कार्यम् ४ कर्म ५ समाचर ६ असक्तः७ पुरुषः ८ हि ९ कर्म १० आचरन् ११ परम् १२ आप्नोति १३ ॥ १९ ॥ अ०—उ० विरक्त ज्ञानीकोही कर्मका अनुपयोग है अज्ञानीको वा गृहस्थाज्ञानीको मैं नहीं कहताहूं—हे अर्जुन ! तिसकारणसे १ निरन्तर २ असंग हुआ ३ करनेके योग्य ४ कर्मको ५ [तू] कर ६ असक्त ७ पुरुष ८ हि ९ कर्मको १० करताहुआ ११ सि० अन्तःकरण शुद्धिद्वारा ज्ञानी होकर ❀ मोक्षको १२ प्राप्त होताहै १३ ॥ १९ ॥

मू०—कर्मणैवहिसंसिद्धिमास्थिताजनकादयः ॥
लोकसंग्रहमेवापिसंपश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

जनकादयः १ कर्मणा २ हि ३ एव ४ संसिद्धिम् ५ आस्थिताः ६

लोकसंग्रहम् ७ अपि ८ संपश्यन् ९ कर्तुम् १० अर्हसि ११ एव १
॥ २० ॥ अ०—उ०सदासे कर्म करकेही बडे२महात्मामुमुक्षु अन्त
करणशुद्धिद्वारा ज्ञानको प्राप्त हुए हैं. यह कहते हैं—जनकादि १ क
करके २ ही ३ निश्चयसे ४ सि० अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ❀ ज्ञानको
प्राप्त हुएहैं ६. सि०और जो कदाचित् तू यह मानता हो कि मैं
पहलेही ज्ञानी हूं,फिर अब कर्म क्यों करूं ? उत्तर इसका यह है कि
❀लोकसंग्रहको ७ ही ८ देखताहुआ ९ अर्थात् यह विचारकर कि
अज्ञानीजनभी महात्माओंका देखादेखी आचरण करतेहैं. ज्ञानियों
के छोडदेनेसे अज्ञानीभी कर्म छोडकर कुमार्गमें प्रवृत्त होंगे, उनसे
कर्म करानेके लिये कर्मकरना योग्यहै.इस प्रयोजनको स्मरण करता
हुआ ९ कर्म करनेको १० तू योग्यहै ११ निश्चयसे १२. तात्पर्य
श्रीभगवान्का यहहै कि, हे अर्जुन ! जो तू—ज्ञानीहै तब तो अन्तःकर
णकी शुद्धि होनेके लिये कर्म कर और जो तू ज्ञानी है, तो लोकसं
ग्रहकेलिये कर्म कर. गृहस्थाश्रमकी शोभा कर्मसेही है. इसीवास्ते
जनकादि कर्म करते रहे. सर्वथा कर्मका अनुपयोग मन विरक्तसं
न्यासियोंके वास्ते कहा है ॥ २० ॥

मू०—यद्यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ॥
सयत्प्रमाणंकुरुतेलोकस्तदनुवर्तते ॥ २१ ॥

श्रेष्ठः १ यत् २ यत्३ आचरति ४ तत् ५ तत् ६ एव ७ इतरः ८
जनः ९ सः १० यत् ११ प्रमाणम् १२ कुरुते १३ लोकः १४ तत् १५
अनुवर्तते १६ ॥ २१ ॥ अ०—उ० बहुतेरे लोग जो कर्म, पाप व
पुण्य करते हैं, उनकर्मोंके भागी होतेहैं वे लोग कौन. तो धनवाले और
हुकुमवाले और पंडित और जातिमें जो प्रधान इत्यादि बड़े २
आदमी जो कहलाते हैं वे. ये क्यों भागी होतेहैं. इनसेही बुरेभलेकर्म
का प्रचार जगत्में होताहै सोई इसमंत्रमें.कहते हैं—श्रेष्ठ १ सि० पु

❀जो २ जो ३ आचरण करताहै४ सो सोही ५।६।७अन्यजन ८।९ [सि०कर्मकरताहै और ❀सो१०[सि०प्रतिष्ठितजन ❀जिसका ११ अर्थात् कर्मयोगको वा ज्ञानयोगको ११ प्रमाण १२ करताहै १३ सि० अजान ❀ जन १४ तिसकेही अनुसार वर्तता है १५।१६ ॥ २१ ॥

मू०—नमेपार्थास्तिकर्तव्यंत्रिषुलोकेषुकिंचन ॥
नानवाप्तमवाप्तव्यंवर्तएवचकर्मणि ॥ २२ ॥

पार्थ १ त्रिषु २ लोकेषु३मे४किंचन५ कर्तव्यम्६न ७ अस्ति ८ अवाप्तव्यम् ९ अनवाप्तम् १० न ११ एव १२ च १३ कर्मणि १४ वर्ते १५ ॥ २२ ॥ अ०—उ०लोकसंग्रहकेलिये ज्ञानी होकर किसीने कर्म कियाहै इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहतेहैं—कि प्रथम तो मैंही ऐसाहूं. हे अर्जुन! १तीनलोकमें२।३मुझको४कुछभी ५ कर्तव्य ६ नहीं ७ है८. [सि० और ❀प्राप्त होनेके योग्य ९[सि० वस्तु जो चाहिये वो मुझको सब क्या ❀नहीं प्राप्तहै १०।११ तोभी १२।१३ कर्ममें १४ [मैं] वर्तताहूं १५. तात्पर्य मोक्षपर्यन्त मुझको सब पदार्थ प्राप्तहैं, और मुझकोन किसीका खटकाहै, न मुझपरकिसीकी आज्ञाहै तोभी मैं लोकसंग्रहके लिये कर्म करताहूं. कर्म न करना यह केवल विरक्त साधुवोंके वास्ते विधि है ॥ २२ ॥

मू०—यदिह्यहंनवर्तेयंजातुकर्मण्यतंद्रितः ॥
ममवर्त्मानुवर्तन्तेमनुष्याःपार्थसर्वशः ॥ २३ ॥

यदि १ जातु २ अतन्द्रितः ३ अहम् ४ हि ५ कर्मणि६ न७वर्तेयम् ८ पार्थ ९ सर्वशः १० मनुष्याः ११ मम १२ वर्त्म १३ अनुवर्तंते १४ ॥ २३ ॥ अ०—उ०आप अपनी इच्छासे कर्म करतेहो, जो न करो तो क्या हो ? यह शंका करके कहते हैं.—जो १ कभी२ अनालस्य हुआ३ अर्थात् आलस्य रहित होकर३मैं ४ ही ५ कर्ममें६

न ७ वर्तूं अर्थात् जो मैंही कर्म न करूं तो ८ हे अर्जुन ! ९ सबप्रकार करके १० मनुष्य ११ मेरे १२ मार्गको १३ पीछे वर्तेंगे १४ अर्थात् सबलोग कर्म छोड़देंगे. जिस रस्तेसे मैं चलूँगा उसी रस्तेसे सब चलेंगे ॥ २३ ॥

मू०–उत्सीदेयुरिमेलोकानकुर्यांकर्मचेदहम् ॥
संकरस्यचकर्तास्यामुपहन्यामिमाःप्रजाः ॥ २४ ॥

चेत १ अहम् २ कर्म ३ न ४ कुर्याम् ५ इमे ६ लोकाः ७ उत्सीदेयुः ८ संकरस्य ९ च १० कर्ता ११ स्याम् १२ इमाः १३ प्रजाः १४ उपहन्याम् १५ ॥ २४ ॥ अ०–उ० जो मनुष्य आपके देखादेखी कर्म छोड़देंगे, तो उसमें आपने क्या किया, और आपको क्या क्षतिहै ? यह शंका करके कहते हैं.–जो १ मैं २ कर्म ३ न ४ करूं ५ सि० तो ❀ ये ६ सि० अज्ञानी ❀ जीव ७ सि० मेरे देखादेखी कर्म न करनेसे ❀ भ्रष्ट होजावेंगे ८. अर्थात् वर्णसंकर होजावेंगे. इस हेतुसे मैंने ही प्रजाको भ्रष्ट किया, और वर्णसंकरका ९ भी १० कर्ता ११ सि० मैंही ❀ हुआ १२ सि० मेरा अवतार धर्मकी रक्षाके वास्ते था, मैंने धर्मकी रक्षा क्या की ? उलटा मनुष्योंको वर्णसंकर किया औरइसी हेतुसे ❀ इस प्रजाको १३। १४ भ्रष्ट करनेवाला मैं हुआ १५ अर्थात् उलटा प्रजाका अन्तःकरण मैला करनेवाला मैं हुआ. मैंनेही यह प्रजा मैली की. इत्यर्थः ॥ २४ ॥

मू०–सक्ताःकर्मण्यविद्वांसोयथाकुर्वन्तिभारत ॥
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्ताश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

भारत १ यथा २ अविद्वांसः ३ कर्मणि ४ सक्ताः ५ कुर्वन्ति ६ तथा ७ विद्वान् ८ असक्तः ९ कुर्यात् १० लोकसंग्रहम् ११ चिकीर्षुः–१२ ॥ २५ ॥ अ०–उ० अज्ञजीवोंपर कृपाकरके लोकसंग्रहके लिये गृहस्थ और ज्ञानी ऐसा होकर भी कर्म करे यह कहते हैं.–

हे अर्जुन ! १ जैसे २ अज्ञानी ३ कर्ममें ४ सक्त हुए५ सि० कर्म ❋ करतेहैं ६ तैसे ७ ज्ञानी ८ असक्त हुआ ९ करे १०. सि० कैसा है वो ज्ञानी ❋ लोगोंकी रक्षा ११ करनेकी इच्छावाला १२ सि० है. वो ज्ञानी यह समझाताहै कि ये कर्म औरलोगोंके भलेके वास्ते मैं करताहूं ❋ ॥ २५ ॥

मू०–नबुद्धिभेदंजनयेदज्ञानांकर्मसंगिनाम् ॥
जोषयेत्सर्वकर्माणिविद्वान्युक्तःसमाचरन् ॥ २६ ॥

अज्ञानाम् १ कर्मसंगिनाम् २ बुद्धिभेदम् ३ न ४ जनयेत् ५ विद्वान् ६ युक्तः ७ सर्वकर्माणि ८ समाचरन् ९ जोषयेत् १० ॥ २६ ॥

अ०–उ० अज्ञानियोंपर जब कृपा करनाही ठहरा, तो फिर उनको कर्ममें क्यों प्रवृत्त करना चाहिये ? उनकोभी ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करना योग्य है; यह शंका करके श्रीभगवान् कहते हैं–कि कर्मसंगीको याने अज्ञानियोंको कभी भूलकरभी ब्रह्मज्ञान सिखाना न चाहिये. ब्रह्मज्ञानके अधिकारी औरही मुमुक्षु शुद्धान्तःकरणवाले हैं, पुत्र स्त्री और धन इनमें जो आसक्त हैं वे नहीं. अज्ञानी १ कर्मसंगियोंके २ बुद्धिका भेद ३ न ४ उत्पन्न करे ५ विद्वान् ६ सावधान हुआ ७ सि० अपनेस्वरूपमें ❋ सबकर्मोंको ८ करता हुआ ९ सि० अज्ञानियोंको कर्ममें ❋ प्रेरे अर्थात् आपभी करे और उनसेभी करावे १० तात्पर्य कर्मोंमें पुत्रादिपदार्थोंमें और देहादिमें जो आसक्त हैं, उनके बुद्धिको ज्ञानी कर्मोंमेंसे न हटावे अर्थात् उनसे यह न कहे कि आत्मा अकर्ता, अद्वैत, अभोक्ता, स्वतंत्र, शुद्ध, सच्चिदानन्द, निर्विकार, ऐसा है. तुम कर्म क्यों करतेहो? कर्म तो जड़है. इसप्रकार उनकी बुद्धिका भेद न करे. क्योंकि उनका रागद्वेषादि सहित अंतःकरण होनेसे उनको आत्माका ज्ञान न होगा और कर्म छोडदेनेसे उनको इस लोकमें सुख न होगा, न परलोकमें; न उनके अन्तःकरण-

मेंसे तम रज और काम क्रोधादि दूर होंगे. इस हेतुसे अज्ञानी ज
कर्म न करनेसे उभयभ्रष्ट होजावेंगे ॥ २६ ॥

मू०-प्रकृतेःक्रियमाणानिगुणैःकर्माणिसर्वशः ॥
अहंकारविमूढात्माकर्ताऽहमितिमन्यते ॥ २७ ॥

सर्वशः १ कर्माणि २ प्रकृतेः ३ गुणैः ४ क्रियमाणानि ५ अहंकार
विमूढात्मा६इति७मन्यते८अहम्९कर्ता१०॥२७॥अ०-उ०अज्ञानी
कर्मोंमें मनसे आसक्त होजाताहै यह कहतेहैं—सब प्रकार करके १ कर्म २
प्रकृतिके३ गुणोंकरके ४ किये जातेहैं अर्थात गुणही कर्त्ता हैं ५
अहंकारकरके विमूढहै अन्तःकरण जिसका ६ सि०वो ❀ यह ७
मानताहै ८ सि०कि ❀ मैं ९ करता १० सि०हूं. इसी हेतुसे
कर्मोंमें आसक्त होजाताहै ❀ टी०अहंकारकरके अर्थात् इन्द्रियादि
कोंमें आत्माका अध्यास करके अर्थात् मैं देखताहूं, खाताहूं, समझ
ताहूं, इत्यादि. इसप्रकार इन्द्रियादिकोंके साथ आत्मा की एकता
करके भ्रान्तिको प्राप्तहुई है बुद्धि जिसकी वो यह मानताहै कि
मैं कर्ता हूं ॥ २७ ॥

मू०-तत्त्ववित्तुमहाबाहोगुणकर्मविभागयोः ॥
गुणागुणेषुवर्तन्तइतिमत्वानसज्जते ॥ २८ ॥

महाबाहो १ गुणकर्मविभागयोः २ तत्त्ववित् ३ तु ४ इति ५
मत्वा ६ न ७ सज्जते ८ गुणाः ९ गुणेषु १० वर्तते ११॥२८॥ अ०-
उ०ज्ञानी कर्मोंमें मनसे नहीं आसक्त होताहै, यह कहते हैं—हे
अर्जुन !१ गुण और कर्मोंके विभागका २ तत्त्व जाननेवाला ३ तो ४
यह५ मानकर ६ नहीं७ आसक्त होताहै ८ सि० कर्मोंमें क्या मान
ताहै वो, इस अपेक्षामें कहते हैं कि ❀ इंद्रिय ९ विषयोंमें १०
वर्ततीहैं ११ सि०आत्मा निर्विकार शुद्ध है. ज्ञानी यह मानताहै ❀
टी०मैं गुणात्मक नहीं हूं अर्थात गुणरूपमें नहीं. इसप्रकार तो

गुणोंसे आत्माको पृथक् समझता है और ये कर्म मेरे नहीं. इसप्रकार कर्मोंसे आत्माको पृथक् समझता है २ ॥ २८ ॥

मू०–प्रकृतेर्गुणसंमूढाःसज्जन्तेगुणकर्मसु ॥
तानकृत्स्नविदोमंदान्कृत्स्नविन्नविचालयेत् ॥२९॥

प्रकृतेः १ गुणसंमूढाः २ गुणकर्मसु ३ सज्जन्ते ४ तान् ५ अकृत्स्नविदः ६मन्दान् ७कृत्स्नवित् ८न ९विचालयेत् १० ॥२९॥

अ०–उ० कर्मसंगी मन्दमति हैं, इस हेतुसे भी उनको ब्रह्मज्ञानोपदेश नहीं करना, यह कहते हैं.–प्रकृतिके १ सि० सत्त्वादि ❋ गुणोंकरके भ्रान्त हुए २ गुणोंके कर्मोंमें ३ आसक्त हैं ४ सि० जो❋तिन अल्पज्ञमन्दमतिपुरुषोंको ५।६।७ सर्वज्ञ ज्ञानी ८ न ९ विचाले १० सि० कर्मोंसे ❋ अर्थात् उनको ब्रह्मतत्त्वोपदेश नहीं करना. वे ब्रह्मज्ञानके अभी अधिकारी नहीं, जब वे आप जिज्ञासा करें तब उनको उपदेश करना योग्य है. इत्यभिप्रायः ॥ २९ ॥

मू०–मयिसर्वाणिकर्माणिसंन्यस्याध्यात्मचेतसा ॥
निराशीर्निर्ममोभूत्वायुध्यस्वविगतज्वरः ॥ ३० ॥

मयि १ अध्यात्मचेतसा २ सर्वाणि ३ कर्माणि ४ संन्यस्य ५ निराशीः ६ निर्ममः ७ विगतज्वरः ८ भूत्वा ९ युध्यस्व १० ॥३० ॥

अ०–उ०मुमुक्षुको जिसप्रकार कर्मकरना चाहिये सो कहते हैं.–मुझ सर्वज्ञत्वादिगुणविशिष्टसर्वात्मामें १ विवेकबुद्धिकरके. २ अर्थात् अन्तर्यामीके अधीन हुआ मैं यह कर्म करताहूं, यह कर्म परमेश्वरार्थ है, मुझको फलकी इच्छा नहीं, इसबुद्धिकरके. सबकर्मोंको३।४ अर्थात् सबकर्मोंके फलको ४ सि० परमेश्वरमें ❋ अर्पण करके ५ आशारहित ६ ममतारहित ७ सन्तापरहित ८ होकर ९युद्ध कर१० सि० क्षत्रियोंका युद्धही स्वधर्म याने कर्म है, सो इसप्रकार कर, जैसें ऊपर कहा ❋टी० कर्म करनेके समय किसीप्रकार फलकी

इच्छा याने आशा नहीं रखना ६. कर्मोंके फलमें ममतारहित इस वास्ते होना चाहिये, कि उनका फल परमेश्वरको अर्पण होचुका. अभावपदार्थमें ममता नहीं बनसक्ती है ७. कर्म करनेके समय धीरज उत्साह चाहिये ८ ॥ ३० ॥

मू०—येमेमतमिदंनित्यमनुतिष्ठन्तिमानवाः ॥
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तोमुच्यन्तेतेपिकर्मभिः ॥ ३१ ॥

ये १ श्रद्धावन्तः २ अनसूयन्तः ३ मानवाः ४ मे ५ इदम् ६ मतम् ७ नित्यम् ८ अनुतिष्ठन्ति ९ ते १० अपि ११ कर्मभिः १२ मुच्यन्ते १३ ॥ ३१ ॥अ०—उ० प्रमाणोंकेसहित मैंने यह उपदेश कियाहै, इसके अनुष्ठान करनेमें बड़ा गुण है, यह श्रीमहाराज. कहते हैं—जो १ श्रद्धावाले २ असूयारहित ३ मनुष्य ४ सि० मैंने जो पीछे उपदेश किया ❀ मेरे५इस६मतको ७ नित्य ८अनुष्ठान करेंगे ९ अर्थात् जबतक भले प्रकार अन्तःकरणमेंसे रागद्वेषादि दूर न होवें तबतक जो कर्म मेरी आज्ञासे करेंगे ९ वे कर्माधिकारी कर्मसंगी १० भी ११ कर्मोंकरके १२ अर्थात् कर्मोंसे १२ छूट जावेंगे, १३ अर्थात् कर्म करनेसे उनका अन्तःकरण शुद्ध होजायगा, फिर वे अपने आप कर्मोंको त्यागकर ज्ञाननिष्ठ होजावेंगे १३.टी० जो श्रीमहाराज कहते हैं, सो सत्य है, बेसन्देह भगवदाराधनादिकर्मोंका अनुष्ठान करनेसे अंतःकरण शुद्ध होकर ज्ञानद्वारा मुक्ति होतीहै, इसको श्रद्धा कहते हैं२.गुणोंमें दोष निकालना उसको असूया कहतेहैं, भगवद्के उपदेशमें यह दोष नहीं निकालते हैं, कि परमेश्वर फलका तो त्याग करवाते हैं, और कर्म करनेको कहतेहैं ऐसे ऐसे दोषरहित पुरुषोंको अनसूयन्तः कहतेहैं ३ ॥ ३१ ॥

मू०—येत्वेतदभ्यसूयन्तोनानुतिष्ठन्तिमेमतम् ॥
सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धिनष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

ये १ तु २ मे ३ एतत् ४ मतम् ५ न ६ अनुतिष्ठन्ति ७ अभ्यसूयन्तः ८ तान् ९ अचेतसः १० नष्टान् ११ सर्वज्ञानविमूढान् १२ विद्धि १३ ॥ ३२ ॥ अ०–उ० गुणमें जो दोषकी कल्पना करते हैं वे महानीच हैं, सोई कहते हैं–जो मेरे मतका अनुष्ठान करतेहैं वे तो विद्वान् हैं और जो १ । २ मेरे ३ इस मतका ४ । ५ नहीं ६ अनुष्ठान करते हैं ७ सि० प्रत्युत * असूया करते हैं ८ तिन अल्पज्ञ मुरदोंको ९।१०। ११ सब ज्ञानके विषय मूढ हैं १२ सि० यह * जान तू. १३ टी० मोक्षमार्गमें मुरदेके तुल्य हैं इसवास्ते उनको नष्ट कहा. ११ कर्मसे अन्तःकरण शुद्ध होता है, तमोगुण दूर होता है, उपासनासे चित्त एकाग्र होता है, रजोगुण दूर होता है, यही कर्म उपासना और अष्टांगयोगादिका परमप्रयोजन है, फिर ज्ञानसे मोक्ष होता है यह मेरा मत है. इससे पृथक् जो किसीका पन्थ मत सम्प्रदाय है उनसबको सर्वरूपब्रह्मज्ञानके विषय मूर्ख जान तू १२ । १३ गुणोंमें जो अवगुणोंकी कल्पना करते हैं; उनको 'अभ्यसूयन्तः' कहते हैं. कल्पना ऐसे करते हैं कि जो शुभउपदेश करे, उनको वाक्यवादी कहते हैं; जो मौन रहे उसको पाखंडी, मूर्ख, अभिमानी, ऐसा कहते हैं; जो संतोषसे बैठा रहे उसको आलसी बतावें. जो उद्यम करे, उसको लोभी कहें. तात्पर्य मैंने वहुत यह विचार किया है, कि कोई ऐसा गुण विद्वानोंका नहीं, कि जिसको दुष्टोंने दूषित न कियाहो. अक्षरोंका अर्थ फेरकर अनर्थ करे तो फिर इसमें क्या आश्चर्य है ? ॥ ३२ ॥

मू०–सदृशंचेष्टतेस्वस्याःप्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥
प्रकृतिंयान्तिभूतानिनिग्रहःकिंकरिष्यति ॥ ३३ ॥

भूतानि १ प्रकृतिम् २ यान्ति ३ स्वस्याः ४ प्रकृतेः ५ सदृशम् ६ ज्ञानवान् ७ अपि ८ चेष्टते ९ निग्रहः १० किम् ११ करिष्यति १२

॥ ३३ ॥ अ०-उ० सबही मनुष्य प्रथम कर्मोंका अनुष्ठान करके अन्तःकरण शुद्ध करके ज्ञाननिष्ठ क्यों नहीं होते हैं ? जिससे पूर्ण परमानन्द नित्यनिर्विकारकी प्राप्ति होती है, इस सीधे रस्तेपर प्राणी क्यों नहीं चलते हैं, नानाप्रकारके अर्थोंकी कल्पना करके आपकी आज्ञाको क्यों नहीं मानते हैं? इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं-कि सब, प्राणी १ सि० अपने ❁ प्रकृतिको २ प्राप्त होरहे हैं ३ अपने ४ प्रकृतिके५ सदृश६ ज्ञानवान् ७ भी ८ चेष्टा करताहै९ सि० जो अज्ञानी जीव अपने स्वभावके अनुसार बरते, तो इसमें क्या कहनाहै? फिर मेरा वा किसीका ❁ निग्रह १० क्या ११ करेगा? १२ तात्पर्य पूर्व कर्मोंके संस्कारोंसे जो स्वभाव जीवोंका होरहा है.(रजोगुणी वा तमोगुणी वा सत्त्वगुणी) उसी स्वभावको सब प्राप्त होरहे हैं, वैसेही वैसे कर्म करते हैं. जो पुरुष अपने स्वभावके अनुसार कुमार्गमें प्राप्त होरहा है उसको किसीका उपदेश क्या फल देगा ? क्योंकि स्वभाव बलवान् है. इसहेतुसे मेरा उपदेश भी नहीं मानते हैं ॥ ३३ ॥

मू०-इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थेरागद्वेषौव्यवस्थितौ ॥
तयोर्नवशमागच्छेत्तौह्यस्यपरिपन्थिनौ ॥ ३४ ॥

इन्द्रियस्य १ इन्द्रियस्य २ अर्थे ३ रागद्वेषौ ४ व्यवस्थितौ ५ तयोः ६ वशम् ७ न ८ आगच्छेत् ९ तौ १० हि ११ अस्य १२ परिपंथिनौ १३ ॥३४॥ अ०-उ० जबकि आप स्वभावको हीबलवान् कहते हो, तो वेदादिकोंका विधिनिषेध वृथाही है. यह शंका करके कहते हैं-इन्द्रियइन्द्रियका १।२सि० अर्थात् सब इन्द्रियोंका अपने अपने ❁ अर्थमें३ अर्थात् शब्दादिपदार्थोंमें ३ रागद्वेष४ स्थित है ५ अर्थात् सबइन्द्रियोंके विषयोंमें राग भी है, और द्वेषभी है ५ तिनके ६ अर्थात् रागद्वेषके ६ वशको७ नहीं८ प्राप्तहो ९ अर्थात् रागद्वेषके वश न होजावे९ सि० क्योंकि ❁ वे १० ही ११ अर्थात्

रागद्वेषही ११ इसके १२ अर्थात् मुमुक्षुके मोक्षमार्गमें १२ चोर हैं १३ सि० लूटनेवालेहैं ❀तात्पर्य सब इन्द्रियोंके अनुकूलपदार्थमें तो राग है, और प्रतिकूलमें द्वेष है. यह बात ज्ञानीकीभी होती है और अज्ञानीकीभी होती है. यहांतक तो स्वभाव बलवान् है और रागद्वेषके वश होजाना, यह अज्ञानीका काम है और वशमें न होना, यह ज्ञानीका काम है. जैसे निर्मल और गम्भीर ऐसे जलमें एक मणि पडाहै, उसको देखकर ज्ञानीकाभी मन चला, और अज्ञानीकाभी मन चला. यहांतक तो स्वभावकी प्रबलताहै, क्योंकि रजोगुणके प्रभावसे मणिमें दोनोंका राग होगया याने इच्छा उत्पन्न होगई; परन्तु ज्ञानीने तो यह समझा कि जल बहुत है, जो मैं इसमें कूदा तो डूब जाऊँगा. अज्ञानीको यह समझ न थी, कि बहुत जलमें डूब जाते हैं वो रजोगुणके वशसे तृष्णारागादिका दबाया हुआ कूद कर डूबगया इसजगह ज्ञानी और अज्ञानी इन दोशब्दोंका तात्पर्य समझवाले और बेसमझवाले इन दोशब्दोंमें है. ब्रह्मज्ञानीका प्रसंग नहीं इसीप्रकार स्त्र्यादिपदार्थोंमें सबका रागद्वेष है, परन्तु जिन्होंने शास्त्रद्वारा उससे भी गुरुद्वारा यह निश्चय कर रक्खा है, कि कांचनकान्तादिपदार्थ मोक्षमार्गके वैरी हैं वे तो रागादि हुए सन्तेभी प्रवृत्त नहीं होते. और जिन्होंने शास्त्र नहीं श्रवण किया वे धोका (धक्के) खाते हैं. इस हेतुसे और शास्त्रकी विधिनिषेध स्वभावसे बलवान् है. इसवास्ते शास्त्रका श्रवण करना, तात्पर्य अनुष्ठान करनेसे है; नहीं तो दिनमें हजारों लोग श्रवण करते हैं रात्रिको भूलकर फिर वोही खोटा काम करतेहैं. तात्पर्य यह है कि पदार्थोंमें रागद्वेष होना, यह तो स्वभावकी प्रबलता है. शास्त्र दृष्टि करके उसमें प्रवृत्त होना, वा न होना, यह शास्त्र करता है. शीतादिके सहनेमें प्रवृत्ति, स्त्रीधन इत्यादि पदार्थोंसे निवृत्ति, शास्त्र करता है ॥ ३४ ॥

मू०–श्रेयान्स्वधर्मोविगुणःपरधर्मात्स्वनुष्ठितात्॥
स्वधर्मेनिधनंश्रेयःपरधर्मोभयावहः॥ ३५॥

स्वनुष्ठितात् १ परधर्मात् २ स्वधर्मः ३ विगुणः ४ श्रेयान् ५ स्वधर्मे ६ निधनम् ७ श्रेयः ८ परधर्मः ९ भयावहः १०॥३५॥अ०-उ० स्वभावकेही वश होकर जो मनुष्य डूबता है, तो पहिले स्वभावको जीतनाही योग्य है और स्वभाव तो वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे ही जीता जाता है. सोई कहते हैं–सद्गुणोंकरके युक्त ऐसे पराये धर्मसे १।२ अपना धर्म ३ किसी गुण करके रहित ४ सि० भी होवे, तोभी ❀ श्रेष्ठ ५ सि० है ❀ अपने धर्ममें ६ मरना ७ श्रेष्ठ ८ सि० है ❀ पराया धर्म ९ भयको प्राप्त करनेवाला है१०. तात्पर्य जो अपना निवृत्तिधर्म है वा प्रवृत्ति, वोही श्रेष्ठ है. निवृत्तिधर्मवालेको तो, प्रवृत्तिधर्मका अनुष्ठान करना न चाहिये और प्रवृत्तिधर्मवालेको निवृत्तिधर्मका अनुष्ठा करना न चाहिये. जो जो अपने वर्णका या आश्रमका धर्म है, वोही वर्तना योग्य है अपने धर्मका अनुष्ठान करनेसे स्वभाव जीता जाता है अथवा अपना धर्म जो सच्चिदानन्दरूप निर्विकार विगुणभी है अर्थात् सत्त्व तम ये गुण उसमें नहीं, वो निर्गुणभी है, तोभी गुणोंवाले परधर्मसे, अर्थात् सत्त्वादिगुणोंके धर्म इन्द्रियशब्दादिविषयोंसे श्रेष्ठहै. इन्द्रियादिकोंका जो धर्म है वो आत्माका धर्म नहीं परधर्म कहलाता है. उस परधर्ममें मरना, अर्थात् कर्ता होकर इन्द्रियादिकोंके साथ मिलकर जो देहका त्याग करना है वो संसारके प्राप्त करनेवाला है, भय यह नाम संसारकाही है और अपने धर्ममें मरना अर्थात् ज्ञाननिष्ठाब्रह्माकारवृत्तिस्वरूपमें जो देहका त्याग है वो श्रेष्ठ है, क्योंकि मुक्तिका हेतु है, यहां श्रुति प्रमाण है "काश्यांतुमरणान्मुक्तिः॥ काशःब्रह्मतत्त्वप्रकाशः यस्याम् अवस्थायां सा काशी," काशी उस अवस्थाका नाम है

कि जिसमें ब्रह्मतत्त्वका प्रकाश होता है. उस काशीमें मरनेसे मुक्ति होती है ॥ ३५ ॥

मू०—अर्जुनउवाच॥अथकेनप्रयुक्तोऽयंपापंचरतिपूरुषः॥
अनिच्छन्नपिवार्ष्णेयबलादिवनियोजितः॥ ३६ ॥

अथ १ वार्ष्णेय २ अनिच्छन् ३ अपि ४ अयम् ५ पूरुषः ६ केन ७ प्रयुक्तः ८ पापम् ९ चरति १० बलात् ११ इव १२ नियोजितः १३ ॥३६॥अ०—उ०श्रीभगवान् कहते हैं कि रागद्वेषके वश नहींहोना, पाप नहीं करना, अर्थात् परधर्मका अनुष्ठान नहीं करना, अपने ही धर्मका करना, वेदोक्तमार्गपर चलना यह सब सत्य कहते हैं परन्तु जीव तो परतंत्र प्रतीत होता है जो स्वतंत्र हो तो सबकुछ करसक्ता है. कोई ऐसा प्रबल प्रतीत होताहै कि जीवसे बलकरके याने जबरदस्तीसे पाप कराताहै. यह विचार करके अर्जुन श्रीमहाराजको प्रश्न करता है, कि हे महाराज! वो कौनहै. कि जिसके वश होकर जीव पाप करता है ?—'अथ'यह शब्द प्रश्नमें आता है १ हे कृष्णचंद्र! २ नहीं इच्छा करता हुआ ३ भी ४ यह ५ जीव ६ किस करके ७ प्रेरा हुआ ८ पापको ९ करता है? १० सि० ऐसा प्रतीत होता है, कि किसीने ❀बलसे ११ जैसे १२ सि०पापमें ❀जोडदिया है १३-सि० जैसे बैलको जबरदस्तीसे गाडीमें जोडदेते हैं, तैसेही जीवसे कोई जबरदस्तीसे पाप कराता है. ऐसा प्रतीत होता है; ❀ तात्पर्य पाप करनेमें क्या हेतु है, यह अर्जुनका प्रश्नहै ॥ ३६ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ कामएषक्रोधएषरजोगुणस-
मुद्भवः॥ महाशनोमहापाप्माविद्ध्येनमिहवैरिणम्॥३७॥

एषः १ कामः २ एषः ३ क्रोधः ४ रजोगुणसमुद्भवः ५ महाशनः ६ महापाप्मा ७ एनम् ८ इह ९ वैरिणम् १० विद्धि ११ ॥ ३७ ॥ अ०—उ०श्रीभगवान्कहते हैं, कि हे अर्जुन! तूने जो बूझा,कि पाप

करनेमें क्या हेतु है; सो सुन.—यह १ काम २ सि० और ❋ यह
क्रोध ४ सि० दोनों येही पाप करनेमें हेतु हैं. येही जबरदस्ती
जीवसे पाप कराते हैं. इसलोकके और परलोकके पदार्थों
जो कामना है, यही पापकी जड है. यही काम क्रोधाका
होजाताहै. कैसाहै यह काम ❋ रजोगुणसे उत्पत्ति है जिसकी
अर्थात् कामकीभी जड रजोगुण है. इसविशेषणका यह तात्पर्य है
कि रजोगुणके जीतनेसे कामभी जीताजाता है और कामके जीत
नेसे क्रोध जीता जाता है. सत्त्वगुण बढ़ानेसे रजोगुण कम होता है
फिर कैसा है वो काम ? बड़ा भोजन है जिसका ६ अर्थात् कितनाही
भोग भोगो, कभी इच्छा पूर्ण न होवेगी. प्रत्युत दूनी आगलगे. इस
हेतुसे वो काम ६ महापापी ७ सि० है; काम करकेही, यह जीव
पाप करता है और सदा यह पापी पाप कराताहै ❋ इसको
अर्थात् कामको ८ मोक्षमार्गमें ९ वैरी १० जान तू ११ तात्पर्य काम
नाको वैरी (विषसे भी सिवाय) समझकर इस लोक परलोकके
कामनाको त्याग करना यही मोक्षका हेतु है ॥ ३७ ॥

मू०—धूमेनाव्रियतेवह्निर्यथादर्शोमलेनच ॥
यथोल्बेनावृतोगर्भस्तथातेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

यथा १ धूमेन २ वह्निः ३ आव्रियते ४ यथा ५ च ६ आदर्शः ७
मलेन ८ उल्बेन ९ गर्भः १० आवृतः ११ तथा १२ तेन १३ इदम् १४
आवृतम् १५ ॥ ३८ ॥ अ०—उ० कामका वैरीपना यह है—जैसे १
धूमकरके २ अग्नि ३ ढका है ४ और जैसे ५ । ६ शीशा (ऐना) ७
मलकरके ८ सि० मैला हो रहा है. और जैसे ❋ जेरकरके ९ गर्भ १०
ढका रहता है ११ तैसेही १२ तिसकरके अर्थात् कामकरके १३
यह १४ अर्थात् विवेक ज्ञान या आत्मा १४ ढका हुआ है, १५
तात्पर्य जैसे धूमादिने अग्नि आदिको ढक रक्खा है. तैसे ही मनके

विचार विवेक और ज्ञानको ढक रक्खा है. ये तीन दृष्टान्त उत्तम मध्यम, और कनिष्ठ, इन तीन अधिकारियोंके वास्ते हैं. जेरकेभीतर जो बच्चा होता है, उसका नाम गर्भ है. बच्चेके ऊपरसे जेर दूरकरनेमें थोड़ाही यत्न चाहता है, यह दृष्टान्त उत्तमके वास्ते है. बीचका मध्यमके वास्ते और शेष कनिष्ठके वास्ते है ॥ ३८ ॥

मू०–आवृतंज्ञानमेतेनज्ञानिनोनित्यवैरिणा ॥
कामरूपेणकौन्तेयदुष्पूरेणानलेनच ॥ ३९ ॥

कौन्तेय १ एतेन २ कामरूपेण ३ ज्ञानम् ४ आवृतम् ५ ज्ञानिनः ६ नित्यवैरिणा ७ दुष्पूरेण ८ अनलेन ९ च १० ॥ ३९ ॥ अ०– हे अर्जुन! १ इस कामरूपने २।३ ज्ञान ४ ढक रक्खाहै ५ सि० अर्थात इसलोकके या परलोकके पदार्थोंकी कामना ज्ञानको नहीं होनेदेतीहै कैसाहै यह काम? अज्ञानियोंको तो फल भोगोंके प्राप्तिके प्रयत्न करनेमें और प्राप्त हुए ऐसे भोगोंके नाश होनेमें मात्र यह वैरीसा प्रतीतहोता है अर्थात् भोग भोगनेके समय तो जीवसेभी प्याराहै और ज्ञानीको तो भोग समयभी वैरी प्रतीत होताहै. इसहेतुसे ज्ञानीका ६ नित्यवैरीहै ७ सि० ज्ञानी यह समझता है कि इन भोगोंनेही परमानन्दस्वरूपपरमात्मासे विमुख कर रक्खा है. इसवास्ते सब कालमें ज्ञानीको भोग वैरी प्रतीत होते हैं. फिर कैसा है यह काम *भोगों करके कभी पूर्ण नहीं होताहै ८ और अग्निके सदृश स्वभावहै जिसका ९।१० सि० जैसा अग्निमें जितना घी और इंधन डालाजावे उतनाही सिवाय प्रचण्ड होता है. यही कामकी गतिहै. जितनी जितनी प्राप्ति भोगोंकी होवे उतनी उतनी तृष्णा और कामना बढती जावे *सातवां आठवां औरनववां ये तीनोंपद 'कामरूपेण' इसपदके विशेषणहैं॥ ३९॥

मू०–इन्द्रियाणिमनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥
एतैर्विमोहयत्येषज्ञानमावृत्यदेहिनम् ॥ ४० ॥

अस्य १ अधिष्ठानम् २ इन्द्रियाणि ३ मनः ४ बुद्धिः ५ उच्यते ६ एषः ७ ज्ञानम् ८ आवृत्य ९ एतैः १० देहिनम् ११ विमोहयति १२ ॥४०॥ अ०—उ०कामके जीतनेकेवास्ते कामका अधिष्ठान बताते हैं अर्थात् काम जहां रहता है, उन स्थानोंको बताते हैं. क्योंकि जबतक वैरीका घर न जाना जावे, तबतक कैसे जीताजावे, इसका १ अर्थात् कामका अधिष्ठान रहनेकी जगह २ इन्द्रिय ३ मन ४ बुद्धि ५ कहते हैं ६ अर्थात् महात्मा यह कहते हैं कि इन्द्रिय मन बुद्धि कामके रहनेकी जगह हैं. क्योंकि प्रथम विषयोंको देखा, सुना फिर यह संकल्पविकल्प किया, कि इसपदार्थको भोगना योग्य है वा नहीं फिर यह निश्चय कर लिया, कि अवश्य इस पदार्थको प्राप्त करके भोगेंगे ६ सो यह७ सि० काम ❀ ज्ञानको ८ ढककर ९ इनकरके अर्थात् इन्द्रियादि करके १० जीवको ११ भ्रान्त करदेता है अर्थात् काम करके जीव अन्धासा हो जाताहै. कामनाके वश होकर बुरेभलेकी सुध नहीं रहती है १२ ॥ ४० ॥

मू०—तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौनियम्यभरतर्षभ ॥
पाप्मानंप्रजहिह्येनंज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

तस्मात् १ भरतर्षभ २ आदौ ३ इन्द्रियाणि ४ नियम्य ५ एनम् ६ पाप्मानम् ७ त्वम् ८ प्रजहि ९ हि १० ज्ञानविज्ञाननाशनम् ११ ॥ ४१ ॥ अ०—जब कि यह काम इन्द्रियादिकोंमें रहता है तिसकारणसे १ हे अर्जुन! २ सि०मोह होनेसे ❀प्रथम (आदिमें) ३ सि०ही ❀इन्द्रियोंको ४ रोककर ५ इस पापीको ६ । ७ अर्थात् कामको ७ तू ८ मार (दूरकर) ९ क्योंकि १० सि० यही ❀ ज्ञानविज्ञानका नाश करनेवाला है ११. टी० शास्त्र आचार्योंसे जो सुन समझ रक्खा है, उसको इसजगह ज्ञान कहते हैं और विशेष युक्तियों करके जो उसी ज्ञानको निश्चय किया है उसको इसजगह

कहते हैं ब्रह्म है. इतनाही समझना इसका ज्ञान, और उसका प्रत्यक्ष अनुभव होना इसका विज्ञान, यह नाम है, परंतु यहां उस ज्ञान विज्ञानका ग्रहण नहीं, क्योंकि उनको कोई नाश नहीं कर सक्ता. तात्पर्य ज्ञानविज्ञानके पीछे कामादिका उदय विद्वान्के अन्तःकरणमें होताही नहीं और जो अज्ञानीको प्रतीत होताहो तो उसको कामाभास समझना योग्यहै "रागो लिंगमबोधस्य संतु रागादयोऽबुधे" तात्पर्य रागाभास विद्वान्में रहो, ज्ञानविज्ञानकी उससे कुछ क्षति नहीं. रागादिको अज्ञानके चिह्न हैं रागादि ज्ञानविज्ञानके उदय और परिपाक नहीं होने देते हैं, यह अभिप्राय है. आनन्दामृतवर्षिणीके तीसरे अध्यायमे ज्ञानविज्ञानका लक्षण भले प्रकार निरूपण किया है ११ जबतक इन्द्रिय और विषयका संबंध नहीं हुआ है उससे पहलेही विचार करके इन्द्रियोंका निरोध करना चाहिये. जब विषयका सम्बंध होजाता है तब फिर इन्द्रिय नहीं रुकसक्ती हैं और इन्द्रियोंके रोकनेसेही मनबुद्धिमेंसे काम जाता रहता है ॥४१॥

मू०–इन्द्रियाणिपराण्याहुरिन्द्रियेभ्यःपरंमनः ॥
मनसस्तुपराबुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तुसः ॥ ४२ ॥

इन्द्रियाणि १ पराणि २ आहुः ३ इन्द्रियेभ्यः ४ मनः ५ परम् ६ बुद्धिः ७ मनसः ८ तु ९ परा १० यः ११ बुद्धेः १२ तु १३ परतः १४ सः १५ ॥ ४२ ॥ अ०–उ० कुछ आश्राभी चाहिये कि जिसकरके इन्द्रियोंको विषयोंसे रोका जावे, कामको जीता जावे, इस अपेक्षामें श्रीमहाराज आश्रा बताते हैं–(स्थूलदेहसे) इन्द्रियोंको १ श्रेष्ठ २ कहते हैं ३ सि० विद्वान्; क्योंकि सूक्ष्म हैं और प्रकाशक हैं और ❋ इन्द्रियोंसे ४ मनको ५ श्रेष्ठ ६ सि० कहते हैं; क्योंकि इन्द्रियोंका प्रेरक है और ❋ बुद्धि ७ मनसे ८ भी ९ श्रेष्ठ १० सि० है क्योंकि मनकी मालिक है. बुद्धिको मनीषा कहते हैं ❋

जो ११ बुद्धिसे १२ भी १३ श्रेष्ठ १४ सि० है अर्थात् सबका जो परमप्रकाशक है ❀ सो १५ सि० आश्रा रक्षक आत्मा है. इसीको परमपुरुष, उत्तमपुरुष, पूर्णब्रह्म, परमगति, परमधाम, राम, ऐसा कहते हैं. इससे परे पृथक् श्रेष्ठ पदार्थ कुछ नहीं ❀ "पुरुषान्नपरं किंचित्साकाष्ठासापरागतिः ॥" यह श्रुति है, 'सबकर परमप्रकाशक जोई ॥ राम अनादि अवधपति सोई' ॥ ४२ ॥

मू०—एवंबुद्धेःपरंबुद्ध्वासंस्तभ्यात्मानमात्मना ॥
जहिशत्रुंमहाबाहोकामरूपंदुरासदम् ॥ ४३ ॥

महाबाहो १ एवम् २ बुद्धेः ३ परम् ४ बुद्ध्वा ५ आत्मना ६ आत्मानम् ७ संस्तभ्य ८ कामरूपम् ९ शत्रुम् १० जहि ११ दुरासदम् १२ ॥ ४३ ॥अ०—सि० आत्मा बुद्धि आदिकोंका साक्षी, प्रेरक, और वास्तव अक्रिय, निर्विकार, बुद्धिआदिपदार्थोंसे विलक्षण है ❀ हे अर्जुन! १ इसप्रकार २ बुद्धिसे ३ परमश्रेष्ठ ४ सि० परमानन्दस्वरूप परमात्माको ❀ जानकर ५ सि० और फिर उसी ❀ बुद्धिसे ६ मनको ७ सि० आत्मामें ❀ निश्चलकरके ८ कामरूप वैरीको ९ । १० मार, त्यागकर, दूरकर ११. सि० कैसा है यह काम ❀ दुःखकरके प्राप्ति है जिसकी १२ अर्थात् बड़े बड़े दुःखों करके काम (भोग) प्राप्त होते हैं ॥ ४३ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४.

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ इमंविवस्वतेयोगंप्रोक्तवानहमव्ययम् ॥ विवस्वान्मनवेप्राहमनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥

इमम् १ अव्ययम् २ योगम् ३ विवस्वते ४ अहम् ५ प्रोक्तवान् ६ विवस्वान् ७ मनवे ८ आह ९ मनुः १० इक्ष्वाकवे ११ अब्रवीत् १२ ॥ १ ॥ अ०—उ० पीछे दो अध्यायोंमें जो निरूपण किया कर्म संन्यासयोग, अर्थात् ज्ञानयोग ज्ञाननिष्ठा और उसका साधन (उपाय) कर्मयोग इसीमें सब वेदोंका अर्थ होगया. प्रवृत्तिलक्षण और निवृत्तिलक्षण यही दोप्रकारका धर्म, समस्त वेदार्थ है. सोई श्रीभगवान्ने गीतामें कहा है. ये दोनों धर्म अनादि हैं सोई श्रीभगवान् कहते हैं—इस अव्यययोगको १ । २ । ३ सि० प्रथम सृष्टिके आदिमें ❀ आदित्यके अर्थ ४ मैं ५ कहता भया अर्थात् यह ज्ञानयोग साधनसहित पहले मैंने आदित्यसे कहा ६. आदित्य ७ मनुके अर्थ ८ कहते भये अर्थात् आदित्यने मनुसे कहा ९. मनु १० इक्ष्वाकुके अर्थ ११ कहते भये १२ अर्थात् मनुने इक्ष्वाकुसे कहा. कर्मयोग और ज्ञानयोगको पृथक् पृथक् स्वतंत्रमोक्षके साधन दोयोग नहीं समझना, किन्तु केवल एक ज्ञानयोगही मोक्षका साधन है. कर्मयोगसाधन उसका अंग है. इसीवास्ते श्रीभगवान्ने योगशब्दके विषय एकवचन कहा-द्विवचनवाला प्रयोग नहीं,क्योंकि मोक्षमार्ग दो नहीं. इसज्ञानयोगका अव्यय अविनाशी फल है इसवास्ते योगकोभी अव्यय कहा. नववें और बारहवें पदमें एकवचनका प्रयोग है. अर्थमें बहुवचन आदरार्थ है १२ ॥ १ ॥

मू०—एवंपरंपराप्राप्तमिमंराजर्षयोविदुः ॥
सकालेनेहमहतायोगोनष्टःपरन्तप ॥ २ ॥

एवम् १ परंपराप्राप्तम् २ इमम् ३ राजर्षयः ४ विदुः ५ परंतप ६ महता ७ कालेन ८ इह ९ सः १० योगः ११ नष्टः १२॥२॥ अ०—पीछले मंत्रमें जसे कहा इसप्रकार १ परम्परासे प्राप्त है २ सि० यह ज्ञानयोग ❀इसको ३ सि० पहलेसेही बड़े बड़े ❀राजऋषि ४

जानते हैं ९. तात्पर्य तू भी क्षत्रियहै, तुझकोभी यह ज्ञानयोग उपायस-
हित जानकर इसज्ञानयोगका अनुष्ठान करना योग्य है. हे अर्जुन ! ६
बहुत ७ कालकरके ८ (बहुतकालसे ७।८) इसलोकमें ९ सो १० योग
अर्थात् ज्ञानयोग ११ छिप गयाहै १२. तात्पर्य भेदवादियोंका
राजबल होजानेसे और भेदवादीपंडितोंके अनर्थ करनेसे यह वेदोक्त
ज्ञानयोग साक्षात् मोक्षका साधन लुप्त होगया है. कुछ जातानहीं रहा
नष्ट नहीं हुआ, क्योंकि उसका उपदेश करनेवाला अविनाशी अच्युत
मैं विद्यमान हूं. इसीहेतुसे वो ज्ञानयोगभी अव्यय नित्य है ॥ २ ॥

मू०—सएवायंमयातेऽद्ययोगःप्रोक्तःपुरातनः ॥
भक्तोऽसिमेसखाचेतिरहस्यंह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥

सः १ एव २ पुरातनः ३ अयम् ४ योगः ५ मया ६ ते ७ अद्य ८
प्रोक्तः ९ मे १० भक्तः ११ सखा १२ च १३ असि १४ इति १५
हि १६ एतत् १७ उत्तमम् १८ रहस्यम् १९ ॥ ३ ॥ अ०—जो
ज्ञान मैंने आदित्यसे कहा, सोई १।२ पहिला अनादि ३ यह ४ योग ५
मैंने ६ तेरेअर्थ ७ (तुझसे ७) अब ८ कहाहै ९ [तू] मेरा १० भक्त ११
और सखा १२।१३ है १४. यह १५ निश्चय १६ सि० रख.
इसीवास्ते ❋ यह १७ उत्तम १८ रहस्य १९ अर्थात् ज्ञानयोग
मैंने तुझसे कहा अथवा यह ज्ञानयोगही श्रेष्ठ निश्चित श्रेयहै, इसीवास्ते
मैंने तुझसे कहा. तूने द्वितीय अध्यायमें मुझसे कहाथा कि जो
निश्चित श्रेय हो सो मुझसे कहो ॥ ३ ॥

मू०—अर्जुनउवाच ॥ अपरंभवतोजन्मपरंजन्मविवस्वतः ॥
कथमेतद्विजानीयांत्वमादौप्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

भवतः १ जन्म २ अपरम् ३ विवस्वतः ४ जन्म ५ परम् ६
एतत् ७ कथम् ८ विजानीयाम् ९ त्वम् १० आदौ ११ प्रोक्तवान् १२
इति १३ ॥ ४ ॥ अ०—उ० श्रीभगवान्‌के कहनेको असंभव

मानता हुआ अर्जुन कहता है—कि, हे महाराज! आपका १ जन्म २ पीछे ३ सि० द्वापरके अन्तमें अब हुआ ❀ आदित्यका ४ जन्म ५ पहले ६ सि० द्वापरके अन्तमें हुआ ❀ यह ७ कैसे ८ मैं जानूं ९ आप १० सि० सृष्टिके ❀ आदिमें ११ सि० आदित्यसे ❀ कहते भये अर्थात् पहले आपने आदित्यसे किसप्रकार कहा १२ यह १३ सि० मेरा प्रश्न है. अर्जुनके इस प्रश्नसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि, अर्जुनको ब्रह्मका ज्ञान नहीं. क्योंकि पूर्णब्रह्म अनादि, अज, अमरको अबतक वसुदेवजीका पुत्रही समझता है ❀ ॥ ४ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ बहूनिमेऽव्यतीतानिजन्मानि तवचार्जुन॥ तान्यहंवेदसर्वाणिनत्वंवेत्थपरंतप ॥ ५ ॥

अर्जुन १ मे २ बहूनि ३ जन्मानि ४ व्यतीतानि ५ तव ६ च ७ तानि ८ सर्वाणि ९ अहम् १० वेद ११ परंतप १२ त्वम् १३ न १४ वेत्थ १५ ॥ ५ ॥ अ०—उ० अर्जुनके प्रश्नका अभिप्राय समझकर श्रीभगवान् कहते हैं—हे अर्जुन! १ मेरे २ बहुत ३ जन्म ४ व्यतीत हुए हैं ५ सि० और ❀ तेरे ६ भी ७ तिन सबको ८।९ मैं १० जानता-हूं ११ शुद्धसत्त्वप्रधानमायोपहित होनेसे हे अर्जुन। १२ तू १३ नहीं १४ जानता है १५. सि० मलिनसत्त्वप्रधानअविद्योपहित होनेसे ❀ तात्पर्य आदित्यको मैंने औररूप करके उपदेश किया है पहल जन्ममें यह तू समझ ॥ ५ ॥

मू०—अजोपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोपिसन् ॥ प्रकृतिंस्वामधिष्ठायसंभवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥

अव्ययात्मा १ अजः २ अपि ३ सन् ४ भूतानाम् ५ ईश्वरः ६ अपि ७ सन् ८ स्वाम् ९ प्रकृतिम् १० अधिष्ठाय ११ आत्ममायया १२ संभवामि १३ ॥ ६ ॥ अ०—उ० जब कि ईश्वर निर्विकार जन्मादि रहित है उसका बारंबार जन्म कैसे होसक्ता है? यह शंकाकरके कहते

हैं.--निर्विकार है आत्मा जिसका अर्थात् मेरा १ सि० सो मैं निर्वि-
कार ❀ जन्मरहित २ भी ३ हुआ ४ भूतोंका ५ ईश्वर ६ भी ७ हुआ ८
अपने ९ मायाका १० आश्रय करके ११ अपनी शक्ति सामर्थ्य
करके १२ प्रकटहोताहूं १३ टी० त्रिगुणात्मकत्रिगुणवाली शुद्धसत्त्व-
प्रधानमायाको अपने अधीन करके मायाके सम्बन्धसे मायोपहित
होकर अवतार लेता हूं ९।१०११. ज्ञानबलवीर्य आदि अलौकिक
अचिंत्यशक्तिकरके अपनी इच्छापूर्वक अवतार लेताहूं. वास्तव
जीववत् मैं देहधारी नहीं. यद्यपि जन्मरहित निर्विकार ईश्वरभी मैं हूं
तोभी मायामात्र मेरे जन्म हैं. वास्तव मैं अज हूं ॥ ६ ॥

मू०—यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिभारत ॥
अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानंसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

भारत १ यदा २ यदा ३ धर्मस्य ४ ग्लानिः ५ भवति ६
अधर्मस्य ७ अभ्युत्थानम् ८ तदा ९ हि १० अहम् ११ आत्मा-
नम् १२ सृजामि १३ ॥ ७ ॥ अ०—उ० किस कालमें आपका जन्म
होता है, इस अपेक्षामें कहतेहैं.—हे अर्जुन ! १ जिसजिसकालमें २।३
धर्मकी ४ हानि ५ होती है ६ सि० और ❀ अधर्मकी ७
अधिकता ८ सि० होती है ❀ तिसकालमें ९ ही १० मैं ११ आ-
त्माको १२ प्रकट करताहूं अर्थात् मैं अवतार लेता हूं १२।१३ टी०
ज्ञानयोगसाधनके सहित जब कम होताहै, तबही मैं अवतार लेता हूं.
मेरे अवतार दोप्रकारके हैं; एक नित्य अवतार, और दूसरा निमित्त
अवतार. ज्ञानी विरक्त महात्मा साधु मेरे नित्य अवतार हैं और राम-
कृष्णादि निमित्त अवतार हैं४ मनुष्योंके कल्पित पाखण्डपंथसम्प्रदा-
योंकी जब वृद्धि होती है तबहीं नित्य वा निमित्त अवतार लेताहूं ॥ ७ ॥

मू०—परित्राणायसाधूनांविनाशायचदुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थायसंभवामियुगेयुगे ॥ ८ ॥

साधूनाम् १ परित्राणाय २ दुष्कृताम् ३ च ४ विनाशाय ५धर्मसंस्थापनार्थाय ६ युगे७युगे८संभवामि ९ ॥ ८ ॥ अ०—उ० आप अवतार क्यों लेते हो, इस अपेक्षामें कहते हैं—साधु महात्माओंकी १ रक्षा (सहायता) के लिये २ और दुष्टोंका ३।४ नाश करनेके वास्ते५ सि० इसप्रकार ❁ धर्मके स्थिर करनेकेवास्ते अथवा ज्ञानयोगको साधनोंके सहित स्थिर करनेके वास्ते ६ युगयुगमें ७।८ अर्थात् सत्ययुगादि हरएकयुगमें जब जब दुष्टलोग साधुलोगोंसे वैर (विरोध) करते हैं, तब मैं उसी कालमें ८ अवतार लेता हूं९. तात्पर्य साधुजनोंकी रक्षा करनेसे धर्मकी रक्षा होती है. धर्मके स्थिर रहनेसे अर्थकाममोक्षकी प्राप्ति होती है. दुष्टोंको जो दंड देना है यहभी नारायणकी उनपर कृपा है. क्योंकि जैसे माता पिता जबतक बालकको ताडना नहीं करते, तबतक वो नहीं सुधरता. जैसे मातापिताकी ताडना निर्दयकरके नहीं, ऐसेही महेश्वरकी ताडना दया करकेही होती है. जो लोग लोकवासनादिको त्यागकर केवल ब्रह्मपरायण हैं, सिवाय परमेश्वरके और किसी राजा मित्र पुत्र धनादिका आश्रा नहीं रखते, ऐसे साधु महात्माओंके वास्ते अवतार होता है ॥ ८ ॥

मू०—जन्मकर्मचमेदिव्यमेवंयोवेत्तितत्त्वतः ॥
त्यक्त्वादेहंपुनर्जन्मनैतिमामेतिसोऽर्जुन ॥ ९ ॥

दिव्यम् १ मे २ जन्म ३ कर्म ४ च ५ एवं ६ यः ७ तत्त्वतः ८ वेत्ति९ अर्जुन १० सः ११ देहम् १२ त्यक्त्वा १३ पुनः १४ जन्म १५ न १६ एति १७ मा १८ एति १९ ॥ ९ ॥ अ०—उ० परमेश्वरके जन्मकर्मोंको जो यथार्थ जानताहै, वो परमपद ऐसे मोक्षको प्राप्त होताहै, सोई कहतेहैं—मायामात्र अलौकिक १ मेरे २ जन्म ३ और कर्मको ४।५ इसप्रकार ६ अर्थात् जब धर्मका नाश होने लगता है, तब और धर्म प्रचारक साधुलोगोंकी रक्षा करनेके लिये और दुष्टोंके नाश करनेके

लिये अवतार लेता हूं इस प्रकार ६ जो ७ यथार्थ परमार्थदृष्टिसे ८ जानता है९ हे अर्जुन! १० सो ११ देहको १२ त्यागकर १३ फिर १४ जन्मको १५ नहीं १६ प्राप्त होता है १७ सि० वो ❋मुझ शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको १८ प्राप्त होता है १९ तात्पर्य वास्तव न उनमें कर्मका करना बनसक्ताहै, क्योंकि परमेश्वर निर्विकार है. अध्यारोपमें व्यवहारमात्रदृष्टिकरके तत्त्वज्ञानके प्राप्तिकेलिये भगवत्के जन्मकर्म विद्वानोंने निरूपण किये हैं. और जो सिद्धान्तमेंभी यह कहते हैं, कि भगवत्के जन्मकर्म वास्तव सत्य हैं. ईश्वर अपने अचिन्त्यशक्तियों करके अपने अधीन हुआ अपने इच्छासेही जन्म लेता है, और औरोंके भलेके लिये कर्म करता है. वो आप्तकाम है. प्रथम तो इस अर्थमें यह शंका है कि ईश्वर नित्य निर्विकार न रहा, ऐसा प्रतीत होताहै. किसीकालमें (प्रलयादिकालमें) ईश्वर निर्विकार कहा जाता होगा. सो ईश्वर अब ते रक्षादि कर्म करनेसे विकारवान् स्पष्ट प्रतीत होता है. और प्रलयसमयमें तो जीवभी निर्विकार होता है. इस प्रकार जीवकोभी निर्विकार कहना चाहिये. दूसरी शंका यह है कि यह कौन नहीं जानता है, कि ईश्वरके जन्मकर्म अपने वास्ते नहीं परायेवास्तेहैं. ईश्वर आप्तकाम अचिन्त्यशक्तिमान् स्वतंत्र स्वाधीन है,यह बात सब जानते हैं. परन्तु केवल इतने जाननेसे कोई परमेश्वरको प्राप्त नहीं होता; क्योंकि यह ज्ञान ऐसा है कि बालकोंकोभी है, सबही मुक्त होजाना चाहियें,श्रीमहाराजके कहनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि भगवत्की प्राप्ति केवल ईश्वरके ज्ञानसेही होती है. तात्पर्य जिस ज्ञानसे परमेश्वरकी प्राप्ति होती है, वो ईश्वरका ज्ञान यह है, कि परमेश्वरको नित्य, निर्विकार, शुद्ध, सच्चिदानन्द ऐसे आत्मासे अभिन्न जानना योग्य है और जन्मकर्म परमेश्वरके वास्तव नहीं. मायामात्र, तत्त्वज्ञानके प्राप्तिकेलिये अध्यारोपमें कहे जाते हैं. यही तात्पर्य वेदोंका, और विद्वानोंका अनुभवभी है ॥ ९ ॥

मू०—वीतरागभयक्रोधामन्मयामामुपाश्रिताः ॥
बहवोज्ञानतपसापूतामद्भावमागताः ॥ १० ॥

ज्ञानतपसा १ पूताः २ माम् ३ उपाश्रिताः ४ मन्मयाः५ वीतरागभयक्रोधाः ६ बहवः७ मद्भावम् ८ आगताः ९ ॥ १० ॥ अ०—उ० ब्रह्मज्ञानसे पृथक् किसीसाधनकीभी अपेक्षा न रखकर, केवल ब्रह्मज्ञानसे ही असंख्यात जीव मुक्त होगए. ब्रह्मज्ञानही सनातनसे मोक्षमार्गहै. सोई कहतेहैं—ज्ञानरूप तपकरके अर्थात् ब्रह्मज्ञानकरके १ पवित्र हुए २ मुझ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप आत्माको ३ आश्रा कियेहुए ४ अर्थात् केवल ज्ञाननिष्ठ हुए ४ ब्रह्मस्वरूप हुए५ दूरहोगये हैं रागभयक्रोध जिनसे ६ सि० ऐसे ब्रह्मज्ञानी ❋बहुत ७ मोक्षको ८ प्राप्तहुए ९.टी०तप नाम विचारका है, (तप विमर्शने, इति धातुपाठे द्रष्टव्यम्) ब्रह्मज्ञान और ब्रह्मविचार ये दोना एकही बात है, ज्ञान और तप शब्दका अर्थ एककरनेसे. अभिप्राय यह है कि ज्ञान स्वतंत्र मोक्षका हेतु है, किसी और साधनकी इच्छा नहीं रखता. शास्त्रमें जो यह सुना जाता है, कि तप करके ज्ञान होता है. तात्पर्यार्थ इसका यही है, कि ब्रह्मविचार करके ज्ञानहोता है. विचारका स्वरूप यह है. ऐसेविचार करके कि वो ब्रह्म निर्गुण है वा निर्विकार है, मुझसे भिन्न है वा अभिन्न है, साकार है वा निराकार; इस प्रकार मनन करनेका नाम विचारहै; इस विचारसे निराकार निर्गुण ब्रह्मस्वरूप आत्मासे अभिन्न जानकर, पवित्र होकर ब्रह्मको प्राप्त हुए. ज्ञानके बराबर कोई साधन पवित्र नहीं. पवित्रसेही पवित्र होसक्ता है इस हेतुसे ज्ञानही मोक्षका हेतु है. पढ़ना सुनना साधन है. कर्मउपासना अन्य प्रकार है ॥ १० ॥

मू०—येयथामांप्रपद्यन्तेतांस्तथैवभजाम्यहम् ॥
ममवर्त्मानुवर्तन्तेमनुष्याःपार्थसर्वशः ॥ ११ ॥

ये१ माम् २ यथा ३ प्रपद्यन्ते ४ तान् ५ तथा६ एव ७ अहम् ८
भजामि ९ पार्थ १० सर्वशः ११ मनुष्याः १२मम १३ वर्त्म १४
अनुवर्तन्ते १५॥११॥अ०–उ० अष्टांगयोग,सांख्य,कर्म, भेदभक्ति
अभेदभक्ति, ब्रह्मज्ञानपर्यन्त ये सब क्रमसे मोक्षमार्ग हैं; परंतु साक्षात्
स्वतंत्रमुक्ति ब्रह्मज्ञानियोंको ही प्राप्त होती है, और लोक पीछे क्रमसे
ज्ञानद्वारा मुक्त होते हैं, सोई कहते हैं.–जो१ मुझशुद्धसच्चिदानन्दको २
जैसे ३ भजते हैं ४ तिनको ५ तैसेही ६।७ मैं ८ भजता हूं ९
अर्थात् जैसे फलकी मनमें भावना करके मेरी उपासना करते हैं
उनको मैं वैसाही फल देताहूं अर्थात् मुक्ति चाहते हैं उनको
मैं मुक्त करताहूं और जो वृन्दावनके वृक्ष गीदड़ बना चाहते हैं
मुक्ति नहीं चाहते, उनको मैं वोही फल देता हूं ९ सि० परंतु❀हे
अर्जुन! १० सब प्रकारकरके ११ मनुष्य १२ मेरे १३ सि० ही❀
मार्गमें अर्थात् ज्ञानमार्गमें १४ पीछे वर्तते हैं १५, सि० तब मुक्त
होतेहैं ❀ अर्थात् योगकर्मभक्तितपआदि सब साधनोंका अनुष्ठान
करके पीछे सब ज्ञाननिष्ठाका अनुष्ठान करते हैं,तब मुक्त होते हैं॥११॥

मू०–कांक्षंतःकर्मणांसिद्धियजन्तइहदेवताः॥
क्षिप्रंहिमानुषेलोकेसिद्धिर्भवतिकर्मजा॥१२॥

कर्मणाम् १ सिद्धिम् २ कांक्षंतः ३ इह ४ देवताः ५ यजन्ते ६
मानुषे७लोके ८क्षिप्रम् ९ हि१० सिद्धिः ११ भवति १२ कर्मजा १३
॥१२॥अ०–उ० मोक्षकेवास्ते जो सब भजन नहीं करते उसमें
यह कारण है अर्थात् ज्ञानमें निष्ठा और श्रद्धा, लोगोंको जिस
वास्ते नहीं होती, और जिस हेतुसे ज्ञानको थोथा और तुषोंका
कूटना कहते हैं, वो हेतु यह है.–कर्मोंके सिद्धिको १।२
चाहनेवाले अर्थात् शब्दादिभोग और स्त्रीपुत्रादिके चाहने
वाले ३ इस लोकमें ४ साकारदेवताओंका ५ पूजन करते हैं

सि० साक्षात् पूर्णब्रह्म शुद्धसच्चिदानन्द ऐसे आत्माकी उपासना नहीं करते जिससे साक्षात् परमपदकी प्राप्ति होती है ❀ मनुष्यलोकमें ७।८ शीघ्र ९ ही १० सिद्धि ११ होती है १२. कर्मजा अर्थात् कर्मोंसे उत्पत्ति है जिससिद्धिकी १३ अर्थात् कर्मोंका फल (स्त्रीपुत्रधनादि) मनुष्यलोकमेंही शीघ्र प्राप्त होजाती है १३. तात्पर्य कर्मोंके करनेसे धनपुत्रादि फलकी प्राप्ति शीघ्र होजातीहै, ज्ञानका फल परमपद, तितिक्षा वैराग्य त्याग चाहता है. अर्थात् परमपदकी प्राप्ति शब्दादिभोगोंके त्यागनेसे होती है. इसहेतुसे उनकी ज्ञानमें निष्ठा नहीं होती और ज्ञानको थोथा भूसेका कूटना बताते हैं. सिवाय इसके ब्रह्मज्ञान विनाविद्याके मूर्खोंकी समझमें नहीं भी आता. उसका अनुष्ठान करना तो दूर रहा. तात्पर्य मूर्ख आलसी विषयी ज्ञानमें श्रद्धा नहीं रखते अनित्यपदार्थोंमें निष्ठाकरके अनित्यफलकोही प्राप्त होते हैं और ज्ञाननिष्ठावाले परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होतेहैं ॥ १२ ॥

मू०–चातुर्वर्ण्यंमयासृष्टंगुणकर्मविभागशः ॥
तस्यकर्तारमपिमांविद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥

गुणकर्मविभागशः १ चातुर्वर्ण्यम् २ मया ३ सृष्टम् ४ तस्य ५ कर्तारम् ६ अपि ७ माम् ८ विद्धि ९ अकर्तारम् १० अव्ययम् ११ ॥ १३ ॥ अ०–उ०जो निष्कामवेदोक्त अनुष्ठान करते हैं, और जो सकाम भजन करते हैं, ये सब चारों वर्ण आपकेही रचे हुए हैं. इन चारोंवर्णोंमें जो विषमता आपने करदीहै, इसी हेतुसे कोई सकामहै, कोई निष्काम है और इस दोषके कारण आपही हैं. मनुष्योंका कुछ दोष नहीं, यह शंका करके कहतेहैं.–सत्त्वादिगुणोंके विभागसे कर्मोंका विभाग करके १ टी०'गुणविभागेन कर्मविभागः तेन इति समासः' अर्थात् जिसमें जैसा गुण देखा उसीके अनुसार उसके कर्मोंका विभाग करदिया. जैसे एकजीवको सतोगुणप्रधान देखा तो उसी सतोगुणके

अनुसार शमदमादि उसके कर्मोंका विभाग कर दिया, और एक ना
ब्राह्मण उसका प्रसिद्ध करदिया. इसीप्रकार १ चारोंवर्ण २ मैंने ३
रचे हैं ४. अध्यारोपमें मायामात्र तिनका ५ कर्ता ६ भी ७ मुझको ८
जान तू ९ सि० और वास्तव परमार्थमें ❀ अकर्ता १० निर्विकार ११
सि० मुझको तू जान. पीछे भी इसी अध्यायमें परमेश्वरको निर्विका
सिद्धकर चुके, और आगे पंचमादि अध्यायोंमें भलेप्रकार सिद्ध किया
है और चारोंवर्णोंका भेद अठारहवें अध्यायमें स्पष्ट लिखाहै ❀ ॥ १३ ॥

मू०—नमांकर्माणिलिम्पन्तिनमेकर्मफलेस्पृहा ॥
इतिमांयोऽभिजानातिकर्मभिर्नसबध्यते ॥ १४ ॥

कर्माणि १ माम् २ न ३ लिम्पन्ति ४ न ५ मे ६ कर्मफले ७ स्पृहा ८
यः ९ माम् १० इति ११ अभिजानाति १२ सः १३ कर्मभिः १४
न १५ बध्यते १६ ॥ १४ ॥ अ०— वास्तव अकर्ता होनेसे ही
कर्म १ मुझको २ नहीं ३ स्पर्श करते ४ सि० और ❀ न ५ मुझको ६
कर्मोंके फलमें ७ चाह ८ सि० है ❀ जो ९ मुझ सच्चिदानन्दस्वरूप
आत्माको १० ऐसे ११ जानता है १२ सो १३ कर्मों करके १४
नहीं १५ बन्धनको प्राप्त होता है १६. टी० जैसे ईश्वर वास्तव
अकर्ता हैं ऐसेही जीवात्माको समझना चाहिये, नहीं तो ईश्वरको तो
कोईभी विकारवान् नहीं जानता. ईश्वरको अकर्ता निर्विकार जान
नेसे जीव मोक्षको नहीं प्राप्त होता, आत्माको वास्तव अकर्ता निर्वि
कार जाननेसे मोक्ष होता है ॥ १४ ॥

मू०—एवंज्ञात्वाकृतंकर्मपूर्वैरपिमुमुक्षुभिः ॥
कुरुकर्मैवतस्मात्त्वंपूर्वैःपूर्वतरंकृतम् ॥ १५ ॥

एवम् १ ज्ञात्वा २ पूर्वैः ३ मुमुक्षुभिः ४ अपि ५ कर्म ६ कृतम् ७
पूर्वैः ८ पूर्वतरम ९ कृतम् १० तस्मात् ११ त्वम् १२ एव १३
कर्म १४ कुरु १५ ॥ १५ ॥ अ०—उ० अहंकारादि रहितहोकर कि-

हुआ कर्म बन्धका हेतु नहीं. आत्मा वास्तव अकर्ता है. इसप्रकार १ जानकर २ पहले जनकादि मुक्तिके इच्छावालोंने ३।४ भी ५ कर्म६ किया है७.सि०अन्तःकरणके शुद्धिके लिये कुछ अभी नया यह कर्मयोग तुझको मैं उपदेश नहीं करताहूं. जब कि ❋ पहले जनकादिने ८ पहले त्रेतादियुगोंमें ९ किया है१ तिस-कारणसे ११ तू १२ भी१३ कर्मको १४ कर १५ टी०पहलोंने अर्थात् प्रथम सत्यादि युगोंमें जो मुक्तिके इच्छावाले हुऐ हैं उन्होंने-भी किया है-जो तुझको ब्रह्मज्ञान है तो लोक संग्रहके लिये कर्म-कर और जो ज्ञान नहीं है,तो अन्तःकरणके शुद्धिके लिये कर्म कर यह तात्पर्य श्रीमहाराजका है ॥ १५ ॥

मू०—किंकर्मकिमकर्मेतिकवयोऽप्यत्रमोहिताः ॥
तत्तेकर्मप्रवक्ष्यामियज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽशुभात्॥१६॥

कर्म १ किम् २ अकर्म३ किम्४ इति५ अत्र६ कवयः७ अपि८ मोहिताः ९ तत् १० कर्म ११ ते १२ प्रवक्ष्यामि १३ यत् १४ ज्ञात्वा १५ अशुभात् १६ मोक्ष्यसे १७ ॥ १६ ॥ अ०—उ०स्नान, संध्या, पाठ, पूजा,जप, साधुसेवा इत्यादि कर्म कहलाते हैं. जिस-विधिसे इनको पूर्वमीमांसावाले करते हैं, उसीविधिसे मैंभी करताहूं. कर्म करनेमें और क्या विचित्रता (विशेपता) है कि, जो वारंवार आप मुझसे कहतेहो कि जैसे पहले लोग कर्म करते आए हैं उस-प्रकार तू कर्म कर. यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं—कि लोकप्रसिद्ध परम्परामात्रकरके कर्म मुक्तिके हेतु नहीं. विद्वान् ज्ञानी जैसे उपदेश करें उसप्रकार कर्म करनेसे वे कर्म मुक्तिके हेतु हैं. कर्मका स्वरूप समझना कठिन है, मैं तुझको समझाऊंगा. कर्म १ क्या २ सि०है और ❋ अकर्म३ क्या सि०है ❋ यह ५ सि०जो वात है ❋ इसमें६ कविपंडित७ भी८ भ्रान्त होगये हैं ९ तिसकर्मको

१०।११[मैं]तुझसे१२ कहूंगा१३. जिसको१४ जानकरके१५ संसारसे १६ [तू] मुक्त होजायगा १७. तात्पर्य क्या कर्म करना चाहिये और किसप्रकार करना चाहिये, कौनसा कर्म न करना चाहिये इसबातके समझनेमें पंडितभी सन्देह और विपर्ययको प्राप्त होजाते हैं दृष्टांतसे इसवातको स्पष्ट करते हैं जैसे एक औषधी गरमीको दूर करती है तबभी उसके खानेकी रीति तोल समय बुद्धिमान् वैद्यसे बूझना योग्यहै, क्योंकि बुद्धिमान् वैद्य देशकालवस्तुका विचार कर कहेगा. प्रसिद्ध है कि एकही दवा किसीदेशमें फल करती है, किसीमें नहीं.वा दूसरे देशमें उलटा फलभी करदेती है. इसीप्रकार कालवस्तुमें समझ लेना. दवाके साथ जलादि मिल जानेसे औरका और फल होजाता है. इसी प्रकार कर्मोंकी व्यवस्था है. शास्त्रमें जो यह वारंवार उपदेश है, कि गुरुके बिना सर्व धर्म निष्फल है यह सत्य है; क्योंकि देशकालवस्तुका विचार करना ऐसीऐसी वहुत वातें केवल शास्त्रके पढ़ने सुननेसे नहीं मिलती है. सद्गुरुमहापुरुषोंसे एकान्तमें मिलती हैं और सत्पुरुषोंका यह नियम है, कि वे अपने अनन्य भक्तको बताते हैं. नहीं तो संसारमें यह कहानी सची है, कि"जैसे जिसका गाना, वैसाही दूसरेका वजाना"अर्थात् जैसे दुनियांके लोक चतुर हैं, उन्होंसे सिवाय विद्वान् हैं ॥ १६ ॥

मू०-कर्मणोह्यपिबोद्धव्यंबोद्धव्यंचविकर्मणः ॥
अकर्मणश्चबोद्धव्यंगहनाकर्मणोगतिः ॥ १७॥

कर्मणः १ अपि २ बोद्धव्यम् ३ विकर्मणः ४ च ५ बोद्धव्यम् ६ अकर्मणः ७ च ८ बोद्धव्यम् ९ हि १० कर्मणः ११ गतिः १२ गहना १३ ॥ १७ ॥ अ०-उ०कर्मका स्वरूप यथार्थ जानकर कर्म करना चाहिये, भेडकेसी चाल अच्छी नहीं. यह श्रीमद्भग

समझाते हैं–कर्मका १ सि०तत्त्व ❀ भी २ जानना योग्य है ३. और विकर्मका ४।५ सि० तत्त्वभी ❀ जानना योग्य है ६ और अकर्मका ७।८ सि० तत्त्वभी जानना योग्य है ९, क्योंकि १० कर्मकी ११ गति १२ गहना १३ अर्थात् कर्म अकर्म और विकर्म इन तीनोंकी व्यवस्था गम्भीर (कठिन विषम)है. टी० वेदोक्तविधिको कर्म कहते हैं १. वेदोक्तनिषेधको विकर्म कहते हैं ४. कुछ न करनेको अकर्म कहतेहैं ७. तात्पर्य भलेप्रकार समझकर कर्मोंको करना योग्य है ॥ १७ ॥

मू०–कर्मण्यकर्मयःपश्येदकर्मणिचकर्मयः ॥
सबुद्धिमान्मनुष्येषुसयुक्तःकृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

यः १ कर्मणि २ अकर्म ३ पश्येत् ४ यः ५ च ६ अकर्मणि ७ कर्म ८ सः ९ मनुष्येषु १० बुद्धिमान् ११ सः १२ कृत्स्नकर्मकृत् १३ युक्तः १४ ॥ १८ ॥ अ०–उ० जिस कर्मको जानकर संसारसे तू मुक्त होजायगा वो कर्म तुझसे म कहूंगा, श्रीभगवान्ने पीछे यह प्रतिज्ञा करीथी सो अब कहते हैं अर्थात् ज्ञानी का लक्षणभी निरूपण करते हैं.–जो १ कर्ममें २ अकर्म ३ देखता है ४ और जो ५।६ अकर्ममें ७ कर्म ८ सि० देखता है ❀ सो९मनुष्योंमें१० ज्ञानी ११ सि० है. क्योंकि❀सो १२ समस्त कर्म करता हुआ१३ सि० भी ❀ युक्त १४ रहता है ❀ अर्थात् समाहित सावधान रहता है, आत्माको अकर्ता जानता हुआ समाधिनिष्ठ रहता है. टी० शरीरप्राणेन्द्रियांतःकरणके व्यापारकर्ममें २ आत्माको कर्मरहित अकर्ता अकर्म ३ जो जानता है, और अकर्मरूप ब्रह्ममें संसारकर्मको कल्पित जो जानता है, सोई ज्ञानी है सोई समस्तकर्मोंका करताहै, सोई सावधन है, स्वरूपमें अथवा निष्कामकर्ममें जो अकर्म देखता है अन्तःकरणशुद्धिद्वारा और ज्ञानद्वारा मुक्तिका

हेतु होनेसे, और अकर्ममें अर्थात् बिना ज्ञान कर्म न करनेमें जो कर्मको अर्थात् संसारको देखता है. अन्तःकरणशुद्ध न होनसे और ब्रह्मज्ञान न होनेसे कर्मोंका न करना संसारबन्धनका हेतु है. ऐसे जो समझता है, सो मनुष्योंमें चतुर है. सो समस्तकर्म करता हुआ भी युक्तयोगी है. तात्पर्य ज्ञानावस्थामें आत्माको अकर्ता समझना इसमें तो कुछ सन्देह है नहीं, परन्तु अज्ञानावस्थामेंभी आत्माको अकर्ता समझना योग्य है अर्थात् कर्मोंका अनुष्ठान करनेके समय भी आत्मा अकर्ता निर्विकार है, यह समझना चाहिये और जबतक ज्ञान न हो तबतक निष्काम असंग होकर आसक्तिरहित कर्मोंका अनुष्ठान करना योग्य है और ज्ञानकालमें ज्ञानीके दृष्टिमें कर्म अकर्म और विकर्म ये सब सम हैं, यह इसमंत्रका अभिप्राय है और इसी अर्थको अगले पांचश्लोकोंमें और दूसरे प्रकारकरके स्पष्ट निरूपण करेंगे ॥ १८ ॥

मू०—यस्यसर्वेसमारम्भाःकामसंकल्पवर्जिताः ॥
ज्ञानाऽग्निदग्धकर्माणंतमाहुःपंडितंबुधाः ॥ १९ ॥

यस्य १ सर्वे २ समारम्भाः ३ कामसंकल्पवर्जिताः ४ तम् ५ बुधाः ६ पंडितम् ७ आहुः ८ ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम् ९ ॥ १९ ॥

अ०—जिसके १ समस्त २ कर्म ३ कामसंकल्प करके वर्जित ४ अर्थात् विनाकामना और संकल्पके ४ सि० आभासमात्र होते हैं अर्थात् ज्ञानी जो कर्म करता है, वो कर्म न कुछ दृढइच्छा करके करता है, और न कुछ संकल्पकरके किसी फल भोगकी कामना कल्पनाकरके करता है. स्वाभाविक जिसके सब कर्म होते हैं ॐ तिसको ५ विद्वान् लोग ६ विद्वान् ७ कहतेहैं ८. सि० कैसा है सो विद्वान् ❋ ज्ञानरूपअग्निकरके भस्म करदिये हैं कर्म जिसने ९ अर्थात् ज्ञानीके कर्मभी अकर्म हैं. टी०जिनका प्रारम्भ कियाजा-

तिनकोही कर्म कहते हैं ३ इच्छा और उस इच्छाका कारण संकल्प इन दोनों करके रहित विद्वान्के कर्म हैं. इसी हेतुसे वे कर्म अकर्म हैं ४ ॥ १९ ॥

मू०—त्यक्त्वाकर्मफलासंगंनित्यतृप्तोनिराश्रयः ॥
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपिनैवकिंचित्करोतिसः ॥ २० ॥

कर्मफलासंगम् १ त्यक्त्वा २ नित्यतृप्तः ३ निराश्रयः ४ सः ५ कर्मणि ६ अभिप्रवृत्तः ७ अपि ८ किंचित् ९ एव १० न ११ करोति १२॥ २० ॥अ०—उ०समस्त कर्मोंका त्याग स्वरूपसे होना असम्भव है, उसमें आसक्ति और फलका त्याग करदेना यही कर्म त्याग कहलाता है और इसप्रकार कर्म करनेवाले त्यागी संन्यासी कहलाते हैं. सोई कहते हैं—कर्मोंमें और करमोंके फलमें आसक्तिको १ त्याग करके २ नित्यस्वरूपकरके तृप्त अर्थात् नित्य जो आत्मा है उस नित्य निजानन्दकरके तृप्त ३ आश्रयरहित अर्थात् सिवाय आत्मानन्दके और किसी विषयका नहीं है आलम्बन (आश्रा) जिसको ४ सो ५ कर्ममें ६ सब तरफसे भलेप्रकार प्रवृत्त ७ भी८ सि० है ❋अर्थात् दिनरात कर्मोंका कर्ताभी है ७। ८ सि० तोभी वो ❋ अर्थात् कुछ ९ भी १० नहीं ११ करता १२ टी०लोक वासनादिकरके रहित ४. शरीरप्राणेन्द्रियांतःकरणसे यथायोग्य कर्मोंका कर्ता भी है ७ आत्माके साथ उन कर्मोंका लेशमात्रभी संबंध नहीं. विद्वान्को यह समझता है इसहेतुसे ऐसे कर्म करनेवाले महात्माको ज्ञानी कहते ह ॥ २० ॥

मू०—निराशीर्यतचित्तात्मात्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥
शारीरंकेवलंकर्मकुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम् ॥ २१ ॥

निराशीः १ यतचित्तात्मा २ त्यक्तसर्वपरिग्रहः ३ केवलम् ४ शारीरम् ५ कर्म ६ कुर्वन् ७ किल्बिषम् ८ न ९ आप्नोति १०

॥ २१ ॥ अ०—आशारहित १ जीत लिया है अन्तःकरण और शरी
जिसने २ त्यागदिया है सब परिग्रह जिसने ३ सि० सो
केवल ४ शरीरके निर्वाहमात्र ५ कर्मको ६ करता हुआ ७ पापको ८
नहीं ९ प्राप्त होता १० टी० इस लोकपरलोकके पदार्थोंकी को
आशा नहीं है जिसको, क्योंकि उसने इन्द्रियादिको वशकर लिया
देहयात्रासे सिवाय सब बखेड़ा है. फटापुराना वस्त्र, रूखासूखा अन्न
इसके विना तो निर्वाह निर्विक्षेप होना कठिन है, अन्नवस्त्रका
ग्रहणभी विक्षेप दूर करनेके लिये है. क्योंकि जो शीतकालमें शीत
निवारणवस्त्र न हो, वा अन्न न खावे, तो अतिविक्षेप होता है, विचार
नहीं होसक्ता देहयात्रामात्र अन्नवस्त्र विक्षेपके हेतु नहीं. इससे
सिवाय सब परिग्रह कहलाता है. वो त्याग दिया है जिसने
सो पदार्थोंमें इष्ट अनिष्ट बुद्धि रहित होकर केवल शरीरका निर्वाह
करता हुआ कर्माकर्मविकर्मकरके बन्धनको नहीं प्राप्त होता.
वेदके विधिकाभी तात्पर्य निवृत्तिमें है. सो निवृत्ति विद्वान्का वाना
है. वेदकी विधिनिषेध कामियोंके वास्ते है. निष्काम पुरुषोंप
किसीकी विधिनिषेध नहीं ॥ २१ ॥

मू०—यदृच्छालाभसन्तुष्टोद्वंद्वातीतोविमत्सरः ॥
समःसिद्धावसिद्धौचकृत्वापिननिबध्यते ॥ २२ ॥

यदृच्छालाभसन्तुष्टः १ द्वंद्वातीतः २ विमत्सरः ३ सिद्धौ ४
असिद्धौ ५ च ६ समः ७ कृत्वा ८ अपि ९ न १० निबध्यते ११ ॥ २२ ॥

अ०—उ० विनाइच्छा किये, विनासंकल्प, विनामांगे, जो पदार्थ प्राप्त
हो उसको यदृच्छालाभ कहते हैं. यदृच्छालाभकरके तृप्त १ द्वन्द्वर
हित २ निर्वैर ३ सि० कर्मोंकी * सिद्धि और असिद्धिमें ४।५।६ सम ७
सि० जो है, ऐसा महापुरुष कर्माकर्म विकर्म * करके ८ भी ९ नहीं १०
बन्धनको प्राप्त होता है ११. टी० हर्षविषाद, शीतोष्ण, माना
पमान, सुखदुःख, इत्यादि जाडोंको द्वन्द्व कहते हैं २ ॥ २२ ॥

मू०–गतसंगस्यमुक्तस्यज्ञानावस्थितचेतसः ॥
यज्ञायाचरतःकर्मसमग्रंप्रविलीयते ॥ २३ ॥

गतसंगस्य १ मुक्तस्य २ ज्ञानावस्थितचेतसः ३ यज्ञाय ४ आचरतः५ कर्म ६ समग्रम् ७ प्रविलीयते ८ ॥ २३ ॥ अ०–दूर होगई है सब पदार्थोंमें आसक्ति जिसकी अर्थात् न इस लोकके पदार्थोंमें जिसका मन आसक्तहै, और न परलोकके पदार्थोंमें १ सि० धर्माधर्मसे ❀ छूटा हुआ २ ब्रह्मज्ञानमेंही स्थित है चित्त जिसका ३ परमेश्वरार्थ वा लोकसंग्रह (धर्मकी रक्षा) के लिये ४ सि० जो ❀ कर्म करता है ५ उसका ६ समस्त ७ सि० कर्माकर्मविकर्म ब्रह्ममें ❀ लय होजाता है ८ अर्थात् जिस महात्माके ऊपर चार विशेषण हैं उस विद्वान्के कर्मविकर्म सब नाश होजाते हैं. तात्पर्य ऐसे महात्मा जीवन्मुक्त हैं ॥ २३ ॥

मू०–ब्रह्मार्पणंब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौब्रह्मणाहुतम् ॥
ब्रह्मैवतेनगंतव्यंब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥

अर्पणम् १ ब्रह्म २ हविः ३ ब्रह्म ४ अग्नौ ५ ब्रह्मणा ६ हुतम् ७ ब्रह्म ८ तेन ९ ब्रह्म १० एव ११ गंतव्यम् १२ ब्रह्मकर्मसमाधिना १३ ॥ २४ ॥ अ०–उ० अठारवें श्लोकमें तो ज्ञानीका लक्षण संक्षेपकरके कहा और उन्नीससे लेकर तेईसवें श्लोकतक उसी अर्थको स्पष्ट करनेके लिये विस्तारपूर्वक निरूपण किया. अब यह कहतेहैं कि, जिसकारणसे ज्ञानी कर्म करता हुआभी ब्रह्महीको प्राप्त होताहै, सो समझ यह है–अर्पण कियाजावे जिसकरके १ सि० सो स्रुवादि पदार्थ करण ❀ ब्रह्म २ सि० ही है ❀ घृतादि ३ सि० भी ❀ ब्रह्म ४ सि० हीहै ❀ अग्निमें ५ ब्रह्मने अर्थात् कर्ताने ६ होम ७ सि० जो किया है सोभी ❀ ब्रह्म ८ सि० ही है ❀ तात्पर्य क्रिया, कर्ता कर्म, करण, अधिकरण यह सब ब्रह्म है ऐसे जो समझता है, तिस-

को ९ ब्रह्म १० ही ११ प्राप्त होनेको योग्यहै १२ अर्थात् उसको ब्र
प्राप्त होगा. १२, सि० क्योंकि ❀ ब्रह्मरूपकर्ममें समाधान है
चित्त जिसका १३ अर्थात् क्रियाकारकादि सब पदार्थोंके
ब्रह्मरूप जानता है. इसकारणसे वो ब्रह्महीको प्राप्त होगा. नरकस्व
र्गादिफल (कर्म अकर्म विकर्मोंके) उसको स्पर्श नहीं करेंगे. टी०
करण १ कर्म २ कर्ता ३ अधिकरण ५ क्रिया ७ अर्पणादिशब्दोंका
करणादिशब्दोंमें तात्पर्य ह. पाठक्रमसे अर्थक्रम बलवान् होता है
कर्ताकर्मकरणाधिकरणादिको कारक कहते हैं. हवनादिको क्रिया
कहते हैं. क्रियाकरणादिपदार्थ सब ब्रह्महै. इस ज्ञानसे जीव ब्रह्मको
प्राप्त होता है. इत्यभिप्रायः ॥ २४ ॥

मू०—दैवमेवापरेयज्ञंयोगिनःपर्युपासते ॥
ब्रह्माग्नावपरेयज्ञंयज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥

अपरे १ ब्रह्माग्नौ २ यज्ञम् ३ यज्ञेन ४ उपजुह्वति ५ अपरे ६
योगिनः ७ दवम् ८ यज्ञम् ९ एव १० पर्युपासते ११ ॥२५॥ अ०
उ०सर्वत्र ब्रह्मदर्शनको यज्ञका रूपक बांधकर यज्ञरूप वर्णन किया
अब इसज्ञानयज्ञकी स्तुति करनेके लिये, और ज्ञानयज्ञकी महिमा
प्रसिद्ध करनेके लिये, ज्ञानयज्ञके सहित बारह यज्ञवर्णन करते हैं
अर्थात् ग्यारहयज्ञ सिवाय ज्ञानयज्ञके जो वर्णन करेंगे वे ज्ञानयज्ञ
प्राप्तिका उपाय हैं. ज्ञानयज्ञ उपेय है. साक्षात् मोक्षके देनेमें ज्ञानय
ज्ञही समर्थ है. सोई प्रथम कहते हैं. इसमंत्रमें दोयज्ञोंका निरूपण है
पाठक्रमसे अर्थक्रम बलवान् होताहै,इसहेतुसे प्रथम ज्ञानयज्ञका अ
लिखते हैं—ब्रह्मज्ञानी महात्मा १ ब्रह्मरूप ऐसे अग्निमें २ आत्माको
ब्रह्मयज्ञकरके अर्थात् ब्रह्मज्ञान करके ४ हवन करते हैं ५. तात्पर्य
आत्माको शुद्ध, सच्चिदानन्द, पूण, निर्विकार ऐसा ब्रह्म जो समझते
हैं, वे ज्ञानी हैं. उनके ज्ञानको ज्ञानयज्ञ वर्णन करते हैं. एक ज्ञानय

तो निरूपण हो चुका, अब दूसरा यज्ञ निरूपण करते हैं. कोई ६ योगी अर्थात् कोई कर्मयोगी ७ दैव ८ यज्ञकी ९ ही १० उपासना करतेहैं ११. तात्पर्य साकाररामादिदेवताओंका आराधन किया जाता है जिसयज्ञमें, उसको दैवयज्ञ कहतेहैं. साकारदेवताओंकी उपासनाका नाम दैवयज्ञ है. एवशब्दका यह तात्पर्य है, कि भेदवादी रामादिदेवताओंको वास्तव मूर्तिमान् देवता समझतेहैं. नित्य निराकार निर्विकार नहीं समझते हैं, नहीं तो ज्ञानी और उपासकोंमें भेद क्या हुआ और ज्ञानयज्ञसे दैवयज्ञको पृथक् क्यों निरूपण करते ? श्रीमहाराज रामादिदेवताओंको ज्ञानी नित्य निराकार जानतेहैं. उपासक उनको वास्तव मूर्तिमान् समझते हैं मूर्तियोंको कल्पित मायिक नहीं समझते. यही भेद उपासक और ज्ञानियोंमें है ॥ २५ ॥

मू०-श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्येसंयमाग्निषुजुह्वति ॥
शब्दादीन्विषयानन्यइन्द्रियाग्निषुजुह्वति ॥ २६ ॥

अन्ये १ श्रोत्रादीनि २ इन्द्रियाणि ३ संयमाग्निषु ४ जुह्वति ५ अन्ये ६ शब्दादीन् ७ विषयान् ८ इन्द्रियाग्निषु ९ जुह्वति १०॥२६॥

अ०-उ०इसमंत्रमें दोयज्ञ निरूपण करेंगे. तीसरा यज्ञ कहते हैं-और कोई १ श्रोत्रादि इन्द्रियोंको२।३ संयमरूप ऐसे अग्निमें ४ हवन करते हैं ५ तात्पर्य इन्द्रियोंका संयम करना, यही यज्ञ है. कोई यही यज्ञ करते हैं अर्थात् इन्द्रियोंकोविषयोंसे निरोध करते हैं. चौथा यज्ञ यह है, जो अब कहते हैं. कोई एक ६ शब्दादि७विषयोंको ८ इन्द्रियरूप अग्निमें ९ हवन करते हैं १० तात्पर्य वेदोक्तविषयोंको भोगनाभी यज्ञहै. जैसा शास्त्रमें भोजनादि निरूपण किया है. (नियम करके) जो उसीप्रकार वर्तते हैं, वो यज्ञ तात्पर्य इसकाभी इन्द्रियोंके दमनमें ही है ॥ २६ ॥

मू०-सर्वाणींद्रियकर्माणिप्राणकर्माणिचापरे ॥
आत्मसंयमयोगाग्नौजुह्वतिज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

अपरे१ सर्वाणि२ इन्द्रियकर्माणि ३ प्राणकर्माणि४ च ५ आत्म संयमयोगाग्नौ ६ जुह्वति ७ ज्ञानदीपिते ८ ॥ २७ ॥ अ०-उ० पांचवाँ एक यज्ञ इसश्लोकमें निरूपण करेंगे-और कोई १ सब इन्द्रियोंके कर्मोंको २।३ और प्राणापानादिके कर्मोंको ४।५ आत्मसंयम योगाग्निमें ६ हवन करते हैं ७ अर्थात् इन्द्रिय और प्राणादिके गति का जो आत्मामें संयम (निरोध या उपराम)करना,यही हवियोगरूप अग्नि उसमें उपराम (शान्त)करते हैं ७ तात्पर्य आत्मध्यानमें स्थिर होकर प्राणादिकी गतिको निरोध करते हैं सि० कैसी है वो आत्मसंयमयोगाग्नि ❀ ज्ञानकरकें प्रज्वलित है ८ तात्पर्य इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको रोककर और कर्मेन्द्रियोंके और प्राणापानादिके कर्मोंको रोककर आत्मस्वरूप (सच्चिदानन्द) में जो तत्पर होना, यह एक यज्ञ है. इन्द्रियप्राणादिके कर्म आनन्दामृतवर्षिणीके द्विती याध्यायमें लिखे हैं ॥ २७ ॥

मू०-द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञायोगयज्ञास्तथाऽपरे ॥
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्चयतयःसंशितव्रताः ॥ २८ ॥

द्रव्ययज्ञाः १ तपोयज्ञाः २ योगयज्ञाः ३ तथा ४ अपरे ५ स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः ६ च ७ यतयः ८ संशितव्रताः ९ ॥ २८ ॥ अ०-उ० पांचयज्ञ इसमंत्रमें कहेंगे-सि० तीर्थयात्रासाधुसेवादिशुभकर्मोंमे द्रव्यव्यय (खर्च)करना यही ❀ द्रव्ययज्ञ है-जिनका १.सि० यह एक छठा यज्ञ हुआ. व्रतनियममौनादिको तप कहते हैं तपयज्ञ है जिनका २ सि० यह एक सातवां यज्ञ हुआ ❀ अष्टांग योगयज्ञ है जिनका ३ सि० यह एक आठवां यज्ञ हुआ ❀ और तैसेही ४।५ सि० कोई ऐसे हैं कि ❀ स्वाध्याय और ज्ञान ये यज्ञ हैं जिनके ६ अर्थात् स्वाध्याययज्ञ है जिनका कोई ऐसे हैं, और ज्ञानयज्ञ है जिनका कोई ऐसे हैं ६ सि० वेदशास्त्रोंका पढ़ना पाठ

करना इसको स्वाध्याय कहते हैं. यह एक नववां यज्ञ है और वेदशास्त्रके अर्थ समझनेकोभी ज्ञानयज्ञ कहते हैं, यह एक दशवां यज्ञ हुआ ❀ प्रथम यज्ञका नामभी ज्ञानयज्ञ है ७ सि० उसका तात्पर्य ब्रह्मज्ञानमें है कैसे हैं यह यज्ञके करनवाले ❀ यत्नशीलवाले सि० हैं ❀ अर्थात् यज्ञकरनेमें प्रयत्न करनेवाले हैं ८ तीक्ष्णव्रत हैं जिनके ९ अर्थात् तलवारके धारपर चलना जैसा बडा तीक्ष्णकाम है, ऐसेही इन यज्ञोंका अनुष्ठान करना है ९ ॥ २८ ॥

मू०–अपानेजुह्वतिप्राणंप्राणेपानंतथाऽपरे ॥
प्राणापानगतीरुद्ध्वाप्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥

तथा १ अपरे २ अपाने ३ प्राणम् ४ प्राणे ५ अपानम् ६ जुह्वति ७ प्राणापानगती ८ रुद्ध्वा ९ प्राणायामपरायणाः १० ॥ २९ ॥ अ०–उ० एक ग्यारहवां यज्ञ इसमंत्रमें निरूपण करते हैं- और कोइ १।२ अपानमें ३ प्राणको ४ सि० और ❀ प्राणमें ५ अपानको ६ हवन करते हैं, वा लय करतेहैं, अर्थात् मिलाते हैं ७ तात्पर्य प्राण और अपानके गतिको एक करते हैं. प्राण और अपानके गतिको ८ निरोध करके ९ प्राणायाममें परायण १० सि० हैं, यह भी एक यज्ञ है ❀ अर्थात् प्राणोंका जो निरोध यही परम आश्रा है जिनको ऐसे हैं कोई १० तात्पर्य प्राणकी गति रोकनेसे मन उसके साथही रुकता है, इसवास्ते प्राणायाममें तत्पर रहते हैं ॥ २९ ॥

मू०–अपरेनियताहाराःप्राणान्प्राणेषुजुह्वति ॥
सर्वेऽप्येतेयज्ञविदोयज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥

अपरे १ नियताहाराः २ प्राणान् ३ प्राणेषु ४ जुह्वति ५ एते ६ सर्वे ७ अपि ८ यज्ञविदः ९ यज्ञक्षपितकल्मषाः १० ॥ ३० ॥ अ०–उ० आधेमंत्रमें वारहवां एक यज्ञ निरूपण करते हैं. फिर आधे मंत्रमें सब यज्ञ करनेवालोंका माहात्म्य कहते हैं–और कोई १ निय-

ताहारी अर्थात् थोडा भोजन करनेवाले २ प्राणोंको ३ प्राणमें ४ सि० ही ❀ लय करते हैं ५. तात्पर्य भोजनका संकोच करनेसे प्राणकी गति भी संकुचित होजाती है. और प्राणकी गति कम होनेसे मनकी गतिका निरोध होता है यह समझकर कोई एक आहार करनेमें संकोच करते हैं. यह एक बारहवां यज्ञ है. ये ६ सब ७ ही ८ सि० बारह ❀ यज्ञोंके जाननेवाले अर्थात् यज्ञोंके करने वाले ९ यज्ञोंकरके नाश करदिये हैं पाप जिन्होंने १० तात्पर्य वे सब सनातन ब्रह्मको प्राप्त होंगे. अगले मंत्रके साथ इसआधे मंत्रका अन्वय है ब्रह्मज्ञानी साक्षात् प्राप्त होगें. और कर्मकांडी (उपासकयोगी) ब्रह्मज्ञानद्वारा ब्रह्मको प्राप्त होगें ॥ ३० ॥

मू०—यज्ञशिष्टामृतभुजोयांतिब्रह्मसनातनम् ॥
नायंलोकोस्त्ययज्ञस्यकुतोऽन्यःकुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजः १ सनातनम् २ ब्रह्म ३ यान्ति ४ कुरुसत्तम ५ अयज्ञस्य ६ अयम् ७ लोकः ८ न ९ अस्ति १० अन्यः ११ कुतः १२ ॥ ३१ ॥ अ०—उ०आधेमंत्रमें यज्ञ करनेवालोंका माहात्म्य कहते हैं, और आधेमंत्रमें जो बारहयज्ञोंमेंसे एकभी यज्ञ नहीं करते हैं उनकी श्रीमहाराज निन्दा करते हैं अर्थात् जो अयज्ञोंको फल होगा सो कहतेहैं—यज्ञ शिष्टामृतका भोजन करनेवाले १ सनातन २ ब्रह्मको ३ प्राप्त होते हैं ४. हे अर्जुन ! ५ यज्ञ न करनेवालोंको ६ अर्थात् जो यज्ञ नहीं करते हैं उसको ६ यह ७ लोक ८सि० भी ❀ नहीं ९ है १० सि० फिर ❀ परलोक ११ सि० तो ❀ कहांसे १२ सि० होगा ❀ तात्पर्य जो एकभी यज्ञ नहीं करता है उसको जबकि इसलोकमेंही सुख नहीं, तो परलोकमें कैसे होसक्ता है ? न उसको इसलोकका सुख है, न परलोकमें मिलैगा. वो पशुवत् संसारमें उत्पन्न हुआ ॥ ३१ ॥

मू०—एवंबहुविधायज्ञावितताब्रह्मणोमुखे ॥
कर्मजान्विद्धितान्सर्वानेवंज्ञात्वाविमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

एवम् १ ब्रह्मणः २ मुखे ३ बहुविधाः ४ यज्ञाः ५ वितताः ६ तान् ७ सर्वान् ८ कर्मजान् ९ विद्धि १० एवम् ११ ज्ञात्वा १२ विमोक्ष्यसे १३ ॥ ३२ ॥ अ०— जिसप्रकार बारह यज्ञ पीछे कहे, इसीप्रकार १ वेदके २ मुखमें ३ सि० अर्थात् वेदोंमें ❀ बहुतप्रकारके यज्ञ ४। ५ विस्तर अर्थात् बहुत प्रकारके यज्ञोंका वेदोंमें विस्तार है, ६ तिन सबको ७। ८ अर्थात् उक्तानुक्तोंको शरीर मनवाणीके ८ कर्मोंसे उत्पन्न हुआ ९ जान तू १०. तात्पर्य आत्मस्वरूपसे स्पर्शरहित जान. इसप्रकार ११ सि० आत्माको ❀जान कर १२ सि० ज्ञाननिष्ठ होकर संसारसे ❀छूट जायगा तू १३ अर्थात परमानन्दस्वरूप मुक्तिको प्राप्त होगा. टी०ये सबयज्ञ कायिकवाचिक मानसिक हैं. आत्मा इनका विषयभी नहीं. इत्यभिप्रायः ॥ ३२ ॥

मू०—श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञःपरंतप ॥
सर्वंकर्माखिलंपार्थज्ञानेपरिसमाप्यते ॥ ३३ ॥

परंतप १ द्रव्यमयात् २ यज्ञात् ३ ज्ञानयज्ञः ४ श्रेयान् ५ पार्थ ६ सर्वम् ७ कर्म ८ अखिलम् ९ ज्ञाने १० परिसमाप्यते ११ ॥ ३३ ॥ अ०—उ०सबयज्ञोंसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है अर्थात् कर्म, भक्ति, उपासना और योगादिसे ब्रह्मज्ञान श्रेष्ठहै क्योंकि साक्षात् मुक्तिका हेतु है, सोई कहते हैं—हे अर्जुन! १ दैवादियज्ञोंसे २।३ ज्ञानयज्ञ ४ श्रेष्ठ ५ सि०है, जो सब यज्ञोंसे प्रथम निरूपण किया है. क्योंकि ❀हे अर्जुन! ६ सबकर्म ७।८ फलसहित ९ ब्रह्मज्ञानमें १० समाप्त होते हैं ११ अर्थात् ब्रह्मज्ञानसेही दुःखरूपकर्म नाश होते हैं, और कोई उपाय कर्मोंके जडका नाशकरनेवाला नहीं ॥ ३३ ॥

मू०–तद्विद्धिप्रणिपातेनपरिप्रश्नेनसेवया ॥
उपदेक्ष्यन्तितेज्ञानंज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥

तत् १ विद्धि २ प्रणिपातेन ३ परिप्रश्नेन ४ सेवया५ ज्ञानिनः६ तत्त्वदर्शिनः ७ ते ८ ज्ञानम् ९ उपदेक्ष्यन्तिं १० ॥३४॥ अ०–उ… ज्ञान प्राप्त होनेके मुख्यसाधन कहते हैं. ब्रह्मज्ञानप्राप्तिका सम्प्रदा… (पन्थ या मार्ग) यही है, जो श्रीभगवान् इस श्लोकमें कहते हैं–ज… ब्रह्मज्ञान साक्षात् मुक्तिका हेतु है, और सब कर्म उपासना योगादि… श्रेष्ठ है. तिसको १ [तू] जान २ अर्थात् तिसब्रह्मको प्राप्त हो, जो परमा… नन्दकी इच्छा रखता है तू २. सि० उस ब्रह्मानन्दके प्राप्तिका उपा… यह है, कि ज्ञान श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पुरुषोंसे प्राप्त होसक्ता है… जो त्रिकांडवेदोंके तात्पर्यको जानते हैं, और जिनको ब्रह्मभी साक्षा… (अनुभव अपरोक्ष) प्रत्यक्ष है, उनको श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहते हैं… तात्पर्य ऐसेपंडित विरक्तसन्यासी परमहंसहैं, वे ब्रह्मज्ञानका उपदे… करसक्ते हैं और जो केवल श्रोत्रिय, शास्त्रार्थके जाननेवाले हैं, ब्र… निष्ठ नहीं, ब्रह्मज्ञानरहित हैं वे ब्रह्मज्ञानका अनुभवसहित उपदेश न… करसक्ते साक्षात् ब्रह्मको अपरोक्ष नहीं बतासक्ते और जो केवल ब्र… निष्ठही हैं, शास्त्र नहीं पढ़े वे दृष्टान्तयुक्ति अनुमानशंकासमाधानपूर्व… नहीं उपदेश करसक्ते. इसहेतुसे ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करनेके योग… अर्थात् ब्रह्मतत्त्वोपदेश करनेमें समर्थ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठही हैं, अर्था… श्रोत्रियभी हों, और ब्रह्मनिष्ठभी हों, श्रीभगवान् कहते हैं, कि ऐ… ब्रह्मनिष्ठोंके पास जाकर प्रथम उनको ❀ दंडवत् नमस्कार क… के ३ सि० और फिर ❀ प्रश्नकरके ४ सि० बहुतकाल ❀ से… वाकरके ५ सि० ज्ञान सीख अर्थात् प्रथम साधुमहात्मा… पास जाकर उनको आदरके सहित प्रणाम कर, फिर उन्होंसे… प्रश्न करे कि, हे भगवन्! मुझको कृपा करके ब्रह्मज्ञानका उपदे…

कीजिये और बहुत दिनों उनकी सेवाकर, तन धन मन वाणी करके सब ❀ ज्ञानी ६ तत्त्वदर्शी ७ अर्थात् श्रोत्रिय. ब्रह्मनिष्ठ ८ तुझको ९ ज्ञान उपदेश करेंगे १० तात्पर्य यह तीनों साधन अवश्य चाहते हैं. जो इनमें एकभी न होगा, ता भी ज्ञान प्राप्त होना कठिन है. प्रथम तो साधनरहितपुरुषको महात्मा उपदेश ही न करेंगे और जो वे दयाकरके साधनरहितको उपदेशभी करदेंगे, तो उसको कभी बोध न होगा. क्योंकि यह बात स्पष्ट प्रसिद्ध है, कि लोग बहुत वरसों वेदन्तशास्त्र पढते सुनते हैं और ब्रह्मवार्तामें बहुत चतुर होजाते हैं. परंतु छोकरे, लुगाई और कुपात्रधनवालोंके दासही बने रहते हैं. (उनमें ही ममता रखते हैं.) केवल नमस्कार मात्र करके ही विनाप्रश्न और सेवाके महात्मा उपदेश नहीं करेंगे. क्योंकि दंडवत् सब करसक्ते हैं. प्रश्न करनेसे जिज्ञासूका तात्पर्य प्रतीत होताहै, न जानिये कैसा अधिकारी है. सिवाय इसके धर्मशास्त्रमें निषेध है, और बहुतलोग ब्रह्मवार्तामें जो कुशल होते हैं, वे प्रश्नभी भले भले किया करते हैं. परंतु महात्मा विनाचिरकाल सेवाके उपदेश नहीं करते हैं. क्योंकि मंत्रका उपदेश करना विनाएकवर्षकी परीक्षा-किये निषेध है. और यह तो सक्षात् ब्रह्मविद्या है, इसवास्ते बहुत चिरकाल सेवा करके और प्रश्न करके और दंडवत् नमस्कार करके ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है. इत्यभिप्रायः ॥ ३४ ॥

मू०—यज्ज्ञात्वानपुनर्मोहमेवंयास्यसिपांडव ॥
येनभूतान्यशेषेणद्रक्ष्यस्यात्मन्यथोमयि ॥ ३५ ॥

पांडव १ यत् २ ज्ञात्वा ३ एवम् ४ पुनः ५ मोहम् ६ न ७ यास्यसि ८ येन ९ अशेषेण १० भूतानि ११ आत्मनि १२ द्रक्ष्यसि १३ अथो १४ मयि १५ ॥ ३५ ॥ अ०—उ० ज्ञानका फल और महिमा चारश्लोकोंमें कहते हैं. हे अर्जुन ! १ जिसको २ जानकर ३

अर्थात् ज्ञानको प्राप्त होकर इसप्रकार ४ फिर ५ मोहको ६ नहीं ७ प्राप्त होगा ८. सि० जैसा अब मोह तुझको प्राप्त होरहा है और ❀ जिसकरके अर्थात् उसी ज्ञानकरके ९ समस्त १० भूतोंको ११ सि० ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यन्त ❀ आत्मामें १२ देखेगा तू १३. अर्थात् यह समझेगा. कि यह समस्त संसार मुझ सच्चिदानन्द मेंही नामरूप करके कल्पित है १३. पीछे उसके १४ मुझ शुद्धस-च्चिदानन्दस्वरूपमें १५ सि० आत्माकी एकता जानेगा तू. अर्थात् आत्माको नित्य, निर्विकार, शुद्ध, सच्चिदानन्द ऐसा जानेगा. केवल आत्माही करके बुद्ध्यादिकरके नहीं. क्योंकि शुद्धबुद्धमें जडबुद्धिकी गति नहीं ❀ ॥ ३५ ॥

मू०—अपिचेदसिपापेभ्यः सर्वेभ्यःपापकृत्तमः ॥
सर्वंज्ञानप्लवेनैववृजिनंसंतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

चेत् १ सर्वेभ्यः २ पापेभ्यः ३ अपि ४ पापकृत्तमः ५ असि ६ ज्ञानप्लवेन ७ एव ८ सर्वं ९ वृजिनम् १० संतरिष्यसि ११ ॥ ३६ ॥ अ०—जो १ सब पापियोंसे २।३ भी ४ बडा पाप करनेवाला ५ है तू ६ सि० तोभी ❀ ज्ञानरूप जहाज करके ७ निश्चयसे ८ सब पापको ९।१० तर जायगा तू ११. तात्पर्य यह संसार समुद्रवत् अथाह पापरूप है. इसके पार होजायगा. अर्थात् ज्ञानकरके ते पाप सब नाश होजावेंगे ॥ ३६ ॥

मू०—यथैधांसिसमिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥
ज्ञानाग्निःसर्वकर्माणिभस्मसात्कुरुतेतथा ॥ ३७ ॥

यथा १ एधांसि २ समिद्धः ३ अग्निः ४ भस्मसात् ५ कुरुते ६ अर्जुन ७ तथा ८ ज्ञानाग्निः ९ सर्वकर्माणि १० भस्मसात् ११ कुरुते १२ ॥ ३७ ॥ अ०—जैसे १ सि० सूखे ❀ लकड़ियोंको २ प्रज्वलित ३ अग्निः ४ राख करदेती है, ५।६ हे अर्जुन ! ७ तैसेही ८ ज्ञानरूपअग्नि ९ सबकर्मोंको १० नाश ११ करदेती है १२ ॥ ३७ ॥

मू०-नहिज्ञानेनसदृशंपवित्रमिहविद्यते ॥
तत्स्वयंयोगसंसिद्धःकालेनात्मनिविन्दति ॥ ३८ ॥

इह १ ज्ञानेन २ सदृशम् ३ पवित्रम् ४ हि ५ न ६ विद्यते ७ तत् ८ योगसंसिद्धः ९ कालेन १० आत्मनि ११ स्वयम् १२ विन्दति १३ ॥ ३८ ॥ अ०-सि०कर्म भेदभक्तियोगादि साधनोंके बीचमें अर्थात् ❀मोक्षमार्गमें १ ब्रह्मज्ञानके सदृश २।३ पवित्र ४ ही ५ नहीं ६ है ७ सि० दूसरा मोक्षका साधन ❀ तिस ब्रह्मज्ञानको ८ समाधियोग करके सिद्ध हुआ ९ कालकरके १० आत्माके विषय ११ अपने आप १२ प्राप्त होजाताहै १३. तात्पर्य आत्माका ध्यान करते करते साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान अपनेआप प्राप्त होजाता है कुछ थोडेही कालमें. इसवास्ते सदा आत्माका ध्यान करना योग्य है ॥ ३८ ॥

मू०-श्रद्धावाँल्लभतेज्ञानंतत्परःसंयतेन्द्रियः ॥
ज्ञानंलब्ध्वापरांशान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

श्रद्धावान् १ तत्परः २ संयतेन्द्रियः ३ ज्ञानम् ४ लभते ५ ज्ञानम् ६ लब्ध्वा ७ पराम् ८ शान्तिम् ९ अचिरेण १० अधिगच्छति ११ ॥ ३९ ॥ अ०-उ०ज्ञानके प्राप्तिके साधनबहिरंग तो चौवीसवें मंत्रमें नमस्कार, प्रश्न सेवा ये तीन कहे-इन तीनोंको तो मायावीभी करसक्ताहै-यह शंका करके इसमंत्रमें तीन अंतरंगज्ञानके साधन कहतेहैं. ये साधन जिसमें होंगे वो अवश्यही बेसन्देह ज्ञानको प्राप्त होकर मुक्त होगा यह कहते हैं. श्रद्धावाला १ सि०ब्रह्मज्ञानमें ❀तत्पर (परायण) २ भलेप्रकार जीतीहैं इन्द्रिय जिसने ३ सि०सो इन तीन साधनों करके संपन्न ❀ ज्ञानको ४ सि० अवश्यही ❀प्राप्त होताहै ५ ज्ञानको ६ प्राप्त होकर ७ परमशान्तिको ८।९ जल्दी १० प्राप्त होता है ११. तात्पर्य ये तीनों साधन परस्पर सापेक्ष हैं तीनोंहीसे ज्ञान होताहै. एक साधनसे वा दो साधनोंसे कचाई रहजाती है ॥ ३९ ॥

मू०-अज्ञश्चाश्रद्दधानश्चसंशयात्माविनश्यति॥
नायंलोकोस्तिनपरोनसुखंसंशयात्मनः॥ ४०॥

अज्ञः १ च २ अश्रद्दधानः ३ च ४ संशयात्मा ५ विनश्यति ६ संशयात्मनः ७ न ८ अयम् ९ लोकः १० न ११ परः १२ न १३ सुखम् १४ अस्ति १५॥४०॥अ०-उ० वदोंके महावाक्य सुनकर और ब्रह्मविद्या वेदान्तशास्त्रको सुनकरभी जिसको यह संशय है कि, मैं पूर्णब्रह्म, शुद्ध सच्चिदानन्दघन हूं वा नहीं. उसको न इसलोकमें सुख होगा, न परलोकमें. क्योंकि जिसको स्वयम्प्रकाशआत्माम संशय रहा, उसको परोक्षवाक्योंमें कैसे विश्वास होगा. इस हेतुसे वो संशयात्मा सदा दुःखी रहेगा. यद्यपि मन्दबुद्धि और श्रद्धारहित पुरुषों कोभी ज्ञान नहीं होता, परंतु वहां यह आशा रहतीहै, कि कभी न कभी मन्दबुद्धि तो बुद्धिमान् होजायगा और श्रद्धारहित श्रद्धावान् होजायगा. केवल संशयात्माही भ्रष्ट होगा. तात्पय मंदबुद्धि और श्रद्धारहित और संशयात्मा ये तीनों ज्ञानके अनधिकारी हैं, और इन तीनोंमें भी संशयात्मा सबसे निकम्मा है. सोई इस मंत्रमें श्रीभगवान् कहतेहैं. मन्दबुद्धि १ और २ श्रद्धारहित ३ और ४ संशयात्मा ५ नष्ट होता है ६. अर्थात आनन्दसे भ्रष्ट होजाता है. ये तीनों ब्रह्मानन्दके लेखे मुरदेके बराबर हैं. और इनतीनोंमेंसे भी संशयात्मा तो अवश्यही भ्रष्ट है ६ संशयात्माको ७ न ८ यह ९ लोक १० न ११ परलोक १२ न १३ सुख १४ है १५. तात्पर्य जो पुरुष अज्ञ होता है, उसका गुरुशास्त्रमें तो विश्वास होता है. काल पाकर सुधर सक्ता है. और अज्ञभी हो और श्रद्धारहित भी हो वो भी किसीकालमें श्रद्धावान् और बुद्धिमान् होकर सुधर जाताहै, और जो जान बूझकर तर्क करता है, और अपने विपर्ययपक्षमें दुराग्रह करता है, उसको तर्की दुराग्रहीको कभी सुख न होगा. जब कि संशयात्मा, कुतर्की, दुराग्रही, इसको इसीलोकमें सुख नहीं, तो पर-

लोकका सुख कहां होगा. सदा उसके विषय तर्क, दुराग्रह, संशय, बनेही रहेंगे. महात्माने ऐसे दुष्टोंको कभी एकबातभी ज्ञानकी सुनाना न चाहिये क्योंकि वो कुछ न कुछ उसमें झूंठा कुतर्क करेगा. संशयात्मा उसकोभी कहते हैं, कि जिसको यह संशय है, कि मैं कर्मोंका अनुष्ठान करूं; वा न करूं, अकर्म ज्ञानमें निष्ठा करूं; वा न करूं. संशयात्मा इस पदका अक्षरार्थ यह है, कि संशय है अन्तःकरणमें जिसके सो संशयात्मा. सो संशय दोप्रकारका है. प्रमाणगत और प्रमेयगत. सो ऊपर लिखा गया. तात्पर्य श्रीमहाराजके उपदेशमें जो संशय करेगा उसका नाश होजायगा, यह शाप है भगवान्का वेसन्देह आत्माको शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप जानना योग्य है ॥४०॥

मू०–योगसंन्यस्तकर्माणंज्ञानसंछिन्नसंशयम् ॥
आत्मवन्तंनकर्माणिनिवध्नन्तिधनंजय ॥ ४१ ॥

धनंजय १ योगसंन्यस्तकर्माणम् २ ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ३ आत्मवन्तम् ४ कर्माणि ५ न ६ निबध्नन्ति ७॥४१॥ अ०–उ० इसअध्यायमें जो अर्थ पीछे विस्तारपूर्वक निरूपण किया, उसीको इसमंत्रमें संक्षेपकरके कहते हैं, समस्तअध्यायका तात्पर्यार्थ समझनेके लिये हे अर्जुन! १ ज्ञानयोगकरके संन्यास किये हैं, कर्म जिसने २ सि० और ❀ ब्रह्मज्ञानकरके छेदन किये हैं संशय जिसने ३ सि० ऐसे ❀ अप्रमत्तआत्मनिष्ठको ४ कर्म ५ नहीं ६ बन्धन करते हैं ७॥४१॥

मू०–तस्मादज्ञानसम्भूतंहृत्स्थंज्ञानासिनात्मनः ॥
छित्त्वैनंसंशयंयोगमातिष्ठोत्तिष्ठभारत ॥ ४२ ॥

भारत १ तस्मात् २ अज्ञानसंभूतम् ३ हृत्स्थम् ४ आत्मनः ५ एनम् ६ संशयम् ७ ज्ञानासिना ८ छित्त्वा ९ योगम् १० आतिष्ठ ११ उत्तिष्ठ १२ ॥४२॥ अ०–उ० जब कि संशयात्माको न इसलोकमें सुख होता है, न परलोकमें हे अर्जुन ! १ तिसकारणसे २

करके उत्पन्न हुवा ३ अन्तःकरणमें स्थित ४ सि०जो यह संशय कि मैं युद्ध करूं वा न करूं और मैं सदा निर्विकार हूं वा नहीं ❁ अपने ५ इस ६ संशयको ७ ब्रह्मज्ञानरूप तलवारसे ८ छेदनकरके ९ कर्मयोगका १० अनुष्ठानकर ११ खडाहो १२ सि० युद्धकरनेके लिये ❁ तात्पर्य आत्माको शुद्ध, सच्चिदानन्द, नित्य, निर्विकार, पूर्ण ब्रह्म ऐसा समझकर युद्ध कर. इत्यभिप्रायः ॥ ४२ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५.

मू०—अर्जुन उवाच ॥ संन्यासंकर्म्मणांकृष्णपुनर्योगंचशंससि ॥ यच्छ्रेयएतयोरेकंतन्मेब्रूहिसुनिश्चितम् १

कृष्ण १ कर्मणाम् २ संन्यासम् ३ पुनः ४ योगम् ५ च ६ शंससि ७ एतयोः ८ एकम् ९ यत् १० सुनिश्चितम् ११ श्रेयः १२ तत् १३ मे १४ ब्रूहि १५ ॥ १ ॥ अ०—उ० चतुर्थाध्यायमें अर्जुनको समुच्चय प्रतीत हुआ, इसवास्ते प्रश्न करताहै. हे कृष्णचन्द्र १ कर्मोंका २ त्याग ३ सि० भी आप कहते हो और ❁ फिर ४ योग ५ भी ६ आप कहतेहो ७ सि० इनदोनोंका स्वरूप दिनरात्रिवत् विरुद्ध है, एक पुरुषसे एकसमयइनदोनोंकाअनुष्ठान कैसेहोसक्ताहै ❁ इनदोनोंमें ८ एक ९ जो १० भलेप्रकार निश्चय किया हुआ ११ श्रेष्ठ है, १२ सो १३ मुझको १४ कहो १५ तात्पर्य कर्मयोग और कर्मसंन्यास इनदोनोंमें मेरेवास्ते श्रेष्ठ क्या है, यह मेरा तात्पर्य है. यह तो मैं तृतीय अध्यायमें समझगयाहूं, कि अधिकारीप्रति दोनों श्रेष्ठ हैं. मैं संन्यासिप्राका अधिकारीहूं. इत्यभिप्रायः ॥ १ ॥

मू०–श्रीभगवानुवाच ॥ संन्यासःकर्मयोगश्चनिःश्रेयसकरावुभौ ॥ तयोस्तुकर्मसंन्यासात्कर्मयोगोविशिष्यते ॥ २ ॥

संन्यासः१कर्मयोगः२च ३उभौ ४ निःश्रेयसकरौ ५ तयोः६तु७ कर्मसंन्यासात् ८ कर्मयोगः ९ विशिष्यते १० ॥ २ ॥ अ०–उ० श्रीभगवान् कहते हैं, कि पीछे जो हमने कर्मोंका अनुष्ठान करना और त्याग करना, ऐसा कहाहै, उसमें कुछ विरोध नहीं कहा क्यों-कि सम समुच्चय मैंने नहीं कहा अधिकारी प्रति कर्मसमुच्चय कहाहै. शोकमोहरहितज्ञाननिष्ठावाले पुरुषोंको तो ज्ञाननिष्ठा परिपाक होने-के वास्ते कर्मोंका त्याग करना श्रेष्ठ है. और तमोगुणी रजोगुणी पुरुषोंको ज्ञाननिष्ठाके प्राप्तिके लिये कर्मोंका अनुष्ठान करना श्रेष्ठहै. सि० इसप्रकार कर्मोंका ❀त्याग १ और कर्मयोग २।३ सि० ये क्रमसे ❀दोनों ४ मोक्षको प्राप्त करनेवाले हैं, ५ सि० यथायोग्य अधिकारियोंको और तू जो यह बूझता है, कि इन दोनोंमेंसे मेरे-वास्ते क्या श्रेष्ठहै, सो सुन तुझको ❀तिनके ६ सि० बीचमें ❀ तो ७ अर्थात् कर्मयोग और कर्मसंन्यास इन दोनोंके बीचमें ६।७ कर्मसंन्याससे ८ कर्मयोग ९ विशेष है १०. अर्थात् क्षत्रियोंका धर्म जो युद्ध करना है, अभी उसका अनुष्ठान करनाही तुझको श्रेष्ठ है. कदाचित् इसमंत्रका कोई यह अर्थ करे, कि कर्मसंन्याससे कर्मयोग सबके वास्ते विशेष है, तो इस अर्थमें वदतोव्याघात दोष आता है. क्योंकि पुनःपुनः वारंवार पीछे श्रीभगवान्ने कर्मसंन्यासपूर्वक ज्ञान-निष्ठाकी प्रशंसा की और आगे करेंगे. जिसकी प्रथम आप स्तुति करें. फिर उसीको आप निकृष्ट बतावें, इसीको वदतोव्याघातदोष कहते हैं. अर्थात् अपने कहेहुएको आपही खंडन करना, यह बडादोष है. "श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञःपरंतप ॥ नहिज्ञानेनसदृशंपवित्रमि-

हविद्यते" ॥ इत्यादि. ऐसे वाक्य और भी बहुत हैं इसजगे तात्पर्य श्रीभगवान्का यही है, कि रजोगुणी तमोगुणी ऐसे पुरुषोंके वास्ते कर्मोंका अनुष्ठानं करनाही श्रेष्ठ है. क्योंकि तमोगुणी रजोगुणी पुरुषोंको कर्मोंका अनुष्ठान करना अन्तःकरणके शुद्धिका हेतु है. और सतोगुणी पुरुषोंके लिये तो कर्मोंका त्याग करनाही श्रेष्ठ है. क्योंकि उनको अब कर्मोंका अनुष्ठान करना विक्षेपका हेतु है. और ज्ञाननिष्ठाके परिपाक होनेमें प्रतिबंध है. और दोनोंका अनुष्ठान एककालमें एकपुरुषसे नहीं होसक्ता. कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका स्वरूप दिनरात्रिवत् विरुद्ध है. प्रथम अन्तःकरणके शुद्धिके लिये तुझको कर्मयोग विशेष है. इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

मू०—ज्ञेयःसनित्यसंन्यासीयोनद्वेष्टिनकांक्षति ॥
निर्द्वन्द्वोहिमाहाबाहोसुखंबन्धात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

यः १ न २ द्वेष्टि ३ न ४ कांक्षति ५ सः ६ नित्यसंन्यासी ७ ज्ञेयः ८ महाबाहो ९ निर्द्वन्द्वः १० हि ११ सुखम् १२ बन्धात् १३ प्रमुच्यते १४ ॥ ३ ॥ अ०—उ०रागद्वेषरहितनिष्काम जो कर्मोंका अनुष्ठान करता है उसको संन्यासीवत् समझना चाहिये. इसप्रकार श्रीभगवान् अब कर्मयोगकी स्तुति करतेहैं, कर्मयोगके वास्ते सि० प्रतिकूलपदार्थोंमें ❀ जो १ नहीं २ द्वेष करता है, ३ सि० अनुकूलपदार्थोंकी ❀ नहीं ४ इच्छा करता है, ५ सो ६ सि० कर्मयोगी ❀ नित्यसंन्यासी ७ सि० निष्कामकर्मयोगी ऐसा ❀ जानना तूने ८. हे अर्जुन ९ द्वन्द्वरहित १० ही ११ सुखपूर्वक १२ बन्धसे १३ छूटता है १४. तात्पर्य रागद्वेषादिद्वन्द्वरहित ऐसा होकर तू कर्मोंका अनुष्ठान कर ॥ ३ ॥

मू०—सांख्ययोगौपृथग्बालाःप्रवदन्तिनपंडिताः ॥
एकमप्यास्थितःसम्यगुभयोर्विंदतेफलम् ॥ ४ ॥

सांख्ययोगौ १ पृथग् २ बालाः ३ प्रवदन्ति ४ पंडिताः५ न ६ सम्यक् ७ एकम् ८ अपि ९ आस्थितः १० उभयोः ११ फलम् १२ विन्दते १३ ॥ ४ ॥ अ०—उ० अवस्थाभेदकरके कर्मयोग और ज्ञानयोग इन दोनोंका क्रमसमुच्चय है. अर्थात् प्रथम निष्काम-कर्मोंका अनुष्ठान करना. अन्तःकरण शुद्ध हुए पीछे कर्मोंको त्यागदेना, यही सिद्धान्त है, सबशास्त्र और महात्मा पुरुषोंका. और जो यह प्रश्न करता है, कि इन दोनोंमेंसे एक स्वतंत्रमुक्तिका देनेवाला बताओ. यह प्रश्न कमसमझवालोंका है. कर्मयोग और ज्ञानयोग इन दोनोंका तात्पर्य एक परमानन्दमें ही है. इस हेतुसे इन दोनोंको फलमें पृथक् समझना न चाहिये. सोई कहते हैं. ज्ञानयोगको और कर्मयोगको १ पृथक् २ सि० एक स्वतंत्र निरपेक्षमोक्षका देनेवाला ❀ कमसमझवाले ३ कहते हैं ४ सि० पूर्वापरशास्त्रका तात्पर्य समझे हुए ❀ विद्वान् ५ नहीं ६ सि० पृथक् स्वतंत्र कहते. क्योंकि ❀ भलेप्रकार ७ एकको ८ भी ९ आश्रय किया हुआ १० अर्थात् सांगोपांग एककाभी अनुष्ठान किया हुआ १० दोनोंके ११ फलको १२ प्राप्तकरता १३. अर्थात् दोनोंका फल परमानन्द है सोई दोनोंको प्राप्त होजाताहै. तात्पर्य जो कर्मोंका अनुष्ठान निष्काम करेगा, उसका अवश्यही अन्तःकरण शुद्ध होकर, उसको ज्ञान प्राप्त होगा. और पीछे उसके मोक्षपरमानन्दकी प्राप्ति होगी. यही दोनोंका फल है और ज्ञानका अनुष्ठान जो भलेप्रकार करेगा, बेसन्देह पहले उसने इस जन्ममें वा जन्मांतरमें, कर्मयोगकरके अन्तःकरण शुद्ध कर लिया है. उसकोभी मोक्षपरमानन्दकी प्राप्ति होगी, यही दोनोंका फल है. एक ज्ञानयोग साक्षात् सच्चिदानन्दको प्राप्त करता है, और एक कर्मयोग अन्तःकरण शुद्ध-कर ज्ञानद्वारा सच्चिदानन्दको प्राप्त करता है इसप्रकार ये दोनों फलमें एक हैं. स्वरूप इनका एक नहीं ॥ ४ ॥

मू०—यत्सांख्यैःप्राप्यतेस्थानंतद्योगैरपिगम्यते ॥
एकंसांख्यंचयोगंचयःपश्यतिसपश्यति ॥ ५ ॥

सांख्यैः १ यत् २ स्थानम् ३ प्राप्यते ४ तत् ५ अपि ६ योगैः७ गम्यते ८ सांख्यम् ९ च १० योगम् ११ च १२ एकम् १३ यः १४ पश्यति १५ सः १६ पश्यति १७ ॥ ५ ॥ अ०—उ० पिछले मंत्रमें जो कहा, उसीको फिर भलेप्रकार स्पष्ट करते हैं. ज्ञानी १ जिस स्थानको २।३ सि० साक्षात् याने व्यवधानरहित ❀ प्राप्त होते हैं, ४ तिसको ५ ही ६ कर्मयोगी ७ सि० ज्ञानद्वारा ❀ प्राप्त होते हैं ८ ज्ञानयोगको ९ भी १० और कर्मयोगकोभी ११।१२सि०फलमें❀ एक १३ जो १४ देखता है, १५ सो १६ देखताहै १७ सि०शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपआत्माको ❀ तात्पर्य जो यह समझताहै, कि दोनोंका फल एक (अद्वैतशुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपपूर्णब्रह्मआत्मा) है. सोमहात्मा यथार्थ आत्माको और परमात्माको जानता है जैसे दो पुरुष जगन्नाथजीको जाते हैं, उनमें एक काशीजीमें है और एक प्रयागजीमें है कहनेवाले दोनोंको यही कहतेहैं, कि ये दोनों जगन्नाथजीको जाते हैं, पहुँचेंगे. और जानेवाला भी सब ठिकाने दिन प्रतिदिन यही कहता है, कि मैं जगन्नाथजीको जाताहूं. एक मजलवालाभीयही कहता है. और ज्यादा मजलवालाभी यही कहता है. और यह बात यथार्थ है कि दोनों एकजगे पहुँचेंगे. परन्तु इसमें भेदभी है जो सब मजल करचुका है, एकही मजल जिसकी रही है. वो उसीमजलमें उसी दिन, साक्षात् व्यवधानरहित जगन्नाथजीमें पहुँचेगा. इसप्रकार तो ज्ञानीकी गतिहै. और जिसको दोमजल रही हैं, वो प्रथम बीचकी मजलपहुँचकर. फिर जगन्नाथजीमें पहुँचेगा. इसप्रकार कर्मयोगीकी गति है. शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपपूर्णब्रह्मआत्माको दोनों प्राप्त होंगे, यही दोनोंका स्थान परमपदहै. विनाब्रह्मज्ञानकेकर्मयोगीस्वतन्त्र मुक्त नहीं होसक्ता. और जो कहतेहैं, यातो उनको पूर्वापर अर्थ

की समझ नहीं, वा हठकरके, वा रुचि बढनेके लिये, कहते हैं. अर्थ सच्चा वोही है जिसमें पूर्वापरसे विरोध न आवे. नहीं तो एकश्लोकका अर्थ तो बालकभी कहसक्ता है ॥ ५ ॥

मू०–संन्यासस्तुमहाबाहोदुःखमाप्तुमयोगतः ॥
योगयुक्तोमुनिर्ब्रह्मनचिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

महाबाहो १ संन्यासः २ तु ३ अयोगतः ४ दुःखम् ५ आप्तुम् ६ योगयुक्तः ७ मुनिः ८ ब्रह्म ९ न १० चिरेण ११ अधिगच्छति १२ ॥ ६ ॥अ०–उ० कर्मयोग तो ज्ञानद्वारा परमानन्द ऐसे मुक्तपदको प्राप्त करता है. और कर्मोंका संन्यास, ज्ञान (साक्षात् मुक्तपद) देता है, तो कर्मयोग क्यों करना चाहिये संन्यासही करे. अर्थात् ज्ञानकाही अनुष्ठान करना, यह शंका करके श्रीमहाराज कहते हैं–हे अर्जुन ! १ सि० विनारागद्वेषादि दूर होवे प्रथमही कर्मोंका ❀ संन्यास २ तो ३ सि० अर्थात् प्रथम ❀ विनाकर्मयोगका अनुष्ठान किये ४ दुःखपूर्वक ५ प्राप्त होनेको ६ सि० शक्य है ❀ तात्पर्य विनाकर्मयोगकिये ज्ञान प्राप्त होना कठिनहै. कर्मोंके अनुष्ठान करनेमें बहुत देर लगती है, इसहेतुसे ब्रह्मकी प्राप्ति बहुतकालसे होगी यह शंका करके कहते हैं. योगयुक्त ७ मुमुक्षु ८ ब्रह्मको ९ नहीं १० देरकरके ११ प्राप्त होगा १२. तात्पर्य कर्मयोगी मुमुक्षु, संन्यासी, ज्ञाननिष्ठ, ऐसा होकर ब्रह्मको शीघ्रही प्राप्त होगा. अथवा इसजगह ब्रह्म संन्यासका नाम है. योगयुक्तमुनि संन्यासको शीघ्र और सुखपूर्वक प्राप्त होगा ॥ ६ ॥

मू०–योगयुक्तोविशुद्धात्माविजितात्माजितेन्द्रियः ॥
सर्वभूतात्मभूतात्माकुर्वन्नपिनलिप्यते ॥ ७ ॥

योगयुक्तः १ विशुद्धात्मा २ विजितात्मा ३ जितेन्द्रियः ४ सर्वभूतात्मभूतात्मा ५ कुर्वन् ६ अपि ७ न ८ लिप्यते ९ ॥ ७ ॥अ०–

उ० कर्मयोगी बन्धनको प्राप्त होताहै, यह शंका करके कहतेहैं, कि योगी अन्तःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानी होजाताहै, इस हेतुसे बन्धनको नहीं प्राप्त होता. योगयुक्त १ विशेषकरके शुद्ध है, अन्तःकरण जिसका २ विशेषकरके जीता है शरीर जिसने ३ जीते हैं इन्द्रिय जिसनें ४ सब भूतोंका आत्मभूतहै आत्मा जिसका ५ अर्थात् ब्रह्मा से लेकर चींटीपर्यन्त सब भूतोंका आत्मा उसीका आत्मा है ५ सि सो लोकरक्षाकेलिये अथवा स्वभावसेही कर्म ✻ कर्ता हुआ भी ७ नहीं ८ बन्धनको प्राप्त होता ९ ॥ ७ ॥

मू०—नैवकिंचित्करोमीतियुक्तोमन्येततत्त्ववित् पश्यञ्छृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्छ्वसन् ॥ ८ ॥ प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषुवर्त्तन्तइतिधारयन् ॥ ९ ॥

किंचित् १ एव २ न ३ करोमि ४ इति ५ युक्तः ६ तत्त्ववित् मन्येत ८ इन्द्रियाणि ९ इन्द्रियार्थेषु १० वर्तन्ते ११ इति धारयन् १३ पश्यन् १४ शृण्वन् १५ स्पृशन् १६ जिघ्रन् १७ अश्नन् १८ गच्छन् १९ स्वपन् २० श्वसन् २१ प्रलपन् २२ विसृजन् २३ गृह्णन् २४ उन्मिषन् २५ निमिषन् २६ अपि २७॥ ८ ॥ ९ ॥अ०—उ०जिससमझसे कर्मोंके साथ बन्धन नहीं होता कहते हैं दो श्लोकोंमें दो श्लोकोंका अन्वय एक है. कुछ १ भी नहीं ३ करताहूं मैं, ४ यह ५ समाहित याने सावधान ६ ज्ञानी मानता है ८ इन्द्रिय ९ इन्द्रियोंके अर्थोंमें १० वर्तते हैं. ११ अर्थात् शब्दादिविषयोंको भोगना इन्द्रियोंका धर्म है. आत्मा अ निर्विकार और शुद्ध ऐसा है ९।१०।११।यह १२धारणकरताहुआ अर्थात् पूर्वोक्त निश्चय करके. १३ कौनसे वे कर्म हैं कि जिन करताहुआ यह मानता है, किमैं असंगहूं, सो कहते हैं-देखताहुआ

सुनताहुआ १५ स्पर्शकर्ताहुआ १६ सूंघताहुआ १७ खाताहुआ १८ चलताहुआ १९ सोताहुआ २० श्वासलेताहुआ२१बोलताहुआ २२ त्यागताहुआ२३ग्रहणकरताहुआ २४ नेत्रोंको खोलताहुआ २५ मीचताहुआ २६ अपिशब्द करके अनुक्तोंको भी जानलेना २७. तात्पर्य जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थामें जितनी क्रिया होती हैं, इससंघातके विषय सब अनात्म धर्म है. किस प्रकार इस अपेक्षामें कहते हैं. सुनो—दर्शनादि चक्षुरादि इन्द्रियोंका धर्म है, आत्माका नहीं. चलना पैरोंका धर्म है. सोना बुद्धिका, श्वासलेना प्राणका, बोलना वाणीका, त्यागना गुद और उपस्थ इनका, ग्रहण करना हाथोंका, खोलना और मीचना नेत्रोंका. ये सब कर्म प्राणका धर्म है. आत्मा सदा अकर्ता है, ज्ञानी यही समझते हैं, इसी समझसे निर्बंध होजाते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥

मू०—ब्रह्मण्याधायकर्माणिसंगंत्यक्त्वाकरोतियः ॥
लिप्यतेनसपापेनपद्मपत्रमिवाम्भसा ॥ १० ॥

यः १ कर्माणि २ ब्रह्मणि ३ आधाय ४ संगम् ५त्यक्त्वा६करोति ७ सः ८ पापेन ९ न १० लिप्यते ११ पद्मपत्रम् १२ इव १३ अम्भसा १४ ॥ १० ॥अ०—उ० जिसको यह अभिमान है, कि मैं कर्ता हूं अर्थात् जो आत्माको अकर्ता नहीं जानता ब्रह्मज्ञानरहित है. उसको तो कर्म, बन्धन करेगा. और मैला अन्तःकरण होनेसे. उसको कर्मोंके संन्यासमें और ज्ञाननिष्ठामें अधिकार नहीं. वो तो बडे संकटमें फँसा. यह शंका करके श्रीभगवान् उसके वास्ते यह कहते हैं जो १ कर्मोंका २ परमेश्वरमें ३ अर्पण करके ४ सि० और कर्मोंके फलके ❋ संगको याने आसक्तीको ५ त्यागकर ६ करता है,७ सो ८ पापसे ९ नहीं १० स्पर्शित होता है. ११ अर्थात् पापपुण्य दोनों उसको छूतेभी नहीं ११ कमलका पत्र १२ जैसे १३ जलसे १४ सि०नहीं भीगता ॥ १० ॥

मू०-कायेनमनसाबुद्ध्याकेवलैरिन्द्रियैरपि ॥
योगिनःकर्मकुर्वन्तिसंगंत्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

कायेन १ मनसा २ बुद्ध्या ३ इन्द्रियैः ४ केवलैः ५ अपि ६ योगिनः ७ कर्म ८ कुर्वन्ति ९ संगम् १० त्यक्त्वा ११ आत्मशुद्धये ॥ ॥ ११ ॥ अ०-उ० अन्तःकरणके शुद्धिके लिये जो कर्म करते हैं वे बंधनको नहीं प्राप्त होते. यह कहते हैं श्रीमहाराज. शरीर करके १ मन करके २ बुद्धि करके ३ इन्द्रियों करके ४ ममता वर्जितकरके ५ ॥ अर्थात् केवल ब्रह्मार्पण करताहूं मैं, यह समझकरके ५ । ६ कर्मयोगी ७ कर्मको ८ करते हैं ९ सि० कर्मोंके फलके ❀ आसक्ति १० त्यागकर ११ अन्तःकरण शुद्धिके लिये १२ सि० अपि पूरणार्थ ❀ टी० स्नानादि १ ध्यानादि २ तत्त्वका निश्चय करना इत्यादि ३ श्रवणादि ये कर्म केवल अन्तःकरणकी शुद्धि और चित्तकी एकाग्रता होनेके लिये करतेहैं, सिवाय इसके और कुछ फल चाहना बन्धका हेतु है, तात्पर्य इन कर्मोंमें अभिनिवेशरहित होकर कर्म करना, यही इसपांचवें पदका तात्पर्यार्थ है ॥ ११ ॥

मू०-युक्तःकर्मफलंत्यक्त्वाशान्तिमाप्नोतिनैष्ठिकीम् ॥
अयुक्तःकामकारेणफलेसक्तोनिबध्यते ॥ १२ ॥

युक्तः कर्मफलम् २ त्यक्त्वा ३ नैष्ठिकीम् ४ शान्तिम् ५ आप्नोति ६ अयुक्तः ७ कामकारेण ८ फले ९ सक्तः १० निबध्यते ११ ॥ १२ ॥ अ०-उ० कर्म एक है, कोई तो उसको करके मुक्त होता है, और कोई उसको करके बद्ध होता है. यह कैसी व्यवस्था है, ऐसी शंका करके श्रीभगवान् यह कहते हैं. समाहित याने सावधान १ सि० ऐसा भगवद्भक्त ❀ कर्मोंके फलको ❀ त्यागकर २ मोक्षरूप शान्तिको ४ । ५ सि० ज्ञानद्वारा ❀ प्राप्त होता है. बहिर्मुख याने विषयी अर्थात् कामी ७ कामके प्रेरणा

करके ८ फलमें ९ आसक्त १० सदा बन्धनको प्राप्त होरहताहै ११ तात्पर्य निष्कामकर्म ज्ञानद्वारा मुक्त करदेता है. उसी कर्ममें जा इसलोकके वा परलोकके पदार्थोंकी चाहना होवेगी, तो सो कर्म बन्धनको प्राप्त करदेता है ॥ १२ ॥

मू०—सर्वकर्माणिमनसासंन्यस्यास्तेसुखंवशी ॥
नवद्वारेपुरेदेहीनैवकुर्वन्नकारयन् ॥ १३ ॥

वशी १ देही २ सर्वकर्माणि ३ मनसा ४ संन्यस्य ५ सुखम् ६ नवद्वारे ७ पुरे ८ आस्ते ९ न १० एव ११ कुर्वन् १२न १३ कारयन् १४ ॥ १३ ॥अ०—उ०जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं उसको कर्मसंन्याससे कर्मयोग विशेष है, यह विस्तारपूर्वक निरूपण किया. अब यह कहते हैं, कि जिसका अन्तःकरण शुद्धहै, उसको कर्मसंन्यास श्रेष्ठ है शुद्धान्तःकरणवाला १ देहका स्वामी जीव २ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दरूप ऐसा ज्ञानी २ सब कर्मोंको ३ मनसे ४ त्याग कर ५ सुखपूर्वक ६ नवद्वारपुरमें ७।८ अर्थात् नव दरवाजे हैं जिसमें ऐसे पुरमें याने देहमें ८ बैठा है ९ सि०किसप्रकार बैठा है, और क्या करता है इस अपेक्षामें कहते हैं ❀ न १० तो ११ सि०कुछ ❀ करताहुआ, १२ न १३ कराताहुआ, १४ सि० बैठाहै ❀ अर्थात् ज्ञानी इसदेहमें न कुछ करता है, न कुछ कराता है १४. तात्पर्य न कर्ता है, न प्रेरक है, अपने स्वरूपमें जीवतेहुए ही मग्न है. न आपको कर्ता मानता है, और न शरीरादिके साथ ममता करता है. यही उसका न करना और न कराना है. टी०दो कानमें, दो नाकमें, दो नेत्रोंमें और एक मुखमें, ये सात द्वार तो शिरमें हैं और दो नीचे हैं इसप्रकार नवद्वार हैं ॥ १३ ॥

मू०—नकर्तृत्वंनकर्माणिलोकस्यसृजतिप्रभुः ॥
नकर्मफलसंयोगंस्वभावस्तुप्रवर्तते ॥ १४ ॥

प्रभुः १ लोकस्य २ कर्तृत्वम् ३ न ४ सृजति ५ न ६ कर्माणि ७ न ८ कर्मफलसंयोगम् ९ स्वभावः १० तु ११ प्रवर्तते १२ ॥ १४ ॥ अ०—उ०त्वंपदार्थजीवको तो निर्विकार निरूपण किया अब तत्पदार्थ ईश्वरको भी निर्विकार निरूपण करते हैं, अर्थात् परमार्थमें ये दोनों निर्विकार हैं. क्योंकि नाममात्रही दो हैं, वास्तवमें दोनों एक हैं. यह दोश्लोकोंमें कहते हैं. ईश्वर १ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप निर्विकार,१ सि०यह ❀ जीवके २ कर्तृत्वकोशसि० वास्तवमें ❀ नहीं ४ रचाता है, ५ सि०और ❀ न ६ कर्मोंको ७ सि० और ❀ न ८ कर्मोंके फलसंयोगको ९ सि० रचता है. यह जो कुछ देखासुनाजाता है. वो सब ❀ अविद्या १० ही ११ प्रवृत्त होरही है, १२ तात्पर्य क्रियाकारकफलादि सब अविद्याकरके कल्पित हैं, न किसीने ये रचेहैं और न वास्तवमें हैं. यह सब जीवका अज्ञान अध्यारोपमें विस्तार हो रहा है. वास्तवमें जीव भी शुद्ध है. जगत्का कर्ता ईश्वर है ऐसा जो कहते हैं सो अध्यारोपमें कहते हैं. वास्तवमें ईश्वर निर्विकार है, जगत् है नहीं. इत्यभिप्रायः ॥ १४ ॥

मू०—नादत्तेकस्यचित्पापंनचैवसुकृतंविभुः ॥
अज्ञानेनावृतंज्ञानंतेनमुह्यन्तिजन्तवः ॥ १५ ॥

विभुः १ कस्यचित् २ पापम् ३ एव ४ न ५ आदत्ते ६ न ७ च ८ सुकृतम् ९ अज्ञानेन १० ज्ञानम् ११ आवृतम् १२ तेन १३ जंतवः १४ मुह्यन्ति १५ ॥१५॥ अ०—ईश्वर १ किसीके २ पापको ३ भी ४ नहीं ५ ग्रहणकरता ६ और न ७।८ पुण्यको ९ अनादि अनिर्वाच्य ऐसे मूलज्ञानकरके १० सि० जीवका ❀ ज्ञान ११ ढकगया है, १२ तिसकरके १३ अर्थात् तिसअज्ञानकरके १३ जीव १४ भ्रान्तिको प्राप्त होरहे हैं १५ अर्थात् ईश्वरको भी कर्ता विकारी ऐसा मानते हैं और अपनेको भी ॥ १५ ॥

मू०—ज्ञानेनतुतदज्ञानंयेषांनाशितमात्मनः ॥
तेषामादित्यवज्ज्ञानंप्रकाशयातितत्परम् ॥ १६ ॥

ज्ञानेन १ तु २ तत् ३ अज्ञानम् ४ येषाम् ५ नाशितम् ६ तेषाम् ७ आत्मनः ८ तत्परम् ९ ज्ञानम् १० आदित्यवत् ११ प्रकाशयति १२ ॥१६॥ अ०—उ० ज्ञानीको भ्रांति नहीं होती, यह कहते हैं. सि० और ❀ ब्रह्मज्ञानकरके १ । २ सो ३ अज्ञान ४ सि० पूर्वमंत्रोक्त ❀ जिनका ५ नाश होगया है, ६ तिनको ७ आत्माका ८ परमार्थतत्व ९ ज्ञान १० सूर्यवत् ११ सि० प्रकाशकरके परमार्थतत्वरूप आत्माको ❀ प्रकाशित करदेता है. १२ तात्पर्य जैसा सूर्य अंधकारका नाशकरके दृश्यपदार्थोंको प्रकाशित करदेताहै तैसा ॥ १६ ॥

मू०—तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिंज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

तद्बुद्धयः १ तदात्मानः २ तन्निष्ठाः ३ तत्परायणाः ४ ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ५ अपुनरावृत्तिम् ६ गच्छन्ति ७ ॥१७॥ अ०—उ० जिन पुरुषोंको आत्मतत्त्वका ज्ञान होता है, उनका लक्षण कहते हैं, और ज्ञानका फल निरूपण करते हैं. तिसमेंही है बुद्धि जिनकी १ अर्थात् सिवाय आत्माके और किसी पदार्थमें नहीं जाती है बुद्धि जिनकी याने आत्मासे सिवाय और किसी पदार्थको सत्य त्रिकालाबाध्य निश्चित नहीं करते सि० और ❀ तिसमेंही है मन जिसका २ अर्थात् सिवाय आत्माका और किसी पदार्थमें जिनका मन नहीं जाता २ सि० और ❀ तिसमेंहीहै निष्ठा जिनकी ३ अर्थात् सिवायआत्माके दूसरीजगे निष्ठा नहीं करते. याने सदा आत्माहीमें तत्पर रहते हैं ३ सि० और ❀ सोई आत्मा परम आश्रयहै जिनका ४ सि० ऐसे महात्मा ❀ ज्ञानकरके नाश करदियेहैं पाप जिन्होंने ५ सि० वे ❀ मुक्तिको ६ प्राप्त होतेहैं ७ ॥ १७ ॥

मू०-विद्याविनयसंपन्नेब्राह्मणेगविहस्तिनि ॥
शुनिचैवश्वपाकेचपंडिताःसमदर्शिनः ॥ १८ ॥

विद्याविनयसंपन्ने १ ब्राह्मणे २ श्वपाके ३ च ४ गवि५ हस्तिनि शुनि ७ च ८ एव ९ समदर्शिनः १० पंडिताः ११ ॥ १८ ॥ अ०-उ०पंडितनामभी ज्ञानियोंकाही है. अर्थात् पंडित ज्ञानीको क हैं. इसमंत्रमें पंडितशब्दके अर्थका लक्षण कहते हैं. विद्या और न ताकरके युक्त ऐसे ब्राह्मणमें १।२ और चंडालमें ३।४ गौमें हाथीमें ६ और कूकरमें ७।८ भी ९ सि०आत्माको ❀सम देखने स्वभाव है जिनका १० सि०वे❀पंडित ११ हैं सि० मूर्खों कहनेसे आर पंडितनाम रखवालेनेसे पंडित नहीं होसक्ता टी० ब्राह्मण और चांडालमें तो कर्मकी विषमता है और गौ हा और कूकर इनमें जातिकी विषमता है. तात्पर्य सबमें आत्मा समदेखते हैं. इसवास्ते उनकोभी समदर्शी कहाजाता है. व्यवहा ब्राह्मण और चांडालादिको एक देखना या समझना, भ्रष्ट मूर्खोंका काम है ॥ १८ ॥

मू०-इहैवतैर्जितःसर्गोयेषांसाम्येस्थितंमनः ॥
निर्दोषंहिसमंब्रह्मतस्माद्ब्रह्मणितेस्थिताः ॥ १९ ॥

येषाम् १ मनः २ साम्ये ३ स्थितम् ४ तैः ५ इह ६ एव७ सर्गः जितः९ ब्रह्म १० निर्दोषम् ११ समम् १२ तस्मात् १३ हि ब्रह्मणि १५ ते १६ स्थिताः १७ ॥१९॥ अ०-उ० समदर्शि माहात्म्य कहते हैं. जिनका १ मन २ समताके विषय ३ सि है. ४ अर्थात् सबभूतोंमें जिनकी ब्रह्मभावना है, ४ तिन्होंने जीवतेहुवे ६ ही ७ संसार ८ जीता है. ९ सि० क्योंकि ❀ १०निर्दोष ११ सि० और ❀ सम १२ सि० है ❀ तिस सि से १३ ही १४ ब्रह्ममें १५ वे १६ सि०पंडित (पूर्वमंत्रोक्त)

स्थित हैं. १७ अर्थात् ब्रह्मभावको प्राप्त हैं. १७ तात्पर्य संसार दोषोंके सहित विषमरूप है और ब्रह्म समरूप निर्दोष है. ब्रह्मभावको प्राप्त होकरही संसारजय होसक्ता है, जीताजाता है, नाश होसक्ता है. अथवा इसप्रकार अन्वय करदेना कि, जिसकारणसे ब्रह्म सम और निर्दोषी ऐसा है, तिसकारणसेही वे ब्रह्ममें स्थित हैं और जब कि ब्रह्ममें उनकी स्थिति हुई, तिसकारणसेही उन्होंने संसारको जीता. सिवाय शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपपूर्णब्रह्म ऐसे आत्माके सब पदार्थ सदोष हैं. यह समझकर निर्दोषब्रह्ममें स्थित होकर संसार जीता जाता है ॥ १९ ॥

मू०—नप्रहृष्येत्प्रियंप्राप्यनोद्विजेत्प्राप्यचाप्रियम् ॥
स्थिरबुद्धिरसंमूढोब्रह्मविद्ब्रह्मणिस्थितः ॥ २० ॥

असंमूढः १ स्थिरबुद्धिः २ ब्रह्मवित् ३ ब्रह्मणि ४ स्थितः ५ प्रियम् ६ प्राप्य ७ न ८ प्रहृष्येत् ९ अप्रियम् १० च ११ प्राप्य १२ न १३ उद्विजेत् १४ ॥ २० ॥ अ०—मोहवर्जित १ संदेहरहित २ ब्रह्मवित् ३ ब्रह्ममें ४ स्थित हुआ ५ प्रियको ६ प्राप्त होकर ७ नहीं ८ आनंदी होतो है ९ और अप्रियको १०।११ प्राप्त होकर १२ नहीं १३ उद्वेग करता है ॥ १४ ॥ २० ॥

मू०—बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्माविन्दत्यात्मनियत्सुखम् ॥
सब्रह्मयोगयुक्तात्मासुखमक्षय्यमश्नुते॥ २१ ॥

बाह्यस्पर्शेषु १ असक्तात्मा २ ब्रह्मयोगयुक्तात्मा ३सः ४आत्मनि५ यत्६सुखम्७विन्दति८ अक्षय्यम् ९ सुखम् १० अश्नुते ११ ॥२१॥ अ०—उ० जिसहेतुसे शब्दादिपदार्थोंमें रागद्वेष नहीं है ज्ञानीका वो हेतु कहतेहैं. शब्दादिइन्द्रियोंके अर्थोंमें १ नहीं आसक्त अंतःकरण जिसका२ सि० और ❋ब्रह्ममें समाधिकरके युक्तहै अंतःकरणजिसका३ सो४ अंतःकरणमें ५ जो ६ सि० सत्वगुणी। उपशमात्मक ऐसे ❋

सुखको ७ सि० प्रथम *प्राप्त होता है ८ सि० फिर * अक्षयसुख
९।१० प्राप्त होता है. टी० बाहर जिनका स्पर्श होता है इन्द्रियों
वृत्तिकरके, वे शब्दादिपंचेन्द्रियोंके अर्थ हैं. तिनमें जिन
मन आसक्त नहीं. उसमें यह हेतु है कि, उन्होंने आत्मामें अंतःकर
को समाधानकरके, जीवको ब्रह्मरूप समझलियाहै. और आत्मा पू
नंद नित्य और एकरस है इसवास्ते उनको अक्षयसुख प्राप्त होता
अर्थात् वे सच्चिदानन्दस्वरूप एकरस ऐसे हैं. पूर्णानन्दके सा
विषयानन्द तुच्छ है, प्रथम तो सत्वगुणी सुखके सामने विषयान
तुच्छ है. फिर परमानन्दके सामने तुच्छ हो, तो इसमें क्
कहना है. अथवा इसश्लोकका अन्वय ऐसा करना, कि शब्दादि
षयोंमें नहीं है आसक्त अन्तःकरण जिसका, सो महात्मा सात्वि
सुखको प्राप्त होता है. फिर समाधि करके ब्रह्मात्मामें अंतःक
लगाया है जिसने, सो महात्मा पुरुष अक्षयसुखको प्राप्त होताहै ॥२

मू०–येहिसंस्पर्शजाभोगादुःखयोनयएवते ॥
आद्यन्तवन्तःकौन्तेयनतेषुरमतेबुधः ॥ २२ ॥

संस्पर्शजाः १ ये २ भोगाः ३ ते ४ एव ५ हि ६ दुःखयोनयः
कौंतेय ८ आद्यन्तवन्तः ९ तेषु १० बुधः ११ न १२ रमते १३ ॥२

अ०–उ० शब्दादिविषयोंमें इन्द्रादिदेवता आनंदमानतेहैं और
बडे समझवाले चतुरलोक वैकुंठलोकादिपरलोकपदार्थोंके प्राप्ति
लिये नानाप्रकारके प्रयत्न करते हैं. वहां जाकर नानाप्रकारके श
दिविषयोंको भोगते हैं. पुराणादिमेंभी उनका माहात्म्य सुना जाता
ऐसे प्रत्यक्ष सुन्दर शब्दादिविषयोंको छोड जो ब्रह्मात्मामें परमा
मानते हैं, वे तो कुछ कमसमझ प्रतीत होता है, यह शंकाक
श्रीमहाराज कहते हैं. शब्दादिविषयोंसे उत्पन्न होते हैं. १ जो २ भोग
अर्थात् विषयजन्य जो सुख याने आनंद ३ वे ४ निश्चयसे ५ ही
दुःखके कारण हैं ७ अर्थात् बेसंदेह सझना कि, शब्दादिपदा

जो सुख है वो दुःखोंका मूल है. ७ सि० जो कोई मूर्ख यह समझे कि आपके समझमें विषयानन्ददुःखोंका मूल है, हमारे समझमें श्रेष्ठ है. यह शंका करके प्रत्यक्ष और भी दोष दिखातेहैं. हे अर्जुन८सि० फिर कैसे हैं. येभोग ❀ आद्यन्तवालेहैं. ९ अर्थात् आगमापायी याने आनेजानेवाले हैं. सदा नहीं बनेरहते. ९ तिनकेविषय १० विद्वान् ११ नहीं १२ रमता है. १३ तात्पर्य जो स्त्रीधनादिपदार्थोंमें रमतेहैं. शब्दादिविषयोंको प्रिय समझकर भोगते हैं और उनके प्राप्तिकेलिये लौकिक वैदिक कर्म करते हैं, वे कुछ बडे समझवाले चतुर नहीं, उनको महामूर्ख समझना. उक्तंच "रमन्तिमूर्खाविरमन्तिपंडिताः" हि यह शब्द कहनेसे तात्पर्य श्रीमहाराजका यहहै, कि विषयइसलोकके और परलोकके सब सम हैं. उनके प्रयत्न करनेमें और नाश होनेमें जो जो दुःखहैं. वे तो प्रसिद्धही हैं. परंतु भोगकालमें भी वे दुःखके हेतु हैं चोर, राजा इत्यादिका सदा भय बना रहता है. तात्पर्य जो विषयोंमें कुछएक सुख प्रतीत होता है, तो सहस्रोंप्रकारका उनमें दुःख है. और वो सुखभी अनित्य है. श्रेष्ठ आत्मानंदही है. आत्मानंदके भोगनेवाले आत्मानंदके प्रयत्न करनेवाले चतुर बुद्धिमान् और सबसे श्रेष्ठ ऐसे हैं. इत्यभिप्रायः ॥ २२ ॥

मू०–शक्नोतीहैवयः सोढुंप्राक्शरीरविमोक्षणात् ॥
कामक्रोधोद्भवंवेगंसयुक्तःससुखीनरः ॥ २३ ॥

यः१ कामक्रोधोद्भवम् २ वेगम् ३ प्राक्शरीरविमोक्षणात् ४ इह ५ एव ६ सोढुम् ७ शक्नोति ८ सः ९ युक्तः १० सः ११ सुखी १२ नरः १३ ॥ २३ ॥ अ०–उ० परपुरुषार्थ मोक्ष है. उसके ये दो (काम और क्रोध) वैरी हैं जो इनको सहेगा, याने त्यागेगा, वो मोक्षका भागी होगा. यह कहते हैं. जो १ सि० महापुरुष ❀ काम और क्रोधसे प्रकट होता है जो वेग उसको २।३ पहले शरीरके छूट

नेके ४ जीवते ५ ही ६ सहनेको ७ समर्थ है, ८ सोई ९ योगी १
सि०और * सोई ११ सुखी १२ महापुरुष १३सि० है *तात्
कामना सबपदार्थोंकी (शुभ वा अशुभ इसलोकके वा परलो
के पदार्थोंकी) अनर्थका हेतु है और स्त्रीकी कामना तो मो
बडाही प्रतिबन्ध है. जिससमय देखनेसे, सुननेसे और स्मरण क
नेसे,मनमें विकार प्रतीत हो उसीसमय दोषोंका स्मरण करे जिस
णका स्मरण करनेसे कामना होतीहै, उसका कभी चिंतवन न क
जितने उसपदार्थमें अवगुण हैं, उन सबको स्मरणकरे. मनोराज्य
अंकुर जमने न दे. दूसरे अध्यायके मंत्रोंका विचारकरे. नाराय
की यादकरे, जैसे बने वैसे वो समय टलावे और इससेभी उत्
उपाय यहहै, कि,उससमय विरक्तसाधूके पास जा बैठे. बेसंदेह उ
समय चित्त शान्त होजायगा और यह प्रयत्न सुषुप्तिमरणपर्यं
चाहिये. कामनासे क्रोध होता है. ऐसेही क्रोधलोभादिका
उद्वेग हो, उसीसमय समझकर निरोध करे. इसीप्रकार सहज स
सहते सहते, फिर आपही स्वभाव ऐसा पडजायगा. प्रथम
कामादिका उदयही न होगा. कामादि जो कुसंगसे उदितभी होवें
उनका विचार करनेसे वह कामका उदय नष्ट हो जावेगा ॥ २३

मू०—योन्तःसुखोन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेवयः ॥
सयोगीब्रह्मनिर्वाणंब्रह्मभूतोधिगच्छति ॥ २४ ॥

अंतः सुखः १ यः २ अंतरारामः ३ तथा४ एव ५ अंतर्ज्योतिः ६
७ सः ८ योगी ९ ब्रह्मभूतः १० ब्रह्मनिर्वाणम् ११ अधिगच्छ
१२ ॥ २४ ॥ अ०—उ० कामनादिके त्यागनेसे अन्तःसुख
प्राप्ति होती है, कैसाहै वो सुख कि, स्वतंत्र नित्य पूर्ण अ
अखंड है, उसमें विहार करताहुआ पूर्णब्रह्मपरमानन्द स्व
आत्माको सदाकेवास्ते प्राप्त होजाताहै, सोई कहते हैं अंतःकर
है सुखजिसको १ अर्थात् आत्मामेंही जिसको सुख है १

इसीहेतुसे वो विषयोंमें सुख नहीं मानता ❀ जो २ सि० महात्मा और ❀ आत्मामेंही है विहार जिसका ३ सि० इसी हेतुसे बाहरके पदार्थोंमें नहीं विहार करता और जसे अन्तःसुख मानता है, अंदर ही विहार करता है ❀ तैसे ४ ही ५ भीतर है दृष्टि जिसकी ६ सि० इसी हेतुसे गीतनृत्यादिमें दृष्टि नहीं करता, ऐसा ❀ जो ७ सि० महापुरुष योगी ❀ सो ८ योगी ९ ब्रह्मस्वरूप हुआ १० सि० ब्रह्ममें लय होकर, ब्रह्मको अर्थात् ❀ निर्वाणब्रह्म ऐसे मोक्षको ११ प्राप्त होता है. १२ तात्पर्य फिर उसको जन्ममरण नहीं होता, पूर्णपरमानन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥

मू०—लभंतेब्रह्मनिर्वाणमृषयःक्षीणकल्मषाः ॥
छिन्नद्वैधायतात्मानः सर्वभूतहितेरताः ॥ २५ ॥

ऋषयः १ क्षीणकल्मषाः २ छिन्नद्वैधाः ३ यतात्मानः ४ सर्वभूतहितेरताः ५ ब्रह्मनिर्वाणम् ६ लभन्ते ७ ॥ २५ ॥ अ०—उ० जो ब्रह्मको प्राप्त होते हैं, उनका लक्षण कहते हैं. ज्ञाननिष्ठावाले साधु महात्मा १ नाश होगये हैं पाप जिनके २ सि० और ❀ छिन्न छिन्न दो दो टूके होगये हैं संशय जिनके ३ अर्थात् किसी प्रकारका संशय जिनको नहीं ३ जीता हुआ है अन्तःकरण जिनका ४ सबभूतोंके हितमें प्रीति है जिनकी ५ सि० ऐसे कृपालु महात्मा ❀ ब्रह्मनिर्वाणको ६ प्राप्त होंगे ७ सि० पहले बहुत होगये, वर्तमानकालमें बहुत जीवन्मुक्त विद्यमान हैं ❀ टी० साधनचतुष्टयसंपन्न श्रवणादिसाधनों करके युक्त १ तिरोभाव होगये हैं रजोगुण तमोगुण जिनके, ज्ञानके प्रतापसे सब पाप नाश होगये हैं जिनके २ प्रमाणगत वा प्रमेयगत किसी जगे उनको संशय नहीं. ३ सदासमाधिनिष्ठ रहते हैं ४ नगरग्राममें जो उनका आना, याने गृहस्थोंके घर जाना, गृहस्थोंसे बात करना यह उनकी केवल कृपाही समझना

क्योंकि वे पूर्णकाम हैं. ऐसे दयालु महापुरुषोंका दर्शनभी बड़े भाग्यसे होता है ९ उक्तंच "महद्विचलनंनृणांगृहिणांदीनचेतसाम् । निःश्रेयसायभगवन्कल्प्यतेनान्यथाक्वचित् ॥" तात्पर्यार्थ इसश्लोकका यह है कि, गृहस्थोंके घरमें महात्मापुरुषोंका जो जाना है केवल उनके भलेकेंलिये है. सिवाय उसके उनका और कुछ प्रयोजन नहीं. कभी कुछ और प्रकारकी कल्पना नहीं करना. क्योंकि गृहस्थ आपही दीन होते हैं, उनकेपास है क्या, कि जो किसी कामनाकी कल्पना कीजावे ॥ २५ ॥

मू०—कामक्रोधवियुक्तानांयतीनांयतचेतसाम् ॥
अभितोब्रह्मनिर्वाणंवर्ततेविदितात्मनाम् ॥ २६ ॥

यतीनाम् १ अभितः २ ब्रह्मनिर्वाणम् ३ वर्तते ४ कामक्रोधवियुक्तानाम् ५ यतचेतसाम् ६ विदितात्मनाम् ७ ॥ २६ ॥ अ०-उ० कामादिरहित सज्जन जीवतेही मुक्त हैं. फिर उनके विदेहमुक्तिमें तो क्या बात कहना है. संन्यासीके १ सब अवस्थामें २ मोक्षपरमानन्दको ३ वर्तता है ४ अर्थात् जीवतेहुए भी जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्तीमें परमानंदको भोगते हैं ४ तात्पर्य अज्ञानियोंके दृष्टिसे ज्ञानियोंके विषय, ये तीन अवस्था प्रतीत होती हैं. वास्तवमें ज्ञानियोंकी एक तुर्यातीत अवस्था रहती है. और पीछे देहकेभी परमानंदको भोगते हैं सि० कैसे हैं वे संन्यासी ज्ञानी ※ कामक्रोध करके रहित हैं. ५ जीत रक्खाहै अंतःकरण जिन्होंने ६ जाना है आत्मतत्त्व जिन्होंने ७ अर्थात् पूर्णब्रह्मसच्चिदानन्दनित्यमुक्त ऐसे आत्माको जानते हैं और कामादिरहित ऐसे हैं ॥ ७ ॥ २६ ॥

मू०—स्पर्शान्कृत्वाबहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरेभ्रुवोः ॥
प्राणापानौसमौकृत्वानासाभ्यंतरचारिणौ ॥ २७ ॥

बाह्यान् १ स्पर्शान् २ बहिः ३ एव ४ कृत्वा ५ चक्षुः ६ च

भ्रुवोः ८ अंतरे ९ प्राणापानौ १० नासाभ्यन्तरचारिणौ ११ समौ १२ कृत्वा १३ ॥ २७ ॥ अ०—उ० जिसयोगकरके संन्यासी महात्मा जीवतेहुए, और देहके पीछे भी सदा परमानंद भोगते हैं, उसयोगका लक्षण दोमंत्रोंमें संक्षेपसे तो अब कहते हैं और अगले छठे अध्यायमें विस्तारपूर्वक कहेंगे. बहिःपदार्थोंको १ रूपरसादिको २ बाहर ३ ही ४ करके ५ अर्थात् रूपरसादि जो पदार्थ हैं ये सब बाहर हैं, उनका चिंतवन करनेसे वे भीतर प्रवेश करते हैं, इसवास्ते विषयोंका चिंतवन दर्शनादिका त्याग करके ५ और नेत्रोंको ६।७ दोनों भ्रूके ८ बीचमे सि० करके ❁ तात्पर्य नेत्रोंको बहुत न खोलना, न मीचना. बहुत खोलनेसे रूपके साथ संबंध होजाताहै. बहुत मीचनेसे निद्रा आजाती है. इसवास्ते दोनों भ्रूके मध्यमें ९ दृष्टि रखना. और प्राण अपान इनको १० नासाभ्यंतरचारी ११ समान १२ करके १३ सि० मुक्त होजाताहै ❁ तात्पर्य ऐसे महात्मा सदा मुक्तहैं. अगले मंत्रके साथ इसका अन्वय है. टी० नासिकाके भीतर ही प्राणचले, शीघ्रगति न होने पावे. नीचेकी ऊपरकी ये दोनों गति सम करना योग्य है. जिसको कुम्भक कहते हैं, यह अर्थ साक्षात् गुरुके बतलानेसे समझमें आता है, यह केवल शास्त्रके श्रवणसे और विचारसे नहीं आता ॥ २७ ॥

मू०—यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥
विगतेच्छाभयक्रोधोयःसदामुक्तएवसः ॥ २८ ॥

यतेंद्रियमनोबुद्धिः १ मोक्षपरायणः २ विगतेच्छाभयक्रोधः ३ यः ४ मुनिः ५ सः ६ सदा ७ मुक्तः ८ एव ९ ॥ अ०—उ० जीते हैं इन्द्रिय (मन और बुद्धि) जिसने १ मोक्षहीहै परमगति जिसकी २ दूर होगये हैं इच्छा भय और क्रोध जिससे ३ सि० ऐसे ❁ जेनोंकी

मुनि (संन्यासी) ५ [सि०हैं ❀ वे ६ सदा ७ [स० जीतहुए भी और देहके पीछे भी ❀ मुक्त ८ ही ९ सि०हैं.: इससे पृथक् कोई मुक्तिपदार्थ नहीं. सलोकतादि (अनित्य होनेसे) नाममात्र कहलाती है ❀ तात्पर्य सबदुःखोंकी निवृत्ति और परमानन्दस्वरूपआत्माकी प्राप्ति यह मुक्तिका लक्षण है. टी०जिसका मन आत्मामेंही रहता है उसको मुनि कहते हैं ॥ २८ ॥

०-भोक्तारंयज्ञतपसांसर्वलोकमहेश्वरम् ॥
सुहृदंसर्वभूतानांज्ञात्वामांशांतिमृच्छति ॥ २९ ॥

यज्ञतपसाम् १ भोक्तारम् २ सर्वभूतानाम् ३ सुहृदम् ४ सर्वलोकमहेश्वरम् ५ माम् ६ ज्ञात्वा ७ शान्तिम् ८ ऋच्छति ९ ॥ २९ ॥

अ०-उ०जैसा पीछे निरूपण किया, इसप्रकार इन्द्रिय और अन्तःकरणादिका निरोधन करके ब्रह्मज्ञानद्वारा मुक्त होता है, इसवास्ते अब ज्ञानका स्वरूप कहकर शान्तिफल सबका निरूपण त्वम्पदका वाच्यार्थ करतेहैं—यज्ञतपका १ भोक्ता २ सि० और ❀ सबभूतोंका ३ बेप्रयोजन हित ४ अर्थात् अविद्योप हित करनेवाला ४ [स० अन्तर्यामीअतएव ईश्वर यह सबकर्मोंके फलका देनेवाला, तत्पदका वाच्यार्थ, सच्चिदानन्द है और ❀ सबलोकोंका महेश्वर ५ सि०परमात्मा शुद्ध, सच्चिदाननन्द, निर्विकार, नित्य, मुक्त, तत् त्वंपदोंका लक्ष्यार्थ ऐसाही एक अद्वैतहै. इस प्रकार ❀ मुझको ६ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूपपूर्णब्रह्म ऐसे आत्माको ६ जानकर ७ शान्तिको ८ अर्थात् मुक्तिको ८ प्राप्तहोता है, ९ न स पुनरावर्तते. इत्यभिप्रायः ॥ २९ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे संन्यासयोगोनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ६.

उ० इसछठे अध्यायमें श्रीभगवान् यह कहेंगे, कि जो अग्निहोत्रादि कर्म करता है और कर्मोंके फलमें आसक्त नहीं उसको संन्यासी समझना, यह कर्मयोगीकी स्तुतिहै. इसको शास्त्रमें अर्थवाद कहते हैं. इसकहनेसे यह नहीं समझना, कि गृहस्थाश्रममेंही सदा बनेरहना. चतुर्थाश्रमसंन्याससे क्या प्रयोजन है. ये जैसे संन्यासी वैसेही गृहस्थकर्मयोगी हैं. यह अधिकारप्रति श्रीमहाराजका कहनाहै. नहीं तो पुनःपुनः पांचवें, बारवें, दूसरे अठारवें इत्यादि अध्यायोंमें चतुर्थाश्रमसंन्यासके जो लक्षण और माहात्म्य गृहस्थाश्रमसे विशेष अपने मुखसे श्रीमहाराजने कहा है, वो कहना भगवान्का निरर्थक हो जायगा. तात्पर्य सर्वज्ञोंके वाणीका यह नियम है, कि जिससमय जिससाधनकाप्रसंग होताहै, उससमय उसीसाधनको सबसे अच्छा कहाकरतेहैं. उनका आशय यथार्थ जब प्रतीत होता है, कि अगलेपिछले कहेहुए उनके सबअर्थको विचारें. फिर अधिकार, गौण, मुख्य, देश, वस्तु और कालादिका विचार करे. युक्तियोंकरके सब श्रुतिस्मृतियोंकेसाथ उस अर्थका एकजगह समन्वय करे. अगले पिछले वाक्योंमें विरोध न आवे. सबका एक अर्थमें समन्वय होजाय, तब समझना कि इसश्लोकका वा ग्रंथका यह यथार्थ जैसेका तैसा अर्थ है. और लक्षणा और व्यंजना इनशक्तियोंको भी देखना योग्य है. पूर्वपक्षको और सिद्धान्तको पृथक् पृथक् समझना. साधनफलका भेद देखना, साधनोंमें भी तारतम्यता अधिकारी प्रति है. इसप्रकार शास्त्रका तात्पर्य जाना जाताहै. और भी शास्त्रके तात्पर्य जाननेमें मुख्य छः बातें ये हैं. प्रथमतो उपक्रम और उपसंहार १ अर्थात् ग्रंथका आदिअन्त देखना, कि दोनोंकी

संगति मिलती है वा नहीं. सर्वज्ञोंका कहाहुआ जो ग्रंथ होता है उसके प्रारंभमें जो अर्थ होगा; वोही अन्तमें होगा. जैसे श्रीभगवद्गीताका आदिपद अशोच्य है, और माशुचः यह पिछला पद है. इन दोनों पदोंसे प्रथम पीछे जो कहा है; वो संगतिके लिये उपोद्घात है. इस प्रकार गीताका उपक्रम और उपसंहार एक मिलता है. शोचका न होना, और अर्थात् परमानंदकी प्राप्ति; यही गीताशास्त्रका तात्पर्य है १ इसीवातको सिद्ध करनेकेलिये बीचमें पांचबातें ये हैं. अपूर्वता २ अर्थात् आत्माको ही सच्चिदानंद नित्यमुक्त जानना, जिनके जाननेसे ही बेशोच होजाता है, यह बात अपूर्व अलौकिक है २ अनुवाद ३ अर्थात् उसी एकबातको नानाप्रकारके रीति और शैलीकरके पुनःपुनः कथन करना. ३ अर्थवाद ४ अर्थात् उसीपदार्थके सिद्धिके जो साधन हैं, उनकोही (रुचि बढाने केलिये) परात्पर, श्रेष्ठ इत्यादि कहना, जैसे कर्म, भक्ति, योग और तीर्थ इत्यादि, इनका माहात्म्य कहा है ४, उपपत्ति ५ अर्थात् फिर युक्तियोंकरकेसाधनको साधन कहकर,सिद्धान्तपक्षको सिद्ध करना ५. फल ६ अर्थात् सिद्धान्तको कथन करना, याने उसका लक्षण करना, कि वो परमानंदस्वरूप ऐसा है, ६ इसप्रकार ग्रंथका तात्पर्य प्रतीत होता है. ग्रंथके एक एक देशसे अर्थात् एक श्लोक वा एक अध्यायसे ग्रंथका तात्पर्य नहीं जानाजाता. ये भी छः बातें (उपक्रम उपसंहारादि) गीताशास्त्रमें हैं, लक्षणा व्यंजनादि भी हैं. इन छः वातोंका एकपदार्थमें जब समन्वय होगा तब जानना, कि इसग्रंथका यह तात्पर्य है अर्थवादसाधनोंको सिद्धान्त समझलेना यह मूर्खोंका काम है ॥

मू०–श्रीभगवानुवाच ॥ अनाश्रितःकर्मफलंकार्यं कर्मकरोतियः ॥ ससंन्यासीचयोगीचननिरग्निर्नचाक्रियः ॥ १ ॥

कर्मफलम्१ अनाश्रितः २ कार्यम् ३ कर्म ४ यः५ करोति६सः७ संन्यासी८ च ९ योगी १० च ११ न१२निरग्निः १३ न १४ च १५ अक्रियः १६ ॥१॥अ०—उ०अन्तःकरण शुद्ध होनेकेलिये कर्मयोगीकी स्तुति करते हैं श्रीभगवान्. कर्मोंके फलका नहीं आश्रय किया है जिसने १।२ अथात् कर्मफलकी तृष्णा और कामना नहीं है जिसको १।२ करनेके योग्य कर्मको ३। ४जो ५ करता है,६ अर्थात् नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तकर्म, और भगवद्भक्तिसंबंधि, ज्ञानसंबंधि जो कर्म, और तीर्थयात्रा, साधुसेवादि, साधारण जो कर्म, और दानलेना इत्यादि जो असाधारण कर्म हैं, इन सबकर्मोंको यथाअधिकार यथाशक्ति जो करता है. ६ सो ७संन्यासी ८ और ९ योगी १० भी ११ सि० समझनाचाहिये ❀ तात्पर्य कर्मफलका संन्यास करनेसे :एकदेशमें तो उसको संन्यासी समझना, और कर्मयोग करनेसे,एकदेशमें उसको योगी समझना. इस अर्थमें समसमुच्चयकी गंधमात्रभी नहीं कल्पना करना.कर्मयोग और कर्मसंन्यासका दिनरात्रिवत् विरोध है. कर्मयोगीको ही संन्यासी कहना यह उपमा है. जैसे स्त्रीके मुखको चंद्रमा कहना, इसउपमाका तात्पर्य एकदेशमें होता है. नहींतो अगलेपिछलेवाक्योंमें विरोध आता है. पीछे श्रीभगवानने बहुत जगे कर्मसंन्यास, फलकेसहित निरूपण किया, और आगे बहुत करेंगे. इसजगे कर्मयोगकाही प्रसंगहै. इसीवास्ते श्रीमहाराज कर्मयोगीकी स्तुति करते हैं. सि० कैसा है वो कर्मयोगी ❀ न १२ निरग्नि १३ और १४ न१५ अक्रिय१६ सि०है.जैसे चतुर्थाश्रमी संन्यासी,अग्निहोत्रादि कर्म नहीं करते, निरग्नि होते हैं, ऐसा कर्मयोगी नहीं. और चतुर्थाश्रमी संन्यासी ऐसे ज्ञानिवत् अक्रियभी नहीं. क्योंकि ज्ञानी आत्माको अक्रिय(क्रियारहित) मानते हैं. आत्माका जब देहकेसाथ सम्बन्ध माना,तब आत्मा अक्रिय कहाँरहा.यह बात श्रीमहाराज सत्य कहते हैं, कि कर्मयोगी अक्रिय नहीं अथवा केवलअग्निके न छूनेसे

कर्मोंके नकरनेसे, विनाज्ञाननिष्ठा, परमार्थमें संन्यासी नहीं होसक्ता, व्यवहारमें उसको नाममात्र संन्यासी कहेंगे ❀ तात्पर्य जबतक अन्तःकरण शुद्ध नहो तबतक ज्ञाननिष्ठा और संन्यासका माहात्म्य सुनकर, कर्मोंका त्याग न करे. और जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो उनकेवास्ते कर्मोंका संन्यास करना. चतुर्थाश्रमधारणकरना, निषेध नहीं. अवश्य चतुर्थाश्रम धारण करना. उसकेविना ज्ञाननिष्ठा कभी परिपाक न होगी यह नियम याने विधि है ॥ १ ॥

मू०—यंसंन्यासमितिप्राहुर्योगंतंविद्धिपाण्डव ॥
नह्यसंन्यस्तसंकल्पोयोगीभवतिकश्चन ॥ २ ॥

पांडव १ यम् २ संन्यासम् ३ प्राहुः ४ तम् ५ हि ६ योगम् ७ इति ८ विद्धि ९ असंन्यस्तसंकल्पः १० कश्चन ११ योगी १२ न १३ भवति १४ ॥ २ ॥ अ०—उ० कच्चेकर्मयोगीका संन्यासमें अधिकार नहीं यह कहतेहैं हे अर्जुन ! १ जिसको २ संन्यास ३ कहते हैं ४ तिसको ५ हि ६ योग ७ सि० कहतेहैं ❀ यह ८ जानतू ९ सि० क्योंकि संन्यास योगकाही फलहै ❀ नहीं संन्यास किये हैं संकल्प जिसने १० सि० ऐसा ❀ अर्थात् शुभाशुभसंकल्पोंको जिसने नहीत्यागा है सो ऐसा १० कोई ११ योगी १२नहीं १३ होताहै. १४ तात्पर्य जबतक शुभ वा अशुभ संकल्प मनमें बने रहे तबतक अपनेको सिद्धयोगी समझना न चाहिये. अर्थात् यह समझे कि मेरा भक्तियोग अभी सिद्ध नहीं हुआ,जब अन्तःकरणका निरोध होजाय, संकल्पविकल्प सूक्ष्म (कम) होजावें तब संन्यासका अधिकारी होता है ॥ २ ॥

मू०—आरुरुक्षोर्मुनेर्योगंकर्मकारणमुच्यते ॥
योगारूढस्यतस्यैवशमःकारणमुच्यते ॥ ३ ॥

योगम् १ आरुरुक्षोः २ मुनेः ३ कर्म ४ कारणम् ५ उच्यते ६

योगारूढस्य ७ तस्य ८ एव ९ शमः १० कारणम् ११ उच्यते १२ ॥३॥ अ०—उ०हेअर्जुन! पीछे जो मैंने कर्मयोगीकी स्तुति की, उस कहनेसे यह नहीं समझना कि सदा कर्मही करता रहे. अधिकारी प्रति मैंने वहाँ कहा है. तात्पर्य सिद्धान्त मेरा यह है, कि जो मैं अब कहता हूं. सि० ऊपरके पदपर ❋ ज्ञानपर १ चढनेकी इच्छा है जिसको २ सि० ध्यानयोगमें समर्थ नहीं, ऐसा अथात् सच्चिदानन्द निराकारका ध्यान नहीं करसक्ता ऐसा ज्ञानयोगका जिज्ञासु ऐसा ❋ मननशीलको ३ अर्थात् मनमें ता यह मनन करता है, कि सच्चिदानंदनिराकारका ध्यान करना चाहिये. परंतु अंतःकरण मैला होनेसे ध्यान नहीं होसक्ता. ऐसे जिज्ञासुमुनिको ३ कर्म ४ अर्थात् बहिरंग भगवदाराधनादि४सि० परमानन्दस्वरूपआत्माके प्राप्तिमें ❋हेतु ५ कहा है. ६ सि० और ❋ योगारूढको ७ अर्थात् शुद्धांतःकरणवालेको तात्पर्य जो ज्ञानयोगपर चढगया है, वोही कर्मयोगी साधनचतुष्टयसंपन्न होकर ज्ञाननिष्ठ हुआ है, ७ तिसको ८ ही ९ उपशम १० हेतु ११ कहा है १२. तात्पर्य परमानंदस्वरूप आत्माके प्राप्तिमें उपशम हेतु है. अर्थात् लौकिक और वैदिककर्मोंसे उपराम होकर सच्चिदानन्दनिराकारका ध्यान करना कहा है. फिर उसको बहिरंगकर्मोंमें प्रवृत्त होना न चाहिये. क्योंकि वे विक्षेपके हेतु हैं, याने ऊपरचढेहुवेको नीचे उतारते हैं. टि० तिसकोही. अर्थात् उसीको कि जो पहले कर्मयोगीथा; याने साकारमूर्तियोंका ध्यान करताथा, और बहिरंगकर्मोंमें प्रवृत्तथा उसी बहिर्मुखको अन्तर्मुख होना कहते हैं श्रीभगवान्. यह नहीं समझना कि कर्मयोगीको सदा बहिर्मुख रहनाही कहते हैं, वा ज्ञानमार्ग दूसरा है, उसके अधिकारी दूसरे हैं. जैसे कोईकोई कमसमझवाले यह कहाकरते हैं कि मकान एक है उसके रस्ते अनेक हैं, यह बात नहीं, तो मोक्षमार्ग एकहीहै. मजला अनेकहैं, रस्ते अनेक नहीं. रस्ता एकही है. अर्थात् मोक्षके

मार्ग अनेक नहीं,अधिकारीप्रति भूमिका दरजे याने सीढीअनेक हैं॥

मू०–यदाहिनेंद्रियार्थेषुनकर्मस्वनुषज्जते ॥
सर्वसंकल्पसंन्यासीयोगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

यदा १ हि २ न ३ इंद्रियार्थेषु ४ न ५ कर्मसु ६ अनुषज्जते ७ सर्वसंकल्पसंन्यासी ८ तदा ९ योगारूढः १० उच्यते ११ ॥ ४ ॥

अ०–उ० यह कैसे प्रतीत हो कि योगारूढ अब मैंहुआ.इसअपेक्षामें योगारूढका लक्षण कहते हैं. जिसकालमें १ ही २ सि०जो महापुरुष ✱ न ३ विषयोंमें ४ न ५ कर्मोंमें ६ आसक्ति करता है. ७ अर्थात् इसलोकमें जो देखे या सुने हैं रूपशब्दादि और परलोकके जो अर्थवाद सुने हैं उनमेंसे किसीमें तृष्णा नहीं करता. क्योंकि अंतःपरमानंदस्वतंत्रकेसामने बहिःसुख परिच्छिन्नपरतंत्रविषयजन्य ऐसे सुखको तुच्छ समझता है. और बहिर्सुखके जो साधन कर्म उनको करभी सक्ता है, परंतु अपना उनसे कुछ प्रयोजन नहीं, यह समझकर उनकर्मोंमें भी प्रीति नहीं करता ७ सि० और ✱ सर्वसंकल्पोंके त्यागनेका स्वभाव है जिसका ८ अर्थात् इसलोकके या परलोकके निमित्त, जो जो संकल्प उत्पन्न होते हैं, उन सबको त्याग देता है. ८ सि० तात्पर्य सिवाय सच्चिदानंदआत्माके और किसीपदार्थके प्राप्तिका संकल्पमात्रभी नहीं करता, जिसकालमें ✱ तिसकालमें ९सि० वो पुरुष ✱योगारूढ १०कहाजाता है ११ तात्पर्य सो महात्मा सोई साधु, सोई भगवद्भक्त; जो विषयादिमें प्रीति नहीं करता ॥ ४ ॥

मू०–उद्धरेदात्मनात्मानंनात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मैवह्यात्मनोबंधुरात्मैवरिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

आत्मना १ आत्मानम् २ उद्धरेत् ३ आत्मानम् ४ न ५ अवसादयेत् ६ आत्मनः ७ आत्मा ८ हि ९ एव १० बंधुः ११ आत्मनः १२

आत्मा १३ एव १४ रिपुः १५ ॥ ५ ॥ अ०—उ०अत्र यह कहते हैं, कि ज्ञानपर आरूढ होना चाहिये. चढ़ना योग्य है, नीचे कर्मोंमें ही गिरना न चाहिये. विवेकयुक्तमन करके १ जीवको २ सि० ज्ञान-योगपर ❀ चढ़ावे ३ सि० यहा जीवका संसारसे उद्धार करना है. ❀ अर्थात् ज्ञाननिष्ठ होना योग्य है ३. जीवको ४ नीचे न गिरावे ५। ६ अर्थात् सदा कर्मोंमें ही न लगारहै ६ जीवका ७ विवेकयुक्तमन ८ ही ९ तो १० बंधु ११ सि० है ❀ अर्थात् संसारसे मुक्त करनेवाला है ११ सि० और ❀ जीवका १२ रागद्वेषादियुक्तमन १३ ही १४ वैरी १५ सि० है ❀ अर्थात् नरकादिको प्राप्त करनेवाला है १५. टी० विवेकयुक्त रागद्वेषादिरहित मनको शुद्ध मन कहते हैं ८ विवेकरहित रागद्वेषादिसहित मनको मलिनमन कहतेहैं १३ दोए-वकारशब्दोंसे यह तात्पर्य है, कि जो मैं कहताहूं, इसकोधारणकरना योग्य है. कहानिवत् सुननेसे प्रयोजन सिद्ध न होगा १०। १४ तात्पर्य बंधमोक्षमें कारण मनुष्योंका मनहीहै. विषयोंमें आसक्त हुआ बंधका हेतु और स्वरूपनिष्ठ हुआ मोक्षका हेतुहै. उक्तंच॥ "मनएवमनुष्याणां कारणंबंधमोक्षयोः" ॥ "मुक्तिमिच्छसिचेत्तातविषयान्विषवत्त्यज ॥ क्षमार्जवदयातोषसत्यंपीयूषवद्भज" ॥ अष्टावक्रजीने कहाहै, कि हेतात ! तू जो मुक्तिकी इच्छा करता है, तो विषयोंको विषवत् त्याग और क्षमा, आर्जव, दया, संतोष, और सत्य इनका अनुष्ठान कर. यही तात्पर्य इस मंत्रका है ॥ ५ ॥

मू०—बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्ययेनात्मैवात्मनाजितः ॥
अनात्मनस्तुशत्रुत्वेवर्तेतात्मैवशत्रुवत् ॥ ६ ॥

तस्य १ एव २ आत्मनः ३ आत्मा ४ बंधुः ५ येन ६ आत्मना ७ आत्मा ८ जितः ९ अनात्मनः १० तु ११ आत्मा १२ एव १३ शत्रुवत् १४ शत्रुत्वे १५ वर्तेत १६॥ ६॥ अ०—उ० पिछले अर्थको इस

मंत्रमें स्पष्ट करते हैं. तिसही जीवका १ । २ । ३ मन ४ बंधु ५
है, कि ❀ जिस जीवने ६।७ शरीर, इन्द्रिय, प्राण आर अन्तःकर
वशमें किया है. ९ और जिसने अंतःकरणादि नहीं वश किये,
का १० । ११ मन १२ ही १३ वैरिवत् १४ वैरभावमें १५ व
१६ तात्पर्य विषयासक्तमन मोक्षमें प्रतिबंध है, इसहेतुसे उसको
कहा और रागद्वेषादिरहित मन मोक्षमें सहाय कहा है, इस है
उसको बंधु कहा ॥ ६ ॥

मू०–जितात्मनःप्रशांतस्यपरमात्मासमाहितः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषुतथामानापमानयोः ॥ ७॥

जितात्मनः १ प्रशान्तस्य २ परमात्मा ३ समाहितः ४ शीतो
सुखदुःखेषु ५ तथा ६ मानापमानयोः ७ ॥ ७ ॥ अ०–उ०अ
करणादिके वश करनेका फल कहते हैं. जीते हैं अन्तःकरण
जिसने १ सि० इसीहेतुसे जो ❀ भलेप्रकार शांत है अर्थात्
रहित है जो, तिसको २ परमात्मा ३ अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दपूर्ण
३ साक्षात् अपरोक्ष आत्मभावकरके वर्तता है अर्थात् आत्मा
दानंद अखंड नित्यमुक्त साक्षात् अपरोक्ष जीतेहुएही अनुभव क
है ४ सि० और कोई उसको प्रतिबन्ध (बाधा याने विक्षेप)
करसक्ते यह आधे श्लोकमें अब कहते हैं ❀ शीत, गरमी, सुख
दुःख इनमें५ सि०और❀ तैसेही ६ मान और अपमानमें ७
आत्मा अखंड अपरोक्ष रहता है ❀ तात्पर्य पांचवीं छठी जो ज्ञा
भूमिका हैं उनमें वर्तता है अर्थात् सदा जीवन्मुक्तिका
भोक्ताहै इसीहेतुसे उस आनंदके सामने मानापमानादिभी नहीं
होते और कभी रजोगुणके आविर्भाव होनेसे, बहिर्मुखवृत्ति
अपमानादिभी प्रतीत हों, तोभी उनको गुणोंका कार्य समझकर
अपनेको असंग जानकर, विक्षेपको नहीं प्राप्त होता है ॥ ७॥

मू०–ज्ञानविज्ञानतृप्तात्माकूटस्थोविजितेंद्रियः ॥
युक्तइत्युच्यतेयोगीसमलोष्टाश्मकांचनः ॥ ८ ॥

युक्तः १ योगी २ इति ३ उच्यते ४ ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा ५ कूटस्थः ६ विजितेन्द्रियः ७ समलोष्टाश्मकांचनः ८॥८॥ अ०–उ० जिसयोगारूढको अखंडात्मा अपरोक्ष है, उसका लक्षण यह है. योगारूढ १ योगी २ ऐसा ३ कहा है ४. सि० उसका लक्षण यह है ❀ ज्ञानविज्ञानकरके तृप्त है अन्तःकरण जिसका ५ निर्विकार ६ भलेप्रकार जीती हैं इन्द्रियें जिसने ७ समान है लोहा, पाषाण और सोना जिसको ८ सि० उसको योगारूढ योगी कहते हैं ❀ टी० महावाक्य श्रवण करके यह जानना, कि मैं ब्रह्म हूं; क्योंकि वेदवाक्यमें विश्वास (श्रद्धा) करना अवश्य योग्य है, वेदोंके कहनेसे यह जानना, कि मैं सच्चिदानंदपूर्ण ब्रह्म हूं, इसको ज्ञान कहते हैं अर्थात् यह तो परोक्षज्ञान है और युक्तिसमन्वयादिकरके साक्षात् करामलकवत् अनुभव करना इसको विज्ञान कहते हैं अर्थात् यह अपरोक्षज्ञानहै. इन दोनों ज्ञानविज्ञानकरके संतुष्टहै अन्तःकरण जिसका, उसको ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कहते हैं ५. रागद्वेषादि विकारों करके जो रहित है उसको कूटस्थ कहते हैं ६ ॥ ८ ॥

मू०–सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥
साधुष्वपिचपापेषुसमबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

सुहृत् १ मित्र २ अरि ३ उदासीन ४ मध्यस्थ ५ द्वेष्य ६ बंधुषु ७। १ सि० यहांतक एक पद है ❀ साधुषु २ च ३ पापेषु ४ अपि ५ समबुद्धिः ६ विशिष्यते ७ ॥ ९ ॥ अ०–उ० सातवें अंक, तक एकपद है. पापीसाधुआदिजनोंमें समानबुद्धि है जिसकी, सो पूर्वोक्तसेभी विशेष है यह कहते हैं. वेप्रयोजन जो दूसरेका ग्र चाहे और करे; और जो ममता और स्नेह करके वर्जित हो

सुहृद् कहते हैं १ ममतास्नेहके वशहोकर जो भला करे उसको मित्र कहते हैं २. जो अपना सदा अनिष्टचिन्तवन करता है और प्रत्यक्षभी करताहै उसको अपना शत्रु समझना ३. किसीका न बुरा चाहना न भला चाहना, इसको उदासीन कहतेहैं ४. दोके झगडेमें यथार्थ ज्योंका त्यों कहनेवाला मध्यस्थहै ५. आत्माका अप्रिय अर्थात् आपसे जो प्यार न करे याने अपनेको लाभहुआ देखकर जिस दूसरेको वह सहन न हो उसको द्वेष्य कहते हैं ६. संबंधि ७ इन सबमें ७।१ और साधुजनोंमें २।३सि०और ❀ पापीपुरुषोंमेंभी ४।५ समबुद्धिवाला विशेष है ७. तात्पर्य शत्रुमित्रादिमें जो न राग करता है, न द्वेष करता है, सो पूर्वोक्तयोगीसे भी विशेषहै ॥ ९ ॥

मू०—योगीयुंजीतसततमात्मानंरहसिस्थितः ॥
एकाकीयतचित्तात्मानिराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

योगी १ सततम् २ आत्मानम् ३ युंजीत ४ रहसि ५ स्थितः ६ एकाकी ७ यतचित्तात्मा ८ निराशीः ९ अपरिग्रहः १० ॥ १० ॥

अ०—उ० योगारूढका लक्षण कहा, अब योगको अंगोंके सहित कहते हैं. योगारूढ १ निरन्तर २ अन्तःकरणको ३ समाधानकरे ४ एकान्तमें ५ बैठकर ६ अकेला ७ जीता है अन्तःकरण शरीर जिसने ८ आशारहित ९ परिग्रहरहित १० सि० ऐसा होवे ❀ टी० योगारूढ बहिरंगसाधनोंमें, अर्थात् तीर्थयात्रादिमें मुख्यता करके प्रवृत्त न हो. निरंतर दिनरात्रि अन्तःकरणका निरोध करे, क्षणमात्र बहिर्मुखवृत्ति न होने पावे २ जिसजगह सिंह, सर्प और चोर इत्यादिका अतिभय न हो, स्त्री बालक या प्राकृतजन इन्होंका समुदाय न हो, शुद्ध चित्तके प्रसन्नकरनेवाले स्थलमें अर्थात् उत्तराखंडभागीरथीनर्मदाजीके तीर इत्यादि स्थलोंमें चिरकाल निवास करे ५. एकांतमेंभी अकेलाही रहे, दोचार इकठे

होकर नहीं रहना ७ एकान्तजगहभी हो और अकेलाभी हो तो वहां रहकर शिष्यसेवकोंको उपदेश करना इत्यादि क्रिया, अथवा मंदिरकुटीके पास फूलवारी लगाना इत्यादि क्रिया न करे, कि जिससे वृत्ति बहिर्मुख हो ८. एकांतमें अकेला जब निवास करे, तब किसीसे यह आशा न रक्खे कि हमको कोई इसीजगह बैठे हुए भिक्षा देजाया करे और बन्धान्नभी न बाँधे, बन्धान्नकी आशाभी न रक्खे तात्पर्य भिक्षान्न भोजन करना योग्यहै९. एकान्तमें अकेला जो मनके समाधान करनेको बैठे, तो भोजनवस्त्रादि सिवाय शरीर-यात्राके संचय न करे, ऊपर कहे अनुसार जब चलेगा, तब अभ्यास होसक्ता है १०. निरन्तर, एकान्त, अकेला, जितेन्द्रिय, आशारहित परिग्रहरहित, ये सब अंग अन्तःकरणसमाधान करनेके हैं. बिना गृहस्थाश्रमके छोडे, विनाविरक्त हुए इन सब अंगोंका अनुष्ठान भले प्रकार नहीं होसक्ता जो सब न होसके, तो जितना होसके, उतना अवश्य करना योग्यहै. विना अभ्यासके बहिरंगसाधन निष्फल हैं, ईश्वराराधनादिकर्मोंका फल यहीहै, कि अंतःकरण शान्त होना ॥१०॥

मू०-शुचौदेशेप्रतिष्ठाप्यस्थिरमासनमात्मनः ॥
नात्युच्छ्रितंनातिनीचंचैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥

शुचौ १ देशे २ आत्मनः ३ आसनम् ४ स्थिरम् ५ प्रतिष्ठाप्य ६ न ७ अति ८ उच्छ्रितम ९ न १० अति ११ नीचम् १२ चैलाजिनकुशोत्तरम् १३॥११॥ अ०-उ० आसनकी विधि दोश्लोकोंमें कहतेहैं आसन,योगका बाहिरंग साधनहै.अंतरंग अभ्यासका सहायक है. पवित्रभूमिमें १।२ अपना३आसन४अचल ५ बिछाकर ६ सि० अभ्यास करे. कैसाहै वो आसन कि ❋ न ७बहुत ८ऊंचा ९ न: १० बहुत ११ नीचा १२ सि० हो. फिर कैसा इस अपेक्षामें कहते हैं कि ❋ कुश, मृगचर्म औरवस्त्र, ये ऊपर हों भूमिके १३ अर्थात्

पृथिवीके ऊपर प्रथम कुशाका आसन, उसके ऊपर मृगचर्मादि उसके ऊपर सूतवस्त्र १२ सि०बिछावे ❀ टी० कोई भूमि तो स्वभावसेही पवित्र होती है. जैसी श्रीगंगाजीकी रेती. "वसुधासर्वे शुद्धा न लेपा यत्र विस्मृता" पृथिवी सबजगह पवित्र है. परन्तु जहां लीपगई हो तो वहां फिर उसको लीपलेना योग्यहै अथव उत्तरा खंडादिको पवित्रदेश समझना योग्य है १ । २ दूसरेके आसनपर बैठना शास्त्रमें निषिद्धहै. इसवास्ते अपना आसन कहा ३।४ स्थि शब्दसे तात्पर्य यह है, कि यह काम दोचारघडीका वा दोचारमही नेका नहीं, बरसोंका यह काम है अर्थात् जबतक जीवे तबतक यही अभ्यासकरता रहे, यह अभ्यास अज्ञानीको ज्ञानका प्राप्त करनेवाला और ज्ञानीको तो जीवन्मुक्ति देनेवाला है. सिवाय इसके और क्या काम श्रेष्ठतरहै, कि इसको छोडकर दूसरा करनाचाहिये ६ रुईके विछोनेपर वा वस्त्र विछाकर उसपर न बैठना. चौकी छतकी मुंडेर उसपर भी बैठकर योगाभ्यास नहीं करना ७ । ८ । ९ विनाआ सन पृथिवीपर बैठकर वा गढेमें बैठकर, यह योगाभ्यास नहीं होसक्ता १० । ११ । १२. इत्यभिप्रायः ॥ ११ ॥

मू०—तत्रैकाग्रंमनःकृत्वायतचित्तेन्द्रियक्रियः ॥
उपविश्यासनेयुंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

यतचित्तेन्द्रियक्रियः १ तत्र २ आसने ३ उपविश्य ४ मनः ५ एकाग्रम् ६ कृत्वा ७ आत्मविशुद्धये ८ योगम् ९ युंज्यात् १० ॥ १२ ॥

अ०—जीती है चित्तकी और इन्द्रियोंकी क्रिया जिसने १ सि० ऐसा योगी ❀ तिसआसनपर २।३ बैठकर ४ मनको ५ एकाग्र करके ६।७ अंतःकरणकी शुद्धिकेलिये ८ सि० इस ❀ योगका अभ्यास करे ९।१० टी०अगले पिछले बातोंको याद करना, यह चित्तकी क्रिया है देखना, श्रवण करना इत्यादि इन्द्रियोंकीक्रियाहैं १ मनको सब विषयों

से हटाकर आत्माके सन्मुख करके, पिछले मंत्रमें जिसप्रकारका आसन कहा है,उसपर बैठकर अभ्यास करे २।३।४।५।६।७।१०॥१२॥

मू०–समंकायशिरोग्रीवंधारयन्नचलंस्थिरः ॥
संप्रेक्ष्यनासिकाग्रंस्वंदिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥

कायशिरोग्रीवम् १ समम् २ अचलम् ३ धारयन् ४ स्थिरः ५ स्वम् ६ नासिकाग्रम् ७ संप्रेक्ष्य ८ दिशः ९ च १० अनवलोकयन् ११ ॥ १३ ॥ अ०–उ० चित्तके एकाग्र करनेमें देहकी धारणाभी बहिरंगसाधनमें उपयोगीहै,उसकोभी दोमंत्रोंमें कहतेहैं-देहका मध्यभाग, शिर और ग्रीवा इनको १ सम २ अचल ३ धारण करता हुआ ४ दृढ प्रयत्नवान् होकर ५ अपने ६ नासिकाके अग्रको ७ देखकर ८ सि० पूर्वादि ❋ दिशाको ९ भी १० नहीं देखता हुआ ११ सि० आत्मपरायण होकर बैठे ❋ टी० मूलाधारसे लेकर मूर्द्धातक सीधा निश्चल बैठे १।२।३।४।दुःख समझकर प्रयत्नमें कचाई न होने पावे सावधान होकर धीरजके सहित दृढ होकर बैठे. जो शरीरपात हो जाय तो होजावे परन्तु विनामनके शान्त हुए वहांसे हटना नहीं ५, नासाग्रदृष्टिसे तात्पर्य यह नहीं, कि नासिकाके अग्रभागको ही देखते रहना. किंतु यह तात्पर्य है कि ऐसे बैठे जैसे नासाग्रदृष्टि होकर बैठते हैं दृष्टि और वृत्ति आत्मामें लगाना योग्य है. नेत्रोंको न बहुत खोलना न मीचना ६। ७।८। इत्यभिप्रायः ॥१३ ॥

मू०–प्रशांतात्माविगतभीर्ब्रह्मचारिव्रतेस्थितः ॥
मनःसंयम्यमच्चित्तोयुक्तआसीतमत्परः ॥ १४ ॥

प्रशांतात्मा १ विगतभीः २ ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ३ मनः ४ संयम्य ५ मच्चित्तः ६ युक्तः ७ मत्परः ८ आसीत ९ ॥ १४ ॥ अ०–भलेप्रकर शान्त हुआ है अन्तःकरण जिसका १ दूर होगया है भय जिसका २ ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित ३ मनको ४ रोककर ५ मुझ सच्चि-

दानन्दस्वरूपमें चित्त है जिसका ६ सि० सो ❀समाहित हुआ ७ मैं सच्चिदानन्दस्वरूपही हूं, परमपुरुषार्थ जिसका ८. सि० ऐसे समझकर ❀बैठे ९ टी०अष्टांगमैथुनकरके वर्जित, ज्ञानका उपदेश करनेवाले गुरुकी टहलमें तत्पर, भिक्षान्नकाही सदा भोजन करनेवाला ३ अन्तःकरणकी वृत्तियोंको उपसंहार करके ४।५ समाधान, अप्रमत्त और अनालस्य हुआ ७ परब्रह्मके प्राप्तिको ही परमपुरुषार्थ समझकर. ८ पूर्वोक्त आसनपर बैठकर अभ्यास करे ॥ १४ ॥

मू०—युंजन्नेवंसदात्मानंयोगीनियतमानसः ॥
शान्तिंनिर्वाणपरमांमत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५॥

योगी १ सदा २ एवम् ३ आत्मानम् ४युंजन् ५ नियतमानसः६ शान्तिम् ७ अधिगच्छति ८ निर्वाणपरमाम् ९। १०॥ १५॥

अ०—उ०इसप्रकार अभ्यास करनेसे जो होता है सो सुन, हे अर्जुन! योगीविरक्त १ सदा २ इसप्रकार ३ शरीरेन्द्रियप्राणांतःकरणका ४ समाधान करता हुआ५निरुद्ध हुआ है मन जिसका६सि०सो❀शान्तिको ७ प्राप्त होता है ८ सि० कैसी है वो शान्ति❀मोक्षमें निष्ठा है जिसकी अर्थात् मोक्षमें तात्पर्य है जिसका ९ सि० और वो शान्ति ❀सच्चिदानन्दरूप है १० सि० इसको प्राप्त होता है❀ तात्पर्य परमगतिको अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १५ ॥

मू०—नात्यश्नतस्तुयोगोस्तिनचैकान्तमनश्नतः ॥
नचातिस्वप्नशीलस्यजाग्रतोनैवचार्जुन ॥ १६ ॥

अर्जुन १ अति २ अश्नतः ३ तु ४ योगः ५ न ६ अस्ति ७ एकान्तम् ८ अनश्नतः ९ च १० न ११ अति १२ स्वप्नशीलस्य१३ च १४ न १५ जाग्रतः १६ च १७ न १८ एव१९॥ १६ ॥अ०—उ०ध्याननिष्ठयोगिको अब आहारादिका नियम कहते हैं, दोमंत्रोंमें. यह भी बहिरंग साधन उपयोगी है हे अर्जुं! १ बहुत २ भोजन

करनेवालेको ३ भी ४ योग ५ नहीं ६ होता ७ अर्थात् योग सिद्ध नहीं होता अत्यन्त ८ नहीं खानेवालेको ९भी १० नहीं ११ बहुत १२ सोनेवालेको १३ भी १४ नहीं १५ जागनेवालेको १६ भी १७ नहीं१८सि०योगसिद्धहोता॥निश्चयसे१९सि०यहीबातहै॥ १६

मू०–युक्ताहारविहारस्ययुक्तचेष्टस्यकर्मसु॥
युक्तस्वप्नावबोधस्ययोगोभवतिदुःखहा ॥ १७ ॥

कर्मसु१युक्तचेष्टस्य २ युक्ताहारविहारस्य ३ युक्तस्वप्नावबोधस्य ४ दुःखहा ५ योगः ६ भवति ७ ॥ १७ ॥ अ०–उ० ऐसे पुरुषको योग सिद्ध होता है, कर्मोंमें १ प्रमित याने मापीहुई है क्रिया जिसकी २ युक्तका खाना और चलना है जिसका ३ युक्तका सोना और जागनाहै जिसका ४सि०उसको॥दुःखोंका नाशकरनेवाला ५ योग६ सि० सिद्ध॥होता है ७.टी० चारभागमेंसे दो भाग तो अन्नसे पूर्ण करे. एक भाग जलसे पूर्ण करे और एक भाग पवन आनेजानेके लिये खाली रक्खे. तात्पर्य यह कि एकवख्त कुछ क्षुधा रखकर भोजन करना. "द्वौभागौपूरयेदन्नैस्तोयेनैकंप्रपूरयेत् ॥ मारुतस्यप्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत्" ॥ सिवाय शौचस्नानभिक्षाके वृथा डोलना या फिरना वे जोगहै. क्रियाका प्रमाण बांधना योग्यहै अर्थात् इतना दूर जंगल जाना, इतने देरमें स्नान करना, अमुक समय उसमें भी इतने देरमें भोजन करना, ये सब विधि मानवादि धर्मशास्त्रमेंसे श्रवण करना योग्य है ३ रात्रिके बीचमें डेढपहर सोना, सिवाय उसके सदा जागना योग्य है ॥ १७ ॥

मू०–यदाविनियतंचित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥
निस्पृहःसर्वकामेभ्योयुक्तइत्युच्यतेतदा ॥ १८ ॥

यदा १ विनियतम् २ चित्तम् ३ आत्मनि ४ एव ५ अवतिष्ठते ६ सर्वकामेभ्यः ७ निस्पृहः ८ तदा ९ युक्तः १० उच्यते ११ इति १२

॥ १८ ॥ अ०—उ० किसकालमें योग सिद्ध होता है, इस अपेक्षामें कहते हैं. जिस कालमें १ भलेप्रकार निरुद्ध हुआ याने जीता हुआ २ चित्त ३ आत्मामें ४ ही ५ ठहरता है ६ सबकामोंसे ७ दूर होगई है तृष्णा जिसकी ८ सि० सो ✽ तिसकालमें ९ सिद्धयोगी १० कहा है ११ यह १२ सि० जानना योग्य है ✽ अर्थात् जिसकालमें इस लोककी या परलोककी सबकामना दूर होजावें, और चित्त भले प्रकार एकाग्र होकर आत्मामें स्थित होवे जिसका, सो महात्मा तिस कालमें सिद्धयोगी कहा जाता है. तात्पर्य जब ऐसा होजाय, कि जैसा इसमंत्रमें कहाहै- तब समझना कि मुझको अब योग सिद्ध हुआ ॥ १८ ॥

मू०—यथादीपोनिवातस्थोनेंगतेसोपमास्मृता ॥
योगिनोयतचित्तस्ययुंजतोयोगमात्मनः ॥ १९ ॥

यथा १ दीपः २ निवातस्थः ३ न ४ इंगते ५ सा ६ उपमा ७ स्मृता ८ योगिनः ९ यतचित्तस्य १० आत्मनः ११ योगम् १२ युंजतः १३ ॥ १९ ॥ अ०—उ० एकाग्रचित्तकी उपमा यह है जैसे १ दीपक २ पवनरहित ऐसेजगह जलता हुआ ३ नहीं ४ हलता ५ सो ६ उपमा ७ कही है ८ योगीके ९ जीते हुए चित्तको १० तात्पर्य जिसयोगीका भलेप्रकार अन्तःकरण निरोध है, उस अन्तःकरणको यह उपमा है कि जैसे पवनरहितजगे जलता हुआ दिवा नहीं हलता, ऐसेही उस योगीका चित्त स्थिर रहताहै. सि० फिर कैसा है वो योगी, कि जिसका चित्त स्थिर रहताहै, सो कहते हैं ✽ आत्माके ११ सि० प्राप्तिके लिये ✽ आत्मध्यानयोगका १२ अनुष्ठान करनेवालेका १३ सि० चित्त स्थिर रहता है ✽ ॥ १९ ॥

मू०—यत्रोपरमतेचित्तंनिरुद्धंयोगसेवया ॥
यत्रचैवात्मनात्मानंपश्यन्नात्मनितुष्यति ॥ २० ॥

यत्र १ योगसेवया २ निरुद्धम् ३ चित्तम् ४ उपरमते ५ यत्र ६

च ७ आत्मना ८ आत्मानम् ९ एव १० पश्यन् ११ आत्मनि १२ तुष्यति १३ ॥ २० ॥ अ० जिसकालमें १ समाधियोगका अनुष्ठान करके २ निरुद्ध हुआ ३ चित्त ४ सि० संसारसे ❀ उपराम होता है ५ और जिसकालमें ६।७ सि० समाधिकरके शुद्ध किया हुआ जो अंतःकरण, तिस ❀ अन्तःकरणकरके ८ परमचैतन्यज्योतिःस्वरूपआत्माको ९ ही १० देखता हुआ अर्थात् आत्माको प्राप्तहुआ ११ सच्चिदानन्दस्वरूपऐसे आत्मामें १२ सन्तुष्ट होताहै १३ तात्पर्य तिसकालमें योगकी सिद्धि होती है ॥ २० ॥

मू०–सुखमात्यन्तिकंयत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ॥
वेत्तियत्रनचैवायंस्थितश्चलतितत्त्वतः ॥ २१ ॥

यत् १ आत्यंतिकम् २ सुखम् ३ अतीन्द्रियम् ४ बुद्धिग्राह्यम् ५ यत्र ६ च ७ अयम् ८ स्थितः ९ तत्र १० वेत्ति ११ तत्त्वतः १२ एव १३ न १४ चलति १५ ॥ २१ ॥ अ०–जो १ अत्यंत २ सुख ३ इंद्रियोंका विषय नहीं ४ अपने अनुभव करके ग्रहण होता है ५ और जिसकालमें ६।७ यह ८ सि० विद्वान् आत्मस्वरूपमें ❀ स्थित हुआ ९ तिसको अर्थात् तिससुखका १० अनुभव करता है ११ सि० आत्मा ❀ तत्त्वसे १२ भी १३ नहीं १४ चलता १५. सि० तिसकालमें योगकी सिद्धि होती है ❀ ॥ २१ ॥

मू०–यंलब्ध्वाचापरंलाभंमन्यतेनाधिकंततः ॥
यस्मिन्स्थितोनदुःखेनगुरुणापिविचाल्यते ॥ २२ ॥

यम् १ लब्ध्वा २ अपरम् ३ अधिकम् ४ लाभम् ५ न ६ मन्यते ७ ततः ८ यस्मिन् ९ च १० स्थितः ११ गुरुणा १२ दुःखेन १३ अपि १४ न १५ विचाल्यते १६ ॥ २२ ॥ अ०–सि० जिसको अर्थात् ❀ आत्माको १ प्राप्त होकर २ दूसरा ३ अधिक ४ लाभ ५ नहीं ६ मानता है ७ तिससे अर्थात् आत्माके लाभसे ८ और जिसमें

अर्थात् आत्मामें ९। १० स्थित हुआ ११ बडे १२ दुःखकरके १३
भी १४ नहीं १५ विचलता है १६ ॥ २२ ॥

मू०—तंविद्यादुःखसंयोगवियोगंयोगसंज्ञितम् ॥
सनिश्चयेनयोक्तव्योयोगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

तम् १ योगसंज्ञितम् २ विद्यात् ३ दुःखसंयोगवियोगम् ४ सः ५ योगः ६ अनिर्विण्णचेतसा ७ निश्चयेन ८ योक्तव्यः ९॥२३॥ अ०- सि०पिछले तीन मंत्रोंमें जो आत्माकी अवस्थाविशेष कही ❀ तिसको १ योगसंज्ञित २ तू जान ३ अर्थात् योग है संज्ञा जिसकी याने जिसअवस्थाविशेषका योग नाम है, उसीको तू योग जान १।२।३ सि०पिछले तीनमंत्रोंमें जो आत्माकी अवस्थाविशेष कही उसीका नाम यागहै. कैसा है वो योग ❀ दुःखकेसंयोगका वियोग है जिसमें ४ अर्थात् दुःख और विषयसम्बन्धी सुख जहां कोई नहीं. केवल निरतिशय आनंद है विषयसंबंधसुखभी विद्वान्के दृष्टिमें दुःखोंका मूल है क्योंकि अतिशयवाला सुखदुःखरूपहै. उसजगह योगशब्दकाविपरीतलक्षण समझना; क्योंकि इसजगह वियोगकानाम जो योगसंज्ञित है यहविपरीत अलंकार कहलाता है. जैसे सुंदरको बेसुंदरकहना ४ सो ५ योग ६ अनिर्विण्णचित्तकरके ७सि० शास्त्र और आचार्योंसे ❀ निश्चय करके ८अनुष्ठान करना योग्य है ९ तात्पर्य आत्मामें तत्पर होना योग्य है. टी०दुःखबुद्धिकरके प्रयत्नकी जो शिथिलता उसको छोडकर अर्थात् चित्तमें यह नहीं चिंतवन करना, कि इसमें तो दुःख प्रतीत होता है. पीछेका आनंदफल किसने देखाहै. ऐसा समझकर चित्तको कच्चा न करे. धैर्यसे वारंवार उत्साहित करे ॥ २३ ॥

मू०—संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वासर्वानशेषतः ॥
मनसैवेंद्रियग्रामंविनियम्यसमन्ततः ॥ २४ ॥
शनैःशनैरुपरमेद्बुद्ध्याधृतिगृहीतया ॥ आत्मसंस्थंमनःकृत्वानकिंचिदपिचिन्तयेत् ॥ २५ ॥

संकल्पप्रभवान् १ कामान् २ सर्वान् ३ अशेषतः ४ त्यक्त्वा ५ मनसा ६ एव ७ समंततः ८ इन्द्रियग्रामम् ९ नियम्य १० ॥ २४ ॥ शनैः १ शनैः २ उपरमेत् ३ धृतिगृहीतया ४ बुद्ध्या ५ मनः ६ आत्मसंस्थम् ७ कृत्वा ८ किंचित् ९ अपि १० न ११ चिन्तयेत् १२ ॥२५॥ अ०— संकल्पसे उत्पन्न होती हैं १ सि० यागकी वैरी जो ❀ कामना २ सि० तिन ❀ सबको ३ समूल ४ त्यागकर ५ सि० विवेकयुक्त ❀ मनकरके ६ निश्चयसे ७ सबतरफसे ८ इन्द्रियोंकसमूहको ९ रोककरे १० ॥ २४ ॥ सहज १ सहज २ अर्थात् अभ्यासक्रम करके १ । २ सि० संसारसे ❀ उपराम हो ३ अर्थात् देखना सुनना बोलना खाना सोना इत्यादिक्रियाओंमें मनको शनैःहटाकर आत्मामें दिनदिनप्रति विशेष लगाना योग्य है ३ धीरजकेसहित ४ बुद्धिकरके अर्थात् धीरज करके वश का हुई जो बुद्धि, तिसकरके ५ मनको ६ आत्मामें भलेप्रकार स्थित ७ करके अर्थात् यह सब आत्माही है आत्मासे पृथक् कुछभी नहीं. इसप्रकार मनको आत्माकार करके ८ कुछ ९ भी १० न ११ चिंतवनकर १२. तात्पर्य यही योगकी परमावधि है टी० चौवीसवेंमंत्रकी. चित्तसे किंचिन्मात्रभी चिंतवन किया, और उससे मनमें कामना उत्पन्न हुई तो वह विषयोंका चिंतवन करनाही अनर्थका हेतु है १. सर्वान् अशेषतः इनदोनोंपदोंके अर्थमें कुछ भेद नहीं प्रतीत होता, दोपदकहनेसे तात्पर्य श्रीमहाराजका यह है, कि इसलोकके वा परलोकके कामनाका गंधमात्रभी न रहने पावे. कामनासे अंतःकरणको निर्लेपकर देना योग्य है ३।४ शब्दादि विषयोंसे ८ सबइन्द्रियोंका ९ निरोधकरके १० सि० पूर्वोक्तयोगका अनुष्ठान करना योग्य है ❀ ॥ २४ ॥ २५ ॥

मू०—यतोयतोनिश्चरतिमनश्चंचलमस्थिरम् ।
ततस्ततोनियम्यैतदात्मन्येववशंनयेत् ॥ २६ ॥

अस्थिरम् १ चंचलम् २ मनः ३ यतः ४ यतः ५ निश्चरति ६

ततः ७ ततः ८ नियम्य९ एतत् १० आत्मनि ११ एव १२ वशम्१३ नयेत् १४ अ०-उ० विचारसेभी जो कदाचित् रजोगुणके वश मन न ठहरे आत्मामें, तो फिर प्रत्याहार करके ठहराना योग्य है सोई कहते हैं. अस्थिर १ चंचल २ मन ३ जिस जिस ४।५सि० विषयमें ❀ जावे ६ तहांतहांसे ७।८रोककर ९इसको अर्थात् मनको १० आत्मामें ११ ही १२ वश १३ करे अर्थात् आत्मामेंही स्थिर करे १४ टी० मनका स्वभावही यहहै, कि एक जगह नहीं ठहरता सदाका चंचल है १।२ इसप्रकार अभ्यासकरनेसे यह मन अस्थिर आत्मामें स्थिर होजाता है. इसवास्ते मनपर सदा दृष्टि रखना योग्य है ॥ २६ ॥

मू०-प्रशांतमनसंह्येनंयोगिनंसुखमुत्तमम् ॥
उपैतिशान्तरजसंब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

एनम् १ योगिनम् २ हि ३ उत्तमम् ४ सुखम् ५ उपैति ६शान्तरजसम् ७ प्रशान्तमनसम् ८ ब्रह्मभूतम् ९ अकल्मषम् १० ॥ २७ ॥ अ०-उ० इसप्रकार अभ्यास करनेसे रजोगुणका नाश होता है रजोगुणका नाश होनेसे योगका जो फल आत्मसुख, वो प्राप्त होता है. यह कहते हैं. इसयोगीको १।२ही३ उत्तम ४ सुख ५ प्राप्त होताहै ६. सि० कैसा है यह योगी ❀ शान्त होगया है रजोगुण जिसका ७ भलेप्रकार शान्त होगया है मन जिसका८ जीवन्मुक्त९ निष्पाप१० अर्थात् धर्मअधर्मकरके वर्जित१०तात्पर्य ऐसे योगीको निरातिशय सुख प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

मू०-युंजन्नेवंसदात्मानंयोगीविगतकल्मषः ॥
सुखेनब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतंसुखमश्नुते ॥ २८॥

एवम् १ योगी २ सदा ३ आत्मानम् ४ युंजन् ५ अत्यन्तम् ६ सुखम्७ अश्नुते८विगतकल्मषः९ सुखेन१० ब्रह्मसंस्पर्शम् ११॥२८॥

अ०—इसप्रकार १ योगी २ सदा ३ मनको ४ वशकरता हुआ ५ अत्यन्त६सुखको७ अर्थात् निरतिशयसुखको७प्राप्त होताहै८. सि० कैसाहै वो योगी? ❀ दूर होगये हैं पाप जिसके ९ सि० सो वा फिर किसप्रकारके सुखको प्राप्त होता है,अर्थात् कैसाहै वोसुख ❀ अनायासकरके १० ब्रह्मका स्पर्श है जिसमें ११ अर्थात् जीवब्रह्मसे एकताको प्राप्त होता है और जिसको अखंडानन्दसाक्षात्कार ऐसाभी कहते हैं. तात्पर्य जीवन्मुक्त होजाताहै. याने जीवते हुए ही उस नित्य अखंडानन्दका अनुभव करता है ११ ॥ २८ ॥

मू०—सर्वभूतस्थमात्मानंसर्वभतानिचात्मनि ॥
ईक्षतेयोगयुक्तात्मासर्वत्रसमदर्शनः ॥ २९ ॥

योगयुक्तात्मा १ सर्वत्र २ समदर्शनः ३ आत्मानम् ४ सर्वभूतस्थम् ५ सर्वभूतानि ६ च ७ आत्मनि ८ ईक्षते ९ ॥ २९ ॥ अ०—उ० अब उसयोगका फल जिसब्रह्मके एकताको दिखाते हैं, योगकरके युक्त है अन्तःकरण जिसका अर्थात् समाहित अन्तःकरणवाला १ सबजगह २ सम देखनेवाला ३ सि० अपने ❀ आत्माको ४ सबभूतोंमें स्थित ५ और सबभूतोंका ६ । ७ सि० अपने ❀ आत्मामें ८ देखता है ९ टी० ब्रह्माजीसे लेकर चींटीपर्यन्त आत्माकी एकता देखता है ६. समाविषमभूतोंमें ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरपर्यंत निर्विशेष ब्रह्म और आत्माके एकताका ज्ञान है जिसको सो सर्वत्र सम देखनेवाला है ॥ २९ ॥

मू०—योमांपश्यतिसर्वत्रसर्वंचमयिपश्यति ॥
तस्याहंनप्रणश्यामिसचमेनप्रणश्यति ॥ ३० ॥

यः १ माम् २ सर्वत्र ३ पश्यति ४ सर्वम् ५ च ६ मयि ७ पश्यति ८ तस्य ९ अहम् १० न ११ प्रणश्यामि १२ स १३ च १४ मे १५ न १६ प्रणश्यति १७ ॥ ३० ॥ अ०—उ० जीव ब्रह्मकी एकता

देखनेका फल कहते हैं, यही मुख्य उपासना परमेश्वरकी है. जो मुझ सच्चिदानन्दपरमेश्वरको २सर्वत्र ३ देखता है ४और सबको ५ मुझमें ७ देखता है ८ अर्थात् मुझ आत्माको सबभूतोंमें, और भूतोंको मुझ सबभूतोंके आत्मामें, जो देखता है८ तिसको ९ मैं नहीं ११परोक्षहूं. १२अर्थात् जो ऐसे समझता है. उसीको मैं सा हूं, वोहो मेरा दर्शन करता है. आत्मासे पृथक्क मैं नहीं १२ सो १३।१४ अर्थात् विद्वान् १४ मुझको १५ नहीं १६परोक्ष है तात्पर्य वो मेरा आत्मा है. वो मुझको सदा अपरोक्ष है. इसी ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्म कहलाता है, मुझमें और ज्ञानीमें कि भी भेद नहीं ॥ ३० ॥

मू०—सर्वभूतस्थितंयोमांभजत्येकत्वमास्थितः ॥
सर्वथावर्तमानोपिसयोगीमयिवर्तते ॥ ३१ ॥

एकत्वम् १ आस्थितः २ यः ३ माम् ४ सर्वभूतस्थित भजति ६ सः ७ योगी ८ सवर्था ९ वर्तमानः १० अपि ११ मयि वर्तते १२ ॥ ३१ ॥ अ–०उ० पूर्वमंत्रोक्तज्ञानी विधिनिषे दास नहीं अर्थात् परतंत्र नहीं, स्वतंत्र है. यह कहते हैं. ब्रह्मकेसाथ ❋ एकताको १ प्राप्त हुआ अर्थात् सच्चिदानन्द अपने प्रत्यगात्माको पूर्णब्रह्म जानता हुआ २ जो ३ मुझ दानन्द सबभूतोंमें स्थित४। ५सि०ऐसेको ❋ भजता है ६ यह सब वासुदेव है ऐसे जो समझता है ६ सो ७योगी याने ज्ञा सर्वथा ९ वर्तमान १० भी ११ मुझ सच्चिदानन्दस्वरूपमें वर्तता है १२. टी० विधिनिषेधको उल्लंघन करभी जो विद्वा व्यवहार किसीको प्रतीतहोताहो तोभी विद्वान् वेदोंकेसाक्षीसे ब्रह्म विहार करता है. विधिनिषेध अज्ञानियोंके वास्ते है. विद्वा व्यवहार विदेहमुक्तिमें क्षती करनेवाला नहीं यह बातआनन्दामृत णीकेतृतीयाध्यायसे भलेप्रकार स्पष्ट कीगई है, तत्रद्रष्टव्यम् ॥

मू०—आत्मौपम्येनसर्वत्रसमंपश्यतियोऽर्जुन ॥
सुखंवायदिवादुःखं सयोगीपरमोमतः ॥ ३२ ॥

अर्जुन १ यः २ आत्मौपम्येन ३ सर्वत्र ४ समम् ५ पश्यति ६ सुखम् ७ वा ८ यदि ९ वा १० दुःखम् ११ सः १२ योगी १३ परमः १४ मतः १५ ॥ ३२ ॥ अ०—उ० ज्ञानियोंमें ऐसा ज्ञानी श्रेष्ठ है. हे अर्जुन ! १ जो २ अर्थात् विद्वान् २ आत्माके उपमाकरके ३ सर्वत्र ४ सम ५ देखताहै ६ सुखको ७ भी ८ और ९ दुःखकोभी १०। ११ सो १२ विद्वान् १३ श्रेष्ठ १४ माना है १५. |सि० महात्मापुरुषोंने अर्थात् महात्मा ऐसे विद्वान्को उत्तम मानते हैं ❀ टी०जैसे इष्टके और अनिष्टके प्राप्तिमें मुझको दुःखसुख होताहै, ऐसेही सबको होता है. इसवास्ते जहांतक होसके किसीको शरीरसे मनसे या वाणीसे दुःख नहीं देना,सुख देना, योग्यहै.आप अपनेको तो शूकरकूकरभी सुख चाहते हुए प्रयत्न करते हैं. दूसरेको सुख देना,परोपकारकरना, यह सज्जनोंका काम है. नहीं तो पशु पक्षी और मनुष्य इनमें क्या विशेषता हुई ? अथवा ऐसेही सब जीव हैं. अपनेसे दूसरेको नीच समझना नीचोंका काम है. आत्मदृष्टिकरके और देहदृष्टिकरकेभी सम देखना योग्य है; क्योंकि देह सबके अनित्य हैं और आत्मा सबका नित्य है. यह विचार परमार्थका है व्यवहारमें परमार्थ नहीं मिलसक्ता ॥ ३२ ॥

मू०—अर्जुनउवाच ॥ योऽयंयोगस्त्वयाप्रोक्तःसाम्येन मधुसूदन ॥ एतस्याहंनपश्यामिचंचलत्वात् स्थितिंस्थिराम् ॥ ३३ ॥

मधुसूदन १ अयम् २ यः ३ योगः ४ साम्येन ५ त्वया ६ प्रोक्तः ७ एतस्य ८ स्थिराम् ९ स्थितिम् १० अहम् ११ न १२ पश्यामि १३ चंचलत्वात् १४ ॥ ३३ ॥ अ०—उ०श्रीभगवान्का यह उपदेश

सुनकर, अर्जुनने विचार किया कि श्रीमहाराज जो कहते हैं वो सब सत्य है. परन्तु मन लयविक्षेपरहित होकर आत्माकार हो दीर्घकाल स्थित रहे, यह मेरे कम समझसे मुझको असम्भव प्र होता है. इसीहेतुसे कहे हुए श्रीमहाराजके लक्षणोंमें असंभव मानताहुआ अर्जुन प्रश्न करता है जिज्ञासाकरके दोश्लोकोंमें. हेकृ चन्द्र ! १ यह २ जो ३ योग ४ समता करके ५ आपने ६ क इसकी ८ दीर्घकाल ९ स्थिति १० में ११ नहीं १२ देखता हूं अर्थात् क्षण दोक्षण या घडी दोघडी मन लयविक्षेपरहित हो समताको प्राप्त होजायगा यह तो संभव होसक्ता है. परन्तु अथवा दिनरात्रिमें पांचचारपहर मन सम याने आत्माकार रहे यह कम समझसे मुझको असंभव मालुम होता है. १३ सि० क मन ❀ चंचल होनेसे १४ अर्थात् मन तो चंचल है वो ठहरसक्ता है ॥ १४ ॥ ३३ ॥

मू०—चंचलंहिमनःकृष्णप्रमाथिबलवद्दृढम् ॥
तस्याहंनिग्रहंमन्येवायोरिवसुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

कृष्ण १ मनः २ चंचलम् ३ हि ४ प्रमाथि ५ बलवत् ६ दृढं ७ निग्रहम् ९ वायोः १० इव ११ सुदुष्करम् १२ अहम् १३ मन्ये ॥३४॥ अ०—उ० सिवाय चंचल होनेके जो मनमें औरभी दोष कोभी अर्जुन प्रकट करता है. हेभगवन्! १ मन २ चंचल ३ सि० है ❀ प्रसिद्धही है ४. सि० सिवाय इसके जो इसमें और भी दो उनको सुनिये प्रथमतो चंचल, दूसरा ❀ प्रमथनस्वभाववाला ५ शरीरइन्द्रियोंको विक्षेप करनेवाला और परवश करनेवाला है तीसरे यह कि ❀ बलवाला ६ सि० ऐसाहै. तात्पर्य विवेकीजनोंके मेंभी नहीं रहता ❀ अर्थात् जो भले प्रकार सोचते समझते भी इसकामकरनेमें यह यह दोष और यह यह दुःखहैं, तोभी मन

होकर, उसीकाममें प्रवृत्त होते हैं ६. सि० चौथे यह कि अनादि काल शब्दादि विषयोंके वासनामें ऐसा ❀ दृढ ७ सि० बँधा हुआ है, कि अनेककर्म उपासनादि करतेभी हैं, तोभी विषयोंसे पृथक् नहीं होता है. हेपरमेश्वर! आपके कृपासे जो हो जायगा वो तो सब सत्यहै, परन्तु मैं तो मनका निरोध पवनवत् अति कठिन समझता हूं. यह अभिप्राय है, इसीको अक्षरोंमें योजना करते हैं ❀ तिसका अर्थात् मनका ८ निग्रह ९ वायुवत् १०।११ अतिकठिन १२ मैं १३ मानताहूं १४ सि० जैसे पवनका रोकना विषयोंसे कठिन प्रतीत होता है ❀ ॥३४॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ असंशयंमहाबाहोमनोदुर्निग्रहं चलम् ॥ अभ्यासेनतुकौन्तेयवैराग्येणचगृह्यते ॥ ३५ ॥

महाबाहो १ असंशयम् २ मनः ३ दुर्निग्रहम् ४ चलम् ५ कौन्तेय ६ अभ्यासेन ७ तु ८ वैराग्येण ९ च १० गृह्यते ११ ॥३५॥ अ०— उ० अर्जुनने जो मनकी गति कही उसका अंगिकार करके श्रीभगवान् मनका निरोध जिसउपायसे होताहै, वह उपाय बताते हैं. हेअर्जुन! १ सि० पीछे दोमंत्रोंमें जो तूने मनकी गति कही, सो सत्य है ❀ नहीं है संशय उसमें २ मन ३ दुर्निग्रह ४ सि० है ❀ अर्थात् मनका रोकना कठिन है ४ सि० और कैसाहै यह मन कि ❀ चलताही रहता है अर्थात् कभी स्थिर नहीं होता ५ सि० परन्तु ❀ हे अर्जुन! ६ अभ्यासकरके ७ तो ८ और वैराग्यकरके ९।१० वशमें होसक्ता है." टी० मनकी दो गति हैं, लय और विक्षेप. अभ्यास करके लय और वैराग्यकरके विक्षेप दूर होता है २. विजातीयका तिरस्कार करके, सजातीका प्रवाह करना, अर्थात् वृत्तिको आत्माकार करना इसको अभ्यास कहते हैं, और विषयोंमें दोषदृष्टि करना इसको वैराग्य कहते हैं ९ और भी वैराग्यके लक्षण जहांतहां मोक्षशास्त्रोंमें प्रसिद्ध हैं ९ वश करनेके मुख्य ये दोई उपाय हैं. इनको छोड जो

पृथक् यत्न करतेहैं, वे वृथा मृगतृष्णावत् भ्रमते हैं. यह अभ्यास वैराग्य तो हो नहीं सक्ता, वृथा साधुमहात्मामहापुरुषोंसे वारं माथा मारते हैं अर्थात् वारंवार यही बूझते हैं, कि महाराज म निरोध जैसा हो सके ऐसी कोई रीति कहो. हजारों बेर मनके घके उपाय वैराग्यको सुनते हैं, तोभी माथा मारतेही रहते हैं क्षणमात्र अनुष्ठान करनेका उनको क्या प्रसंग है ? अनुष्ठान कर लेको यह याद रहे कि वैराग्य और अभ्याससें, वैराग्य प्रथम अभ्यास. पाठक्रमसे अर्थक्रम बलवान् होता है ॥ ३५ ॥

मू०–असंयतात्मनायोगोदुष्प्रापइतिमेमतिः ॥
वश्यात्मनातुयततताशक्योवाप्तुमुपायतः ॥ ३६

असंयतात्मना १ योगः २ दुष्प्रापः ३ इति ४ मे ५ मतिः वश्या त्मना ७ यतता ८ तु ९ उपायतः १० अवाप्तुम् ११ शक्यः ॥ ३६ ॥ अ०–नहीं भले प्रकार जीताहै मन जिसने १ सि० ❋योग प्राप्त होना कठिनहै २।३. यह ४ मेरी ५ समझ ६ सि ❋अर्थात् यह मेरा निश्चय किया हुआ है ६. सि० और ❋व है मन जिसका अर्थात् मन जिसके वशमें है उस ७ यत्नक लेको ८ तो ९ सि० वैराग्य और अभ्यास इनही दोनों ❋उपायों सि० योग ❋ प्राप्त होनेको ११ शक्य है अर्थात् प्राप्त हो है १२. टी० जीवब्रह्मके एकताका नाम योग है २. ता वैराग्य और अभ्यास करके जिसने मन वश किया है. उसको अखंडानन्दकी प्राप्ति होती है. विनावैराग्यके और विनाअभ्या कोई आशा आनन्दछायाकीभी न रक्खे ॥ ३६ ॥

मू०–अर्जुनउवाच ॥ अयतिःश्रद्धयोपेतोयो लितमानसः ॥ अप्राप्ययोगसंसिद्धिंकांगतिं गच्छति ॥ ३७ ॥

श्रद्धया १ उपेतः २ योगात् ३ चलितमानसः ४ अयतिः ५ योगसंसिद्धिम् ६ अप्राप्य ७ काम् ८ गतिम् ९ कृष्ण १० गच्छति ११ ॥ ३७ ॥ अ०—शास्त्रके विधिको सुनसमझकर बहिरंगनित्यादि कर्मोंको त्यागकर, श्रद्धापूर्वक जो कोई मुमुक्षु ज्ञानमार्गमें प्रवृत्त हो, अर्थात् वेदांतशास्त्रके श्रवणादिमें तत्परहो और प्रारब्धवशात् वा किसी प्रतिबन्धसे ज्ञान प्राप्त नहो और वैराग्याभ्यासमें भी शिथिल होजाय और मन विषयोंके तरफ लगजाय ऐसे पुरुषकी क्या गति होगी ? क्योंकि कर्मोंको त्याग देनेसे तो उसको स्वर्गादिकी प्राप्ति न होगी और ज्ञान न होनेसे वो मुक्त न होगा और श्रद्धापूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होनेसे उसको दुर्गति होना न चाहिये क्योंकि ब्रह्मविद्याके क्षणमात्र श्रवण करनेका अत्यन्त माहात्म्य है. यह संशय करके अर्जुन प्रश्न करता है. सि० ज्ञानयोगमें ❀ श्रद्धा करके १ युक्त अर्थात् ज्ञानयोगमें श्रद्धावान् २ सि० और किसी प्रतिबन्ध करके अर्थात् किसी हेतु करके ❀ ज्ञानयोगसे ३ चलित होगया है मन जिसका अर्थात् श्रवणादिसे हटकर विषयोंमें लग गया है, मन जिसका ४ नहीं यत्न किया है ५ सि० भले प्रकार वैराग्यके अभ्यासमें जिसने ❀ अर्थात् मन्द वैराग्यसे अभ्यास शिथिल है जिसका सो मुमुक्षु ५ योगके सिद्धिको अर्थात् जीवब्रह्मके एकताके ज्ञानको ६ नहीं प्राप्त होकर ७ किस ८ गतिको ९ प्राप्त होताहै? १० हे कृष्णचन्द्रमहाराज! ११ ॥ ३७ ॥

मू०—कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिवनश्यति ॥
अप्रतिष्ठोमहाबाहोविमूढोब्रह्मणःपथि ॥ ३८ ॥

उभयविभ्रष्टः १ छिन्नाभ्रम् २ इव ३ कच्चित् ४ नश्यति ५ न ६ महाबाहो ७ ब्रह्मणः ८ प० ९ विमूढः १० अप्रतिष्ठः ॥ ११ ॥ ॥ ३८ ॥ अ०—सि० कर्ममार्ग और ज्ञानमार्गसे ❀ उभयभ्रष्ट हुआ १ छिन्नाभ्रवत् २।३ अर्थात् बादलके टूकेके सरीखा ३

क्या ४ नाश होजाता है १५. सि० या ❀ नहीं ६. हे कृष्णचन्द्र !
सि० कैसाहै वो अयति ❀ ब्रह्मके ८ मार्गमें ९ विमूढ हुआ १० सि
इस हेतुसे निराश्रय ११ सि० है ❀ अर्थात् उसको न कर्मयो
आश्रय रहा, न ज्ञानयोगका ११ टी० जैसे बादलका टूका एकबाद
लमेंसे पृथक् होकर पवनके बलसे दूसरे बादलके तरफ जाता हु
बीचमेंही नाश होजाता है २. ब्रह्मके प्राप्तिका उपाय जो वैराग्य
अभ्यास उसमें ८।९ शिथिल हुआ अर्थात् मन्दबुद्धि हुआ १०॥३८

मू०—एतन्मेसंशयंकृष्णच्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥
त्वदन्यःसंशयस्यास्यच्छेत्तानह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

कृष्ण १ अशेषतः २ एतत् ३ मे ४ संशयं ५ छेत्तुम् ६ हि ७ अर्ह
सि ८ त्वदन्यः ९ अस्य १० संशयस्य ११ छेत्ता १२ न १३ उपपद्य
१४ ॥ ३९ ॥ अ०—हे कृष्णचन्द्र ! १ समस्त २ इस ३ मेरे ४
संशयको ५ छेदन करनेके वास्ते ६ सि० आप ❀ ही ७ योग्यहो ८
आपसे पृथक् ९ इस १० संशयका ११ दूर करनेवाला अर्थात् ना
करनेवाला या छेदन करनेवाला १२ नहीं १३ प्रतीत होता है १४
सि० कोई मुझको ❀ तात्पर्य आप सर्वज्ञहैं, यह संशय आप
नाश कर सक्ते हैं ॥ ३९ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ पार्थनैवेहनामुत्रविनाशस्तस्य
विद्यते॥ नहिकल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिंतातगच्छति ४०॥

पार्थ १ तस्य २ विनाशः ३ न ४ एव ५ इह ६ न ७ अमुत्र ८ विद्यते ९
कल्याणकृत् १० कश्चित् ११ हि १२ दुर्गतिम् १३ न १४ गच्छति १५
तात १६ ॥ ४० ॥ अ०—हे अर्जुन ! १ तिसका अर्थात्
ज्ञाननिष्ठमुमुक्षुका २ नाश ३ न ४ तो ५ इसलोकमें ६ न ७ परलो
कमें ८ होता है ९ अर्थात् पूर्वजन्मसे नीचजन्मकी प्राप्ति उसको

नहीं होती ९.तात्पर्य उनकी हानि (क्षति) न इसलोकमें न परलोकमें. सि० क्योंकि ❋ शुभकर्म करनेवाला १० कोई ११ भी १२ दुर्गतिको १३ नहीं १४प्राप्त होता १५ हे तात ! १६.सि० यह तो बहुत उत्तम शुभकर्म करनेवाला है, क्योंकि श्रद्धापूर्वक ज्ञानयोगमें प्रवृत्त होता है और किसी प्रतिबंधसे जो उसको ज्ञान प्राप्त न हो अथवा मुमुक्षुही मन्दप्रयत्न रहे, अर्थात् आत्मप्राप्तिके लिये भले प्रकार प्रयत्न न करे और विनाज्ञानके उसका देहपात होजाय, तो उसको विद्वान्‌लोक बुरा नहीं कहते. न परलोकमें उसको नरककी प्राप्ति होती है, न पूर्वजन्मसे हीन जन्मकी प्राप्ति होती है. जो उसकी गति होती है, सो अगले मंत्रोंमें कहते हैं. इसी हेतुसे इस मंत्रमें यह कहा कि उसका इसलोकमें या परलोकमें नाश नहीं होता ॥ ४० ॥

मू०–प्राप्यपुण्यकृताँल्लोकानुषित्वाशाश्वतीःसमाः ॥
शुचीनांश्रीमतांगेहेयोगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥

पुण्यकृतान् १ लोकान् २ प्राप्य ३ शाश्वतीः ४ समाः ५ उषित्वा ६ शुचीनाम् ७ श्रीमताम् ८ गेहे ९ योगभ्रष्टः १० अभिजायते ११ ॥ ४१ ॥ अ०–उ० जो योगभ्रष्ट दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता, तोफिर किस गतिको प्राप्त होता है, इस अपेक्षामें कहते हैं. पुण्यकारी पुरुषोंके १ लोकोंको २ अर्थात् अश्वमेधादियज्ञोंके करनेवाले जिन लोकोंमें जाते हैं उनलोकोंको १ । २ प्राप्तहोकर ३ सि० वहां ❋ लाखोंवर्ष ४ । ५ वासकर ६ पवित्र ७ धनवालोंके ८ घरमें ९ योगभ्रष्ट १० जन्म लेता है ११. तात्पर्य वेदोक्त मार्गमें चलनेवाले जो श्रीमान् उनके कुलमें योगभ्रष्ट उत्पन्न होता है कुमार्गियोंके कुलमें कुपात्र उत्पन्न होते हैं ॥ ४१ ॥

मू०–अथवायोगिनामेवकुलेभवतिधीमताम्॥
एतद्धिदुर्लभतरंलोकेजन्मयदीदृशम्॥ ४२॥

अथवा १ धीमताम् २ योगिनाम् ३ एव ४ कुले ५ भवति ६ लोके ७ यत् ८ ईदृशम् ९ जन्म १० एतत् ११ हि १२ दुर्लभतरम् १३ ॥ ४२॥ अ०–उ० ब्रह्मको परोक्ष समझकर जिसने थोडाही कभी कभी ब्रह्मविचार कियाथा, उसकी गति तो पिछले मंत्रमें कही. अब पक्षान्तरसे उसकी गति कहते हैं अथवा यह शब्द पक्षान्तरमेंभी आता है १. तात्पर्य अब इस मंत्रमें उसकी गति कहते हैं कि जिसने बहुत ब्रह्मविचार कियाथा और अपरोक्ष ज्ञान होनेमें कुछ थोडाही काल रहाथा।सि० ऐसा सो योगभ्रष्ट * ज्ञानवान् २ योगियोंके ३ ही ४ कुलमें ५ उत्पन्न होता है ६. सि० इस * लोकमें ७ जो ८ ऐसा ९ जन्म १० सि० है * यह ११ ही १२ बहुत दुर्लभ है १३. सि० क्योंकि ज्ञानियोंके कुलमें जन्म होना मोक्षका हेतु है. कर्मकांडीधनवालोंके कुलमें नानाप्रकारका विक्षेप होनेसे उसी जन्ममें मोक्ष होना कठिन प्रतीत होता है ॥ "नास्य कुले ब्रह्मवित् भवति" इतिश्रुतिः ॥ यहां वेद प्रमाण है, कि ज्ञानीके कुलमें अज्ञानी नहीं उत्पन्न होता, अर्थात् ज्ञानीही होता है उत्पन्नहोकर * तात्पर्य इस लोकमें आत्मतत्त्वका विचार करना यही दुर्लभ है, भोग तो सब लोकोंमें बराबर है अर्थात् पशु, पक्षी आदमी और देवता इनके भी भोग दुःखके देनेमें सब सम हैं केवल आकृतिका भेद है जो राजाको रानीमें आनन्द वोही कङ्गालको अपने स्त्रीमें और कूकरको कूकरीमें. खाना सोना मैथुन और भय इत्यादि सब जीवनमें सम हैं. मनुष्यदेहमें एक ब्रह्मज्ञानही विशेष है. जिसको ब्रह्मज्ञान नहीं सो पशुपक्षियोंसे भी नीच है; क्योंकि पशुपक्षियोंको तो अज्ञान एक धर्म है, उनको बुरा कहना नहीं बनता. इस ...निभाग्यने मनुष्यदेह पाकर जो ब्रह्मज्ञान न सम्पादन किया, उ

फिर क्या अलौकिक पदार्थ सम्पादन किया ॥ " आहारनिद्राभय-मैथुनंचसामान्यमेतत्पशुमानवानाम् ॥ ज्ञानंनराणामधिकोविशेषो ज्ञानेन हीनः पशुभिः समानः" ॥ ४२ ॥

मू०-तत्रतंबुद्धिसंयोगंलभतेपौर्वदेहिकम् ॥
यततेचततोभूयःसंसिद्धौकुरुनन्दन ॥ ४३ ॥

तम् १ बुद्धियोगम् २ पौर्वदेहिकम् ३ तत्र ४ लभते ५ कुरुनन्दन ६ ततः ७ भूयः ८ संसिद्धौ ९ च १० यतते ११ ॥ ४३ ॥ अ०- तिस १ ज्ञानयोगको २ पूर्वदेहमें जिसके जाननेकी इच्छा करके अभ्यास करता था उसीको ३ वहां ४ अर्थात् श्रीमान् एस कर्मकांडियोंके कुलमें, अथवा ज्ञानियोंके कुलमें ४ प्राप्त होता है ५ हे अर्जुन ! ६ फिर ७ अधिक ८ मोक्षमें ९ ही १० अर्थात् मुक्तिके वास्ते ही ९ । १० यत्न करता है ११ ॥ ४३ ॥

मू०-पूर्वाभ्यासेनतेनैवह्रियतेह्यवशोपिसः ॥
जिज्ञासुरपियोगस्यशब्दब्रह्माऽतिवर्त्तते ॥ ४४ ॥

सः १ अवशः २ अपि ३ हि ४ तेन ५ एव ६ पूर्वाभ्यासेन ७ ह्रियते ८ योगस्य ९ जिज्ञासुः १० अपि ११ शब्दब्रह्म १२ अतिवर्तते १३ ॥४४॥ अ०-उ० फिर अधिक यत्न करनेमें कारण यह है. सो १ सि० योगभ्रष्ट कर्मकांडियोंके कुलमें अथवा ज्ञानियोंके कुलमें जन्म लेकर दैवयोगसे ❀ परवश २ भी ३ सि० होजावे अर्थात् माता पिता पुत्र मित्र धनादिमें आसक्त होजावे अथवा भेदवादियोंके पंजेमें आजावे ❀ तोभी ४ सोई ५ । ६ पूर्वाभ्यास ७ सि० कि जो अभ्यास करता करता योगभ्रष्ट हुआथा वोही ❀ विषयोंसे विमुख करके ब्रह्मविचारके सन्मुख कर देताहै ८ सि० योगभ्रष्टको हे अर्जुन ! ब्रह्मविचारका ऐसाही माहात्म्य है, सो सुन ❀ ज्ञानयोगका ९ जिज्ञासु १० भी ११ शब्दब्रह्मको १२

उलंघकर वर्तता है. १३ अर्थात् कर्मकांडको छोड ब्रह्मनिष्ठ होजाता है. ब्रह्मविचार करनेवाला ब्रह्मनिष्ठ होजाय, तो इसमें क्या कहनाहै. जो अजान अवस्थामें क्षणमात्र भी यह चिंतवन करता है, कि मैं ब्रह्म हूं, सो विचार महापातकोंको दूर कर देता है. जैसे सूर्य तमको और जो समझकर बरसों चिंतवन करते हैं. उनका तो कहना ही क्या है. अर्थात् उनके सद्गतिमोक्षमें किंचित् भी सन्देह नहीं ॥ "क्षणं ब्रह्माहमस्मीति यः कुर्यादात्मचिन्तनम् ॥ तन्महापातकंहन्तितमः सूर्योदयोयथा" ॥ ४४ ॥

मू०-प्रयत्नाद्यतमानस्तुयोगीसंशुद्धकिल्बिषः ॥
अनेकजन्मसंसिद्धस्ततोयातिपरांगतिम् ॥ ४५ ॥

यतमानः १ योगी २ तु ३ प्रयत्नात् ४ अनेकजन्मसंसिद्धः ५ ततः ६ पराम् ७ गतिम् ८ याति ९ ॥ ४५ ॥ अ०-उ० योगभ्रष्ट तीसरे जन्ममें तो अवश्यही सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं, यह कहतेहैं अर्थात् पिछले कहेहुए अर्थको फिर कैमुतिकन्याय करके दृढ करते हैं. सि० जब कि जिज्ञासु परमपदको प्राप्त होता है, तो फिर ❀ प्रयत्न करनेवाला १ योगी २ जो ३ प्रयत्नसे ४ सि० निष्पाप होकर ❀ अनेकजन्मोंमें भलेप्रकार सिद्ध होकर अर्थात् ब्रह्मवित् होकर ५ फिर ६ परम ७ गतिको ८ प्राप्त होता है, ९ सि० इसमें क्या कहना है. ❀ तात्पर्य ब्रह्मका जिज्ञासूभी योगभ्रष्ट, मन्दवैराग्य, दूसरेही जन्ममें सद्गतिको प्राप्त होता है. और प्रयत्न करनेवाला विद्वान् ज्ञानवान् होकर दूसरे जन्ममें अथवा उसी जन्ममें मोक्षको प्राप्त हो, तो फिर इसमें क्या कहना है. प्रथम तो योगभ्रष्ट दूसरेही जन्ममें मुक्त होगा, और अनेक जन्ममें अर्थात् तीसरे जन्ममें मुक्त हो तो इसमें क्या कहना है. न एक अनेक इसप्रकार अनेक शब्दका अर्थ दो या तीन होसक्ता है और अनेकजन्मका यह भी

अर्थ है कि असंख्यात जन्मोंसे पुण्य करता जो चला आता है वो उन पुण्योंके प्रतापसे निष्पाप, ज्ञानवान्, ऐसा होकर पिछले जन्ममें ब्रह्मनिष्ठ होकर वोही योगभ्रष्ट सद्गतिको प्राप्त हो, तो इसमें क्या कहना है ? ॥ ४५ ॥

मू०–तपस्विभ्योऽधिकोयोगीज्ञानिभ्योपिमतोऽधिकः ॥
कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगीतस्माद्योगीभवार्जुन॥ ४६ ॥

योगी १ तपस्विभ्यः २ अधिकः३ज्ञानिभ्यः ४अपि५ अधिकः ६ मतः ७ कर्मिभ्यः ८ च ९ योगी १० अधिकः ११ अर्जुन १२ तस्मात् १३ योगी १४ भव १५ ॥ ४६ ॥ अ०–उ० ब्रह्मज्ञानका साधन अष्टांगयोग, तप, पंडिताई, ये सब कर्मसे श्रेष्ठ हैं, यह कहतेहैं. योगी १ तपस्वी पुरुषोंसे २ श्रेष्ठ ३ सि० हैं; क्योंकि चान्द्रायणादि व्रतोंका करना, पंचाग्नि तपना, शीतकालमें प्रातःकाल स्नान करना इत्यादि तप कहाता है. यह बहिरंग साधन है. ❁ पंडितोंसे ४ भी ५ सि०योगी ❁ श्रेष्ठ ६ माना है ७. सि०इसजगह ज्ञानीका अर्थ जो पंडित किया उसका तात्पर्य यह है, कि विना अनुष्ठान करनेवाले जो केवल विद्यावान्ही हैं अर्थात् केवल श्रोत्रियहैं. उनको ब्रह्मनिष्ठ नहीं समझना. क्योंकि अष्टांग,योगज्ञानका अन्तरङ्गसाधन है. जैसे विद्या तप विचार इत्यादि साधन हैं ❁ अग्निहोत्रादि कर्म करनेवालोंसे ८ भी ९ योगी १० श्रेष्ठ ११ सि० है.क्योंकि यह भी ज्ञानका बहिरंग साधन है ❁ हे अर्जुन! १२तिसकारणसे १३योगी १४ हो तू १५ अर्थात् धारणाध्यानादिमें तत्पर हो. क्यों कि यह ज्ञानक अन्तरंग साधन है ॥ ४६ ॥

मू०–योगिनामपिसर्वेषांमद्गतेनान्तरात्मना ॥
श्रद्धावान्भजतेयोमांसमेयुक्ततमोमतः ॥ ४७ ॥

सर्वेषाम् १ योगिनाम् २ अपि ३ मद्गतेन ४ अन्तरात्मना५यः६

श्रद्धावान् ७ माम् ८ भजते ९ सः १० मे ११ युक्ततमः १२ मतः १३ ॥ ४७ ॥ अ०-उ० ज्ञानका उत्तम साधन अंतरंग भगवद्भक्ति है. सब कर्मयोगियोंमें भगवद्भक्त श्रेष्ठ हैं, सोई कहतेहैं. सब १ योगियोंके २ मध्यमेंभी ३ मद्गत अन्तःकरण समाहित करके ४।५ अर्थात् मुझ वासुदेवमें अन्तःकरण समाहितकरके, ४।५ जो ६ श्रद्धावान् ७ सि० ब्रह्मका जिज्ञासु ❀ मुझको ८ भजता है ९ अर्थात् अभेद ऐसी उपासना करता है ९ सो १० मुझको ११ युक्ततम १२ सम्मत है १२ अर्थात् वह सब योगियोंसे श्रेष्ठ है १३ ॥ ४७ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ७.

उ०बीचके छः अध्यायोंमें सातसे बारहतक उपासना करनेके योग्य भगवत्का स्वरूपविशेष निरूपण किया गया है. उपासना करनेके लिये जिस परमेश्वरकी भक्ति करना उसका स्वरूप भी तो पहले समझलेना उचित है. जो अपना स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजने समस्त गीताशास्त्रमें और विशेष बीचके छः अध्यायोंमें निरूपण किया है, वह स्वरूप परमेश्वरका समझना तात्पर्य यह कि पहले परमेश्वरका स्वरूप समझकर फिर उनकी भक्ति करना योग्य है. वारंवार परमेश्वर यह कहते हैं कि, मुझमें मन लगाय मेरा भजन कर. 'माम्, मम, अहम्' इत्यादि प्रयोग अस्मच्छब्दके हैं जिसजगह यह प्रयोग हैं वहां तात्पर्य अस्मत्शब्दसे है. अस्मत् आत्माको कहतेहैं. 'त्वम्, त्वां, ते' इत्यादि युष्मच्छब्दके प्रयोग हैं. अस्मत्शब्दके प्रयोग भगवद्विषय जो गीताशास्त्रमें हैं, उनका तात्पर्य किसीजगे तो मायोपहितचैतन्यमें है किसीजगे अविद्योपहित

चैतन्यमें, किसी जगह शुद्धचैतन्यमें, किसीजगह लीलाविग्रहमूर्तिमें, किसीजगह सगुणब्रह्ममें है-सबजगह लीलाविग्रहमूर्तिमें अर्थनहीं समझना,बहुतजगे तो सोपाधिकका और निरुपाधिककाभेदहमने दिखादियाहै- किसी किसी जगे स्पष्ट समझकर छोडदिया, वहां विचार करलेना कि इसजगे तात्पर्य निरुपाधिकब्रह्ममें है, अथवा सोपाधिकब्रह्ममें और यहभी विचारलेना कि इसजगह जो अस्मच्छब्दका प्रयोग है- इसका तात्पर्य तत्पदार्थमें है- अथवा त्वंपदार्थमें है- अथवा दोनोंके एकतामें है-तब भगवत्का स्वरूप समझमें आवेगा- नहीं तो यह अनर्थ नहीं समझ लेना कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज श्यामसुंदर स्वरूपसे सिवाय,श्रीसदाशिव शक्ति इत्यादिदेवताजीव हैं,श्रीकृष्णचंद्रमहाराजने मूर्तिकोही परब्रह्म कहा है- किन्तु यह समझना कि श्रीकृष्णचंद्रमहाराज शुद्धसच्चिदानन्दनिराकार अखंड पूर्णब्रह्म हैं- विष्णुशिवसूर्यशक्तिगणेशादिवासुदेवदाशरथिइत्यादि उनकी लीलाविग्रहमूर्ति हैं- जो रामकृष्णादिके एकतामें प्रमाण है, वोही विष्णुशिवादिके एकतामें प्रमाण है ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यासक्तमनाःपार्थयोगंयुंजन्मदाश्रयः॥असंशयंसमग्रंमांयथाज्ञास्यसितच्छृणु ॥१॥

पार्थ १ मयि २ आसक्तमनाः ३ मदाश्रयः ४ योगम् ५ युंजन् ६ यथा ७ समग्रम् ८ असंशयम् ९ माम् १० ज्ञास्यसि ११ तत् १२ शृणु १३ ॥१॥ अ०-उ०पिछले अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहा कि जो मुझमें मन लगाकर मुझको भजता है, वो कर्मयोगियोंमें श्रेष्ठ है- इसवास्ते अब अपना वोही स्वरूप कहते हैं, कि जिसकी भक्ति करना योग्य है- हे अर्जु! १ मुझमें २ आसक्त है मन जिसका ३सि० और ❋ मेराही आश्र लेरक्खा है जिसने ४ सि०और ❋ योगको ... र्थात् जो योग मैंने छठे अध्यायमें निरू..ण किया उसको ५करता

हुआ ६ जैसा ७ संपूर्ण अर्थात् मैं सोपाधिक और निरुपाधिक हूं वैसाही
सन्देहरहित ९ मुझको १० अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दनिराकारनि
र्विकारका और लीलाविग्रहश्यामसुन्दरादिस्वरूपको १० तू जाने
११ सोई १२ सि० आगे कहूंगा सावधन होकर ❀ सुन १३ ॥ १ ॥

मू०—ज्ञानंतेऽहंसविज्ञानमिदंवक्ष्याम्यशेषतः ॥
यज्ज्ञात्वानेहभूयोन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

इदम् १ ज्ञानम् २ ते ३ अहम् ४ वक्ष्यामि ५ सविज्ञानम् ६ अशेषतः ७ यत् ८ ज्ञात्वा ९ इह १० भूयः ११ अन्यत् १२ ज्ञातव्यम् १३ न १४ अवशिष्यते १५ ॥ २ ॥ अ०—उ० आगे जो ज्ञान कहना है प्रथम उसकी इस श्लोकमें स्तुति करते हैं. यह १ सि० जो आगे ❀ ज्ञान २ तेरे अर्थ ३ मैं ४ कहूंगा ५ सि० सो ❀ विज्ञानके सहित ६ समस्त ७ सि० कहूंगा. ❀ जिसको ८ जानकर अर्थात् जिस ज्ञानसे मुझको जानकर ९ मोक्षमार्गमें १० फिर ११ अन्यपदार्थ १२ जाननेके योग्य १३ नहीं १४ शेष रहेगा १५. तात्पर्य इसीसे कृतार्थ होजायगा परोक्ष (शास्त्रद्वारा) जो परमेश्वरका ज्ञान है, उसको ज्ञान कहते हैं और अनुभव युक्तिपूर्वक साक्षात् अपरोक्ष जो परमेश्वरका सन्देहरहित ज्ञान है उसको विज्ञान कहते हैं ॥ २ ॥

मू०—मनुष्याणांसहस्रेषुकश्चिद्यततिसिद्धये ॥
यततामपिसिद्धानांकश्चिन्मांवेत्तितत्त्वतः ॥ ३ ॥

मनुष्याणाम् १ सहस्रेषु २ कश्चित ३ सिद्धये ४ यतति ५ यतताम् ६ अपि ७ सिद्धानाम् ८ माम् ९ तत्त्वतः १० कश्चित् ११ वेत्ति १२ ॥ ३ ॥ अ०—उ० विशेष करके कमसमझलोग यह कहाकरतेहैं, कि ईश्वरका ज्ञान सबको है. जो इसप्रजाका कर्ता और पालक है, वोही परमेश्वर है. उसको समस्तगुणोंकी खान समझना, रूप रंग उसमें

नहीं, इस हेतुसे कोई उसको देख नहीं सक्ता. अब विचारो कि यह तो समझ और निश्चय और स्नेह ऐसे ऐसे तुच्छपदार्थोंमें कि जिनके स्मरण करनेसे समझवालोंको ग्लानि आजाय. वे ये, स्त्री, छोकरे, धनान्ध,नीच, इत्यादि. यह बड़े आश्चर्यकी बात है, कि सद्गुणाकरको छोड़ तुच्छपदार्थ जो धनान्धादि नीचपुरुष उनमें मन जावे. तात्पर्य यह है, कि पूर्वोक्त बोली मन्दमति, आलसी, विषयी, बहिर्मुख इन्होंकी है. परमेश्वरके ज्ञानका गन्ध उनके पास होकर नहीं निकला, तस्मात् यह सब उनका वाचक ज्ञान है. क्योंकि उनके मुखमें परमेश्वरही धूल डालकर, भगवत्के स्वरूपका ज्ञान अति दुर्लभ निरूपण करते हैं. परमेश्वरका ज्ञान किसी अन्तर्मुख विरले महात्मा-कोही है. बहिर्मुख विषयी, परमेश्वरको कभी नहीं जानसक्ते. सोई इस श्लोकमें कहते हैं. हजारों मनुष्योंमें १।२ कोई ३ सच्चिदानन्दके प्राप्तिकेलिये ४ प्रयत्न करता है ५ प्रयत्न करनेवालोंमें ६ भी ७सि० कोई देहसे पृथक् सूक्ष्मरूप सच्चिदानंदको जानजाता है ऐसे ❋ सिद्धोंमेंसे व्यतिरिक्तजीवोंकी तो मोक्षमार्गमें प्रवृत्ति लेशमात्रभी नहीं. और मनुष्योंमें भी भरतखंडसे अन्यद्वीपोंमें रहते हैं. वा श्रुतिस्मृतिके जो द्वेषी हैं, वे आत्मविद्याकोभी नहीं जानते. आत्मज्ञान तो बहुत कठिन है और भरतखंडनिवासी वर्णाश्रमवालोंमें भी प्रायशः द्वैतवादी हैं. प्रत्युत द्वैतवादीभी कम हैं. विशेष करके तो अज्ञानीही बहुत हैं. किंचित् परलोकका उनको विचार नहीं. और जो कोई परलोकके विचारमें प्रवृत्तभी होता है, तो उसको नवीनपंथसम्प्रदायोंने ऐसा भुला रक्खाहै, कि उस व्यवस्थाको लिखनेके लिये पृथक् ग्रंथ चाहिये. तात्पर्य इनपूर्वोक्त सब उपाधियोंसे बचकर कोई महात्माके प्राप्तिके लिये प्रयत्न करताहै और उनमेंसे कोई ईश्वरसे अभिन्न ऐसे यथार्थ सच्चिदानन्दआत्माको परमात्मा जानताहै.जिनको ब्रह्मविद्या प्राप्त हुई और ब्रह्मवित्पुरुष जिसे मिले, उसके भाग्यकी

बड़ाई जितनी की जावे वो कमसे कम है और जिन्होंने आत्मतत्त्वको जाना,वे तो मन और वाणीसे परे पहुंचे.उनका क्या कहना है॥

मू०–भूमिरापोऽनलोवायुःखंमनोबुद्धिरेवच॥
अहंकारइतीयंमेभिन्नाप्रकृतिरष्टधा॥४॥

भूमिः १ आपः २ अनलः ३ वायुः ४ खम् ५ मनः ६ बुद्धिः ७ च ८ अहंकारः ९ एव १० इति ११ इयम् १२ मे १३ प्रकृतिः १४ अष्टधा १५ भिन्ना १६॥४॥ अ०–उ० जिसप्रकार परमेश्वरका स्वरूप यथार्थ जाना जाता है, सोई कहते हैं. प्रथम इस श्लोकमें अपरा प्रकृतिका स्वरूप निरूपण करते हैं; क्योंकि प्रकृतिद्वारा भगवतका ज्ञान होता है पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश १।२।३।४।५ सि० इनका अर्थ गंधादि पंचतन्मात्रा समझना-इसजगह पंचीकृतपंचस्थूलभूत नहीं समझना और ❋ मन ६ बुद्धि ७ अहंकार ८।९ भी १० इसप्रकार ११ यह १२ मेरी १३ प्रकृति १४ आठप्रकारके १५ भेदको प्राप्त हुई है १६ सि० एकप्रकृति अपरा यही अष्टप्रकारकी है और तेरहवें अध्यायमें इसीके चौवीस भेद निरूपण करूंगा ❋ टी० गंध १ रस २ रूप ३ स्पर्श ४ शब्द ५ अहंकार ६ महत्तत्त्व ७ अविद्या ८ सबका कारण अविद्या है अविद्यासे महत्तत्त्व, महत्तत्त्वसे अहंकार, अहंकारसे शब्दादि उत्पन्न हुए हैं. जैसे विष मिलेहुए अन्नको विष कहते हैं. इसीप्रकार अविद्यासहितचैतन्यको अविद्या कहागया. तात्पर्य जगत्का कारण मायासहित अव्यक्त है. विना चैतन्य रचनादिक्रियाका असम्भव है. अविद्याका अर्थ इसजगह मूलाज्ञान अर्थात् प्रकृति समझना. आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें इनसबका अर्थ विस्तारपूर्वक और क्रमसे लिखा है॥४॥

मू०–अपरेयमितस्त्वन्यांप्रकृतिंविद्धिमेपराम्॥
जीवभूतांमहाबाहोययेदंधार्यतेजगत्॥५॥

इयम् १ अपरा २ इतः ३ तु४ अन्याम् ५ जीवभूताम् ६ मे ७ पराम् ८ प्रकृतिम् ९ विद्धि १० महाबाहो ११ यया १२ इदम् १३ जगत् १४ धार्यते १५ ॥ ५ ॥ अ०-उ० इसश्लोकमें पराप्रकृति निरूपण करते हैं, पीछे जिसके आठ भेद कहे. यह १ सि०प्रकृति ❀ अपरा२ अर्थात् निकृष्ट, अशुद्ध, जड, अनर्थ करनेवाली, संसारबन्धको प्राप्तकरनेवाली ऐसी है २. इससे तो जूदी ३।४। ५ जीवरूपको ६ मेरी ७ परा ८ प्रकृति ९ [तू] जान १० हे अर्जुन! ११ जिसने १२ यह १३ जगत् १४धारण कररक्खा है १५ टी०शुद्ध प्रकृष्ट, श्रेष्ठ मेरा आत्मरूप ऐसा जान ८ इस जगत्को रचकर इसके भीतर जीवरूप होकर मैंही प्रविष्ट हुआ हूं १३। १४। १५। "तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत" इतिश्रुतिः ॥ ५ ॥

मू०-एतद्योनीनिभूतानिसर्वाणीत्युपधारय ॥
अहंकृत्स्नस्यजगतःप्रभवःप्रलयस्तथा ॥ ६ ॥

सर्वाणि १ भूतानि २ एतद्योनीनि ३ इति ४ उपधारय५अहम्६ कृत्स्नस्य ७ जगतः ८ प्रभवः ९ तथा १० प्रलयः ११ ॥ ६ ॥ अ०-सब १ भूतोंकी २ यह योनि है ३ यह ४ [तू] जान ५ अर्थात् अपरा और परा येही दोनोंप्रकृति सब जगत्का कारणहैं ५ सि०और ❀ मैं ६ समस्त ७जगत्का८ उत्पत्ति करनेवाला ९ और नाशकरनेवाला १०। ११ सि० हूं. ❀ तात्पर्य उपादानकारण प्रकृति है, और निमित्तकारण चैतन्य अर्थात् ईश्वर है. इसवास्ते जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण ईश्वर है. यह अर्थ आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें स्पष्ट दृष्टान्तसहित लिखा है ॥ ६ ॥

मू०-मत्तःपरतरंनान्यत्किंचिदस्तिधनंजय ॥
मयिसर्वमिदंप्रोतंसूत्रेमणिगणाइव ॥ ७ ॥

धनंजय १ मत्तः२ परतरम् ३ अन्यत् ४ किंचित् ५ न६अस्ति७

इदम् ८ सर्वम् ९ मयि १० प्रोतम् ११ सूत्रे १२ मणिगणाः १३
इव १४ ॥ ७ ॥ अ०–उ० जैसे पीछे कहा, इसी हेतुसे मुझसे
कोई पदार्थ नहीं, यह कहतेहैं. हे अर्जुन! १ मुझसे २ श्रेष्ठ ३ दूसरा
(सृष्टिसंहारका स्वतंत्र कारण ४) कुछ ५ नहीं ६ है ७. यह
सब ९ सि० जगत् ❀ मुझमें अर्थात् सच्चिदानन्द परमेश्वरमें
गूँदाहुआ है ११ सूत्रमें १२ सि० सूत्रके ही बनेहुए ❀ मणिके दाने
जैसे १४ सि० तैसा ❀ ॥ ७ ॥

मू०–रसोऽहमप्सुकौन्तेयप्रभाऽस्मिशशिसूर्य्ययोः ॥
प्रणवःसर्ववेदेषुशब्दःखेपौरुषंनृषु ॥ ८ ॥

कौन्तेय १ अप्सु २ रसः ३ अहम् ४ शशिसूर्ययोः ५ प्रभा
अस्मि ७ सर्ववेदेषु ८ प्रणवः ९ खे १० शब्दः ११ नृषु १२ पौरु-
षम् १३ ॥ ८ ॥ अ०–उ० श्रीभगवान् अपने पूर्णताको विस्तारपूर्वक
पांचमंत्रोंमें कहते हैं, हेअर्जुन ! १ जलमें २ रस ३ मैं हूं ४ चन्द्रसूर्यकी
प्रभा ६ सि० जिसके दीप्ति, चमक, या रौशनी ये नाम हैं सो
मैं हूं ७ सबवेदोंमें ८ ओंकार ९ सि० मैं हूं ❀ आकाशमें १० शब्द
सि० मैं हूं ❀ पुरुषोंमें १२ उद्यम सि० मैं हूं ❀ तात्पर्य
जलादिपदार्थ रसादिपदार्थोंके बिना कुछ नहीं ॥ ८ ॥

मू०–पुण्योगंधःपृथिव्यांचतेजश्चास्मिविभावसौ ॥
जीवनंसर्वभूतेषुतपश्चास्मितपस्विषु ॥ ९ ॥

पृथिव्याम् १ च २ पुण्यः ३ गन्धः ४ विभावसौ ५ तेजः ६
अस्मि ८ सर्वभूतेषु ९ जीवनम् १० तपस्विषु ११ तपः १२ च
अस्मि १४ ॥ ९ ॥ अ०–पृथिवीमें १।२ पवित्र ३ गंध ४ सि० मैं
अर्थात् सुगन्ध ४ अग्निमें ५ तेज मैं हूं ६।७।८ सबभूतोंमें ९ जीवन
सि० मैं हूं ❀ तपस्विपुरुषोंमें ११ तप मैं हूं १२ । १३ ।

टी० तप दोप्रकारका है, विचारकोभी तप कहते हैं और द्वन्द्वके सहनेको भी तप कहते हैं ॥ ९ ॥

मू०—बीजंमांसर्वभूतानांविद्धिपार्थसनातनम् ॥
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मितेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥

पार्थ १ सर्वभूतानाम् २ सनातनम् ३ बीजम् ४ माम् ५ विद्धि ६ बुद्धिमताम् ७ बुद्धिः ८ अस्मि ९ तेजस्विनाम् १० तेजः ११ अहम् १२ ॥ १० ॥ अ०—हे अर्जुन ! १ सब भूतोंका २ सनातन ३ बीज ४ मुझको ५ [तू] जान ६. बुद्धिमानोंमें ७ बुद्धि ८ मैं हूं ९. तेजस्वीपुरुषोंमें १० तेज ११ मैं १२ सि० हूं ❀ ॥ १० ॥

मू०—बलंबलवतांचाहंकामरागविवर्जितम् ॥
धर्माविरुद्धोभूतेषुकामोऽस्मिभरतर्षभ ॥ ११ ॥

कामरागविवर्जितम् १ बलवताम् २ च ३ बलम् ४ भरतर्षभ ५ धर्माविरुद्धः ६ भूतेषु ७ कामः ८ अस्मि ९ ॥ ११ ॥ अ०—कामरागकरकेवर्जित १ बलवानोंमें २ । ३ बल ४ सि० मैं हूं और ❀ हेअर्जुन ! ५ धर्मसे अविरुद्ध ६ भूतोंमें ७ काम ८ मैं हूं ९ ॥ ११ ॥

मू०—येचैवसात्विकाभावाराजसास्तामसाश्चये ॥
मत्तएवेतितान्विद्धिनत्वहंतेषुतेमयि ॥ १२ ॥

ये १ च २ एव ३ सात्विकाः ४ भावाः ५ राजसाः ६ ये ७ च ८ तामसाः ९ तान् १० मत्तः ११ एव १२ इति १३ विद्धि १४ तेषु १५ अहम् १६ न १७ तु १८ ते १९ मयि २० ॥ १२ ॥ अ०—जो १ । २ । ३ सतोगुणी ४ भाव ५ सि० शमदमादि ❀ रजोगुणी ६ सि० हर्षदर्पादि ❀ और जो ७ । ८ तमोगुणी ९ सि० भाव शोकमोहादि ❀ तिनको १० मुझसे ११ ही १२ । १३ [तू] जान १४ सि० क्योंकि मेरे प्रकृतिके गुणोंका कार्य है. शमहर्षशोकादि ❀ तिनमें १५ मैं १६ नहीं १७ । १८ सि० वर्तताहूं ❀ अर्थात् जीववत्

तिनके आधीन में नहीं १७।१८ सि० परन्तु ❀ वे १९ मुझमें
सि० मेरे आधीन हुए वर्तते हैं ❀ ॥ १२ ॥

मू०—त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ॥
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ १३ ॥

एभिः १ त्रिभिः २ गुणमयैः ३ भावैः ४ इदम् ५ सर्वम् ६ जगत्
मोहितम् ८ एभ्यः ९ परम् १० माम् ११ अव्ययम् १२ न
अभिजानाति १४ ॥ १३ ॥ अ०—इन १ तीन २ गुणमय ३
थोंकरके ४ यह ५ सब ६ जगत् ७ मोहित ८ सि० होरहा है
इनसे ९ परे १० मुझ ११ अव्ययको १२ नहीं १३ जानता है
तात्पर्य कोई सत्त्वगुणमें कोई रजोगुणमें और कोई तमोगु
मोहित हैं. इनसे परे विलक्षण, निर्गुण, शुद्ध, सच्चिदानंद, निरा
निर्विकार, ऐसे परमेश्वरकोभी नहीं जानते. परमेश्वरकोभी सगु
समझते हैं ॥ १३ ॥

मू०—दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥ १४ ॥

एषा १ मम २ माया ३ गुणमयी ४ दैवी ५ हि ६ दुरत्य
ये ८ माम् ९ एव १० प्रपद्यन्ते ११ एताम् १२ मायाम् १३
तरन्ति १५ ॥ १४ ॥ अ०—उ० अनादि ऐसी अविद्या
द्धसच्चिदानन्द भगवद्भजनके दूर न होगी यह कहते हैं—
मेरी २ माया ३ त्रिगुणवाली ४ अलौकिक अर्थात् अद्भुत ऐ
ही ६ सि० है ❀ (हि इसशब्दका तात्पर्य यह है, कि
माया ऐसी है कि, जो बात समझनेके योग्य है, उसकोभी
सक्ती है और जो न समझमें आवे, उसकोभी दिखासक्ती
बात संसारमें प्रसिद्ध है. इसीहेतुसे जगत् भ्रान्त हो रहा है
रमेश्वरकी कृपा हुए यह माया) दुस्तर ७ सि० विद्वानों

निश्चय किया है, कि जो अर्थात् ब्रह्मतत्त्वके जिज्ञासु ८ मुझको ९ ही १० भजते हैं ११ इस १२ मायाको १३ वे १४ तरेंगे १५ अर्थात् मायाको माया समझकर मुझ त्रिगुणरहित ऐसे शुद्धसच्चिदानंदको प्राप्त होंगे १५ टी०दैवी देवसम्बंधी अर्थात् ब्रह्मा विष्णु राम कृष्ण इत्यादि और वैकुंठादि जिसका परिणाम हैं; उसको दैवी माया कहते हैं यह विनाज्ञाननिष्ठाके दूर नहीं होती. मुझ निर्गुण शुद्ध सच्चिदानन्दकाही जो चिंतवन करेंगे, सगुणपदार्थमें प्रीति नहीं करेंगे वेही निर्गुणको प्राप्त होंगे और जो सगुणपदार्थोंमें प्रीति करेंगे, उनकी त्रिगुणवाली माया दूर न होगी; क्योंकि जिस पदार्थको त्यागना था, उसमें प्रीति करी फिर कैसे यह तीन गुण दूर होसक्ते हैं? एवशब्दसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि, मायाशब्दका अर्थ इसजगह शुद्ध ब्रह्म है. मायोपहित वा लीलाविग्रह ऐसा सगुण नहीं मायोपहित ईश्वर सगुणब्रह्मका जो आराधनकरते हैं, तो अवश्यही मायाका भी आराधन उसके साथ होता है.जिसका विशेष चिंतवन रहेगा वो पदार्थ कैसे दूर होगा? और जो सगुणब्रह्मकाही आराधन करना है तो निष्काम होकर शुद्धब्रह्मकी जिज्ञासा करके आराधन करे तोभी वो मार्ग कर्ममुक्तिका है और जिनको शुद्धब्रह्मकी जिज्ञासा ही नहीं, उनकी अविद्या कभी दूर न होगी ॥१४॥

मू०–नमांदुष्कृतिनोमूढाःप्रपद्यन्तेनराधमाः ॥
माययाऽपहृतज्ञानाआसुरंभावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

नराधमाः १ माम् २ न ३ प्रपद्यन्ते ४ मूढाः ५ दुष्कृतिनः ६ मायया ७ अपहृतज्ञानाः ८ आसुरम् ९ भावम् १० आश्रिताः ११ ॥ १५ ॥ अ०–उ०जो निर्भाग न निर्गुणब्रह्मका आराधन करते हैं और न सगुणब्रह्मका उसमें यह कारण है–नरोंमें अधम १ मुझको २ नहीं ३ भजते हैं ४. सि० हेतु इसमें यह है कि ❀ विवेकरहित हैं ५ सि० इसमें क्या हेतु है कि ❀ दुष्ट अर्थात् खोटे ऐसे कर्मोंको कर-

नेवाले हैं ६ अर्थात् शास्त्रोक्त मार्गमें नहीं चलते. श्रुति स्मृति और परमेश्वर इनकी आज्ञाको छोड नानाप्रकारके कल्पित पन्थोंमें फि मारते हैं६.सि०इसमें जो हेतु है सो सुन ❀ मायाकरके ७ हृ होगया है, ज्ञान जिसका अर्थात् तमोगुणमें और रजोगुणमें सत गुण उनका तिरोभाव होरहता है ८.सि० इसमें यह हेतु है कि असुरभावका ९।१० आश्रयकर रक्खा है उन्होंने ११. सि०सोलह अध्यायमें काम क्रोध दंभ दर्पादि असुरोंका स्वभाव कहेंगे ❀ अर्थात् भगवत्से विमुख सदा कामादि अनर्थोंमें फँसेरहते हैं. पूर्वसंस्कारसे उनमें किसी समय सत्वगुणका आविर्भाव होता है फिर कुसंगकके दोषसे भगवत्के सन्मुख नहीं होते हैं और न शुभ कर्म करते हैं ११सि०इसी हेतुसे उनको विवेक नहीं होता और इसी हेतुसे वे लोग सबसे अधम हैं ❀ ॥ १५ ॥

मू०–चतुर्विधाभजंतेमांजनाःसुकृतिनोऽर्जुन ॥
आर्त्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानीचभरतर्षभ ॥ १६ ॥

अर्जुन १ चतुर्विधाः २ सुकृतिनः ३ जनाः ४ माम् ५ भजन्ते ६ भरतर्षभ ७ आर्तः ८ अर्थार्थी ९ जिज्ञासुः १० ज्ञानी ११ च १२ ॥ १६ ॥ अ०–उ०जो निष्कामसगुणब्रह्मकाभी आराधन न होसके तो सकामही परमेश्वरका आराधन करना योग्य है. जो न निष्काम भजन करें और न सकाम, उन्होंसे सकामपुरुषही भगवत्का आराधन करनेवाले श्रेष्ठ हैं. इसीवास्ते चारोंप्रकारके मेरे भक्त सुकृती कहे जाते हैं.वे चार प्रकारके भक्त तारतम्यताकेसाथ उत्तरोत्तर ये हैं–हे अर्जुन! १ चारप्रकारके २ सुकृतिजन३।४मुझको५भजते हैं ६. हे अर्जुन ! ७ सि०वे यह हैं. ❀आर्त८ अर्थार्थी ९ जिज्ञासु १० ज्ञानी ११।१२टी० विपत्समयमें परमेश्वरका स्मरण करना उसको आर्तभक्त कहतेहैं, जैसे द्रौपदीगजेन्द्रादि ८. पुत्र और राज्यादिकी कामना करके जो परमेश्वरका आराधन करते हैं वे अर्थार्थी,

ध्रुवादि ९ ब्रह्मतत्त्वकीजिज्ञासाकरके निष्काम जो नारायणका पूजन, और भजन करते हैं वे जिज्ञासु; जैसे उद्धव सुदामादि १० शुद्ध सच्चिदानंद निराकार निर्विकार नित्यमुक्त परत्माको आपसे अभिन्न अपरोक्ष जो जानते हैं वे ज्ञानी; जैसे शुकदेव, वामदेव, जनक, याज्ञवल्क्य, वसिष्ठ और सनकादि ११. चारों प्रकारके भक्तोंको उत्तरोत्तर श्रेष्ठ समझना ॥ १६ ॥

मू०–तेषांज्ञानीनित्ययुक्तएकभक्तिर्विशिष्यते ॥
प्रियोहिज्ञानिनोऽत्यर्थमहंसचममप्रियः ॥ १७ ॥

तेषाम् १ ज्ञानी २ विशिष्यते ३ नित्ययुक्तः४एकभक्तिः५ अहम् ६ ज्ञानिनः ७ अत्यर्थम् ८ प्रियः ९ हि १० सः ११ च १२ मम १३ प्रियः १४॥१७॥अ०–उ० पूर्वोक्त भक्तोंमें ब्रह्मज्ञानी चार हेतु करके सबसे श्रेष्ठ है, यह कहते हैं–तिनके १ सि० मध्यमें ❋ज्ञानी२ विशेष है ३ सि० प्रथम तो तीनों अवस्थामें सच्चिदानन्दस्वरूपसे च्युत नहीं होता, इसवास्ते ज्ञानीको ❋ नित्ययुक्त ४ सि० कहते हैं अर्थात् सदा आनन्दस्वरूप ब्रह्मका उसको स्मरण रहता है, दूसरे यह कि एक अद्वैतमेंही है भक्ति जिसकी अर्थात् सिवाय सच्चिदानंदपदार्थके और कोई पदार्थ दृश्य अर्थात् जड उसके दृष्टिमें नहीं जिसके दृष्टिमें दूसरा पदार्थहै बुरा वा भला. बेसन्देह उसमें कभी न कभी मन जायगा. इसीवास्ते ज्ञानीको ❋ एकभक्ति ५ सि० कहते हैं. ❋ अर्थात् ज्ञानी परमानंदकाही उपासक है, परमानंदरूप भगवान्ही उसके साधन है ५ और परमानंदही फल है सि० औरोंके फलमें और साधनोंमें भेद है. तीसरा यह कि ❋मैं ६ ज्ञानीको ७अत्यंतबहुत ८ ही ९ प्यारा १० सि० हूं क्योंकि परमानंद बहुत प्यारा होता है यह लोकमेंभी प्रसिद्ध है. ज्ञानी मुझको परमानन्दस्वरूप जानताहै आनंदजनक जड दृश्यरूपवाला मुझको नहीं जानता. चौथे यह कि

जो ज्ञानी ११।१२मुझको १३ सि० भी अत्यन्त ❋प्यारा १४सि० है; क्योंकि परात्पर पूर्णब्रह्म अखंड अद्वैत ऐसा मुझको समझता है सिवाय सच्चिदानन्दके और पदार्थका अत्यन्त अभाव जानता है इसी हेतुसे वो मुझको प्रिय है. एकपदार्थ तो आनंदजनक और एक पदार्थ निजानंदरूप है. विचारो दोनोंमेंसे कौनसा श्रेष्ठ है ? ॥ १७ ॥

मू०–उदाराःसर्वएवैतेज्ञानीत्वात्मैवमेमतम् ॥
आस्थितःसहियुक्तात्मामामेवानुत्तमांगतिम् ॥१८॥

एते १ सर्वे २ एव३ उदाराः४ ज्ञानी ५ तु ६मे ७ आत्मा ८ एव ९मतम् १० हि ११ सः १२ युक्तात्मा १३ माम् १४ एव १५ आस्थितः १६अनुत्तमाम् १७ गतिम् १८ ॥ १८ ॥ अ०–उ० भगवद्गि मुखोंसे सब भक्त सकाम और निष्काम श्रेष्ठ हैं और ज्ञानी तो साक्षात् नारायणस्वरूप है, यह कहते हैं. आगे बारहवें अध्यायमेंभी श्रीमाहाराज कहेंगे, कि निर्गुणब्रह्मके उपासक तो मुझको प्राप्तही हैं जो मेरा स्वरूप है, सोई उनका है. वे १सि०पूर्वोक्त आर्तादितीन भक्त❋सब २ ही ३ श्रेष्ठ ४ सि० हैं. परन्तु ❋ ज्ञानी ५ तो ६ मेरा ७आत्माही ८।९ सि०है ❋अर्थात् ज्ञानी मुझसे दासवत् जूदा नहीं, स्वामीसेवकवत् पृथक् नहीं, वो वनवृक्षवत् मेराही स्वरूप है ८।९ सि० यह मेरा ❋ निश्चय १० सि० है❋क्योंकि ११ सि०वो यह समझता है, कि मैं पूर्णब्रह्म सच्चिदानंद नित्यमुक्त हूं इसवास्ते❋सो ज्ञानी १२ युक्तात्मा याने समाहित १३ सि० और❋मुझको १४ ही १५ आश्रयकर रक्खा है १६. सि०कैसा हूं मैं कि, नहीं है सिवाय मुझको उत्तमगति कोई सावयवपदार्थ सो मैंही अनुत्तमगति हूं. यह समझकर मुझ ❋ अनुत्तमगति १७।१८ सि०आश्रयकर रक्खा है अर्थात् मुझसे पृथक् कर्म और फल नहीं मानता परात्पर फल मैंही सच्चिदानंद हूं❋॥१८॥

मू०—बहूनांजन्मनामंतेज्ञानवान्मांप्रपद्यते ॥
वासुदेवःसर्वमितिसमहात्मासुदुर्लभः ॥ १९ ॥

बहूनाम् १ जन्मनाम् २ अन्ते ३ इति ४ सर्वम् ५ वासुदेवः ६ ज्ञानवान् ७ माम् ८ प्रपद्यते ९ सः १० महात्मा ११ सुदुर्लभः १२ ॥ १९ ॥अ०—उ०फिरभी ज्ञानीकी स्तुति करते हुए यह कहते हैं, कि ऐसा ज्ञानी भक्त दुर्लभहै—बहुत जन्मोंके१।२अन्तमें ३सि० सकामनिष्काम उपासना करतेकरते पिछले जन्ममें, कि जिसशरीरमें मोक्ष होना है, उस जन्ममें मुझको जो मेरा भक्त ऐसा समझताहै कि❀यह ४ सब ५ सि०जगत् चराचर अस्तिभातिप्रियरूप❀ वासुदेव६ सि० है, इसप्रकार❀ज्ञानवान्७हुआ❀मुझको८भजता है ९ सि०जो भक्त❀सो१० महात्मा११बहुत दुर्लभहै १२ अपरिच्छिन्नदृष्टि है. प्रायशः सबआत्माको और परमात्माको परिच्छिन्नसमझते हैं,प्रत्युतकोईकोई निर्भाग ज्ञानियोंकी प्रत्यक्ष वा किसी बहानेसे या मिसकरके असूया (बुराई) करतेहैं. इस श्रीमहाराजके वाक्यका आदर नहीं करते-अपने आप अपनी जिह्वासे बारंबार यह कहें,कि मैं पापी पापात्मा, पाप करताहूं, जो दूसरा कहे कि तुम पापी गुलाम हो, तो उसीसमय लडनेको उद्यत होजावें. ऐसे लोगोंकी जो गति होगी, सो दृष्टान्तसे स्पष्ट कियेदेते हैं.❀ इतिहास—एकराजाभेदवादी भगवत्का उपासक सबसे यह प्रश्न किया करताथा कि, महाराज ! जो पापी भगवतसे विमुख हैं उनका तो उद्धार श्रीनारायण अपने आप करेंगे, क्योंकि उनका नाम पतितपावन अधमोद्धरण, करुणाकर ऐसा है और जो भगवद्भक्त, कर्मकांडी ज्ञानी योगीसे हैं, वे भक्ति ज्ञान कर्मयोगादिके आश्रयसे कृतार्थ होंगे. तो अब नरकमें कौन जावेंगे ? चौरासी लाखयोनियोंमें कौन भ्रमेंगे इसप्रश्नका उत्तर बहुत पंडितोंको न आया. एक ज्ञानी महात्मा राजाके पास पहुँचे

जाने उनका बहुत सन्मानकरके यही प्रश्न उनसेभी किया. प्रथम महात्माने यह कहा, कि हे राजन् ! तुम बड़े सुकृती धर्मात्मा समझ-वाले भगवद्भक्त ऐसे हो, राजाने कहा कि महाराज! ऐसे तो आपहीं हैं मैं तो अधम पापात्मा हूं. महात्मा उसी समय वहां खडे होगये औ राजाके तरफसे कहने लगे कि, आज कैसे अधम पापात्मासे सम्भा-षण हुआ. राजाको इन शब्दोंके सुनतेही क्रोध आगया और कहने लगा, कि तू कैसा ज्ञानी है, जोलोगोंको गालियां देताहै. महात्माने कहाकि बच्चा गालियां नहीं देता, तेरे प्रश्नका उत्तर देताहूं, तात्पर्य मेरे कहनेका समझ कि तुझसरीखे लोग नरकमें जावेंगे. आपतो अपनेमुखसे सहस्रवार अपनेको पापी कहता है "पापोहंपापकर्माहं पापात्मापापसम्भवः" ॥ जो हमने एकवार कहा तो उसका इतना बुरामानता है; क्योंकि अभीतो तू हमको सुकृती धर्मात्मा भगव-द्भक्त कहता था, अभी तू तडाक करनेलगा. अब तू यह अपने आपहीको विचार, कि मैं पातित हूं जो तू पतित है, तो औरोंके कहनेका क्यों बुरा मानता है और जो धर्मात्माहै, तो शुद्धात्मा को पापात्मा क्यों कहता है ? अपनेको शुद्धात्माही समझ. राजाका अज्ञान इतनेही स्वल्प उपदेशसे जातारहा और जाना कि दास और पतित जो अपनेको कहते हैं यह उपरहीकी बोल चाल है, दास पतित बनना कठिन है. मुखसे तो यह कहे कि " सियाराममय सब जग जानी । करौ प्रणाम सप्रेम सुवानी, और ज्ञानियोंकी बुराई करें, धन्य है ऐसी समझकी, भला अर्थ समझा पूर्णताका. यह इतिहासभलेप्रकार विचारनेके योग्यहै ॥ १९ ॥

मू०—कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाःप्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ॥
तंतंनियममास्थायप्रकृत्यानियताःस्वया ॥ २० ॥

अन्यदेवताः १ प्रपद्यन्ते २ तैः ३ तैः ४ कामैः ५ हृतज्ञानाः ६ स्वया ७ प्रकृत्या ८ नियताः ९ तम् १० तम् ११ नियमम् १२

आस्थाय १३ ॥२०॥ अ०--उ० सब भक्त निर्गुणब्रह्मकी निष्काम उपासना क्यों नहीं करते, अपनेसे अन्यदेवताका क्यों आराधन करते हैं इस अपेक्षामें यह कहते हैं चारमंत्रोंमें. परमेश्वरका भजन करके वैकुंठादिमें जावेंगे. वहांके दिव्यशब्दादि विषयोंका और स्त्र्यादिपदार्थोंका भलेप्रकार भोग करेंगे. अथवा इसीलोकमें स्त्रीपुत्रधनादिकी प्राप्ति होगी और प्रायशः वर्तमानकालमेंभी देवतोंके उपासनामें शब्दादिविषयोंको त्यागना नहीं पडता. प्रत्युत फूल बँगला हिण्डोरा रासलीला नृत्यगानादिको उत्तमकर्म समझते हैं-- सि०इन इन कामना करके जो आत्मासे भिन्न ❀ अन्यमूर्तिमान् देवताका १ भजन करते हैं २ सि० इसमें हेतु यह है कि ❀ तिन ३ तिन ४ कामना करके ५ हरागया है आत्मज्ञान जिनका ६ सि० वे ❀ अपने ७ प्रकृतिकरके ८ प्रेरेहुए ९ तिस १० तिस ११ नियमको १२ आश्रयकरके १३ सि० अन्यदेवताका भजन करते हैं ❀ तात्पर्य रजोगुण और तमोगुणके वश होकर जो जो नियम और भेद उपासनामें हैं, सबका अंगीकार करके आत्मासे अन्यदेवताकोही पूजते हैं, जैसे कहते हैं कि "घरका जोगी जोगना, आनगाँवका सिद्ध" ऐसेही वे उपासना हैं. शास्त्रकाभी प्रमाण सुनो "वासुदेवंपरित्यज्ययोन्यदेवमुपासते ॥ तृषितोजाह्नवीतीरेकूपंखनतिदुर्मतिः" जो देव सबमें बसरहा है और साक्षात् चैतन्यानन्दअनुभव होता है, उसको छोड अन्यदेवकी जो उपासना करते हैं, वे ऐसे हैं, कि जैसे प्यासा मूर्ख श्रीगंगाजीका जल छोड, गंगातीरे कूप खोदता है ऐसेही परमानंदस्वरूप चैतन्यदेव आत्माको छोड तुच्छ विषयानंदके लिये प्रयत्न करते हैं ॥ २० ॥

मू०-योयोयांयांतनुंभक्तः श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति ॥
तस्यतस्याचलांश्रद्धांतामेवविदधाम्यहम् ॥ २१ ॥

यः १ यः २ भक्तः ३ श्रद्धया ४ याम् ५ याम् ६ तनुम् ७ अर्चितुम् ८ इच्छति ९ तस्य १० तस्य ११ अचलाम् १२ श्रद्धाम् १३ ताम् १४ अहम् १५ एव १६ विदधामि १७ ॥ २१ ॥ अ०-उ० सकाम आत्मासे अन्यदेवताओंके भक्तोंको पिछले मंत्रमें परतंत्र (प्रकृतिके और कामनाके वश) कहा. अब अपने आधीन कहतेहैं जो कोई यह शंका करे कि जब परमेश्वर अन्तर्यामी सबके प्रेरक है, तो फिर अन्यदेवताओंके भक्तोंको भी वासुदेव, भगवान् पूर्णब्रह्मसच्चिदानंद ऐसे आत्माके सन्मुख क्यों नहीं करदेते ? इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहेंगे; कि जैसे जिसकी इच्छा होती है, उसके अनुसार उसकी श्रद्धा दृढ करदेताहूं. निष्काम जो मेरा आरधन करते हैं. उनको सन्मार्गमें लगादेता हूं मुझको चिंतामणिवत समझना. प्रसिद्ध वाक्यहै "जैसेको हर तैसे" सोई कहते हैं-इसमंत्रमें जो १जो २ सि० विष्णु शिव राम कृष्ण इंद्रादिका ❀ भक्त ३ श्रद्धाकरके ४ जिस ५ जिस ६ मूर्तिकी ७ पूजा करनेकी ८ इच्छा करता है, ९ तिसतिसके विषय १० ।११ दृढ १२ श्रद्धा १३ सि० जो है ❀ तिसको १४ मैं १५ ही १६ स्थिर करताहूं १७ सि० अन्तर्यामीरूप होकर वेदशास्त्राचार्यद्वारा ❀ तात्पर्य जो जिस मूर्तिमान् देवतामें प्रीति करता है, परमेश्वरभी आचार्यरूप होकर उसीको दृढ करदेते हैं. निष्कामभक्तोंको परमेश्वर सुधारतेहैं. सुख मानकर बहिर्मुख हुए बहिःसुखकीइच्छाकरतेहैं, वे कामी विषयी कहे जातेहैं॥२१॥

मू०-सतयाश्रद्धयायुक्तस्तस्याराधनमीहते ॥
लभतेचततःकामान्मयैवविहितान्हितान् ॥ २२ ॥

सः १ तया २ श्रद्धया ३ युक्तः ४ तस्य ५ आराधनम् ६ ईहते ७ ततः ८ च ९ कामान् १० लभते ११ तान् १२ मया १३ एव १४ विहितान् १५ हि १६ ॥२२॥ अ०-उ० पूर्वपक्षके श्रुतिस्मृतिकोही सिद्धान्त

समझकर, उनमें श्रद्धा करके सकाम परमेश्वरका आराधन करनेसे जो कभी किसीकिसीको फल भी प्रत्यक्ष होजाताहै, अर्थात् मूर्तिमान् परमेश्वरका दर्शन होजाना अथवा स्त्री पुत्र, राज्य, स्वर्ग और वैकुंठादिकी प्राप्ति होजाना यह सब फल उसके कामनाके आनुसार मैं ही देता हूँ,क्योंकि कामियोंको रूपरसादि विषयही प्रिय होते हैं. जो यह फल प्रत्यक्ष किसीको भी न होय, तो फिर वेदशास्त्रादिमें उनका विश्वास न रहेगा जो उनका विश्वास वेदशास्त्रादिमें बनारहेगा, तो कभी न कभी सिद्धान्तके श्रुतिस्मृतियोंमें भी उनका विश्वास होजायगा. फिर मेरा निष्काम आराधन करके कृतार्थ होजावेंगे. उनको प्रत्यक्ष फल दिखानेमें यह मेरा तात्पर्य है. इस वास्ते उनकी वोंही श्रद्धा स्थिर करताहूँ—सो १तिस २ श्रद्धा करके३ युक्त तिसका ५ सि० ही ❀आराधन ६ करता है ७ तिससे ८ ही ९ कामनाको १० प्राप्त होताहै ११ सि०कैसी है वे कामना, कि❀ तिनको १२ मैंने १३ ही १४ रचीहै १५ निश्चयसे १६. तात्पर्य सकामभक्त पूर्वपक्षके श्रुतिस्मृतियोंमें श्रद्धाकरके जिस भक्तकी जिस देवतामें प्रीति है, उसकाही आराधन करता है. उससेही मनवांछित फलको प्राप्त होता है. वास्तवमें वे कामना परमेश्वरकी रचीहुई हैं. परमेश्वरने ही वो फल उनको दिया है परंतु वे उस मूर्तिका दियाहुआ समझते हैं उसीको परात्पर समझलेते हैं इसी वास्ते वे जन्ममरणसे नहीं छूटते. इस बातको अगले श्लोकमें भले प्रकार स्पष्ट करेंगे ॥ २२ ॥

मू०—अन्तवत्तुफलंतेषांतद्भवत्यल्पमेधसाम् ॥
देवान्देवयजोयान्तिमद्भक्तायान्तिमामपि ॥ २३ ॥

अल्पमेधसाम् १ तेषाम् २ तत् ३ फलम् ४ अन्तवत् ५ तु ६ भवति ७ देवयजः ८ देवान् ९ यान्ति १० मद्भक्ताः ११ माम् १२ अपि १३ यांति १४ ॥ २३ ॥अ०—उ० सच्चिदानंदआत्मासे

अन्य मूर्तिमान् परमेश्वरको परमेश्वर मानकर जो उनका आराधन करता है उससे निर्गुण निराकार सच्चिदानन्दकी उपासना करनेवाले कौनसे अधिक फलको प्राप्त होते हैं? इस अपेक्षामें श्रीमहाराज यह कहते हैं, कि हां बेसन्देह फलमें वडा अंतर है. वो अंतर यह है—परिच्छिन्न है दृष्टि जिनकी अर्थात् वे कमसमझवाले जो परमेश्वरको एकदेशी समझते हैं १ तिनको २ सि० जो फल होता है. मूर्तिमान् परमेश्वरदर्शनादि, वैकुंठादिकी प्राप्ति, स्त्रीपुत्रराज्यादिकी प्राप्ति ❀सो ३ सि०यह सब ❀ फल ४ अन्तवालाही ५। ६है ७ तात्पर्य अनित्यहै ७सि०क्योंकि ❀ देवताओंके पूजनेवाले ८ देवताओंको ९प्राप्त होते हैं१०सि० और ❀मुझ सच्चिदानंद निराकार आत्माके भक्त ११ मुझसच्चिदानंदनिराकारको १२ ही १३ प्राप्त होते हैं १४. तात्पर्य विचार करो फलमें कितना बडा अन्तर है जो यह शंका करे, कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज नित्य हैं, उन्होंसे अन्य देवता अनित्यहैं. तो फिर यह विचारना चाहिये, कि देवताओंकी मूर्ति अनित्य है, वा उनका स्वरूप जो सच्चिदानंद सो अनित्य है और श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी मूर्ति श्यामसुंदरस्वरूप नित्य है, वा उनका स्वरूप सच्चिदानंद नित्य है? दोनोंके मूर्तियोंको जो नित्य कहे, तो भी नहीं बनसक्ता और दोनोंके सच्चिदानंदस्वरूपको जो अनित्य कहे, तो भी नहीं बन सक्ता; क्योंकि वेदशास्त्रोंका यह सिद्धान्त है "यद्दृश्यं तदनित्यम्" जो दृश्य है सो सब अनित्यहै. तदुक्तं "गोगोचरजहँलगमनजाई ॥ सो सब माया जानों भाई" और माशब्दकी देवशब्दसे विलक्षणता है. तात्पर्य यह बात स्पष्ट है कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज पूर्णब्रह्मसच्चिदानंद निराकार हैं, सो नित्य हैं. मूर्ति परमेश्वरकी मायिक होती है. पद्मपुराणमें लक्ष्मीजीसे श्रीनारायण गीतामात्म्य कहते हैं "मायामयमिदंदेविवपुर्मेनतुतात्त्विकम्"अ० हेदेवी! मेरा यह शरीर मायामय है, वास्तवमें नहीं. देव

शब्दका तात्पर्य मूर्तियोंमें है माशब्दका तात्पर्य सच्चिदानंद निराकारमें है ॥ २३ ॥

मू०-अव्यक्तंव्यक्तिमापन्नंमन्यन्तेमामबुद्धयः ॥
परंभावमजानन्तोममाव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

अबुद्धयः १ माम् २ अव्यक्तम् ३ व्यक्तिम् ४ आपन्नम् ५ मन्यन्ते ६ मम ७ परम् ८ भावम् ९ अजानन्तः १० अव्ययम् ११ अनुत्तमम् १२ ॥२४॥ अ०-उ० निर्गुणब्रह्मके उपासनामें और सगुण ब्रह्मलीलाविग्रहमूर्तिआदिके उपासनामें यत्न तो सम प्रतीत होता है, और फल निर्गुणउपासनाका आप विशेष और नित्य कहते हो. फिर लीलाविग्रहमूर्तियोंके उपासकभी आपके निरुपाधिकशुद्धस्वरूप सच्चिदानंदनिराकारब्रह्मात्माकी उपासना क्यों नहीं करते हैं, यह शंका करके इसमंत्रमें श्रीमहाराज यह कहेंगे कि कमसमझ होनेसे मुझ परात्पर निर्विकार शुद्ध सच्चिदानंदको नहीं जानते. मूर्तिमान्ही मुझको समझते हैं. हे अर्जुन ! यह बडे कष्टकी बात है इसप्रकार विचार करते हुए श्रीभगवान् यह कहते हैं-अविवेकी याने विचार रहित १ मुझ २ निराकारको ३ मूर्तिमान् ४।५ मानते हैं ६. मेरे ७ पर ऐसे ८ प्रभावको ९ नहीं जानते १०. सि० कैसाहै मेरा परप्रभाव कि प्रथम तो * निर्विकार ११ सि० और फिर * अनुत्तम १२ अर्थात् उसके सिवाय और कोई पदार्थ उत्तम नहीं १२ टी० मूर्तिको ४ प्राप्त हुआ ५ ॥ २४ ॥

मू०-नाहंप्रकाशःसर्वस्ययोगमायासमावृतः ॥
मूढोऽयंनाभिजानातिलोकोमामजमव्ययम् ॥२५॥

सर्वस्य १ अहम् २ प्रकाशः ३ न ४ योगमायासमावृतः ५ अयम् ६ मूढः ७ लोकः ८ माम् ९ अजम् १० अव्ययम् ११ न १२ अभिजानाति १२ ॥ २५ ॥ अ०-सबको १ मैं २ प्रकट ३ नहीं ४ अर्थात् सब

मुझको नहीं जानसक्ते मेरे भक्तही मुझको जानसक्ते हैं ४.सि० क्योंकि ❀ योगमायाकरके ढकाहुआ हूं ५ अर्थात् मेरी योगमाया अचिंत्य है. उसमायाके सम्बन्धसे अभक्त अर्थात् अश्रद्धावान् मुझको नहीं पहँचानसक्ते ५ सि० इसीहेतुसे ❀ यह ६ मूढ ७ जन ८ मुझ ९ अज १० अव्ययको ११ नहीं १२ जानता है १३ ॥ २५ ॥

मू०—वेदाहंसमतीतानिवर्त्तमानानिचार्जुन ॥
भविष्याणिचभूतानिमांतुवेदनकश्चन ॥ २६ ॥

अर्जुन १ समतीतानि २ वर्तमानानि ३ च ४ भविष्याणि ५ च ६ भूतानि ७ अहम् ८ वेद ९ माम् १० तु ११ कश्चन १२ न १३ वेद १४ ॥२६॥अ०—उ०पीछे यह कहा, कि मैं योगमायाकरके ढका हुआहूं सो वो योगमाया मुझको ज्ञानमेंप्रतिबंधनहीं जीवकोहीमोहनेवाली है. जैसी बाजीगरकी माया बाजीगरको नहीं मोहतीहै,औरोंकोही मोहती है. यह कहते हैं—हे अर्जुन ! १ पिछले २ और वर्तमान ३ । ४ और अगले ५।६ भूतोंको ७ मैं ८ जानता हूं, ९ और मुझको १० । ११ कोई १२ नहीं १३ जानता १४ अर्थात् सच्चिदानंदसे पृथक् प्रथम तो कोई पदार्थ नहीं है, और जो भ्रान्तिजन्य हैं भी, तो वे जड हैं, वे कैसे चैतन्यको जानसक्ते हैं १२.तात्पर्य आत्मासे पृथक् जो ईश्वरको कोई जाना चाहे, वो मूर्खतम है, क्योंकि स्पष्ट श्रीमहाराज कहते हैं कि मुझको कोई नहीं जानता. इस वाक्यका यही अभिप्राय है कि आत्मासे भिन्न मुझको कोई नहीं जानता ॥ २६ ॥

मू०—इच्छाद्वेषसमुत्थेनद्वंद्वमोहेनभारत ॥
सर्वभूतानिसंमोहंसर्गेयांतिपरंतप ॥ २७ ॥

परंतप १ सर्गे २ इच्छाद्वेषसमुत्थेन ३ द्वन्द्वमोहेन ४ भारत ५ सर्वभूतानि ६ संमोहम् ७ यांति ८ ॥ २७ ॥अ०—उ०जीवोंका जो अज्ञान दृढ होरहा है और उनको विवेक नहीं होता उसमें कारण

यह है, कि स्थूलशरीरकी उत्पत्ति होतेही अनुकूलपदार्थोंमें याने प्रियपदार्थोंमें तो इच्छा होती है और प्रतिकूल पदार्थोंमें द्वेष उत्पन्न होजाता है. इच्छा और द्वेष क्यों उत्पन्न होते हैं. इसमें हेतु यह है, कि शीतोष्णादिद्वन्द्वके निमित्त जो भ्रांतिहै अर्थात् विवेक नहीं. इस वास्ते इच्छा द्वेष उत्पन्न होतेहैं. तात्पर्य शीतोष्णादिके दूर करनेके लिये जो प्रयत्न करना है, सोई भ्रांति है; क्योंकि शीतोष्णादिकी प्राप्ति और उनका दूरहोना प्रारब्धवशात् अवश्यंभावि है. जैसे दुःखके लिये कोई यत्न नहींकरता,सुखके रक्षामें सुखके प्राप्तिके लिये दिनरात तत्पर रहते हैं, परंतु दिनरातकेतरह दुःख सुख बनाहीरहता है. जिनको यह विचार नहीं, वे अविवेकी अपने अविवेकसे अज्ञानी बनरहे हैं. यही बात इसमंत्रमें कहते हैं—हे अर्जुन ! १ स्थूलशरीरकी उत्पत्ति हुएसन्ते अर्थात् स्थूल शरीरके उत्पत्तिके पीछे २ इच्छा द्वेषकरके उत्पन्न हुआ द्वन्द्वके निमित्त जो मोह ३।४ अर्थात् विवेक न होनेसे ३।४ हेअर्जुन !५सबजीव६ अज्ञानको ७ प्राप्तहैं ८. तात्पर्य द्वन्द्वके निमित्त जो प्रयत्न करना, यह अविवेक है. विना इसका त्यागकिये परमेश्वरका ज्ञान और अपना ज्ञान नहोगा.इच्छा और द्वेष यही दोनों संसारकी जडहैं.इनका त्याग अवश्य करना चाहिये॥२७॥

मू०—येषांत्वन्तर्गतंपापंजनानांपुण्यकर्मणाम् ॥

तेद्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताभजंतेमांदृढव्रताः ॥ २८ ॥

येषाम् १ तु२ पुण्यकर्मणाम् ३ जनानाम् ४ पापम् ५ अन्तर्गतम् ६ ते ७ द्वंद्वमोहनिर्मुक्ताः८ दृढव्रताः ९ माम् १० भजंते ११ ॥२८॥

अ०—उ०शुभकर्म करनेसे रजोगुण और तमोगुण कम होगया है जिनका, उनको द्वंद्वके निमित्तभी मोह कम होता है. वे मेरा भजन करसक्ते हैं और उनको मेरेस्वरूपका यथार्थ ज्ञान होता है. यह कहते हैं—जिन १।२ पुण्यकारी ३ जनोंका४ पाप ५ नष्ट होगया है ६ वे ७ द्वंद्वके निमित्त जो मोह उससे छूटे हुए ८ और दृढ हैं व्रतनि-

यम जिनके ९ सि०वे*मुझको १० भजते हैं ११. टी०निष्काम शास्त्रोक्त सद्गुरुने उपदेश किया उसमें दृढ विश्वास रखना उसीके अनुसार अनुष्ठान करना, यह दृढव्रत है जिनका ॥ २८ ॥

मू०–जरामरणमोक्षायमामाश्रित्ययतन्तिये ॥
तेब्रह्मतद्विदुःकृत्स्नमध्यात्मंकर्मचाखिलम् ॥ २९॥

ये १ माम् २ आश्रित्य ३ जरामरणमोक्षाय४यतंति ५ ते६ तत् ७ ब्रह्म ८ विदुः ९ कृत्स्नम् १० अध्यात्मम् ११ अखिलम्१२कर्म १३ च १४ ॥ २९ ॥ अ०–उ०जिसवास्ते भजन करते हैं सो कहते हैं. और भगवत्का भजन करनेवाले जाननेके योग्य जो पदार्थ हैं उन सबको जानकर कृतार्थ होजाते हैं. यह भी दोश्लोकोंमें कहतेहैं–जो१ सि०परमानंदके जिज्ञासु*मुझपरमेश्वरको २ आश्रयकर ३ जरामरण छूटनेकेवास्ते अर्थात् जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि इनका नाश होनेके लिये ४ प्रयत्न करते हैं ५, वे ६ तिस ७ ब्रह्मको ८ जानते हैं ९।सि०अथवा जानेंगे कि जिसब्रह्मके जाननेसे मुक्ति होतीहै और*समस्त १० अध्यात्मको ११ समस्त १२ कर्मको भी१३।१४सि०जानते हैं * तात्पर्य भलेप्रकार कर्म और अध्यात्मब्रह्मको जानते हैं इनशब्दोंका अर्थ श्रीमहाराज आठवें अध्यायमें निरूपण करेंगे ॥ २९ ॥

मू०–साधिभूताधिदैवंमांसाधियज्ञंचयेविदुः ॥
प्रयाणकालेपिचमांतेविदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

युक्तचेतसः १ ये २ माम् ३ साधिभूताधिदैवम् ४ साधियज्ञम् ५ च ६विदुः ७ ते ८ प्रयाणकाले९अपि १० च ११माम् १२विदुः१३ ॥ ३० ॥अ०–उ०भगवद्भक्त अन्तकालमें भी बेसन्देह भगवत्का चिंतवन करके परमेश्वरको प्राप्त होंगे. भगवद्भक्तोंमें योगभ्रष्टकी भी शंका न करना क्योंकि उनके अं ..णका प्रेरक, अंत-

और उनका स्वामी अपनेमें मन आप लगालेगा. सिवाय
वे आप परमेश्वरकी कृपासे समाहितचित्त होते हैं, सोई कहते
समाहितहै चित्त जिनका १ ऐसेजो२मुझको३सहित अधिभूत और
दैवके४और सहितअधियज्ञके५।६जानतेहैं७वे८ अन्तकालमेंभी
१०।११ मुझको १२ जानेंगे १३. तात्पर्य मेरे स्मरणका ज्ञान
न्तकालमें उनको बना रहेगा; क्योंकि उनका चित्त सावधानहै.
अधिभूतादि शब्दोंका अर्थ श्रीमहाराज आपही आठवें अध्यायमें
निरूपण करेंगे ॥ ३० ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
ज्ञानविज्ञानयोगोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ८.

मू०–अर्जुनउवाच॥ किंतद्ब्रह्मकिमध्यात्मंकिंकर्मपुरुषो-
त्तम ॥ अधिभूतंचकिंप्रोक्तमधिदैवंकिमुच्यते॥१॥
पुरुषोत्तम १ तत् २ ब्रह्म ३ किम् ४ अध्यात्मम् ५ किम् ६ कर्म ७
किम् ८ अधिभूतम् ९ च १० किम् ११ प्रोक्तम् १२ अधिदैवम् १३
किम् १४ उच्यते १५ ॥१॥ अ०–उ० पिछले अध्यायमें श्रीभग-
वान्ने कहा, कि जो मुझ परमेश्वरका आश्रय लेकर मुक्तिके लिये यत्न
करते हैं, वे ब्रह्मादिसप्तपदार्थोंको मुझसहित अन्तकालमें भी जानेंगे;
क्योंकि मुक्ति विना ब्रह्मज्ञानके नहीं होती, यह वेदोंमें कहा है
"ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः–"इतिश्रुतिः। इसवास्ते अर्जुन ब्रह्मादि सप्तपदार्थों-
के जाननेकी इच्छा करके प्रश्न करता है–हे पुरुषोत्तम! १सो। २ब्रह्म ३
क्याहै ४ अर्थात् जिसके जाननेसे मुक्ति होती है, वो सोपाधिकब्रह्महै,
वा निरुपाधिक, शुद्ध, सच्चिदानंद, निराकार, ऐसाहै? जो सच्चिदानंदके
जाननेसेही मुक्ति होती है, तो उसका अर्थ कृपाकरके मुझको समझना

चाहिये-मैं तो अबतक इसी श्यामसुंदरमूर्तिको परात्पर परब्रह्म समझताथा और आपही हैं पूर्णब्रह्म; परंतु सोपाधिक और निरुपाधिकका भेद मैं जाननाचाहताहूं कि किसप्रकार तो आप सोपाधिक और किसप्रकार निरुपाधिक हैं? यह, मेरा तात्पर्य है अर्थात् शुद्धरूप आपका क्याहै ४ सि० और इसप्रकार ❀ अध्यात्म५ क्याहै६ कर्म ७ क्या है? ८ अधिभूत ९ । १० किसको ११ कहतेहैं? १२ और अधिदैव १३ किसको १४ कहतेहैं. १५ तात्पर्य अर्जुनका प्रश्न यहहै, कि इन शब्दोंके अर्थ शास्त्रमें कैकैप्रकारके अर्थात् बहुतहैं. जैसे ब्रह्म शुद्धकोभी कहते हैं और मायोपहितको और सगुणनिर्गुणकोभी ब्रह्म कहते हैं. अब मैं यह जाननाचाहताहूं कि वो ब्रह्मपदार्थ क्याहै जिसके जाननेसे मुक्त होताहै? इसप्रकार कर्म और जीवादिपदार्थोंका अर्थ है अर्जुनका. तात्पर्य यह है कि मुक्तिका हेतु जो ब्रह्मादिपदार्थोंका ज्ञान वो मैं जाननाचाहता हूं ॥ १ ॥

मू०—अधियज्ञःकथंकोऽत्रदेहेऽस्मिन्मधुसूदन ॥
प्रयाणकालेचकथंज्ञेयोऽसिनियतात्मभिः ॥ २ ॥

मधुसूदन१ अत्र२ देहे३ अधियज्ञः ४ कः५ कथम् ६ अस्मिन् ७ नियतात्मभिः ८ प्रयाणकाले ९ च १० कथम् ११ ज्ञेयः १२ असि १३ ॥ २ ॥ अ०—हे भगवन्! १ इस २ देहमें ३ अधियज्ञ ४ कौनहै अर्थात् जोजो कर्म शरीर मन वाणीसे होता है, उसका फलदाता इस शरीरमें कौन है५ सि० स्वरूप बूझकर उसके रहनेका प्रकार बूझता है कि ❀ किसप्रकार ६ इसमें अर्थात् इस देहमें ७ सि० वो स्थित है? और ❀ समाधान है अन्तःकरण जिनका ऐसे पुरुषों करके ८ देहावसानके समय९।१०किसप्रकार ११ जाननेके योग्य १२[आप] हो १३ अर्थात् समाधान अन्तःकरणवाले अन्तकालमें आपको किसप्रकार जानते हैं? ९।१०।११।१२

अर्थात् अन्तकालमें क्या उपाय सबसे श्रेष्ठ करना योग्य है, कि जिस उपायकरनेसे मुक्त होजावे. तात्पर्य—जिनका चित्त समाधानहै उनके उपासनामें तो संदेह है नहीं, क्योंकि चित्तका निरोध होना ही उपासनका फल है. अर्जुनका प्रश्न यह है कि उसको अन्तकालमें क्या करना चाहिये? इस हेतुसे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि उपासनासे बढकर उपाय बूझता है-इन प्रश्नोंका अर्थ इनही प्रश्नोंके उत्तरमें सब स्पष्ट होजावेगा ॥ २ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ अक्षरंब्रह्मपरमंस्वभावोऽध्यात्ममुच्यते॥भूतभावोद्भवकरोविसर्गःकर्मसंज्ञितः॥ ३ ॥

परमम् १ ब्रह्म २ अक्षरम् ३ उच्यते ४ स्वभावः ५अध्यात्मम् ६ भूतभावोद्भवकरः ७ विसर्गः ८ कर्मसंज्ञितः ९ ॥ ३ ॥ अ०—उ० ब्रह्म अध्यात्म और कर्म इन तीनप्रश्नोंका उत्तर इसश्लोकमेंहै—परम१ ब्रह्मको २ शुद्ध, सच्चिदानंद, अक्षर, अखंड, नित्य, मुक्त, निराकार परात्पर ३ कहते हैं ४ और जीवको ५ अध्यात्म ६ सि० कहते हैं *भूतोंकी उत्पत्ति और उद्भवकरनेवाला ७ सि०जो देवताओंका उद्देशकरके द्रव्यका * त्याग ८ सि० सो कर्मसंज्ञित है ९. टी० कर्महै संज्ञा जिसकी उसको कर्मसंज्ञित कहते हैं. तात्पर्य—यज्ञमें ह ९ "चैतन्यंयदधिष्ठानंलिंगदेहश्चयःपुनः ॥ चिच्छायालिंगदेहस्थातत्संघोजीवउच्यते" ॥ अधिष्ठान जो चैतन्य और सूक्ष्मशरीर और सूक्ष्म शरीरमें उसी चैतन्यका प्रतिबिम्ब, इन सबके संघातको जीव कहते हैं ५ ॥ ३ ॥

मू०—अधिभूतंक्षरोभावःपुरुषश्चाधिदैवतम् ॥ अधियज्ञोहमेवात्रदेहेदेहभृतांवर ॥ ४ ॥

क्षरः १ भावः२अधिभूतम् ३पुरुषः ४ च ५ अधिदैवतम् ६ देहभृतांवर ७ अत्र८ देहे ९ अधियज्ञः १० अहम् ११ एव १२ ॥ ४ ॥

अ०-उ०तीन प्रश्नोंका उत्तर इसमंत्रमें है-नाशवान् १ पदार्थको २ अधिभूत ३ सि०कहते हैं ❀पुरुषको ४।५ अधिदैव ६ सि० कहते हैं ❀हे देहधारियोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! ७ इस ८ देहमें ९ अधियज्ञ १० मैंही ११। १२ सि० हूं ❀ टी० देहादिपदार्थ नाशवान् हैं १२ जिसकरके यह सब जगत् पूर्ण होरहाहै, अथवा सब शरीरोंमें जो विराजमानहै, उसको वैराजपुरुष या हिरण्यगर्भ भी कहतेहैं. सूर्यमंडलके मध्यवर्ति और व्यष्टि सबदेवताओंको अधिपति समष्टि देवता है४.पीछे अर्जुनने यह भी प्रश्न कियाथा कि किस प्रकार वो अधियज्ञ इसदेहमें स्थित है और अधियज्ञ किसको कहते हैं? श्रीभगवान्ने कहा कि अंतर्यामी अधियज्ञ मैं हूं. इसी कहनेसे यह जानलेना; कि ईश्वर अंतर्यामी देहमें आकाशवत् स्थित है. जो सबका साक्षी, और बुरे भले कर्मोंका फलका देनेवाला है और वो असंग है. यह समझना चाहिये. तात्पर्य यह है कि ऐसा ईश्वरको समझनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥

मू०-अन्तकालेचमामेवस्मरन्मुक्त्वाकलेवरम् ॥
यःप्रयातिसमद्भावंयातिनास्त्यत्रसंशयः ॥ ५ ॥

अन्तकाले १ च २ माम् ३ एव ४ स्मरन् ५ यः ६ कलेवरम् ७ मुक्त्वा ८ प्रयाति ९ सः १० मद्भावम् ११ याति १२ अत्र १३ संशयः १४ न१५अस्ति १६ ॥ ५ ॥ अ०-उ० सातवें प्रश्नका उत्तर इस मंत्रमें है अर्थात् मुक्तिका मुख्य उपाय यह है-अंतकालमें१२ मुझ अन्तर्यामिका ३ ही ४ स्मरण करता हुआ ५ जो अर्थात् ब्रह्मका जिज्ञासु ६ शरीरको ७ त्याग कर ८सि०अर्चिरादि मार्गकरके❀जाता है ९. सो १० कारणब्रह्मको ११ प्राप्त होता है १२ इसमें १३ संशय १४ नहीं १५ है १६ ॥ ५ ॥

मू०-यंयंवापिस्मरन्भावंत्यजत्यन्तेकलेवरम् ॥
तंतमेवैतिकौन्तेयसदातद्भावभावितः ॥ ६ ॥

यम् १ यम् २ भावम् ३ स्मरन्४वा५अपि ६ अंते७कलेवरम्८ त्यजति ९ कौन्तेय १० तम् ११ तम् १२ एव १३ एति १४ सदा १५ तद्भावभावितः १६ ॥६॥ अ०—उ० अन्तकालमें जिसपदार्थका चिंतवन करेगा, उसीको प्राप्त होगा यह कहते हैं—जिस १ जिस२पदार्थका३स्मरण करता हुआ४।५।६[जीव]अन्तकालमें ७ शरीरको८त्यागता है९.हे अर्जुन ! १० तिसतिसको११।१२ ही १३ प्राप्त होता है १४. सि० क्योंकि ❀ सदा १५ तिसका चिंतवन करके वश होगया है चित्त जिसका१६अर्थात् सदा जिसका चिंतवन रहेगा, वोहीपदार्थ उसके मनमें बस जायगा. इसहेतुसे अन्तकालमें भी उसको वोही स्मरण होगा १६. तात्पर्य—"बद्धोबद्धाभिमानी स्यान्मुक्तामुक्ताभिमानिनः।किंवदन्तीहसत्येयंयामतिःसागतिर्भवेत्" यह कहानी सच्ची है कि जिसको यह अभिमान है, अर्थात् यह मानता है कि मैं बद्ध हूं, परतंत्र हूं, परमेश्वरका दास हूं वो ऐसाही होगा और जो आत्माको स्वतंत्र असंग मुक्त मानता है वो स्वतंत्र मुक्त होगा. जैसी जिसकी समझहै उसकी वोही गति होगी. इस हेतुसे परमानन्दके उपासक परमानन्दकोही प्राप्त होंगे. मूर्तियोंके उपासक मूर्तियोंको और स्त्री छोकरोंके उपासक स्त्रीछोकरोंको ॥६॥

मू०—तस्मात्सर्वेषुकालेषुमामनुस्मरयुध्यच ॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥

तस्मात् १ सर्वेषु २ कालेषु ३ माम् ४ अनुस्मर ५ युध्य ६ च ७ मयि ८ अर्पितमनोबुद्धिः९माम् १० एव११एष्यासि १२ असंशयः १३ ॥७॥ अ०—उ० जब कि यह नियमहै, कि सदा जिस पदार्थका चिंतवन रहेगा, अंतकालमें वो अवश्य यादमें आवेगा. इसवास्ते सदा परमेश्वरकाही चिंतवन करना चाहिये और विना अन्तःकरण शुद्ध हुए परमेश्वरका स्मरण नहीं होसक्ता, इसवास्ते अन्तःकरणके

शुद्धिके लिये स्वधर्मका अनुष्ठान करना चाहिये यह कहते हैं—तिस कारणसे १ सबकालमें २।३ मुझ अंतर्यामीका४ स्मरण कर५. सि० जो न होसके तो ❀ युद्ध कर ६; सि० क्योंकि युद्ध करना ही क्षत्रियोंका धर्महै. युद्ध करनेसे क्षत्रियोंका अंतःकरण शुद्ध होताहै ❀ और७मुझमें८अर्पित की हैं मन और बुद्धि जिसने९सि० ऐसा होकर तू❀मुझको १० ही११प्राप्त होगा१२.सि० इसमें❀संशय नहीं१३ तात्पर्य. प्रथम अंतःकरण शुद्ध करके और फिर मुझमें मन लगाकर तू मुझकोही प्राप्त होगा इसमें संशय मत कर, कि युद्ध करनसे अंतःकरण शुद्ध होगा वा नहीं? बेसंदेह अंतःकरण शुद्ध होगा और फिर मेरा सदा स्मरण करके मुझको प्राप्त होगा. परमेश्वरमें जो मन नहीं लगता है, इसमें यही हेतु है, कि अंतःकरण शुद्ध नहीं. प्रथम उपाय मुक्तिका यही है, कि निष्काम होकर भलेप्रकार कर्मोंका अनुष्ठान करे॥ ७॥

मू०—अभ्यासयोगयुक्तेनचेतसाऽनन्यगामिना ॥
परमंपुरुषंदिव्यंयातिपार्थानुचिंतयन् ॥ ८ ॥

पार्थ १ अनुचिंतयन् २ परमम् ३ पुरुषम् ४ दिव्यम् ५ याति ६ अभ्यासयोगयुक्तेन ७ चेतसा ८ अनन्यगामिना ९॥८॥अ०—उ० परमेश्वरका स्मरण करनेमें दो प्रकारके साधन हैं एक अन्तरंग और दूसरा बहिरंग. यज्ञादि निष्कामकर्मोंकाअनुष्ठान करना बहिरंग साधन है और शमादि अंतरंग साधन है. क्रमसे दोनों प्रकारके साधनोंका अनुष्ठान करना आवश्यक है. इसीवास्ते पहले मंत्रमें बहिरंगसाधन कहा. अब इसमंत्रमें अन्तरंगसाधन कहतेहैं—हे अर्जुन! १ सि० शास्त्रसे और गुरुसे जैसा स्वरूप परमेश्वरका निश्चय किया है,उसी प्रकार परमेश्वरका ❀ चिंतवन करताहुआ २परम३ पुरुष४ दिव्यको ५ प्राप्त होता है. अर्थात् कारणब्रह्मको अर्चिरादिमार्गकरके प्राप्त होता है ६. सि० उसका अन्तरंगसाधन यह है कि

स्त्रीधनादि पदार्थोंसे मन हटाकर परमेश्वरमें लगाना योग्य है. जब जब किसी पदार्थमें मन जावे उसी समय वहांसे हटाकर परमेश्वरमें लगाना इसकोअभ्यासयोगकहतेहैं.इस ✻अभ्यासयोगकरके युक्त ७ सि०जो चित्त ऐसे ✻ चित्तकरके ८ सि० परमेश्वरका चिंतवन होसक्ता है और दूसरा विशेषण उस चित्तका यह है कि पीछे इस अभ्यासयोगके ✻ नहीं रहता है अन्यपदार्थमें जानेका स्वभाव जिसका ९. तात्पर्य स्वाभाविक किसी पदार्थमें सिवाय परमेश्वरके मन नहीं जाता है. ऐसे चित्तकरके कि जिसके ये दो विशेषण कहे हैं. हे अर्जुन ! परमेश्वरका चिंतवन करताहुआ परमेश्वरको ही प्राप्त होता है ॥ ८ ॥.

मू०-कविंपुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ॥ सर्वस्यधातारमचिंत्यरूपमादित्यवर्णंतमसः परस्तात् ॥ ९ ॥

कविम् १ पुराणम् २ अनुशासितारम् ३ अणोः ४अणीयांसम्५ सर्वस्य ६ धातारम् ७ अचिन्त्यरूपम् ८ आदित्यवर्णम्९तमसः१० परस्तात् ११ यः १२ अनुस्मरेत् १३ ॥ ९ ॥ अ०-उ०उस परम पुरुषके ये विशेषण हैं और इसमंत्रका पिछले मंत्रके साथ सम्बन्ध है-सि०कैसा है वो परम पुरुष ✻सर्वज्ञ १ अनादिसिद्ध २ नियन्ता याने प्रेरक ३ सूक्ष्मसे४अतिसूक्ष्म ५ सबका ६ पालनेवाला७सि० अचिंत्यशक्तिमान् होनेसे और अप्रमाणमहिमा और गुणप्रभाव होनेसे ✻ अचिंत्यरूप ८ आदित्यवत् स्वप्रकाशरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप अग्निसूर्यवत् उसका प्रकाश नहीं समझना. केवल शुद्ध, ज्ञान, ज्ञप्ति, चित्, चिती, चैतन्यमात्र ९ सि० ऐसा अनुभव करना चाहिये. फिर इसीको व्यतिरेकमुखकरके कहते हैं ✻अज्ञानसे १० परे ११ सि०पूर्वोक्त ऐसे पुरुषको ✻ जो १२ सि० शुद्धब्रह्मका

जिज्ञासु ❋ स्मरण करता है १३ तात्पर्य सो उसी दिव्यपरमपुरुषको प्राप्त होता है. पिछले मंत्रके साथ इसका अन्वय है. फिर शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप आत्माको ज्ञानद्वारा प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

मू०–प्रयाणकालेमनसाचलेनभक्त्यायुक्तोयोगबलेनचैव ॥ भ्रुवोर्मध्येप्राणमावेश्यसम्यक्सतंपरंपुरुषमुपैतिदिव्यम् ॥ १० ॥

प्रयाणकाले १ अचलेन २ मनसा ३ योगबलेन ४ च ५ एव ६ प्राणम् ७ भ्रुवोः ८ मध्ये ९ सम्यक् १० आवेश्य ११ भक्त्या १२ युक्तः १३ सः १४ तम् १५ परम् १६ दिव्यम् १७ पुरुषम् १८ उपैति १९ ॥ १० ॥ अ०–उ०इसप्रकार सच्चिदानंदपुरुषका जो स्मरण करता है, सो तिसही सच्चिदानंदको प्राप्त होता है यह कहते हैं. अंतकालमें १ अचल २ मनकरके ३ योगके बलसे ४।५।६ प्राणको ७ दोनों भ्रूके ८ बीचमें ९ भलेप्रकार १० ठहरायकर ११ भक्तिकरके १२ युक्त १३ सि०जो पुरुष,जैसे पीछे कहाहै,उसप्रकारका सच्चिदानंदका स्मरण करता है ❋ सो १४ तिस १५ पर १६ सि०ऐसे ❋ दिव्यपुरुषको १७।१८ प्राप्त होताहै १९.टी० सिवाय सच्चिदानंदनिराकारके किसी पदार्थमें याने स्त्रीपुत्रधनमानापमानादिमें मन न जावे २।३ आसन प्राणायामादिके बलसे ४सुषुम्नामार्ग करके प्राणको स्थिर करके७।८।९।१०।११उस समय सच्चिदानंदका ध्यान करना यही भक्तिहै. ऐसी भक्ति करताहुआ १२।१३ परमपुरुष सच्चिदानंदकोही प्राप्त होगा अर्थात् सच्चिदानंदरूप होजायगा ॥ १० ॥

मू०–यदक्षरंवेदविदोवदंतिविशंतियद्यतयोवीतरागाः ॥ यदिच्छंतोब्रह्मचर्यंचरंतितत्तेपदंसंग्रहेणप्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

वेदविदः १ यत् २ अक्षरम् ३ वदन्ति ४ वीतरागाः ५ यतयः ६ यत ७ विशन्ति ८ यत् ९ इच्छन्तः १० ब्रह्मचर्यम् ११ चरंति १२

तव् १३ पदम् १४ ते १५ संग्रहेण १६ प्रवक्ष्ये १७ ॥ ११ ॥
अ०-उ० महावाक्योंका अर्थ विचारनेमें जो समर्थ हैं अर्थात् निर्मल और तीव्र बुद्धिवाले जो अंतर्मुख हैं, वे तो उत्तम अधिकारी हैं. उनको मुक्तिके वास्ते ब्रह्मविद्याका श्रवण करना यही उपाय मुख्य है और जो मंदबुद्धि हैं और मंदवैराग्य हैं, गृहस्थ छोडकर जिन्होंसे ब्रह्मविज्ञनोंका सेवन नहीं होसक्ता, अथवा ब्रह्मविद्याके पढानेवाले गुरु किसी कारणसे उनको प्राप्त नहीं होते अथवा ब्रह्मविद्याके पढ़नेकी सामग्री (पुस्तकादि) नहीं मिलती है जिनको ऐसे पुरुष मोक्षमार्गके मंद और मध्यम अधिकारी हैं. उनके लिये परम करुणाकर श्रीभगवान् ऐसा अच्छा उपाय बताते हैं कि उसका अनुष्ठान करनेसे शीघ्र बेसंदेह ज्ञानद्वारा मुक्तिको प्राप्त होंगे. प्रथम उस मुक्तपदकी स्तुति करते हैं. फिर आगे दोश्लोकोंमें उसके प्राप्तिका उपाय कहेंगे—वेदके जाननेवाले १ जिसको २ अक्षर ३ कहते हैं ४ और दूर होगया है राग जिनका ५ सि० ऐसे ❀ संन्यासी याने ज्ञाननिष्ठ महात्मा ६ जहाँ ७ प्रवेश करतेहैं ८ सि० और ❀ जिसकी ९ इच्छा करतेहुए १० सि० ब्रह्मचारी गुरुदेवजीके घर रहकर ❀ ब्रह्मचर्यव्रत ११ करते हैं १२ सो १३ पद १४ तेरे अर्थ १५ संक्षेपकरके १६ कहूंगा १७ अर्थात् उसपदके प्राप्तिका उपाय तुझसे कहूंगा, कि जिसपदको वेदोंका तात्पर्य और सिद्धांत जाननेवाले अक्षरब्रह्म कहते हैं और सब पदार्थोंमें दूर होगया है राग जिनका, याने न इसलोकके किसी पदार्थमें राग है न परलोकके किसी पदार्थमें. ऐसे विरक्त साधु महात्मा विज्ञानी महापुरुष जिस परमपदमें प्रवेश करते हैं, और जिस पदकी इच्छाकरके ब्रह्मचारी काश्यादिक्षेत्रोंमें जाकर और वहां गुरुदेवकी टहल करके सांगोपांगवेदोंकाअध्ययन करते हैं अर्थात् वेदशास्त्र भलेप्रकार पढते हैं, विचार करते हैं, ब्रह्मचर्य व्रतमें स्थित रहते हैं. ऐसे पदके प्राप्तिका उपाय तुझसे कहूंगा. सावधान होकर सुन ॥ ११ ॥

मू०–सर्वद्वाराणिसंयम्यमनोहृदिनिरुध्यच ॥
मूर्ध्न्याधायात्मनःप्राणमास्थितोयोगधारणाम् १२॥
सर्वद्वाराणि १ संयम्य २ मनः ३ हृदि ४ निरुध्य ५ च ६ आत्मनः ७ प्राणम् ८ मूर्ध्नि ९ आधाय १० योगधारणाम् ११ आस्थितः १२ ॥ १२ ॥ अ०–उ० उत्तमउपासना सनातनकी यह है, सोई दोमंत्रोंमें कहते हैं–सब इन्द्रियोंके द्वारोंको १ रोककर २ मनको ३ हृदयमें ४ रोककर ५।६ अपने ७ प्राणको ८ मूर्धामें ९ ठहरायकर १० योगधारणाका ११ आश्रय किया हुआ १२ सि० परमगतिको प्राप्त होता है. ❀ अगले मंत्रके साथ इसका अन्वय है. टी० चक्षुरादिका रूपादिकेसाथ संबंध नहीं होनेदेना, इसीको इन्द्रियोंका रोकना कहते हैं अर्थात् देहयात्रासे सिवायदर्शनादिक्रिया नहीं करना १।२ अन्तःकरणको बहिर्मुख नहीं करना अर्थात् बाहरके शब्दादिपदार्थोंका संकल्पविकल्प नहीं करना. सिवाय आत्माके किसीपदार्थ (भूतभविष्यत्) का चिंतवन नहीं करना. सिवाय आत्माके और किसीपदार्थमें निश्चयात्मिका बुद्धिनहीं करना अर्थात् आत्माही सत्य है. तात्पर्य–सिवाय आत्माके और किसीको सत्य नहीं समझना और देहादिकेसाथ तादात्म्यसंबंधकरके अहंकार नहीं करना. इसको अन्तःकरणका निरोध कहते हैं ३।४।५ प्राणायामके अभ्याससे प्राणके गतिको मस्तकमें निश्चल करना. तात्पर्य प्राणका निरोध करना चाहिये. प्राणके निरोधकरनेसे ही अन्तःकरणका निरोध होता है. मनकी और प्राणकी एक गतिहै ७।८।९।१० यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये आठ योगके अंग हैं. इसयोगका अवश्य आश्रय रखना चाहिये. अवश्य अनुष्ठान करना उचित है, जितना अपना सामर्थ्य हो. इसका अनुष्ठान कियेविना मनप्राणका निरोध कठिन है. जब कि प्राणमनका निरोध न हुआ तो आत्मानंदका साक्षात्कार होना बहुत कठिन है.

और जीवन्मुक्तिका होना तो बहुत ही दुर्लभहै, पूर्वसंस्कारसे ईश्वरकी कृपासे वा महात्माजनोंका अनुग्रह होनेसे आत्मनंदका साक्षात्कार होवेगा, तो यह दूसरी बात है. मार्ग तो अपरोक्ष ज्ञानका यही है. इसके पीछे विचार है, और इसका फल प्रत्यक्ष है जिसको यह योग थोडासा भी प्राप्त हुआहै, उसको बहुत पढ़नेसुननेकी अपेक्षा नहीं १२

मू०–ओमित्येकाक्षरं ब्रह्मव्याहरन्मामनुस्मरन् ॥

यःप्रयातित्यजन्देहंसयातिपरमांगतिम् ॥ १३ ॥

ओम् १ इति २ एकाक्षरम् ३ ब्रह्म ४ व्याहरन् ५ माम् ६ अनुस्मरन् ७ यः ८ देहम् ९ त्यजन् १० प्रयाति ११ सः १२ परमाम् १३ गतिम् १४ याति १५ ॥ १३ ॥ अ–०उ० ओम् इस (शब्द) का उच्चारण करना वेदोंमें बहुत जगह लिखा है और इसका बडा प्रत्यक्ष परिचयहै–ओम् १ यह २ एक अक्षर ३ सि० ब्रह्मका वाचक होनेसे ❋ ब्रह्मस्वरूप है ४ सि० इसको दीर्घस्वरसे ❋ उच्चारण करताहुआ ५ सि० और इसका वाच्य जो ईश्वर मैं हूं ❋ मुझसे सच्चिदानन्द ईश्वरका ६ स्मरण करताहुआ ७ जो अर्थात् ब्रह्मका जिज्ञासु ८ शरीरको ९ छोडकर १० सि० अर्चिरादिमार्ग करके ❋ जाता है ११ सो १२ परम १३ गतिको १४ प्राप्त होता है १५ अर्थात् ऐसे उपासकको फिर जन्म नहीं होता. ब्रह्मलोकमें जाकर ज्ञानद्वारा परमानंदस्वरूप आत्माको प्राप्त होताहै १५. तात्पर्य जैसे घंटेका शब्द एकबेर तो बढा चलाजाताहै, फिर सहज कम होकर जहांसे उठाथा वहांही समाजाता है इसीप्रकार ओंकारका दीर्घस्वरसे उच्चारण करना चाहिये. थोडे देर पीछे स्थित होकर मकारमें समजाना यह उपासना बहुत बढकी है "ओंकारःसर्ववेदानांसारस्तत्त्वप्रकाशकः ॥ तेनचित्तसमाधानंमुमुक्षूणां प्रकाश्यते" ॥ असंख्यात श्लोकोंमें ओंकारका अर्थ है, वेदशास्त्रोंमें बहुतजगह जो नामोच्चारणका

माहात्म्य लिखाहै, वहां तात्पर्य इसीनामके उच्चारण करनेसे है और तारकमंत्र यही है चारोंवेद, षट्शास्त्र, और पुराणादि इसकी टीका हैं इसका जप करनेका विधि महात्माओंसे श्रवण करके अवश्यही अनुष्ठान करना चाहिये अन्तकालमें एकबार उच्चारण करनेसे जो परमगतिको प्राप्त होता है, तो फिर क्या कहना है कि जो पहलेसे अभ्यास करनेवाले परमगतिको प्राप्त हों-यह ओंकार सब वेदोंका सार महत्तत्त्वका प्रकाश करनेवाला और चित्तका समाधान करनेवाला ऐसा है ॥ १३ ॥

मू०–अनन्यचेताःसततंयोमांस्मरतिनित्यशः ॥
तस्याहंसुलभःपार्थनित्ययुक्तस्ययोगिनः ॥ १४ ॥

अनन्यचेताः १ यः २ माम् ३ सततम् ४ नित्यशः ५ स्मरति६ पार्थ ७ तस्य ८ नित्ययुक्तस्य ९ योगिनः १० अहम् ११ सुलभः १२ ॥१४॥ अ०–उ०इसप्रकार अन्तकालमें धारण करके मेरा स्मरण नित्य प्रतिदिन अभ्यास करनेवाला ही करसक्ता है विना अभ्यासके अंतकालमें मेरा स्मरण कठिन है. यह बात पहले भी कह चुकेहैं श्रीभगवान् फिर भी उसीका स्मरण करातेहैं–नहीं है अन्यपदार्थमें मन जिसका १ अर्थात् सिवाय परमेश्वरके और किसीपदार्थ (पुत्र मित्र स्त्री धनादि) में नहीं है चित्त जिसका १ सि०ऐसा ब्रह्मका जिज्ञासु ❋ जो २ मुझको ३ निरन्तर ४ प्रतिदिन ५ स्मरता है ६ हे अर्जुन ! ७ तिस ८ नित्ययुक्त ९ योगीको १० मैं सुलभ ११।१२ सि० हूं औरको नहीं ❋ टी०प्रातःकालसे सायंकालपर्यंत आर सायंकालसे प्रातःकालपर्यंत अंतर न पडे अर्थात् आठोंप्रहरके बीचमें निद्रा, शौच, स्नान और भोजनादि प्रमितक्रियाके विना सिवाय नारायणके और किसी पदार्थका चिंतवन न होयजबतक जीवे.(कोई एक

दिन वा महीना, वा वर्ष, वा शतवर्ष,) तबतक उसके बीचमें सिवाय सच्चिदानंदके और कहीं मन मुख्य होकर न जावे ९. ऐसे समाहितचित्तको मैं सुलभ हूं अर्थात् अंतकालमें मेरी प्राप्ति उसको बेसन्देह सुखपूर्वक होगी ॥ १४ ॥

मू०-मामुपेत्यपुनर्जन्मदुःखालयमशाश्वतम् ॥
नाप्नुवन्तिमहात्मानःसंसिद्धिंपरमांगताः ॥ १५ ॥

महात्मानः १ माम् २ उपेत्य ३ पुनः ४ जन्म ५ न ६ आप्नुवन्ति ७ परमाम् ८ संसिद्धिम् ९ गताः १० दुःखालयम् ११ अशाश्वतम् १२ ॥ १५ ॥ अ०-उ० आपके प्राप्तिमें क्या लाभ है ? इस प्रश्नके उत्तरमें यह कहते हैं-महात्मा अथात् विरक्त वैराग्यवान् १ मुझको २ प्राप्त होकर अर्थात् सच्चिदानन्दरूप होकर ३ फिर ४ जन्मको ५ नहीं ६ प्राप्त होतेहैं ७; सि० क्योंकि वे जीवतेही ❀ परम ८ सिद्धिको ९ अर्थात् जीवन्मुक्तिको ८ । ९ प्राप्त होगये हैं १०. सि० कैसा है वो जन्म ? ❀ दुःखोंका स्थान याने खान है ११. सि० कैसा भी यह नहीं कि ऐसाही बना रहे, क्योंकि दूसरा विशेषण उसका यह है कि ❀ आनित्य है अर्थात् क्षणभंगुर है. दूसरे क्षणमें दूसरा जन्म होते देर नहीं लगती १२ ॥ १५ ॥

मू०-आब्रह्मभुवनाल्लोकाःपुनरावर्त्तिनोऽर्जुन ॥
मामुपेत्यतुकौन्तेयपुनर्जन्मनविद्यते ॥ १६ ॥

अर्जुन १ आब्रह्मभुवनात् २ लोकाः ३ पुनरावर्तिनः ४ कौन्तेय ५ माम् ६ उपेत्य ७ तु ८ पुनः ९ जन्म १० न ११ विद्यते १२ ॥ १६ अ०-उ० ब्रह्मलोकादिके प्राप्तिमें क्या आपकी प्राप्ति नहीं- सच्चिदानंदरूप होनेमेंही आपकी प्राप्ति है, इस अपेक्षामें श्रीमहाराज कहते हैं कि, नहीं है-सि० क्योंकि ❀ हे अर्जुन ! १ ब्रह्मलोकसे लेकर २ सि० जितने सावयव ❀ लोक ३ सि० हैं सब ❀ पुनरावर्तनवाले हैं ४

अर्थात् सबलोकोंमें (वैकुंठादिमें भी) जाकर लौट आता है मनुष्यलोकमें और जो ब्रह्मके साथ मुझसच्चिदानंदरूपको प्राप्त होता है, सो शुद्धसच्चिदानंद निराकारका उपासकही प्राप्त होता है. उससे सिवाय सब लौट आते हैं, क्योंकि वे मुझ शुद्धसच्चिदानंदके उपासक नहीं अर्थात् ज्ञाननिष्ठ नहीं, वे भेदवादी हैं४. [सि०और ❀हेअर्जुन!५ मुझ शुद्धसच्चिदानंदके उपासक तो ❀मुझसच्चिदानंदरूपको ६ प्राप्त होकर ७।८ दूसरे ९ जन्मको १० नहीं ११प्राप्त होते हैं१२. तात्पर्य ब्रह्मलोकका अर्थ यह नहीं समझना कि वो लोक ब्रह्माजीका है, उसमें केवल ब्रह्माजीके उपासक जाते हैं और राम कृष्ण विष्णु शिवादिके उपासक गोलोक वैकुंठादिलोकोंमें जाते हैं. वे नित्य हैं. यह सब अर्थवाद है और स्थूलबुद्धिवालोंके लिये स्थूल अर्थात् रोचकवाक्य हैं; क्योंकि सब देवताओंके उपासक अपने अपने स्वामीके लोकको सबसे बडा और नित्य कहते हैं. प्रत्युत यह कहते हैं कि इससे सिवाय कोई दूसरा लोक है नहीं. सिवाय इसके गोलोकादिका वर्णन वेदोंमें तो है नहीं, पुराणोंमें सुना जाता है. स्वर्गका वर्णन वेदोंमें बहुत जगह है. पूर्वमीमांसावाले वेदका प्रमाण देकर स्वर्गको नित्य अनादि ऐसा कहते हैं, अब विचारना चाहिये कि स्वर्गको श्रीभगवान्‌ने क्यों अनित्य कहा, जो श्रुति हैं, वे रोचक वाक्य हैं. उनको अर्थवाद समझना चाहिये. अब विचारो कि वेदके श्रुतिको तो अर्थवाद और रोचकमाना. फिर पुराणोंके वाक्योंको रोचक और अर्थवाद माननेमें क्यों शंका करते हो? प्रत्युत पुराणोंका वाक्य तबतक प्रमाणके योग्य नहीं, कि जबतक उस वाक्यके अनुसार श्रुति न पावें, क्योंकि कितने पुराण सन्दिग्ध हैं. स्पष्ट यह बात हम कहते हैं कि भागवत दो प्रसिद्ध हैं. उनमेंसे एक बेसंदेह मनुष्यकृत है. जब कि एक पंडितने एक पुराण बनाकर अठारहसहस्र श्लोकोंका प्रचार करदिया, तो क्यों न संशय पडेगा?

न पुराणोंमें कि जो श्रुतिके अनुसार न होगा. तात्पर्य ब्रह्मलोक पूर्ण ब्रह्मनारायणका लोक है. पूर्णब्रह्मसच्चिदानंदके उपासक उस लोकमें जाते हैं. जब वोही अनित्य है तो औरोंके अनित्यतामें क्या सन्देह है. ब्रह्मलोकमें जाकर कोईतो ब्रह्माजीके साथ मुक्त होजाते हैं और कोई लौट आते हैं. यह बातभी इसी अध्यायमें आगे कहेंगे ॥ १६ ॥

मू०–सहस्रयुगपर्यंतमहर्यद्ब्रह्मणोविदुः ॥
रात्रियुगसहस्रांतांतेहोरात्रविदोजनाः ॥ १७ ॥

अहोरात्रविदः १ जनाः २ ते ३ ब्रह्मणः ४ यत् ५ अहः ६ सहस्रयुगपर्यन्तम् ७ विदुः ८ रात्रिम् ९ युगसहस्रान्ताम् १० ॥ १७ ॥

अ०–उ० ब्रह्मलोकादि इसहेतुसे अनित्यहैं–दिनरातके जाननेवाले अर्थात् कालकी संख्या करनेवाले १ सि० जो ❀ पुरुष २ वे ३ ब्रह्माजीका ४ जो ५ दिन ६ सि० है, उसको ❀ सहस्रयुगपर्यन्त ७ (४३२०००००००) कहते हैं ८ अर्थात् सत्ययुग (१७२८०००) त्रेता (१२९६०००) द्वापर (८६४०००) कलियुग (४३२०००) इन चारों युगोंका जोड (४३२००००) वर्ष होते हैं. (४३२००००) को (१०००) से गुणाजावे तो चार अर्ब बत्तीस करोड (४३२०००००००) वर्ष होते हैं. चार अर्ब बत्तीस करोड वर्षका ब्रह्माजीका एक दिन होता है. ८ सि० और रात्रिभी इतनेही वर्षोंकी होती है ❀ रात्रिको ९ सि० भी ❀ युगसहस्रांता १० सि० कहते हैं. इस प्रकार महीनों और वर्षोंकी कल्पना करके शतवर्षकी अवस्था (आयुष्य) ब्रह्माजीका है. जिसदिन ब्रह्माजी प्रयाण करते हैं, उसीदिन सबलोक सावयव नाश होजाते हैं. दिनरात ब्रह्माजीकी आठ अर्ब चौंसठकरोड वर्षोंकी होती है. (८६४०००००००) इस संख्याके निरूपण करनेका तात्पर्य वैराग्यमेंहै ❀ टी० हजारयुगोंपर जिसका अन्त है उसको सहस्रयुगपर्यंत कहते हैं. और हजार युगोंका

अंत है जिसका उसको युगसहस्रान्ता कहते हैं ७. सहस्रयुगशब्दका तात्पर्य सहस्रचौकडीमें है ॥ १७ ॥

मू०—अव्यक्ताद्व्यक्तयःसर्वाःप्रभवंत्यहरागमे ॥
रात्र्यागमेप्रलीयंतेतत्रैवाव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥

अहरागमे १ सर्वाः २ व्यक्तयः ३ अव्यक्तात् ४ प्रभवन्ति ५ रात्र्यागमे ६ अव्यक्तसंज्ञके ७ तत्र ८ एव ९ प्रलीयन्ते १० ॥१८॥
अ०—उ०यह मनुष्यलोक और कईलोक इससे ऊपरके और नीचेके ब्रह्माजीके रातमेंही नष्ट होजाते हैं. और रातभर कारणरूप हुए सब अविद्यामें रहते हैं. सि० फिर ❀ दिनके आगममें १ अर्थात् ब्रह्माजीका दिन उदय होतेही १ सब २ व्यक्ति ३ अर्थात् सब भूत आकाशादिकार्यके सहित ३ अव्यक्तसे४अर्थात् कारणरूपसे४ प्रकट होजाते हैं ५ और रात्रिके आगममें ६ अव्यक्त संज्ञा है जिसकी७तिसमें८ही९लीन होजाते हैं १०.टी०स्थावर जंगम सब ब्रह्माजीके स्वप्नअवस्थामें लय होजाते हैं और जाग्रदवस्थामें उसी स्वप्नमेंसे सब प्रकट होजाते हैं, तात्पर्य यह संसार ब्रह्मलोकादि और ब्रह्मादिके सहित सब स्वप्न है. यह समझकर सिवाय सच्चिदानंद आत्माके अन्य किसी पदार्थमें प्रीति न करना,क्योंकि सब अनित्य हैं. अनित्यपदार्थ वर्तमानकालमेंभी दुःखका हेतु होता है ॥ १८ ॥

मू०—भूतग्रामःसएवायंभूत्वाभूत्वाप्रलीयते ॥
रात्र्यागमेवशःपार्थप्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

अयम् १ भूतग्रामः २ सः ३ एव ४ अवशः ५ अहरागमे ६ भूत्वा ७ पार्थ ८ रात्र्यागमे ९ प्रलीयते १० भूत्वा ११ प्रभवति १२ ॥ १९ ॥ अ०—उ०यह नहीं समझना कि नूतन सृष्टिमें नये जीव उत्पन्न होते हैं. क्योंकि जीव नित्य और अनादि हैं. और संसार अनादि सांत है, इसवास्ते यह श्लोक वैराग्यके लिये कहतेहैं—यह १

भूतोंका समूह २ सि०जो पूर्वकल्पमें लय होगयाथा *सो ३ ही४ परतंत्रहोकर अर्थात् अविद्याके वशहोकर ५ दिनके आगममें ६ सि० प्रकट * होकर ७ हे अर्जुन! ८ रात्रिके आगममें ९ लय होजाता है. १० सि०और फिर दिनके आगममें स्थूलसूक्ष्म *होकर ११ प्रकट होता है १२. टी० भूत्वा भूत्वा ऐसा दोवार कहनेसे यह अभिप्राय है कि जबतक ज्ञान नहीं होता तबतक यह चक्र चलाही जाताहै-इसवास्ते अवश्य ज्ञानमेंही यत्न करना चाहिये अथवा इस श्लोकका अन्वय ऐसा करना, कि हे अर्जुन! यह भूतोंका समुदाय जो प्रथम कल्पमें था. सोई अवश हुआ रात्रिके आगममें होकर फिर लय होकर फिर होकर लय हो जाता है. और दिनके आगममें प्रकट होजाताहै-तात्पर्य इस अन्वयमेंभी वोहीहै. अक्षरोंका जोड और प्रकारका है ॥ १९ ॥

मू०-परस्तस्मात्तुभावोन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः ॥
यःससर्वेषुभूतेषुनश्यत्सुनविनश्यति ॥ २० ॥

तस्मात् १.अव्यक्तात् २ तु ३ यः ४ सनातनः ५ भावः ६ अव्यक्तः७सः८परः ९ अन्यः १० सर्वेषु ११ भूतेषु १२ नश्यत्सु १३ न १४ विनश्यति १५ ॥ २० ॥ अ०-उ० सावयवलोकोंको अनित्यकहकर शुद्धसच्चिदानंद स्वरूपको परात्पर नित्य ऐसा प्रतिपादन करते हैं. और उसीको परमगति अपना धाम और अपनेसे अभिन्न कहते हैं. अर्थात् सच्चिदानंदस्वरूपपरमेश्वरसे. जूदा कोई धाम नहीं और न कोई जूदा मुक्तिपदार्थ है. पूर्णब्रह्मशुद्धसच्चिदानंदनित्यमुक्तआत्माको जानना यही मुक्ति है और यही परधाम है. और यही परमेश्वरका दर्शन अर्थात् प्राप्तिहै-इससे भिन्न सब भ्रान्तिहै यह कहते हैं २ श्लोकोंमें और तीसरे श्लोकमें प्रथम यह पद है कि पुरुषःसपरः यहांतक अन्वयहै-सि०चराचरका कारण जो अव्यक्त७ * तिससे

अर्थात् पूर्वोक्त१अव्यक्तसे२भी३जो४सनातन ५पदार्थ ६ अव्यक्त ७ सि० है॥सो ८ श्रेष्ठ ९ और विलक्षण १० सि० है. कैसा है. वो कि ॥सबभूतोंके ११ । १२ नाश हुएपरभी १३ नहीं १४ नष्ट होता है १५. टी० सोपाधिक याने मायोपहितब्रह्मको कारण अव्यक्त ऐसा कहते हैं और शुद्धसच्चिदानंदाखंडनित्यमुक्ताद्वैते-करसनिराकारको शुद्ध अव्यक्त कहते हैं. ज्ञानकालमें उपाधिका नाश होजाता है. फिर केवल अद्वैतमायारहित अखंडसच्चिदानंद रहजाता है. इसीको अव्यक्त निराकार ऐसा कहते हैं ॥ २० ॥

मू०—अव्यक्तोक्षरइत्युक्तस्तमाहुःपरमांगतिम् ॥
यंप्राप्यननिवर्त्तन्तेतद्धामपरमंमम ॥ २१ ॥

अव्यक्तः १ अक्षरः २ इति ३ उक्तः ४ तम् ५ परमाम् ६ गतिम् ७ आहुः ८ तत् ९ मम १० परमम् ११ धाम १२ यम् १३ प्राप्य १४ न १५ निवर्तन्ते १६ ॥ २१ ॥ अ०—उ० शुद्धअव्यक्त सच्चिदानंदको अद्वैत सिद्ध करते हैं, सच्चिदानंदसे जूदा कोई और पदार्थ नहीं. अव्यक्तको १सि० ॥अक्षर २ कहते हैं ३।४ और तिसको ५ सि०हा॥परमा ६ गति ७ अर्थात् मोक्ष, मुक्ति ७ कहते हैं ८ और सोई ९ मेरा १० परम ११ धाम १२ सि० है. कैसा है वो धाम कि॥जिसको १३ प्राप्त होकर १४ नहीं १५ लौटकर आते हैं १६. अर्थात् फिर सच्चिदानंद जीवको उपाधिका संबंध नहीं होता. क्योंकि ज्ञानसे उपाधिका अत्यंत अभाव होजाता है १६. तात्पर्य सब दुःखोंकी निवृत्तिको और परमानंदके प्राप्तिकोही परमगति और मुक्ति और परमधाम ऐसा कहते हैं. गोलोक, सत्यलोक, वैकुंठ, अयोध्या, वृन्दावन और कैलासादि सब इसी अव्यक्त सच्चिदानंदपरमधामके नाम हैं. इसप्रकार समझकर जो वैकुंठादिको नित्य परात्पर कहे, तो उसका कहना सत्य

है. और जो उनको सावयव और सच्चिदानंदसे भिन्न कहे, अर्थात् वैकुंठादिको तो श्रेष्ठ मंदिर बतावे और विष्णुआदि देवतोंको उन मंदिरादि लोंकोका स्वामी भिन्न बतावे, यह अर्थवाद है, अधिकारी प्रति स्थूल रोचकवाक्य हैं. इस मंत्रमें यह अर्थ स्पष्ट है कि परमात्मासे परमात्माका धाम भिन्न नहीं. क्योंकि परमात्मा निराकार है. आश्रय साकारोंको चाहता है. परमेश्वर अपनेको अव्यक्त, अमूर्त, अक्षर, अखंड, अविनाशी ऐसा कहतेहैं ऐसा अर्थ स्पष्ट सुन देखकर भी जो फिर परमेश्वरको और उनके धामको सावयव याने साकार ऐसा परमार्थमें बतावे, वो मूर्खतम विनापुच्छका पशु जिसका भगवद्वाक्यमें विश्वास नहीं ॥ २१ ॥

मू०–पुरुषःसपरःपार्थभक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया ॥

यस्यान्तःस्थानिभूतानियेनसर्वमिदंततम् ॥ २२ ॥

पार्थ १ सः २ परः ३ पुरुषः ४ भक्त्या ५ लभ्यः ६ तु ७ अनन्यया ८ यस्य ९ भूतानि १० अन्तःस्थानि ११ येन १२ इदम् १३ सर्वम् १४ ततम् १५ ॥ २२ ॥ अ०–उ० परमगतिके प्राप्तिका उपाय सबसे श्रेष्ठ मुख्य ज्ञानलक्षणा अनन्यपराभक्ति है. इसीको उत्तमपुरुष और परमपुरुष परमात्मा कहते हैं "पुरुषान्नपरं किंचित्साकाष्ठासापरागतिः" ॥ श्रुतिने यह कहा कि पुरुषसे परश्रेष्ठ कुछ नहीं. यही पुरुष परात्पर अवधि है और यही परमगति है–हे अर्जुन ! १ सो २ परम ३ पुरुष ४ अर्थात् परब्रह्मपूर्णनारायण सच्चिदानंद ४ भक्ति करके ५ प्राप्त होता है, ६ सि०यह तु शब्द विलक्षण अर्थमें आता है. इसजगह विलक्षणता यह है, कि भजन कीर्तन सेवा प्रदक्षिणा इत्यादि भक्तिका अर्थ नहीं. क्योंकि आगे उसके अनन्यया यह विशेषणहै. श्रीभगवान् कहते हैं कि परमात्मा भक्ति करके प्राप्त होता है. परन्तु कैसी भक्ति करके कि

अनन्य करकेही ७।८ तात्पर्य सिवाय सच्चिदानन्दके अन्य अर्थात् दूसरा कोई और पदार्थ जिसके वृत्तिमें नहीं रहा ऐसी वृत्ति करके परमात्मा प्राप्त होताहै. घंटा बजाना, परिक्रमा करना यह तो बालक और मूर्ख बहिर्मुख विषयी भी करसक्तेहैं. सुंदर पदार्थमें सबकाही मन लगजाता है, सिवाय इसके यह बात स्पष्ट है, कि श्रीभगवान् अर्जुनको उपदेश करते हैं, श्यामसुंदरस्वरूप तो अर्जुनको प्राप्त ही है, सच्चिदानंद निराकार आत्माकाही उसको ज्ञान नहीं. उसीको परम पुरुष श्रीभगवान् बताते हैं. जिसके ९ भूत १० सि०आकाशादि ❀भीतर स्थित हैं ११ अर्थात् सबजगत् सोपाधिक सच्चिदानंद ऐसे कारण ईश्वरमें स्थितहैं ११सि०और❀ जिस करके १२यह१३ सब १४ अर्थात् जगत् १४ व्याप्त है १५ अर्थात् सब जगत्में सच्चिदानंद अस्ति भाति प्रिय ऐसा होकर पूर्ण होरहाहै १५ ॥२२॥

मू०—यत्रकालेत्वनावृत्तिमावृत्तिंचैवयोगिनः ॥
प्रयातायांतितंकालंवक्ष्यामिभरतर्षभ ॥ २३ ॥

यत्र १ काले २ तु ३ प्रयाताः ४ योगिनः ५ अनावृत्तिम् ६ आवृत्तिम् ७ च ८ एव ९ यांति १० भरतर्षभ ११ तम् १२ कालम् १३ वक्ष्यामि १४ ॥२३॥ अ०—उ०ज्ञानी जीतेही ब्रह्माजीसे स्वतंत्र होकर मुक्त होता है और ब्रह्माका उपासक ब्रह्माजीके साथ परतंत्र होकर मुक्त होता है और कर्मनिष्ठावाले और भेदउपासनावाले सदा परतंत्र रहते हैं. स्वर्गादिमें जाकर सालोक्यादिमुक्तिको प्राप्त होकर फिर जन्ममरणचक्रमें घूमते हैं. सो इन परतंत्रमुक्तिवालोंका मार्ग मुझसे सुन. आगे दोश्लोकोंमें कहूंगा, विनाब्रह्मज्ञान जो इनका हाल होता है. बहिर्मुख विषयी पामर इनका तो कुछ प्रसंगही नहीं. वे तो संसारमें डूबे रहते हैं—जिसमार्गमें १।२।३ जातेहुए ४ योगी ५ २ नावृत्ति ६ और आवृत्तिको ७।८।९ प्राप्त होते हैं १० हेअर्जुन! ११

तिस १२ मार्गको १३ कहूंगा मैं १४ सि०तुझसे आगे दोश्लोकोंमें अभिप्राय मेरा उन मार्गोंके कहनेसे यह है, कि जबतक बने स्वतंत्र होना चाहिये ❀ "पराधीनस्वप्नेहुसुखनाहीं।सोचविचारदेखमनमाहीं" टी०कर्मनिष्ठ और भेदवादी आवृत्तिमार्ग होकर परतंत्र और पराधीन हुए स्वर्गाधीन होकर स्वर्गादिमें जाते हैं. ब्रह्मके उपासक अनावृत्ति मार्ग होकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं. ज्ञानी महात्मा स्वतंत्र होकर सबसे पहले मुक्त होते हैं. वे किसीके घर नहीं जाते निजानंदको प्राप्त होते हैं ॥ २३ ॥

मू०-अग्निर्ज्योतिरहःशुक्लःषण्मासाउत्तरायणम् ॥
तत्रप्रयातागच्छन्तिब्रह्मब्रह्मविदोजनाः ॥ २४ ॥

अग्निः १ ज्योतिः २ अहः ३ शुक्लः ४ षण्मासाः ५ उत्तरायणम् ६ तत्र ७ प्रयाताः ८ ब्रह्मविदः ९ जनाः १० ब्रह्म ११ गच्छन्ति १२ ॥ २४ ॥ अ०-उ०सच्चिदानंदब्रह्मनिराकारके उपासकोंका अनादिमार्ग कहते हैं अर्थात् ब्रह्मपदकी ये मञ्जिल मञ्जिल हैं-अग्नि १ ज्योति २ दिन ३ शुक्लपक्ष४छह महीने उत्तरायण ५।६ इसमार्गमें ७ जाते हुए ८ ब्रह्मके जाननेवाले अर्थात् ब्रह्मोपासक ९ जन १० सि० क्रमक्रमसे अर्थात् उत्तरोत्तर मञ्जिल दरमञ्जिल ❀ ब्रह्मको ११ प्राप्तहोंगे १२ अर्थात् फिर उनको जन्म न होगा. ज्ञानद्वारा परमानंदस्वरूप आत्माको प्राप्त होंगे १२. टी० अग्निके देवताको, फिर ज्योतिके, फिर दिनके, फिर शुक्लपक्षके, फिर उत्तरायणके देवताको प्राप्त होंगे. तात्पर्य यह है, कि पहले अग्निके देवताके पास ब्रह्मोपासक पहुँचेंगे फिर वो देवता ज्जोतिके देवताके पास पहुँचादेगी. इसी प्रकार आगेभी कल्पना करलेना इसीप्रकार ब्रह्मलोकमें पहुंचेंगे. फिर ब्रह्माजीके साथ मुक्त होजावेंगे, अग्न्यादिशब्द, देवतोंका उपलक्षण है, तात्पर्य देवतोंसे है. यह मार्ग सनातन श्रौतोपासनाका है इसप्र

कारकी उपासना इनदिनोंमें बहुत कम करते हैं प्रत्युत इसके जान-नेवालेभी कम हैं हेतु इसमें यह है कि रूप, रंग, नृत्य, ये हैं जिस उपासनामें उस उपासनामें आसक्तहोरहे हैं. यथार्थ उपासना और भक्ति यह है, कि जिसभक्तिकी वेदशास्त्रोंमें बड़ाई है ॥ २४ ॥

मू०–धूमोरात्रिस्तथाकृष्णःषण्मासादक्षिणायनम् ॥
तत्रचांद्रमसंज्योतिर्योगीप्राप्यनिवर्तते ॥ २५ ॥

तथा १ धूमः २ रात्रिः ३ कृष्णः ४ पण्मासा ५ दक्षिणायनम् ६ तत्र ७ योगी ८ चांद्रमसम् ९ ज्योतिः १० प्राप्य ११ निवर्तते १२ ॥ ॥ २५ ॥ अ०–उ० कर्मनिष्ठावालोंका आवृत्तिमार्ग कहते हैं. अर्थात वो रस्ता, कि जिसरस्ते जाकर लौट आते हैं जैसे अनावृत्तिमार्गवाले ब्रह्मवित् अग्न्यादिदेवताओंको पहले प्राप्त होकर ब्रह्मको प्राप्त होते हैं फिर उनको जन्म नहीं प्राप्त होता–तैसे १ सि० कर्मनिष्ठ अर्थात आवृत्तिमार्गवाले धूमादिदेवताओंको पहले प्राप्त होकर फिर स्वर्गलोकको प्राप्त होकर लौट आते हैं. उनकी मञ्जिल यहहै ❀ धूम २ रात्रि ३ कृष्णपक्ष ४ छहमहीने दक्षिणायन ५।६ इनरस्तोंमें ७ सि० जाता हुआ ❀ कर्मयोगी ८ चांद्रमस ९ ज्योतिको १० अर्थात स्वर्गको १० प्राप्त होकर ११ लौट आता है १२ सि० मनुष्यलोकमें ❀ टी० पहले धूमकेपास जाताहै, फिर रात्रिके फिर कृष्णपक्षके, फिर दक्षिणायनके. इसप्रकार उत्तरोत्तर क्रमक्रमसे मञ्जिल दरमञ्जिल स्वर्गमें पहुँचता है, तात्पर्य जो निवृत्तिमार्गमें स्थित होकर अंतरंगउपासना करते हैं, अर्थात् सच्चिदानंद, अक्षर, निराकार, ऐसे आत्माका जो आराधन करतेहैं; वे क्रमक्रमसे ब्रह्मलोकमें पहुँचकर मुक्त होगें. कर्मनिष्ठ वहांका भोग भोगकर लौट आवेंगे. निषिद्धकर्मकरनेवाले नरकमें जाकर फिर मनुष्योंमें जन्म लेंगे और अतिनिषिद्धकर्मकरनेवाले चौरासीलक्षयोनियोंमें भ्रमेंगे ॥ २५ ॥

मू०–शुक्लकृष्णेगतीह्येतेजगतःशाश्वतेमते ॥
एकयायात्यनावृत्तिमन्ययावर्त्ततेपुनः ॥ २६ ॥

शुक्लकृष्णे १ एते २ गती ३ हि ४ जगतः ५ शाश्वते ६ मते ७ एकय ८ आवृत्तिम् ९ याति १० अन्यया ११ पुनः १२ आवर्तते ॥ १३ ॥ २६ ॥ अ०–शुक्ल और कृष्ण १ ये २ दोगति ३।४ जगतकी ५ अनादि ६ मानी हैं ७. सि० क्योंकि संसार अनादि है इसवास्ते इनदोनोंमार्गोंको भी महात्मा अनादि मानतेहैं. हि यह शब्द स्पष्ट करता है कि यह बात वेदशास्त्रोंमें प्रसिद्ध है. ❀ एककरके ८ अर्थात् शुक्लमार्गकरके ८ अनावृत्तिको ९ प्राप्त होता है १० अर्थात् फिर उसको जन्म नहीं होता. ब्रह्माजीके साथ मुक्त होजाता है, तब तक ब्रह्मलोकमें दिव्यभोग भोगता है और ब्रह्मज्ञान श्रवण करता है १० सि० और ❀ अन्यकरके ११ अर्थात् दूसरे कृष्णमार्गकरके ११फिर १२ जन्ममरणको प्राप्त होताहै १३तात्पर्य–कृष्णमार्गकरके जो स्वर्गादिमें जाता है, वो लौट आता है और जो शुक्लमार्गकरके जाता है, वो मुक्त होता है. टी० जगत् कहनेसे सब जगत् नहीं समझना. इसजगत्में ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ जो पुरुष हैं उनकी ये दोगति हैं. सबजगत्की नहीं. भेदवादी उपासकादिका कर्मनिष्ठपुरुषोंमें अंतर्भावहै. ज्ञान प्रकाशस्वरूप है इसवास्ते उसको शुक्ल कहा. और कर्म तम जडरूप है इसवास्ते उसका मर्ग कृष्ण कहा. स्पष्ट ज्ञान है कि ज्ञानमार्ग अज्ञानको दूर करसक्ता है. तात्पर्य यह है कि ज्ञानी प्रकाशवाले रस्ते जाते हैं और अज्ञानी (कर्मी)अंधकारके रस्ते जाते हैं. अब विचारना चाहिये कि इन दोनों मर्गोंमेंसे श्रेष्ठ ज्ञानमार्ग है, वा कर्ममार्ग है ॥ २६ ॥

मू०–नैतेसृतीपार्थजानन्योगीमुह्यतिकश्चन ॥
तस्मात्सर्वेषुकालेषुयोगयुक्तोभवार्जुन ॥ २७ ॥

पार्थ १ कश्चन २ योगी ३ एते ४ सृती ५ जानन् ६ न७मुह्यति८ अर्जुन ९ तस्मात् १० सर्वेषु ११ कालेषु १२ योगयुक्तः १३ भव १४ ॥२७॥अ०–उ० पूर्णब्रह्मसच्चिदानंदका ध्यानकरनेवाला योगी इन दोनों मार्गोंमें प्रीति नहीं करता तात्पर्य यह है कि ब्रह्मलोकादिमें जानेकी इच्छ नहीं करता. ब्रह्माजीसे पहलेही मुक्त हुआ चाहता है–हे अर्जुन!१ कोई २ योगी ३ इनदो ४ मार्गोंको ५ जानता हुआ ६ नहीं७ मोहको प्राप्त होताहै८ सि० बहिर्मुखविषयी सबपदार्थोंके भोगनेकी इच्छा करते हैं. जैसे इसलोकके भोग वैसेही परलोकके क्योंकि दोनों अनित्य दुःखदायी हैं. जो कोई ब्रह्मलोकमें जाकर मुक्त होंगे उनको क्या दुःखहै, इसका उत्तर यहहै कि जैसे व्यवहारमें राज्यकरनेमें द्रव्य ऐश्वर्य और ईश्वरताके प्राप्तिमें और उनके साधनोंमें भी तो सुख मानते हैं और कहतेहैं कि राज्य करनेमें क्या दुःख है, ऐसाही यह प्रश्नहै. विचार करो कि एकके मकानमें उसके आज्ञामें रहना दुःखहै वा सुख है. जिन्होंने सदा स्त्रीधनराजाकी सेवा टहल की है उनको सेवामेंही सुख प्रतीत है. इसीहेतुसे परमेश्वरकेभी दास बना चाहते हैं ❀ हेअर्जुन! ९ तिसकारणसे १० सबकालमें ११।१२ योगयुक्त १३होतू १४. टी० सच्चायोगी कोईभी ब्रह्मलोकादिकी इच्छा नहीं करता. क्योंकि इनमार्गोंको जानताहै और समझजाताहै, कि जगह जगह धक्के खाकर ब्रह्मलोकमें पहुंचता है.फिर वहां ब्रह्माजी बूझते हैं कि तू कौन है, ऐसी तूतडाक नीच आदमी सहतेहैं.महात्मा ऐसे जगे नहीं जाते. जहां कोई तडाक करे. इसीवास्ते हे अर्जुन ! उत्साह और धीरजकी कमर बांध. दिनरात्रि गंगाप्रवाहवत् शुद्धसच्चिदानंदका ध्यान कर. पूर्णसच्चिदनंदकोही प्राप्त होगा ॥ २७ ॥

मू०–वेदेषुयज्ञेषुतपस्सुचैवदानेषुयत्पुण्यफलंप्रदिष्टम् ॥
अत्येतितत्सर्वमिदंविदित्वायोगीपरंस्थानमुपैति·
चाद्यम् ॥ २८ ॥

यत् १ पुण्यफलम् २ वेदेषु ३ यज्ञेषु ४ तपस्सु ५ च ६ एव ७ दानेषु ८ प्रदिष्टम् ९ योगी १० इदम् ११ विदित्वा १२ तत् १३ सर्वम् १४ अत्येति १५ च १६ आद्यम् १७ परम् १८ स्थानम् १९ उपैति २० ॥ २८ ॥ अ०-उ०श्रद्धा बढानेके लिये योगकी स्तुति करते हैं. श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! सुन ध्याननिष्ठयोगीका माहत्म्य-जो १ पुण्यफल २ वेदोंमें ३ सि० और ❀ यज्ञोंमें ४ और तपमें ५।६।७ सि०आर ❀दानमें ८ सि० वेदशास्त्र और महात्माओंने ❀ कहा है. ९ अर्थात् सांग और सोपांगविधिवत् वेदोंके अध्ययन करनेमें जो पुण्यका फल होता है, कि जैसा शास्त्रने कहा है ९. ध्याननिष्ठयोगी १० यह ११ जानकर १२ अर्थात् जो पीछे कहा, वो सब फल मुझको हुआ यह समझकर अथवा सतप्रश्नोंका अर्थ भलेप्रकार जानकर और उनका भलेप्रकार अनुष्ठान करके १२ तिस १३ सबको १४ उलंघ जाता है. १५ अर्थात् यह फल अवान्तरवीचका फल, जिसको गौण कहते हैं, उसको उलंघकर उससे श्रेष्ठ फलको प्राप्त होता है १५. फिर १६ आदि १७ पर १८ स्थानको १९ प्राप्त होताहै अर्थात् कारणब्रह्मको प्राप्त होताहै २० ॥२८॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे महापुरुषयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अथ नवमोऽध्यायः ९.

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ इदंतुतेगुह्यतमंप्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥ ज्ञानंविज्ञानसहितंयज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥

इदम् १ तु २ ज्ञानम् ३ विज्ञानसहितम् ४ गुह्यतमम् ५ ते ६ प्रवक्ष्यामि ७ अनसूयवे ८ यत् ९ ज्ञात्वा १० अशुभात् ११ मोक्ष्यसे

१२॥ १ ॥ अ०--उ०इसअध्यायमें आचिन्त्य प्रभाव और अपनी अचिन्त्यशक्ति निरूपण करके, तत्पदार्थकी त्वंपदार्थकेसाथ लक्ष्यार्थमें एकता दिखाकर, उसके प्राप्तिका सुलभ उपाय निरूपण करेंगे और वो उपाय सबके वास्ते साधारण हैं--सि० जो इस अध्यायमें कहना है ❀ यह १ । २ ज्ञान ३ अनुभवके साथ ४ गुह्यतम ५ तेरे अर्थ६ कहूंगा ७. सि० कैसा है तू कि ❀ असूयारहित है अर्थात् किसीके गुणोंमें अवगुण नहीं आरोपण करता है ८ सि० किसीके गुणोंमें अवगुण आरोपण करना बड़ा अनर्थ है. दूसरेके गुणोंमें जो अवगुणाका आरोप करेगा वो ब्रह्मविद्याका अधिकारी नहीं. इसविशेषणसे अर्जुनको ब्रह्मविद्याका अधिकारी दिखाया. कैसा हैवो ज्ञान कि ❀ जिसको९ जानकर१० अशुभ(संसार)से ११ [तू]छूट जायगा १२ तु टी० तु यह शब्द ऐसी जगह विशेष आता है कि जहां पूर्वोक्तसे विलक्षण विशेष निरूपण होगा. धर्मतत्त्व गुह्य है और उपासनाका तत्त्व गुह्यतर है, और ज्ञानका तत्त्व गुह्यतम है ५ केवल तेरे कल्याणके अर्थ तुझसे कहूंगा. मेरा कुछ मतबल नहीं ६. ऐसे कौन है कि जो गुणोंमें अवगुण निकाले. सुनो, ज्ञाननिष्ठामें जो तर्क करते हैं श्रद्धा नहीं करते. जानबूझ ब्रह्मविद्याका उलट अर्थ करते हैं ८. तात्पर्य ब्रह्मविद्याका अधिकारी जानकर तुझसे कहूंगा. तू मेरा भक्त है, इसज्ञानके आश्रयसे तू मुक्त होगा. कोई कोई जो यह कहते हैं, कि विना अद्वैतब्रह्मज्ञानकेभी मोक्ष होजाता है सो नहीं. किन्तु इसीज्ञानसे, कि जो विज्ञानके सहित मैं कहूंगा. जिससे आत्मा अद्वैत जानाजावे, उससे मोक्ष होगा. द्वैतज्ञानमें तेरे सन्देह नहीं.साक्षात् द्वैतउपासनाका फल मैं प्रत्यक्ष हूं आत्माका यथार्थ ज्ञान तुझको नहीं, वो मैं विलक्षण कहूंगा. इसवास्ते 'तु' यह पद इस श्लोकमें है ॥ १ ॥

मू०-राजविद्याराजगुह्यंपवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमंधर्म्यंसुसुखंकर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

इदम् १ राजविद्या २ राजगुह्यम् ३ पवित्रम् ४ उत्तमम् ५ प्रत्यक्षावगमम् ६ धर्म्यम् ७ कर्तुम् ८ सुसुखम् ९ अव्ययम् १० ॥ २ ॥

अ०-उ०इस श्लोकमें ब्रह्मज्ञानके सब विशेषण हैं-यह १ सि० ब्रह्मज्ञान ❀ सब विद्याओंका राजा है अर्थात् अठारह विद्या हैं, प्रसिद्ध यह सबका राजा है २ सि० और ❀ गुप्तपदार्थोंकाभी राजा है ३ सि० क्योंकि कोई विरले महात्मा जानते हैं और यह ❀ पवित्र ४ सि० है क्योंकि निरवयवपदार्थ है. चतुर्थाध्यायमें श्रीभगवान्‌ने कहा है, कि ज्ञानके सदृश और कोई पदार्थ पवित्र नहीं और सबसे ❀ श्रेष्ठ ५ सि० है; क्योंकि अनेकजन्मोंके पापोंको, अनादिकालके अविद्याका, एकक्षणमें नाश कर देताहै. ❀ दृष्टफलवाला है ६ सि० क्योंकि आत्माका जीते हुएही अनुभव करदेता है अर्थात् ज्ञानीको परात्परपरमानंदनित्यमुक्तकी प्राप्ति जीते ही होती है; क्योंकि ज्ञानियोंको जीवन्मुक्त कहते हैं और ❀ सब धर्मोंका फल यही है, सबधर्मकर्मउपासना इसीके वास्ते हैं७सि० और ❀ करनेको अर्थात् अनुष्ठान करनेके लिये ८ सुखवाला है९. तात्पर्य सुखपूर्वक इसका अनुष्ठान होसक्ता है; क्योंकि अपना आत्मा सुखरूप है, सुखको सब जानते हैं, सुखपदार्थके जाननेमें कुछ प्रयत्न नहीं करने पड़ता. केवल इतना और समझना चाहिये कि मेरे हृदयमें जो यह सुख प्रतीत होता है, इसका अखंडअद्वैतपुंज मैंहूं. वसिष्ठजीने श्रीरामचंद्रजीसे कहाहै, कि हेराम!फूलके मलनेमें विलंब और यत्न होता है, ज्ञानकी प्राप्ति उससेभी जल्दी होती है; क्योंकि स्वयंशुद्धआत्मा सदा प्राप्त है. केवल अज्ञान दूर होना चाहिये और अज्ञान दूर होनेमें पलभी काल नहीं लगता. मूर्ख वक्ता

करते हैं, कि अजी ! ज्ञान बडा कठिन है. देखो श्रीभगवान् उनके मुखपर क्या धूल डालते हैं, जड पदार्थोंके जाननेमें ज्ञानकी इच्छा होती है. ज्ञानस्वरूपके जाननेमें क्या प्रयत्न चाहिये, जैसे कोई कहे कि मैं अपनी आँख नहीं देखता हूँ उस मूर्खसे कहना चाहिये, कि जिससे तू सबको देखता है वो तेरी आँख और जैसे कोई बोले और कहे कि मेरे मुखमें जीभ है वा नहीं, ऐसेही अज्ञानी कहते हैं कि, ब्रह्मज्ञान हमको है वा नहीं. सो निश्चयसे उसको ज्ञान नहीं और न होगा; क्योंकि ज्ञानस्वरूप आत्मासे पृथक् पदार्थको ब्रह्म जाना चाहते हैं, वो कैसे प्राप्त होगा ? सि०और इसका फल ❀ अविनाशी १० सि०है, क्योंकि आत्मा नित्य है, आत्मासे पृथक् सब पदार्थ अनित्य हैं. प्रत्युत परमार्थ दृष्टि करके अभावरूप हैं ॥ २ ॥

मू०–अश्रद्दधानाःपुरुषाधर्मस्यास्यपरंतप ॥
अप्राप्यमांनिवर्तन्तेमृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

परंतप १ अस्य २ धर्मस्य ३ अश्रद्दधानाः ४ पुरुषाः ५ माम् ६ अप्राप्य ७ मृत्युसंसारवर्त्मनि ८ निवर्तन्ते ९ ॥ ३ ॥ अ०–उ० जब कि यह ब्रह्मज्ञान सब गुणसंपन्न है, तो बहुत लोग कर्मकांडी द्वैतवादी इसका क्यों नहीं आदर करते ? यह शंका करके कहते हैं.–हे अर्जुन ! १ इस २ धर्मके ३ अश्रद्धावाले ४ पुरुष अर्थात् जो ब्रह्मज्ञानमें श्रद्धा नहीं करते वे ५ मुझको ६ न प्राप्त होकर ७ जन्ममरणरूप संसारमार्गमें ८ भ्रमा करते हैं ९. तात्पर्य–अन्तःकरण मैला होनेसे और कर्म समझसे, ब्रह्मविद्याका कर्मकांडी, द्वैतवादी, उपासकादि, श्रवण नहीं करते. इस हेतुसे वे इस परम धर्मका अनुष्ठान नहीं करते और जो श्रणवभी करते हैं और पढ़तेभी हैं, तो उसका अर्थ उलटा समझते हैं तात्पर्य–शास्त्रका अभिप्राय

नहीं समझते, रोचक अर्थवाद वाक्योंमें विश्वास करते हैं. सिद्धान्त-में श्रद्धा नहीं करते. इस हेतुसे उलटाही फल उनको मिलता है, अर्थात् वेदोक्तअनुष्ठान करनेसे परमफल (मुक्त) होना चाहिये सो वे आप अपने मुखसे यह कहते हैं, कि हम वृन्दावनके गीदड शृगाल होजावें, परन्तु मुक्ति हम नहीं चाहते. इस वाक्यको विचारो कि जिनकी मुक्तिफलमें श्रद्धा नहीं, तो ज्ञाननिष्ठा तो मुक्तिका साधन है, उसमें उनकी श्रद्धा कब होसक्ती है? चतुर्थाध्यायमें कह चुके हैं, कि ज्ञानको श्रद्धावान् प्राप्त होता है. यह जो लोग बहिर्मुख हैं और रूपरसादिहीमें सुख समझते हैं, अन्तःसुख नहीं जानते, यह बहिर्मुख होनाही ज्ञाननिष्ठामें अश्रद्धाका करण है और यह न समझना चाहिये कि भक्ति उपासनाके आश्रय संबंध आडमिसवहानेसे जो रूपका देखना और शब्दका सुनना है, यह विषय विषवत् नहीं, इससे कुछ क्षती नहीं होती. किन्तु विषय सब बराबर हैं. केवल इतना भेद है, कि जैसे लोहेकी बेडी और सोनेकी बेडी. तात्पर्य लौकिक प्रसिद्धविषयोंसे वे अच्छा हैं यह बात कुछ बुरा माननेकी नहीं विचार देखो कि रामलीलादिके देखनेवाले प्रायशः विषयी बहिर्मुख पामर होते हैं, वा प्रेमी वैराग्यवान् विवेकी, या साधनसंपन्न ऐसे हैं और शतपचास लोग जो नये श्रद्धापूर्वक ऐसी भक्तिमें लगेंगे, ऐसे भक्तिको पुण्यजनक, मोक्षप्रदा, परात्पर ऐसी समझकरभी जो लगेंगे, वा लगते हैं, तो वे परिणाममें बहिर्मुखही रहते हैं. वा अन्तर्मुख शमदमादि साधनसंपन्न होजाते हैं. तात्पर्य यह है कि जो ऐसाऐसा रस चाखते हैं, उनको ज्ञाननिष्ठा आपही फीकी लगेगी. यह व्यवस्था सुनी हुई है, अनुमानद्वारा मैंने नहीं लिखी, किन्तु अपने आखोंसे देखी हुई और बरती हुई लिखी है ऐसे आदमियोंके सामने ज्ञानकानामभी लेना दुःखका मूल है ॥३॥

मू०–मयाततमिदंसर्वंजगदव्यक्तमूर्तिना ॥
मत्स्थानिसर्वभूतानिनचाहंतेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥

मया १ अव्यक्तमूर्त्तिना २ इदम् ३ सर्वम् ४ जगत् ५ ततम् ६ सर्वभूतानि ७ मत्स्थानि ८ अहम् ९ तेषु १० न ११ च १२ अवस्थितः १३ ॥४॥ अ०–उ० ज्ञाननिष्ठाके अनधिकारियोंको फलके सहित कहकर और अर्जुनको ज्ञाननिष्ठामें श्रद्धावान् असूयारहित समझकर अर्जुनको सन्मुखकरके ब्रह्मज्ञान कहते हैं–मुझ १ अव्यक्तमूर्तिकरके अर्थात् सोपाधिक सच्चिदानन्दकरके २ यह ३ सब ४ जगत् ५ व्याप्त होरहाहै ६. तात्पर्य इन्द्रियमनका विषय जो जो पदार्थ है, सबमें निराकार, सत्, चित्, आनन्द, पूर्ण होरहा है, ऐसा कोई पदार्थ नहीं कि जिसमें सत्ता, चैतन्यता और आनन्दता न हो सबभूत (सूक्ष्मस्थूल) ७ मुझसोपाधिक सच्चिदानंदमें स्थित हैं अर्थात् कल्पित हैं ८ सि० जैसे शुक्तिमें रजत ❋ मैं ९ तिनमें १० नहीं तैसा ही स्थित हूं ११ १२ अर्थात् मैं असंग हूं मेरा किसीके साथ संबंध नहीं जैसे यह कहतेहैं कि घटमें आकाशहै सो नहीं. वास्तवमें घटही आकाशमें है. जो भीतरभी प्रतीत होता है तो भी निर्विकार असंगहै १२ ॥४॥

मू०–नचमत्स्थानिभूतानिपश्यमेयोगमैश्वरम् ॥
भूतभृन्नचभूतस्थोममात्माभूतभावनः ॥ ५ ॥

भूतानि १ न २ च ३ मत्स्थानि ४ न ५ च ६ भूतस्थः ७ मे ८ योगम् ९ ऐश्वर्यम् १० पश्य ११ मम १२ आत्मा १३ भूतभृत् १४ भूतभावनः १५ ॥ ५ ॥ अ०–उ० परमानंदस्वरूपनित्यमुक्तनिराकारपरमात्मामें यह त्रिगुणात्मकजगत् स्थूलसूक्ष्म और इन दोनोंका कारण अज्ञानकल्पित है यहभी जिज्ञासुके समझानेके लिये अध्यारोपमें कहा जाता है. वास्तवमें तीनकालमें यह जगत् नहीं. अखंड अद्वैत नित्य मुक्त ऐसा है. कल्पितशब्दभी कल्पित है. जो यह कहो

कि इसकल्पनारूपक्रियाका कर्त्ता, कर्म और अधिकरण कौनहै सुनो, यहसब अविद्याहै अर्थात् कर्ता कर्म क्रिया अधिकरण यह सब अविद्या है तात्पर्य कल्पना करनेवालीभी अविद्या, कल्पनाभी अविद्या, जो पदार्थ कल्पना किया जाता है, सोभी अविद्या, जिसमेंकल्पना होती है सो भी अविद्या, जिसकरके, जिसके लिये, जिससे होती है कल्पना वो सब अविद्या है, अविद्याका लक्षण क्या है, सुनो "अविद्यायाअविद्यात्वमिदमेवहिलक्षणम्" अविद्याका अविद्याही रूपहै और जो कोई यह प्रश्नकरे, कि चैतन्यरूप आत्मामें अज्ञान होना असंभव है उसीसे फिर बूझना जब तुम आपही कहतेहो, हमतो प्रथमही कह चुके हैं कि तीनकालमें अज्ञान है नहीं और जो यह कहो कि अज्ञान हमको और बहुत लोगोंको प्रतीत होता है तो विचारना चाहिये कि आत्मा चैतन्यहै वा जडहै. प्रत्यक्षमें प्रमाण और युक्तियाका क्या आकांक्षा है और तुम कैसे कहते हो कि ज्ञानरूपमें अज्ञान नहीं बनसक्ता यह बातें अलौकिक हैं. सि० सोई परमेश्वर इसमंत्रमें कहतेहैं कि वास्तवमें ❀ भूत १न२।३मुझमें स्थितहैं४ आर न५।६सि० मैं ❀ भूतोंमें स्थितहूं७सि० हे अर्जुन! ❀मेरे८ सि० इस ❀ योग और ईश्वरताको ९।१० दे ११ अर्थात् विचारकर ११ सि०कि ❀ मेरा१२ आत्मा१३अर्थात् मैं ही१३ सि०असंगनित्य मुक्तनिर्विकार हूं और मैं ही ❀ भूतोंको धारण करताहूं १४ भूतोंको पालन करता हूं १५ टी० भूतोंको जो धारण करे उसको भूतभृत् कहते हैं, जो भूतोंका पालन करे उसको भूतभावन कहते हैं और योगशब्द जो इसमंत्रमें है, इसका अर्थ अचिन्त्यशक्ति है जगत्के रचना स्थिति लयके विषय बुद्धिको बहुतश्रम देना न चाहिये केवल अपने कल्याणपर दृष्टि रखना योग्य है जीवको स्पष्टप्रतीत यह होता है कि मैं अज्ञानकरके जगत्में फँस रहा हूं अपनी व्यवस्था और अपने घरकी व्यवस्था मुझको मालूम नहीं फिर परमे-

श्वरकी व्यवस्था और उनके लीलाकी व्यवस्था मैं कैसे जानसकूंगा, तात्पर्य अज्ञानके निवृत्तिका उपाय करना चाहिये जो बूझो कि क्या उपाय है स्पष्ट बात है कि अज्ञान ज्ञानसे दूर होता है जो बूझे ज्ञान किसको कहते हैं, उत्तर इसका बहुत सीधा और सहज है परंतु अधिकारीके समझमें आता है और इस गीताशास्त्रमें जगह जगह ज्ञानका उपदेशहै प्रथम ज्ञानमें श्रद्धा करना योग्यहै और जितेन्द्रियहोकर तत्पर होना चाहिये सद्गुरुकी कृपासे ज्ञान प्राप्त होजायगा जो श्रीभगवान्‌ने ऊपर निरूपण किया सब समझमें आजायगा केवल इसबातमें विद्या और चर्चाका काम नहीं तीनों साधन जो पीछे कहे वे प्रथम हैं पीछे विद्या और चर्चाभी चाहिये ॥ ५ ॥

मू०–यथाकाशस्थितोनित्यंवायुः सर्वत्रगोमहान् ॥
तथासर्वाणिभूतानिमत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

यथा १ महान् २ सर्वत्रगः ३ वायुः ४ नित्यम् ५ आकाशस्थित ६ तथा ७ सर्वाणि ८ भूतानि ९ मत्स्थानि १० इति ११ उपधारय १२ ॥ ६ ॥ अ०–उ० दो श्लोकोंमें जो अर्थ पीछे निरूपण किया, उसको दृष्टांत देकर स्पष्ट करते हैं–जैसे १ अप्रमाण २ सबजगत्‌में ३ वायु ४ सदा ५ आकाशमें स्थित है ६ तैसेही ७ सब ८ भूत ९ मुझमें स्थित हैं १० यह ११ जान तू १२ ॥ ६ ॥

मू०–सर्वभूतानिकौन्तेयप्रकृतिंयांतिमामिकाम् ॥
कल्पक्षयेपुनस्तानिकल्पादौविसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

कौंतेय १ कल्पक्षये २ सर्वभूतानि ३ मामिकाम् ४ प्रकृतिम् ५ यांति ६ कल्पादौ ७ पुनः ८ तानि ९ अहम् १० विसृजामि ११ ॥ ७ ॥ अ०–उ० जगत् जैसे स्थितहै सो व्यवस्था कहकर सृष्टिकी और लयकीभी व्यवस्था कहतेहैं–अर्थात् श्रीभगवान् यहकहते हैं, कि जैसे जगत्‌के स्थितिकालमें मैं असंग हूं ऐसेही सृष्टि और

प्रलयकालमें भी मैं असंग हूं. हे अर्जुन ! १ कल्पके क्षयमें २ अर्थात् प्रलयकालमें २. सबभूत ३ सि० सिवाय ब्रह्मवित्के ❋ मेरे ४ प्रकृतिको ५ अर्थात् अपरा जो त्रिगुणात्मिका माया उसको ५ प्राप्त होताहै ६ सि० सूक्ष्मरूप होकर मायामें लय होजाते हैं और ❋ कल्पके आदिमें ७ अर्थात् जगत्के सृष्टिसमय ७ फिर ८ तिनको ९ मैं १० रच देताहूं अर्थात् प्रकट करदेताहूं ११. इत्यभिप्रायः ॥ तात्पर्य माया और उसका कार्य और परा प्रकृति जीवरूप सब परतंत्र हैं, स्वतंत्र कोई नहीं. सब ईश्वराधीनहैं. इसवास्ते सदा ईश्वरका आराधन करना योग्य है, जो स्वतंत्र और मुक्त होना चाहतेहो तो ॥७॥

मू०–प्रकृतिंस्वामवष्टभ्यविसृजामिपुनःपुनः ॥
भूतग्राममिमंकृत्स्नमवशंप्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

स्वाम् १ प्रकृतिम् २ अवष्टभ्य ३ इमम् ४ कृत्स्नम् ५ भूतग्रामम् ६ पुनः ७ पुनः ८ विसृजामि ९ प्रकृतेः १० वशात् ११ अवशम् १२॥ ८॥ अ०–उ० आप निराकार निरवयव जगत्को कैसे रचते हो, यह शंका करके कहते हैं–अपने १ प्रकृतिको २ वशकरके ३ अर्थात् मायाके साथ सम्बन्धकरके ३. इस ४ समस्त ५ भूतोंके समूहको ६ वारंवार ७।८ मैं रचता हूं ९. सि० कैसा है यह भूतग्राम अर्थात् जगत् ❋ प्रकृतिके १० वशसे ११ परतंत्र है १२. तात्पर्य यह जगत् अपने कर्मोंके वशमें है, स्वतंत्र नहीं इत्यभिप्रायः॥ टी० त्रिगुणात्मक जो अज्ञान है वो शुद्धसत्वप्रधान हुआ माया कहा जाता है. उस मायाके सम्बन्धसे जगत् रचता हूं. और उसके मैं वश नहीं, वो मेरे आधीन है. और वोही अज्ञान मलिनसत्वप्रधान हुआ अविद्या कहा जाता है. यह समस्त जगत् अविद्याके अधीन होरहा है, अर्थात् अवश याने परतंत्र होरहा है. अपने कर्मोंके अनुसार वारंवार उनको मैं रचता हूं. वारंवार

कहनेसे यह तात्पर्य है कि यह जगत् अनादि है. असंख्यात बार उत्पन्न हुआ और नाश हुआ. यह सब जगत् अविद्याके वशमें है और अविद्या ईश्वरके वशमें है ॥ ८ ॥

मू०-नचमांतानिकर्माणिनिबध्नन्तिधनंजय ॥
उदासीनवदासीनमसक्तंतेषुकर्मसु ॥ ९ ॥

धनंजय १ तानि २ कर्माणि ३ माम् ४ नच ५ निबध्नंति ६ उदासीनवत् ७ आसीनम् ८ तेषु ९ कर्मसु १० असक्तम् ११ ॥ ९ ॥ अ०-उ० जब कि रचना, पालना और संहार करना इन क्रियोंको आप करते हो, तो जीववत् आपको वे कर्म बंधन कैसे नहीं करते यह शंका करके कहते हैं-हे अर्जुन! १ सि० जगत्की रचना इत्यादि जो कर्म हैं ❀ वे २ कर्म ३ मुझको ४ नहीं ५ बन्धन करते हैं ६ सि० क्योंकि मैं ❀ उदासीनवत् ७ स्थित हूं ८ तिन कर्मोंमें ९।१० असक्त नहीं ११. टी० असक्त और आसीन, ये दोनों मां शब्दके विशेषण हैं. उदासीनभी होना और कर्मभी करना. इसका तात्पर्य कर्मके फलविषय उदासीन रहना यह है, कर्मफलके विषय उदासीन होकर जो जीव कर्म करे तो वो भी कर्मसे बद्ध नहीं होता. फिर मैं कैसे बद्ध हो सक्ता हूं ॥ ९ ॥

मू०-मयाध्यक्षेणप्रकृतिःसूयतेसचराचरम् ॥
हेतुनानेनकौंतेयजगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

प्रकृतिः १ मया २ अध्यक्षेण ३ सचराचरम् ४ सूयते ५ कौंतेय ६ अनेन ७ हेतुना ८ जगत ९ विपरिवर्तते १० ॥ १० ॥ अ०-उ० जगतके रचनादि क्रियामें विषमदोष प्रतीत होता है, यह शंका करके कहते हैं-प्रकृति १ मुझ २ अध्यक्षरूपकरके ३ अर्थात् मुझ निमित्तमात्रकारणकरके ३ सचराचर ४ सि० जगत्को ❀ उत्पन्न करती है ५ हे अर्जुन! ६ इस ७ हेतु करके ८ जगत ९ वारंवार उत्पन्न

होता है. १० टी० जगत्के रचनादिक्रियामें प्रकृति उपादानकारण है और मैं निमित्तकारण हूं. वो प्रकृति मेरी अचिन्त्यशक्ति है, मुझसे भिन्ननहीं. इसवास्ते मैं अभिन्ननिमित्तोपादानकारण हूं यह बात दृष्टांतके सहित भले प्रकार आनंदामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें लिखी है, निमित्तकारण होना और उदासीन रहना, यह दोनों बनसक्ते हैं, जैसे प्रकाश व्यवहारमें निमित्तकारण है. विनाप्रकाश कुछ व्यवहारभी नहीं होसक्ता और प्रकाशमें जो बुराभला कर्मकरे, वो प्रकाशको नहीं लगेगा, क्रिया करनेवालेको लगेगा. इसीप्रकार यह विषम दोष मायामें है, ईश्वरमें नहीं. यह बात भले प्रकार विचारनेके योग्य है. जो ईश्वर जगत्का कर्ता कहाजावे तो ईश्वरमें विषमदोष आता है और जो मायाको कर्ता कहाजावे तो वो जड है. और जो जगत्को अनीश्वर कहाजावे तो वेदशास्त्रादि सब व्यर्थ हुए जाते हैं. तात्पर्य यह है, कि ईश्वर जगत्के अभिन्न निमित्तोपादानकारण है. इसमें कोई दोष नहीं. विना चैतन्यका आश्रय याने सम्बंधलिये स्वतंत्र माया जगत्को नहीं रचसक्ती और प्रकाशवत् ईश्वरको निमित्तमात्र होनेमें कुछ दोष नहीं ॥ १० ॥

मू०-अवजानन्तिमांमूढामानुषींतनुमाश्रितम् ॥
परंभावमजानन्तोममभूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥

मूढाः १ माम् २ अवजानंति ३ मानुषीम् ४ तनुम् ५ आश्रितम् ६ मम ७ परम् ८ भावम् ९ अजानंतः १० भूतमहेश्वरम् ११ ॥ ११ ॥

अ०-उ० जसा स्वरूप मैंने पीछे कहा, वैसा बहुत जीव मुझको नहीं जानते हैं. मनुष्योंके बराबर मुझको समझकर मेरा अनादर करतेहैं. मेरे वाक्यमें जो श्रद्धा नहीं करते यही मेरी अवज्ञा है. मुझ निराकारको हठकरके अज्ञानसे मोहकेवश होकर साकार कहते हैं. विवेकरहित अर्थात् नित्य क्या है और अनित्य क्या है, इसप्रकार

आत्माअनात्माका जिनको विचार नहीं ऐसे मूढ १ मुझको अनादृत करते हैं २।३अर्थात् मेरी अवज्ञा याने तिरस्कार करते हैं२।३ सि० कौनसे मेरे स्वरूपका अनादर करते हैं कि जो ❀ मनुष्यसम्बन्धी ४ शरीरका ५सि० मैंने ❀ आश्रय किया है ६ अर्थात् दुष्टोंके नाश करनेको और साधुजनोंकी याने अपने भक्तोंकी रक्षा करनेको मनुष्यकेसा आकारवाला जो मैं प्रतीत होता हूं, उस स्वरूपको मूर्ख मनुष्य राजपुत्र इत्यादिही समझते हैं. यही मेरी अवज्ञाहै. (१ से ६ तक) मेरे ७ परम ८सि०ऐसे ❀ प्रभावको ९ नहीं जानते १०सि० अर्थात् मुझको ऐसा नहीं समझते कि यह ❀ भूतोंके महेश्वर हैं ११ तात्पर्य अध्यारोपापवादन्यायकरके निष्प्रपंचवस्तु जो सच्चिदानंद उसमें त्रिगुणात्मकजगत्प्रपंच निरूपण किया है, महात्मा और वेदोंने जिज्ञासूके समझानेवास्ते जैसे तत्पदका वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ और त्वंपदका वाच्यार्थ लक्ष्यार्थ अध्यारोपमें निरूपण किया है और ईश्वरको जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादानकारण वर्णन कियाहै. फिर लक्ष्यार्थमें दोनोंपदोंकी एकता जैसे कही तिनसम्बन्ध और लक्षणादिकरके इस प्रकार जो जीव ईश्वरको नहीं जानते अथवा जानबूझ अनादर करते हैं याने शास्त्रीयज्ञानहोभी जाता है शास्त्रके पढने सुननेसे तो भी उसमें श्रद्धा नहीं करते. अध्यारोप और पूर्वपक्षके श्रुतिस्मृतियोंका प्रमाण देदेकर वृथा वाद करते हैं. यही ईश्वरकी अवज्ञा याने अनादर है और अपने मनुष्यशरीरमें जो सच्चिदानंद आत्मा है, उसके परमप्रभावको नहीं जानते. वर्णाश्रमवाला, औरोंका दास, सिद्धान्तमेंभी सदा समझते हैं. यह सच्चिदानंदकी अवज्ञा याने तिरस्कार है.

इतिहाससे इसबातको स्पष्ट करते हैं. इतिहास—एक साहूकार बालकलड़केको घरमें छोड़ परदेशमें चला गया लड़का तरुण होकर अपने पिताके तलाश करनेके वास्ते निकला और ढूंढता ढूंढता पिताके पास पहुँच गया. न पिताने पहँचाना न

लड़केने. और उस लड़केको टहलकरनेके लिये नौकर रखलिया लड़केने कहाभी उस देवदत्तसाहूकारका नाम लेकर कि मैं अमुक देवदत्तसाहूकारका लड़का हूं. अपने पिताका तालाश करनको आया हूं, उनका पता नहीं लगता. कोई कहीं बताता है और कोई कहीं. और मैं महादीन होगया. यह साहूकारने सुनाभी और कुछ विश्वासभी हुआ, परंतु मूर्खसहवासियोंके उपदेशसे उसमें विश्वास न किया, कि यही मेरा लड़का है सदासे उसी लड़केके तालाशमें था दिनरात्रि चाहताथा! कि किसी प्रकार मेरा लड़का मुझको मिले. एक आदमी सच्चा सद्गुणाकर विद्यावान् उसलड़केको पहिचानताथा. उसी जगहका रहनेवालाथा,जहां साहूकारका पहला घरथा. दैवयोगसे वो आदमी साहूकारके पास जापहुँचा. लड़केको देखा पहिचाना परंतु साहूकारकी प्रीति उसलड़केमें पुत्रवत् न देखी. इस हेतुसे और अन्यकारणसेभी साहूकारसे यह न कहा कि इसलडकेमें तेरी प्रीति पुत्रवत् क्यों नहीं और न कभी साहूकारने बूझाथा. इसवास्ते कुछभी न कहा. एकदिन एकांतमें साहूकारने उसआदमीसे अपने लडकेके स्नेहकी व्यवस्था कहकर लडकेका पता बूझा और लडके-के कहनेके अनुसार कुछ विश्वास हुआथा और मूर्ख सहवासियोंके कहनेसे लड़केमें विश्वास नहीं कियाथा, यह सब व्यवस्था कही. उसआदमीने कहा कि तेरा लड़का बेसंदेह यही है. साहूकार यह सुनकर पुत्रानंदमें मग्न होगया. लड़केको छातीसे लगाकर बहुत सन्मान किया. और उनसहवासी उपदेशकरनेवाले मंत्रियोंको मूर्ख और लालची समझा. उस आदमीके साथ बहुत स्नेह किया. अपना सुहृद् हितकारी समझा। इसदृष्टांतके एक एक पदमें दार्ष्टांत है. भलेप्रकार विचारो जैसे साहूकारने मूर्खमंत्रियोंके उपदेशसे लड़केका तिरस्कार किया इसीप्रकार अज्ञानी जीवोंनें तिरस्कार किया है. सच्चिदानंदआत्माका मूर्खोंके उपदेशसे जो कोई कहे कि साहूकारके

सहवासी मंत्री उपदेष्टा तो मूर्ख अनजानथे उनका क्या दोषथा, उत्तर उसका यह है, कि मूर्खोंको मंत्री और उपदेष्टा बनाना किसने कहा है; दार्ष्टांतमें साहूकारके उपदेश करनेवालोंके जगह लोभी, लालची, कमसमझ, विषयी, बहिर्मुख, प्रवृत्तिमार्गवाले, ऐसे उपदेशकरनेवालोंको समझना चाहिये-जैसे साहूकारके सहवासीमंत्रियोंने जानबूझकर अपने खानेपीनेका हर्ज समझकर, लड़केमें विश्वास न होने दिया. इसी प्रकार प्रवृत्तिमार्गवाले उपदेष्टा, आचार्य, गुरु, ये अपने विषयानंदमें ब्रह्मज्ञानको विक्षेपका हेतु समझकर, आत्मामें विश्वास नहीं होने देते. नानाप्रकाकी युक्ति और तर्क सिखाते हैं. तात्पर्य ब्रह्मज्ञानमें मोहनभोग और तस्मै आदिपदार्थ खानेको और फुलबंगला हिंडोरा नृत्यादि देखनेको, रागादि सुननेका, स्त्री छोकडे राजादि धनी विषयी जन चेलीचेलाकरनेको नहीं मिलते हैं, इसहेतुसे ब्रह्मज्ञानको भूसेका कूटना बताते हैं. ऐसे पुरुषोंके लक्षण और कर्मफलके सहित अगलेमंत्रमें श्रीभगवान् निरूपण करेंगे ॥ ११ ॥

मू०–मोघाशामोघकर्माणोमोघज्ञानाविचेतसः ॥
राक्षसीमासुरींचैवप्रकृतिंमोहिनींश्रिताः ॥ १२ ॥

मोघाशाः १ मोघकर्माणः२मोघज्ञानाः ३ विचेतसः४ राक्षसीम्५ आसुरीम् ६ च ७ एव ८ प्रकृतिम् ९ मोहिनीम् १० श्रिताः ११ ॥ १२ ॥ अ–उ०जबतक शुद्धसच्चिदानंदस्वरूप पूर्णब्रह्म आत्माको नहीं जानता है, तबतक उनका कर्म, ज्ञान और आशा, ये सब निष्फल हैं क्योंकि जो पदार्थ अनित्य है, अथवा दीवारमें प्रेतवत् प्रतीत होता है, ऐसे पदार्थोंकी आशारखना और उनके लिये प्रयत्न करना, ये सब निष्फल हैं अनित्यफलकी जो प्राप्ति भी होजावे, सोभी निष्फल है प्रत्युत पहिलेसे सिवाय दुःखकी हेतु है प्राप्त होकर जो पदार्थ जाता रहे, उससे उसपदार्थका न मिलना अच्छा है.

पिछले मंत्रमें जो मूढ शब्दहै, उसीके इसमंत्रमें विशेषणहैं, सि०कैसे हैं वे मूढ कि ❀निष्फलहैं आशा जिनकी १ अर्थात् सच्चिदानंदरूप आत्मासे अन्य ईश्वरके मिलनेकी जो आशा रखते हैं यह आशा उनकी निष्फल है १ सि०क्योंकि आत्मासे भिन्न परमार्थमें कोई ईश्वर नहीं और ❀निष्फल हैं कर्म जिनके २ अर्थात् आत्मासे पृथक् ईश्वर वा स्वर्गवैकुंठादिके प्राप्तिके लिये जो प्रयत्न करते हैं वो भी निष्फल हैं, सि०इसमेंभी वोही पहला हेतुहै, और ❀ निष्फल हैं ज्ञान जिनके ३ अर्थात् आत्मासे भिन्न जो जो पदार्थ उन्होंने सच्चे समझरक्खे हैं, सब झूठे हैं क्योंकि आत्मा अद्वैत एकहै इस विशेषणसे यहभी समझना चाहिये कि वे बालकवत् मूढ अज्ञानी नहीं, अनात्मशास्त्रका उनको बहुत ज्ञान है. आत्माको तो यथार्थ नहीं जानते अनात्मपदार्थ बहुत जानतेहैं. आत्माके यथार्थ न जाननेमें और मोघाशादि होनेमें, ये दो हेतु हैं १।२।३. सि० प्रथम यह कि वे ❀ विक्षिप्तचित्त हैं.४ अर्थात् बहिर्मुखविषयी मूर्खवत् रूपरसादिविषयोंकी इच्छा रखते हैं. अंतःसुखमें वृत्ति नहीं लगाते यह हेतु हेतुगर्भित विशेषण है. ४ सि० अर्थात् इसहेतुमें दूसरा हेतु यह है कि❀ राक्षसी५और आसुरी माया६।७।८।९ सि०इनका और ❀ मोहमयीका १० आश्रय कर रक्खा है. ११ अर्थात् जस असुर और राक्षसदेहाभिमानी होते हैं, ऐसेही अज्ञानी अनात्मदर्शी होते हैं क्योंकि जिसको अन्तरात्मानंद प्राप्त न होगा वो बेसंदेह विषयानंदकी कामना रक्खेगा. कामनासे क्रोधादि असुर राक्षसोंकेसा स्वभाव अवश्य होगा. ११तात्पर्य इन दोनों मंत्रोंका ज्ञाननिष्ठामें प्रयत्नकरनेके लिये है अनात्मदर्शियोंकी निष्ठा हटानेमें और उनकी निन्दाकरनेमें तात्पर्य नहीं. क्योंकि प्रवृत्तिमार्गभी अधिकारीप्रति मोक्षमार्ग है॥१२॥

मू०-महात्मानस्तुमांपार्थदैवींप्रकृतिमाश्रिताः ॥
भजन्त्यनन्यमनसोज्ञात्वाभूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥

पार्थ १ महात्मानः २ तु ३ अनन्यमनसः ४ दैवीम् ५ प्रकृतिम् ६ आश्रिताः ७ भूतादिम् ८ अव्ययम् ९ माम् १० ज्ञात्वा ११ भजंति १२॥१३॥ अ०—उ० ऐसे पुरुष परमेश्वरका आराधन करते हैं. हे अर्जुन! १ महात्मापुरुष २।३ अनन्यमन हुए ४ दैवी ५ प्रकृतिका ६ आश्रय किये हुए ७ आकाशादिभूतोंका कारण ८ अविनाशी ९ मुझको १० जानकर ११ सेवते हैं. १२ टी० संसारको दुःखरूप और मुक्तिको मुख्यपुरुषार्थ समझकर, संसारके विषयासे उपराम हुए मोक्षमें जो प्रयत्न करते हैं वे महात्मा हैं २ सिवाय श्रीनारायणके और किसी जगह पुत्रमित्रस्तुतिमानादिमें नहीं है मन जिनका ३ सोलहवें अध्यायमें छव्वीस लक्षण दैवीसंपतके कहेंगे. उन साधनोंकरके संपन्न अर्थात् धीरजवाले, इंद्रियोंको विषयोंसे विमुखकरनेवाले, ऐसे लक्षण हैं जिनमें वे परमेश्वरकोही सेवते हैं. स्त्री छोकरोंको और बहिर्मुख धनी कामी ऐसे जनोंको नहीं सेवते ॥ १३ ॥

मू०—सततंकीर्त्तयन्तोमांयतंतश्चदृढव्रताः॥
नमस्यंतश्चमांभक्त्यानित्ययुक्ताउपासते ॥ १४ ॥

सततम् १ कीर्तयंतः २ माम् ३ उपासते ४ नित्ययुक्ताः ५ भक्त्या ६ माम् ७ च ८ नमस्यंतः ९ यतंतः १० च ११ दृढव्रताः १२॥१४॥ अ०—उ० महात्मा इसप्रकार भजनकरते हैं, जैसा इन दो मंत्रोंमें वर्णन करते हैं. सि० महात्मा ❀ निरंतर १ कीर्तन करतेहुए, २ मुझको ३ सेवते हैं अर्थात् मोक्षशास्त्रका पढाना, पढना और जिज्ञासुओंको सुनाना, विष्णुसहस्रनामगीतादिका पाठ करना, नामोच्चारण करना, गुरुमंत्र और गायत्री जपना और सबसे श्रेष्ठ यह है कि, गायत्रीका जप करना यही मेरी उपासना है. इसप्रकार महात्मा मेरी उपासना करते हैं, ४ सि० कैसे हैं वे कि सदा ❀ युक्त हुए ५ प्रेमलक्षणाभक्ति

करके ६ मुझको ७।८नमस्कारकरते हैं ९ अर्थात् सदा यही स्मरण करते हैं, कि विश्वम्भरनारायण हमारे स्वामीहैं. यह समझकर बहुत प्रीतिनम्रताके साथ, ओंनमो नारायणाय इत्यादिमंत्र पढकर वारं-वार नमस्कार करते हैं ९ सि० फिर कैसे हैं, कि मोक्षमार्गमें सर्वांग लगाकर सदा ❀यत्न करते हैं १०।११सि० जैसे धनस्त्रीकी चाहवाले रुपयेकेलिये और स्त्रीकेलिये प्रयत्न करते हैं और फिर कैसे हैं कि ❀दृढव्रत हैं जिनके १२ तात्पर्य ब्रह्मचर्यादिव्रतमें ऐसे दृढ हैं कि जहांतक बने स्वप्नमें भी वीर्यको स्खलित नहीं होने देते. बुद्धिपूर्वक वीर्यका त्याग करना तो महापामरों पाजियोंका कामहै. यद्यपि गृह-स्थोंकेवास्ते अपने स्त्रीका संग करना कहीं कहीं लिखा है परंतु वहांभी तात्पर्य उनका वीर्यके निरोधमें है.जो पुरुष वीर्यका निरोध नहीं करसक्ता उससे मोक्षमार्गमें प्रयत्नकरना कठिन है, क्योंकि घरके पूंजीका तो वृथा व्यय करता है, फिर यह कैसे विश्वासहो कि यह कुछ बाहरसे कमाईकरके इकट्ठा करेगा. यह वीर्य एक अमोलप्रकाशमान रत्न है-जिसके भीतर यह बना रहेगा, वो भगवत्स्व-रूपको देखसकेगा. और जो यह रत्न खोदिया तो परमेश्वरके दर्श-नसे नैराश्य होवे. इसी प्रकार खोटाधन अपने खर्चमें नहीं लाना. किसीको किसीप्रकार दुःख नहीं देना. प्रारब्धपरमेश्वरपर विश्वास रखना और भी बहुत ऐसे अनेक दृढव्रत नियम हैं; जिनमें यह सब परमेश्वरकी भक्ति है ॥ १४ ॥

मू०–ज्ञानयज्ञेनचाप्यन्येयजन्तोमामुपासते ॥

एकत्वेनपृथक्त्वेनबहुधाविश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥

ज्ञानयज्ञेन १ माम् २ यजंतः ३ उपासते ४ अन्ये ५ च ६ अपि ७ एकत्वेन ८ पृथक्त्वेन ९ बहुधा १० विश्वतोमुखम् ११ ॥ १५ ॥ अ०–सि० कोई महात्मा तो ❀ज्ञानयज्ञकरके १ मुझको

२ पूजते हुए ३ उपासनाकरते हैं ४ अर्थात् मुझसच्चिदानंदको सब भूतोंमें जानते हैं ४ सि०क्योंकि साधुमहात्माभगवद्भक्तोंका जो पूजन करना, उनकी सेवा या उपासना करना, उनको भगवद्रूप समझना यह मेरी उत्तमउपासना है. क्योंकि जैसे मेरे रामकृष्णादि निमित्त अवतार हैं, वैसेही साधुमहात्मा मेरे भक्त नित्य अवतार हैं, और कोई ५।६।७ सि०लक्ष्यार्थमें जीवईश्वरको एक समझकर ❀अभेद (अद्वैत भावना) करके ८ अर्थात् "सोहंब्रह्माहमस्मि"॥ यही निरंतरनिदिध्यासन करते रहते हैं.८ सि० और कोई ❀ पृथक्भावनाकरके ९ अर्थात् परमेश्वरसच्चिदानंदघनसर्वज्ञताभक्तवत्सलताकरुणादि अनेक गुणशक्तियों करके युक्त नित्यमुक्त प्रभु सगुणब्रह्म हैं. यद्यपि मैंभी सच्चिदानंद हूं, परंतु कनकादित्रिगुणमयमायामें फँस रहाहूं, इस पूर्णब्रह्मसगुणाकारकी कृपासेछूटूंगा और अपने परमानंदस्वरूपको प्राप्त हूंगा. यह दोनों बातें विनाभगवत्कृपा प्राप्त न होंगी. यह समझकर पूर्णब्रह्मसच्चिदानंदकी उपासना करते हैं. ९सि० और कोई❀बहुत प्रकारका १०सि०मुझको समझकर मेरी उपासना करते हैं, अर्थात ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, शक्ति, गणेश, अग्नि, चन्द्र और रामकृष्णादिको मेराही रूपसाक्षात मुझसच्चिदानंदको मूर्तिमान् समझकर मेरी उपासना करते हैं. और कोई❀विराट्विश्वरूप ११ मुझको समझकर मेरी उपासना करते हैं. अपने अपने अधिकारमें ये सब महात्मा हैं.पूर्णब्रह्म, शुद्ध, सच्चिदानंद, निराकार, निर्विकार, नित्यमुक्त, ऐसे मेरे स्वरूपको अवश्य काल पाकर प्राप्त होंगे ॥ १५ ॥

मू०—अहंक्रतुरहंयज्ञःस्वधाहमहमौषधम् ॥
मंत्रोहमहमेवाज्यमहमग्निरहंहुतम् ॥ १६ ॥

क्रतुः १ अहम् २ यज्ञः ३ अहम्४ स्वधा ५ अहम् ६ औषधम्७

अहम् ८ मंत्रः ९ अहम् १० एव ११ आज्यम् १२ अहम् १३ अग्निः १४ अहम् १५ हुतम् १६ अहम् १७ ॥१६॥ अ०–उ० पिछले मंत्रमें दश अंकवाला जो (बहुधा) पद है उसकी व्याख्या चारमंत्रोंमें करते हैं–श्रौतयज्ञ १ सि० अग्निष्टोमादि ❀ अहम् २ अर्थात् मैं हूं २. स्मार्तयज्ञ (अतिथि, अभ्यागत) इनकी पूजा इत्यदि पंचयज्ञ ३. मैं हूं ४. पित्राको जो अन्न दिया जाता है मंत्रसे सो ५ मैं हूं ६. मनुष्यादि जो यवादि भक्षण करते हैं सो ७ मैं हूं ८ यज्ञमें जोपढे जाते हैं ॐ नमः शिवाय इत्यादिमंत्र ९ मैंहीहूं १०। ११ होमादिका साधन १२ मैंहूं १३ अग्नि १४ मैंहूं १५ होम १६ मैंहूं १७ तात्पर्य ये सब अंतःकरणशुद्धिके कारण हैं और मोक्षके साधन हैं ॥ १६ ॥

मू०–पिताहमस्यजगतोमाताधातापितामहः ॥
वेद्यंपवित्रमोङ्कारऋक्सामयजुरेवच ॥ १७ ॥

अस्य १ जगतः २ अहम् ३ पिता४ माता ५ धाता६ पितामहः ७ वेद्यम्८ पवित्रम् ९ ॐकारः १० ऋक्सामयजुः ११ एव १२च १३ ॥ १७ ॥ अ०–इसजगत्का १। २ मैं ३ पिता ४ माता ५विधाता६ पितामह ७ सि०हूं ❀जाननेकेयोग्य ८ पवित्र(शुद्ध)९ प्रणव १० ऋक्सामयजुष् यह वेदत्रयीभी ११। १२। १३ सि०मैंहूं.❀टी० उत्पन्न करनेवाला, पालन करनेवाला, कर्मोंके फलको देनेवाला, वेदादिप्रमाणोंका विषय, प्रमेय, चैतन्य मैंही हूं. सब वेद मुझकोही प्रतिपादन करते हैं. चकारसे अथर्ववेद भी जानना चाहिये. ऋगादि वेद और ॐ प्रणवभी मैंही हूं और प्रमाता और प्रमाणभी मैंही हूं इति तात्पर्यार्थः ॥ १७ ॥

मू०–गतिर्भर्ताप्रभुःसाक्षीनिवासःशरणंसुहृत् ॥
प्रभवःप्रलयःस्थानंनिधानंबीजमव्ययम् ॥ १८ ॥

गतिः १ भर्ता २ प्रभुः ३ साक्षी ४ निवासः ५ शरणम् ६ सुहृत् ७ प्रभवः ८ प्रलयः ९ स्थानम् १० निधानम् ११ अव्ययम् १२ बीजम् १३॥ १८॥ अ०—कर्मोंका फल १ पोषण करनेवाला २ समर्थ याने स्वामी ३ शुभाशुभ देखनेवाला ४ भोगस्थान ५ रक्षाकरनेवाला ६ बेप्रयोजन हितकरनेवाला ७ जगत्का आविर्भाव है जिससे ८ संहर्ता ९ सर्वभूतस्थित है जिसमें १० लयका स्थान ११ अविनाशी १२ बीज १३ सिं० मैं हूं ❀ ॥ १८ ॥

मू०—तपाम्यहमहंवर्षंनिगृह्णाम्युत्सृजामिच ॥
अमृतंचैवमृत्युश्चसदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

अहम् १ तपामि २ वर्षम् ३ उत्सृजामि ४ च ५ निगृह्णामि ६ अमृतम् ७ च ८ एव ९ मृत्युः १० च ११ सत् १२ असत् १३ च १४ अहम् १५ अर्जुन १६॥१९॥ अ०—सिं० ग्रीष्मऋतुमें सूर्यमें स्थित होकर ❀ मैं १ सिं० जगत्को ❀ तपाताहूं २ वर्षाको ३ वर्षाता हूं ४ और ५ सिं० जबकभी प्रजा पुण्यकरना छोड देती है तब वर्षाका ❀ निग्रह करलेता हूं अर्थात् पानी नहीं वर्षाता हूं ६ अमृत अर्थात् जीवनाभी और मृत्यु अर्थात् भूतोंका अदर्शनभी ७।८।९।१०।११सिं०मैं हीं हूं और ❀ स्थूल १२ सूक्ष्म प्रपंच १३ ।१४ मैं १५ सिं० हूँ ❀हे अर्जुन ! १६ तात्पर्य बहुत महात्मा इसप्रकार मुझको जानकर सर्वात्मदृष्टिकरके मेरी उपासना करते हैं ॥ १९ ॥

मू०—त्रैविद्यामांसोमपाः पूतपापायज्ञैरिष्ट्वास्वर्गतिंप्रार्थयन्ते ॥ तेपुण्यमासाद्यसुरेन्द्रलोकमश्नंतिदिव्यान्दिविदेवभोगान् ॥ २० ॥

त्रैविद्याः १ सोमपाः २ पूतपापाः ३ यज्ञैः ४ माम् ५ इष्ट्वा ६ स्वर्गतिम् ७ प्रार्थयन्ते ८ ते ९ पुण्यम् १० लोकम् ११आसाद्य १२

दिवि १३ दिव्यान् १४ देवभोगान् १५ अश्नन्ति १६ ॥ २० ॥
अ०-उ० जो कामना करके वेदोक्तभी कर्म करते हैं, उनका जन्ममरण विनाज्ञाननिष्ठाके दूर न होगा. प्राकृतोंका याने मूढोंका तो कुछ प्रसंगही नहीं, यह दो श्लोकोंमें कहते हैं. सि० जो ❀ तीनवेदके जाननेवाले १ अमृतके पान करनेवाले २ पवित्रजन ३ सि० श्रौतस्मार्त ❀ यज्ञोंकरके ४ मेरा ५ पूजनकरके ६ स्वर्गकी प्राप्ति ७ चाहते हैं ८ वे ९ पुण्यकाल १० सि० जो ❀ स्वर्गलोक उसको ११ प्राप्त होकर १२ स्वर्गमें १३ दिव्य अर्थात् अलौकिक जो इसलोकमें नहीं, स्वर्गमेंही हैं १४ उन देवभोगोंको १५ भोगते हैं १६ टी० ऋक् साम और यजुष, इन तीनवेदके जाननेवाले अर्थात् अथर्वणवेदमें ब्रह्मविद्याविशेष है. उसको नहीं जानते १ यज्ञके शेषभागको अर्थात् यज्ञमेंसे बचाहुआ जो अन्न उसको अमृत कहते हैं. उस अन्नके भोजन करनेवालोंका अंतःकरण शुद्ध होजाता है जो निष्काम होकर करेंगे. नहीं तो स्वर्गको प्राप्त होंगे. इत्यभिप्रायः २ ॥ बनज नौकरी आदि-लौकिककर्म करनेवालोंसे वैदिककर्म करनेवाले अच्छे हैं. इसहेतुसे वैदिककर्म करनेवाले पवित्र कहे जाते हैं ३. वेदोक्तकर्मोंका जो करना है उसीको कर्मकांडी ईश्वर जानते हैं. अर्थात कर्मही स्वर्ग-फलका दाता ऐसा समझते हैं ४।५।६। तात्पर्य वेदोक्तकर्मोंका निष्काम जो अनुष्ठान करना है अथवा भगवद्भक्ति और ज्ञान-निष्ठाके संबन्धि जो कर्म हैं, उनका करना बन्धनका हेतु नहीं अंतःकरणकी शुद्धि और जीवन्मुक्ति होनेका हेतु है. और मुक्तिके लिये भेद उपासनाभी अच्छी है. वैकुंठादिलोकोंके प्राप्तिके लिये और सावयवभगवन्मूर्तिके प्राप्तिकेलिये जो मूर्तिमान् भगवतकी सकाम उपासना करते हैं, उनकाभी इनहीलोगोंमें अन्तर्भाव

है, कि जिनका बीस और इक्कीस इन दो श्लोकोंमें प्रसंग है. जो फल अनित्य कर्मकांडियोंको होगा, वोही फल भेदवादियोंको होगा. मूर्तिमान्परमेश्वरकी उपासनाभी निष्कामकरना चाहिये. रूपदेखनेकेवास्ते न करे. उसका फल अनित्य और दुःखका हेतु होगा. जैसे प्रथम किसीसमय दशरथ, कौसल्या, गोपी, यशोदा और नन्दादिको हुआ है और जो उसको दुःख न समझे, वो बेसंदेह करे ॥ २० ॥

मू०–तेतंभुक्त्वास्वर्गलोकंविशालंक्षीणेपुण्येमर्त्यलोकंविशंति ॥ एवंत्रयीधर्ममनुप्रपन्नागतागतंकामकामालभंते ॥ २१ ॥

ते १ तम् २ विशालम् ३ स्वर्गलोकम् ४ भुक्त्वा ५ पुण्ये ६ क्षीणे ७ मर्त्यलोकम् ८ विशंति ९ एवम् १० त्रयीधर्मम् ११ अनुप्रपन्नाः १२ कामकामाः १३ गतागतम् १४ लभन्ते १५ ॥ २१ ॥

अ०–वे अर्थात् शब्दस्पर्शादिविषयोंके कामनावाले वेदोक्तकर्म करनेवाले सकामपुरुष १ तिस २ विशालस्वर्गको ३।४ भोगके ५ अर्थात् अपने कर्मोंके फलको स्वर्गमें भोगके५. पुण्य ६ नाशहोतेही ७ मनुष्यलोकमें ८ प्राप्त होंगे ९ इसप्रकार १० वेदोक्तधर्मका ११ आचरण करनेवाले १२ भोगोंकी कामना करनेवाले १३ गतागतको १४ प्राप्त होते हैं १५. तात्पर्य स्वर्गादिमें गये फिर वहांसे धक्के खाकर मनुष्यलोकमें आये, फिर भी वेही कर्म किये और जब खोटे कर्म बनगये तब नरकमें गये. वे लोग कभी नरकमें कभीस्वर्गमें कभी मनुष्ययोनिमें कभी पशुपक्षीके योनियोंमें सदा भटकते फिराकरते हैं, सदा शुद्धसच्चिदानंद भगवत्से विमुख होकर भोगोंके वशमें फँसे रहते हैं; जब कि ऐसे लोगोंकी यह व्यवस्था है तो जो सदा लौकिक बखेडोंमें ही लगारहताहै, उसकी व्यवस्था क्या कही जावे!

और यह एक बारीक बात सोचनेके योग्य है, कि सकाम वैदिककर्म करनेवालोंकी तो यह व्यवस्था है, पुराणोक्त सकामकर्म और सकाम उपासना जो करते हैं, उनको क्या फल होगा. अपने अपने बुद्धिके अनुसार विचार करना चाहिये. प्रकट करके लिखदेनेमें वहुत लोग कि जो मोक्षमार्गका आश्रय लेकर भोग भोक्ते हैं. वे दुःख पावेंगे. बुद्धिमान् मनमें समझ लेते हैं. इस शास्त्रमें जिस जगह सकामकर्मका प्रसंग है तो उस जगह अर्थसे सकाम उपासनाकोभी वैसाही समझना चाहिये और जिसजगह स्वर्गादि फलका प्रसंग है वहां वैकुंठादि फलकोभी वैसाही समझना चाहिए ॥ २१ ॥

मू०—अनन्याश्चिंतयंतोमांयेजनाःपर्युपासते ॥
तेषांनित्याभियुक्तानांयोगक्षेमंवहाम्यहम् ॥ २२ ॥

ये १ जनाः २ अनन्याः ३ माम् ४ चिंतयंतः ५ पर्युपासते ६ तेषाम् ७ नित्याभियुक्तानाम् ८ योगक्षेमम् ९ अहम् १० वहामि ११ ॥ २२ ॥ अ०—उ०जो ज्ञाननिष्ठपुरुष अभेदभावना करके मेरी उपासना करतेहैं, उनको इस लोकके और परलोकके पदार्थ (मुक्तिपर्यंत) देकर मैं ही रक्षा करता हूं यह कहतेहैं—जो १ जन २ अर्थात् कर्मफलके संन्यासी अभेदउपासक २ अनन्य ३ मेरा ४ चिंतवन करते हुए ५ उपासना करते हैं ६ अर्थात् सदा वे यह चिंतवन करते रहते हैं कि,शरीर इन्द्रिय प्राण और अंतःकरण इनसे परे सच्चिदानंदस्वरूप, तीनों अवस्थाका साक्षी, जो यह हमारा आत्मा है, यही पूर्णब्रह्म है, कि जिसको महावाक्य प्रतिपादन करतेहैं. इससे अन्य जुदा और कोई सच्चिदानंद ब्रह्म नहीं. इस प्रकार अनन्यहुए निदिध्यासन करतेहैं-शरीरादिविजातीय पदार्थोंका तिरस्कार करके सजातीयपदार्थ सच्चिदानंद ऐसे आत्मामें निर्मलअंतःकरणकी वृत्तिका गंगावत् प्रवाह किया है जिन्होंने ६ तिन ७ नित्य आत्मनिष्ठोंको ८

योगक्षेम ९ मैं सोपाधिक सच्चिदानंदमयोपहित ईश्वर १० प्राप्त करता हूं ११. टी०अप्राप्तपदार्थको प्राप्त करना उसको योग कहते हैं और प्राप्त पदार्थकी रक्षा करना उसको क्षेम कहते हैं. आत्मनिष्ठपुरुषोंको आत्मतत्त्वकी प्राप्ति मेरे कृपासे होती है और मैंही उसकी रक्षा करताहूं, और करूंगा यह मेरी प्रतिज्ञाहै. तबतक कि जबतक ज्ञाननिष्ठाका भलेप्रकार परिपाक न होगा. जो कोई यह शंका करे कि जो भगवद्भक्त नहीं, उसको क्या पदार्थ रुपये आदि नहीं मिलतेहैं और उनके क्या पदार्थोंकी रक्षा नहीं होती ? उत्तर इसका यहहै कि जो भगवद्भक्त नहीं, वे दिन रात्रि आप पदार्थोंके योगक्षेममें प्रयत्न करते हैं. फिरभी संदेह रहता है. और परमानंदरूप मुक्तिसे तो वे सदा विमुख रहते हैं. और जो भगवद्भक्त हैं, उनको मुख्यफल परमानंदस्वरूप (मुक्ति) तो अवश्यही मिलेगी. परंतु गौणफल (शरीरयात्राके लिये) अन्न वस्त्रादि उनको बेयत्न प्राप्त होते हैं और उनकी रक्षा अंतर्यामी करताहै. वे सदा बेसन्देह रहते हैं. जैसे कोई फलकी इच्छा करके बागमें गया वो फलतो उसको अवश्यही मिलेगा और रस्तेमें फुलवारीका देखना, सुगंधका सूंघना, इत्यादि गौणफल उसको अपने आप मिलजाते हैं और मुख्य फलभी प्राप्त होता है. भक्त और अभक्तके योगक्षेममें इतना भेद है ॥ २२ ॥

मू०—येप्यन्यदेवताभक्तायजन्तेश्रद्धयान्विताः ॥
तेपिमामेवकौंतेययजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ २३ ॥

कौन्तेय १ ये २ अपि ३ भक्ताः ४ श्रद्धया ५ अन्विताः ६ अन्यदेवताः ७ यजंते ८ ते ९ अपि १० माम् ११ एव १२ यजंति १३ अविधिपूर्वकम् १४ ॥ २३ ॥ अ०—उ० जो भक्त आत्मासे जुदा विष्णु महेश रामकृष्णादि देवतोंको समझकर भेदभावना करके, व्यासादिके वाक्योंमें विश्वास करके रामकृष्ण इंद्रा-

दिकी उपासना करते हैं, वेभी परमेश्वरकाही भजन करते हैं. परंतु वो निष्ठा उनकी अज्ञानपूर्वक है, उसको स्थिरता नहीं. यह बात इसमंत्रमें श्रीभगवान् स्पष्टवर्णन करते हैं—हे अर्जुन ! १ जो २।३ भक्त ४ श्रद्धाकरके ५ युक्त ६ अन्यदेवताका अर्थात् सच्चिदानंद-स्वरूप आत्मासे अन्य (पृथक्) सावयव वा निरवयवदेवताका ७ यजन पूजा सेवा ध्यान करतेहैं ८ वे९ भी१० मेराही ११।१२ यजन करते हैं १३. सि० परंतु*अज्ञानपूर्वक १४सि० यजन करतेहैं. *तात्पर्य उनके भजनमें तो संदेह नहीं, परन्तु वो उन्होंने किया हुआ मेरा भजन अज्ञानपूर्वक है. क्योंकि वास्तव न मेरा स्वरूप उन्होंने जाना, न अपना. परंतु जो वो भजन निष्काम होगा, तो वेभी ज्ञानद्वारा अवश्य मुक्त होंगे और उनका योगक्षेमभी मैंही करूंगा. जो निष्कामभजन करता है उसको विदेहमोक्षपर्यंत पदार्थ मैं देताहूं, और रक्षा करता हूं. तोभी पशुवृत्तिका त्यागना अवश्य चाहिये.जैसे पशु मनुष्योंका दास बना रहता है, ऐसेही अन्यदेव-ताका उपासक देवताका पशु बना रहता है. जो आपको ब्रह्म नहीं जानता वो निराकार सच्चिदानंद होकर साकार रूपका दास बनकर साकारोंके आधीन रहताहै और आपभी साकार बनता है. इससे परे और क्या अज्ञान होगा. पूर्ण,अनन्य ऐसेको परिच्छिन्न, तुच्छ, एक-देशी ऐसा मानना, जड़ और चैतन्य, द्रष्टा और दृश्यको एक समझना इससे परे और क्या अज्ञान होगा.तदुक्तम्—"अन्योसावहमन्योस्मी-त्युपास्तेयोन्यदेवताम् ॥ नसवेदनरोब्रह्मसदेवानांयथापशुः "तात्प-र्यार्थ इसमंत्रका ऊपर लिखा गया ॥ २३ ॥

मू०—अहंहिसर्वयज्ञानांभोक्ताचप्रभुरेवच ॥
नतुमामभिजानंतितत्त्वेनातश्च्यवंतिते ॥ २४ ॥

सर्वयज्ञानाम् १ भोक्ता २ च ३ प्रभुः ४ एव ५ च ६ अहम् ७

हि ८ माम् ९ तत्त्वेन १० न ११ तु १२ अभिजानाति १३ अतः १४ ते १५ च्यवंति १६॥२९॥ अ०—उ० पिछलेमंत्रमें कहाकि भेदवादी अज्ञानपूर्वक मेरा भजन करते हैं. इस मंत्रमें फिर उसीबातको स्पष्ट करते हैं. सब यज्ञोंका १ भोक्ता २।३ सि० और ❀ स्वामी ४।५।६ मैं ७ ही ८ सि० हूं. ❀ मुझको ९ तत्त्वसे १० नहीं ११।१२ जानते. १३ इसवास्ते १४ वे १५ गिरपड़तेहैं १६ तात्पर्य श्रौतस्मार्त सबयज्ञोंका भोगनेवाला और मालिक मैं सच्चिदानंद हूं. मुझको यथार्थ नहीं जानते. अर्थात् यह नहीं समझते कि फलदाता अंतर्यामी सच्चिदानंद (मायोपहित हुआ वोही) एक शुद्धसच्चिदानंदरूप यज्ञोंका स्वामी और फलका दाताहै और (अविद्योपहित हुआ) वोही उस फलका भोक्ताहै. और वो मुझ सच्चिदानंदरूप आत्मासे कोई जुदा वास्तव सच्चिदानंद नहीं-इसप्रकार जो ईश्वरका स्वरूप नहीं जानते, वे इस हेतुसे जन्ममरणके चक्रमें घूमते हैं. इसमंत्रमें प्रभुशब्द तत्पदका वाच्यार्थ है और भोक्ताशब्द त्वंपदका वाच्यार्थ है लक्ष्यार्थमें दोनोंकी एकता श्रीभगवान् स्पष्ट कहते हैं कि प्रभूभी और भोक्ताभी दोनों मैं ही हूं. अहंशब्दका लक्ष्यार्थमें तात्पर्य है. अर्थात् श्रीभगवान् कहते हैं, कि मैं शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप मायोपहितहुआ तो सबयज्ञोंकास्वामी फलदाता हूं और अविद्योपहित हुआ उसी फलका मैंही भोक्ता हूं. अब विचारकरना चाहिये, कि जप, स्वाध्याय, इन्द्रियप्राणादिका निरोध इत्यादि जो यज्ञ चतुर्थाध्यायमें श्रीभगवान्ने निरूपण किये हैं उनका भोक्ता ईश्वर है वा जीव है ॥ २४ ॥

मू०—यांतिदेवव्रतादेवान्पितॄन्यांतिपितृव्रताः ॥
भूतानियांतिभूतेज्यायांतिमद्याजिनोपिमाम् ॥२५॥

देवव्रताः १ देवान् २ यांति ३ पितृव्रताः ४ पितॄन् ५ यांति ६ भूतेज्याः ७ भूतानि ८ यांति ९ मद्याजिनः १० माम् ११ अपि १२

यांति १३ ॥ २५॥ अ०—उ० भेदभावनाकरके वा अभेदभावना करके जो परमेश्वरका आराधन करतेहैं, उन दोनोंका फल इसमंत्रमें कहते हैं—देवतोंके उपासक १ देवतोंको २ प्राप्त होते हैं ३, पित्रोंके उपासक ४ पित्रोंको ५ प्राप्त होते हैं ६, भूतोंके उपासक ७ भूतोंको ८ प्राप्त होते हैं, ९ मेरे उपासक १० मुझको ११ ही १२ प्राप्त होते हैं १३. टी० ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम, कृष्ण इत्यादि इनके और इंद्रादिमूर्तिमान् देवतोंके आराधन करनेवाले १ सलोकता, सरूपता, समीपता और सायुज्यता इन चार मुक्तियोंको प्राप्त होते हैं२ विनायक मातृगण भूतोंके पूजनेवाले भूतोंमें जा मिलेंगे. और इस कलियुगमें जो मीरांगूगादिपीरोंका (भूतप्रेतोंका) पूजन करते हैं वे उनकोही प्राप्त होंगे अर्थात् मरकर सब भूतप्रेत बनेंगे७ और मुझ शुद्धसच्चिदानंदस्वरूप आत्माके यजन करनेवाले अर्थात् ज्ञाननिष्ठावाले१०मुझ नित्यमुक्त परमानंदस्वरूप निराकारनिर्विकारको ११ अवश्य, निश्चयसे १२ प्राप्त होंगे १३ अर्थात् नित्यमुक्त परमानंदस्वरूपही होजावेंगे. माम् शब्दका अर्थ जो सावयवमूर्तिमान् वासुदेव कियाजावे तो इस गीताशास्त्रको योगशास्त्रब्रह्मविद्या कहना नहीं बनता,क्योंकि इस अर्थमें यह ग्रंथ स्पष्ट एकदेशी प्रतीत होता है. मूर्तिमान् वासुदेव श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजके उपासकोंका यह ग्रंथ हुआ औरोंको इससे क्या प्रयोजन रहा यह बात नहीं किंतु माम् शब्दका अर्थ सच्चिदानंद निराकार है, सो वो नित्य है. उससे पृथक् सब अनित्य हैं इतनेमेंही तात्पर्यार्थ समझ लेना. श्रीमहाराजने आठवें अध्यायमें स्पष्ट कहदिया है, कि ब्रह्मलोकसे बड़ा और कोई लोक नहीं क्योंकि उसका निरूपण वेदोंमें है. जब उसीको अनित्य कहा तो औरोंको कैमुतिकन्यायसे अनित्य समझलेना चाहिये और ब्रह्मशब्दका अर्थ बडा बृहत् है, इसप्रकार नहीं समझना कि ब्रह्मलोक केवल ब्रह्माजीके लोकको कहतेहैं, ब्रह्माजीसे

विष्णु, महेश बडे हैं, उनके लोक जुदे हैं, सो नहीं किंतु पूर्णब्रह्म परमेश्वरके सावयवलोकका नाम ब्रह्मलोक है और वो एकही है. सत्यलोक, वैकुंठ, कैलासादि यह पुराणोंकी प्रक्रिया है ॥ २५ ॥

मू०–पत्रंपुष्पंफलंतोयंयोमेभक्त्याप्रयच्छति ॥
तदहंभक्त्युपहृतमश्नामिप्रयतात्मनः॥ २६ ॥

यः १ पत्रम् २ पुष्पम् ३ फलम् ४ तोयम् ५ मे ६ भक्त्या ७ प्रयच्छति ८ तत् ९ भक्त्या १० उपहृतम् ११ प्रयतात्मनः १२ अहम् १३ अश्नामि १४ ॥ २६ ॥ अ०–उ०मैं परमेश्वरका दास हूं, इसप्रकार भेदभावना करके श्रद्धापूर्वक परमेश्वरकी जो भक्ति करते हैं, उनको ज्ञाननिष्ठाके प्राप्तिका सुलभ उपाय श्रीभगवान् बताते हैं–जो १ सि०भक्त ❋ पत्र २ फूल ३ फल ४ जल ५ मेरे अर्थ ६ भक्तिकरके ७ अर्पणकरता है ८ सो ९ भक्तिकरके १० अर्पण कियाहुआ ११ सि०पदार्थ थोडाभी रूखासूखा ❋ शुद्धांतःकरणवालेका अर्थात् अपने भक्तका १२ मैं १३ सि०आदरपूर्वक प्रीतिके साथ ❋ खाताहूं अर्थात् ग्रहण करता हूं १४. तात्पर्य पत्र तुलसीबिल्वपत्रादि और जल सदाशिवजीपर जो चढाते हैं, उससे महेश्वर प्रसन्न होते हैं. श्रीमहाराज कहते हैं कि मैं फल भोजन करता हूं, फूल सूंघता हूं, पत्र ग्रहण करता हूं, जल पान करता हूं. जैसे गुलदस्तेमें फूलभी होते हैं, उसको हाथमें ग्रहण करके फूलोंको सूंघते हैं और पत्रोंको देखते हैं "दुर्योधनका मेवा त्यागा शाक विदुरघर खाया." इसप्रकार किसीजगह पत्रका भोजनभी होताहै ॥ २६ ॥

मू०–यत्करोषियदश्नासियज्जुहोषिददासियत् ॥
यत्तपस्यसिकौन्तेयतत्कुरुष्वमदर्पणम् ॥ २७ ॥

कौन्तेय १ यत् २ करोषि ३ यत् ४ अश्नासि ५ यत् ६ जुहोषि ७ यत् ८ ददासि ९ यत् १० तपस्यसि ११ तत् १२ मदर्पणम् १३

कुरुष्व १४ ॥ २७ ॥अ०–उ०परमकरुणाकर श्रीभगवान् उससे भी और सुलभ उपाय बताते हैं, पत्रादि करके जो श्रीनारायणका पूजन करना है सो परतंत्र है. यह स्वतंत्र उपाय सुन-हेअर्जुन! १जो२ [तू]करताहै३,जो४[तू]खाताहै५जो६[तू]होमकरताहै७जो८[तू] देता है९,जो१०[तू]तपकरता है११सो १२[सि०सब ❀ [तू]मुझको अर्पण १३ कर १४ तात्पर्य लौकिक वैदिक शुभाशुभ जो तू कर्म करता है अर्थात् जो तू खाता है, पहरता है, होम करता है, देता है, तप करता है, हे अर्जुन! सब मुझको अर्पण कर. तात्पर्य निष्काम हो, फलकी इच्छा मतकर. “आत्मात्वंगिरजामतिःसहचराःप्राणाः शरीरंगृहं पूजातेविषयोपभोगरचनानिद्रासमाधिस्थितिः ॥ संचारः पदयोःप्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणिसर्वागिरोयद्यत्कर्मकरोमितत्तदखिलं-शंभोतवाराधनम्” ॥ यह शरीर आपका घर शिवालय है, इस शरीरमें सदाशिवरूप सच्चिदानंद आत्मा आप हो. बुद्धि श्रीपार्वतीजी हैं. आपकेसाथ चलनेवाले नौकर प्राण हैं. ये जो मैं विषयानंदकेवास्ते विषयभोक्ता हूं, याने जो खाता हूं, पीता हूं, देखता हूं, सुनता हूं, सूंघता हूं, बोलता हूं स्पर्शकरता हूं यही मैं आपकी पूजा करता हूं. निद्रा मेरी समाधि है. फिरना मेरा आपकी प्रदक्षिणा है. जो कुछ मैं बोलता हूं यह सब आपकी स्तुति करता हूं. जोजो औरभी कर्म मैं करता हूं, हे चन्द्रशेखर! सबप्रकार आपकाही मैं आराधन करता हूं. आप आशुतोष हो, जल्दी मुझपर कृपाकरो, जिस आपके कृपासे मैं विदेह मुक्तिको प्राप्त हूंगा ॥ २७ ॥

मू०–शुभाशुभफलैरेवंमोक्ष्यसेकर्मबन्धनैः ॥
संन्यासयोगयुक्तात्माविमुक्तोमामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

एवम् १ शुभाशुभफलैः २ कर्मबन्धनैः ३ मोक्ष्यसे४ संन्यासयोगयुक्तात्मा ५ विमुक्तः६ मामू ७ उपैष्यसि ८ ॥ २८ ॥अ०–उ०

निष्कामकर्म करनेवाले निष्फल नहीं रहते, उनको अनंत अविनाशी परमानंदफल प्राप्त होता है. इस हेतुसे हेअर्जुन ! इसप्रकार तू मेरी भक्ति करता हुआ बेसंदेह मुझ अविनाशी परमानंदरूपको प्राप्तहोगा, यह इसश्लोकमें कहते हैं–सि० जैसे अब निरूपण किया ❀ इस प्रकार १ सि० मेरी भक्ति करताहुआ ❀ शुभ अशुभ फल हैं जिनके २सि० तिन ❀ कर्मबंधनोंसे ३ [तू] छूट जायगा ४सि० फिर पीछे ❀ संन्यासयोगकरके युक्त है, आत्मा याने अंतःकरण जिसका ५सि० ऐसा होकर तू ❀ जीवन्मुक्त होकर ६ अर्थात् शरीरपातके पीछे ६. मुझ परमानंदस्वरूप नित्यमुक्त पूर्ण-ब्रह्मशुद्धानंतआत्माको ७[तू] प्राप्त होगा ८ तात्पर्य निष्काम उपासना करनेसे चित्त शुद्ध होकर एकाग्र होजाता है, फिर कर्म उसको अपनेआप बंधनविक्षेपरूप प्रतीत होने लगते हैं. उन सब कर्मोंका त्यागकरके विरक्तसंन्यासी होजाता है. तब विरक्तअवस्थामें ज्ञाननिष्ठा प्राप्त होती है. फिर जीतेजी उस परात्परपरमानंदका अनुभव लेता है और जीवन्मुक्त हुआ विचरता है. प्रारब्धकर्म नाशहोनेके पीछे देहपात होजाता है. मूलाज्ञान कार्यसहित नष्ट होजाता है. यही सब अनर्थोंकी निवृत्ति और परमानंदकी प्राप्ति है. इसीका नाम कैवल्यमुक्ति है ॥ २८ ॥

मू०–समोहंसर्वभूतेषुनमेद्वेष्योस्तिनप्रियः ॥
येभजंतितुमांभक्त्यामयितेतेषुचाप्यहम् ॥ २९ ॥

सर्वभूतेषु १ अहम् २ समः ३ न ४ मे ५ द्वेष्यः ६ अस्ति ७ न ८ प्रियः ९ तु १० ये ११ माम् १२ भक्त्या १३ भजंति १४ ते १५ मयि १६ तेषु १७ च १८ अपि १९ अहम् २० ॥ २९ ॥ अ०–उ० कोई कोई प्राणी अपनेको बड़ा समझवाला समझकर भगवद्भक्तिरहित यह शंका करता है कि "विनाभक्ति तारो तो तारवो तिहारो

है" यह आलसी विषयी बहिर्मुखोंकी बात है इस वाक्यसे यद्यपि महिमा भगवत्की पाई जाती है परंतु भक्तिका माहात्म्य जाता है. तात्पर्य इस वाक्यका भगवन्माहात्म्यमें समझना चाहिये इस जगह भक्तिके माहात्म्यका प्रसंग है. क्योंकि भगवान् अपनेको रागद्वेषादि रहित (सम) कहते हैं, दूसरेका भला बुरा विना रागद्वेष नहीं होसक्ता. विना भक्ति भगवान् यदि किसीका भला करें, तो बडी विषमताकी बात है. अन्यजीव फिर भक्ति क्यों करेंगे. तात्पर्य भगवद्भक्ति करना आवश्यक है. सोई कहते हैं—सब भूतोंमें अर्थात् भक्तोंमें और अभक्तोंमें १ में २ बराबर ३ सि० हूं ❀ न ४ सि० कोई ❀ मेरा ५ वैरी ६ है ७, न ८ सि० कोई मेरा ❀ प्यारा ९ सि० है, ❀ परंतु १० जो ११ मुझको १२ भक्तिकरके १३ भजते हैं, १४ अर्थात् मेरीभक्ति (सेवा) करते हैं १४, वे १५ मुझमें १६ सि० हैं ❀ और तिनमें १७ । १८ । १९ मैं २० सि० हूं ❀ अर्थात् वे मेरे हृदयमें हैं २०. मुझको उनका उद्धार करनेका स्मरण सदा बना रहता है. और तिनके हृदयमें मैं सदा विराजमान रहता हूं, मेरे भक्तिका प्रतापहै. जैसे अग्निसम है. उसीका किसीसे रागद्वेष नहीं, परंतु जो अग्निके पास जाता है, उसका शीत दूर होता है. जो अग्निका सेवन नहीं करता, उसका शीत दूर नहीं होता, इसी प्रकार जो भगवत्की भक्ति करते हैं. वेही मुक्त होंगे तात्पर्यार्थ यह हुआ कि जनोंमें विषमता दोष है, क्योंकि कोई भक्ति करताहै, कोई नहीं. ईश्वरमें यह दोष नहीं. जो दो पुरुष भक्ति करें उनमेंसे एक भक्त हो, एक न हो तो ईश्वरमें विषमता आवे. जो कोई यह शंका करे कि अजामिलादि बहुत जीव विनाभक्ति मुक्त हुए यह उनका कहना झूंठ है. उनके पहलेजन्मोंकी कथा श्रवण करना चाहिये. वे लोग योगभ्रष्ट थे ॥ २९ ॥

मू०—अपिचेत्सुदुराचारोभजतेमामनन्यभाक् ॥
साधुरेवसमंतव्यः सम्यग्व्यवसितोहिसः ॥ ३० ॥

चेत् १ अनन्यभाक् २ सुदुराचारः ३ अपि ४ माम् ५ भजते ६ सः ७ साधुः ८ एव ९ मंतव्यः १० हि ११ सः १२ सम्यग्व्यवसितः १३॥३०॥ अ०-उ० भगवद्भक्तिका माहात्म्य और उसका अतर्क्यप्रभाव यह कहते हैं. कदाचित् १ अनन्यभजनकरनेवाला २ अर्थात् सब तरफसे मनको रोककर केवल श्रीनारायणकाजो आराधन करता है. २ सि०वो लोकदृष्टिमें यदि ❀अत्यन्त दुराचारभीहै३।४. अर्थात् वो स्नानादि आचार नहीं भी करता परंतु अनन्य हुआ ३।४ मुझको ५ भजता है ६ अर्थात् सदा नारायणका ध्यान या श्रीकृष्णादिके चरित्रोंका स्मरण करता रहताहै, अथवा ज्ञाननिष्ठ महापुरुष आत्मानंदमें मग्न रहताहै६, सो७साधु८ही९मानना योग्य है१०. सि०कभीउसको बुरा नहीं समझना मुखसे बुरा कहनातो बड़ाही अनर्थहै. ❀ क्योंकि११सो१२भलेप्रकार बहुत अच्छे निश्चयवालाहै१२ अर्थात् भीतरका निश्चय उसका अच्छाहै१३. तात्पर्य निश्चय यह बात है कि पारहुएपीछे नौकाका क्या कामहै. आचार पूजापत्री तबतकहै कि जबतक श्रीमहाराजके चरणकमलोंमें वा आत्मस्वरूपमें, मन अनन्य होकर नहीं लगा. ॥ "ज्ञाननिष्ठोविरक्तोवामद्भक्तोवानपेक्षकः॥ सलिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वाचरेदविधिगोचरः" ॥ इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि ज्ञाननिष्ठ, विरक्त, वा मेरा भक्त, बेपरवाह सब दिखावटके चिह्नोंको आश्रमोंको त्यागकर सिवाय भगवद्भजन वा आत्मनिष्ठाके सब वेदशास्त्रके विधिको नमस्कारकर पंचमाश्रम परमहंस अवस्थामें विचरे. वेदमेंभी यह लिखा है, कि जिसको वर्णाश्रमका अभिमान है.वो बेसंदेह श्रुतिस्मृतिका दास है. और जो वर्णाश्रमरहित अपने को सर्वथा श्रीनारायणका दास वा सच्चिदानंदपूर्णब्रह्मआत्मा ऐसा जानता है, वो श्रुतिमार्गका उल्लंघन करके वर्तताहै. अर्थात् यह समझताहै कि वेदका विधि तबतकहै, कि जबतक स्त्री पुत्र धन राजादिका दास है; अनन्यनारायणका दास नहीं, और आत्मनिष्ठ नहीं और

यह प्रकट रहे कि यह कथा सच्चेपुरुषोंकी है विनाभक्ति वा विना ज्ञान भ्रष्टभी ऐसेही होते हैं तथाहि-"वर्णाश्रमाभिमानेन श्रुतिदासो भवेन्नरः ॥ वर्णाश्रमविहीनश्च वर्ततेश्रुतिमूर्धनि" ॥ ३० ॥

मू०-क्षिप्रंभवतिधर्मात्मा शश्वच्छांतिंनिगच्छति ॥
कौन्तेयप्रतिजानीहिनमेभक्तःप्रणश्यति ॥ ३१ ॥

धर्मात्मा १ भवति २ क्षिप्रम् ३ शश्वत् ४ शांतिम् ५ निगच्छति ६ कौन्तेय ७ प्रतिजानीहि ८ मे ९ भक्तः १० न ११ प्रणश्यति १२ ॥ ३१ ॥ अ०-सि० अर्जुन सुन भक्तिका माहात्म्य अनन्यभक्त दुराचारभी ❋ धर्मात्मा १ है, २ शीघ्र (जलदी) ३ नित्य ४ शांतिको ५ अर्थात् उपरम उपशमको ५ प्राप्तहोगा ६ हे अर्जुन! ७ सि० इसबातकी ❋ तू प्रतिज्ञाकर ८ सि० कि ❋ मेरा ९ भक्त १० अर्थात् परमेश्वरका दुराचारभी भक्त १० नहीं ११ भ्रष्ट होता है १२ अर्थात् अधोगतिको नहीं प्राप्त होता है १२ उपासनाकांडका यह सूत्र है ॥ अथातो भक्ति जिज्ञासा ॥ पीछेधर्मकेभक्तिकी जिज्ञासा होतीहै इसहेतुसे प्रतीतहोता है कि पहले जन्मोंमें वो धर्म करचुका इसीवास्ते श्रीमहाराजनेभी उसको धर्मात्मा कहा और अपने भक्तसे (भुजा उठाकर) कहते-हैं, कि कुतर्कियोंके सभामें यह प्रतिज्ञाकरके भगवद्भक्तदुराचारभी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता है भक्तिमार्गवालोंका यह डंका बजाता है ॥ ३१ ॥

मू०-मांहिपार्थव्यपाश्रित्ययेपिस्युः पापयोनयः ॥
स्त्रियोवैश्यास्तथाशूद्रास्तेपियान्तिपरांगतिम् ॥ ३२ ॥

पार्थ १ ये २ अपि ३ पापयोनयः ४ स्युः ५ ते ६ अपि ७ माम् ८ हि ९ व्यपाश्रित्य १० तथा ११ शूद्राः १२ स्त्रियः १३ वैश्याः १४ पराम् १५ गतिम् १६ यांति १७ ॥ ३२ ॥ अ०-उ० आचा-रभ्रष्टको जो मेरी भक्ति पवित्रकर दे तो इसमें क्या आश्चर्य तू मानता

है, हे अर्जुन ! मेरी भक्ति रजोगुणी तमोगुणी जन्मके पापियोंको कृतार्थ कर देतीहै—हे अर्जुन! १ जो२ निश्चयसे ३जन्मकेपापी४सि०भी ❀ है५अर्थात् पापियोंके कुलमें याने अन्त्यज म्लेच्छवर्णसंकरोंमें उत्पन्न हुए हों ५ वे ६ भी ७ मेरा ८ ही ९ आसराकरके १० सि० परमगतिमुक्तिको प्राप्त होंगे, पहले बहुत होगये,अबहैं,और होंगे और जैसें ये मेरा आश्रय लेकर मुझको प्राप्त होते हैं, ❀तैसें ही ११ शूद्र १२ स्त्री १३ वैश्य १४ परमगतिको १५ । १६ प्राप्त होते हैं, १७ तात्पर्य रजोगुणी; तमोगुणी, मूर्ख, पंडित, लुगाई ये सबलोग मेरा आश्रय लेकर मुझको प्राप्त होते हैं और मेरी कृपा और भक्तिके प्रतापसे ज्ञानवान् होकर सब परमानंदस्वरूपआत्माको प्राप्त होते हैं मेरे भक्तिमें सबका अधिकार है भक्तजनही मुझको प्यारे हैं. मेरा भक्त व्यवहारमें कोई जाति कहलाता हो, शूद्र म्लेछ वा वर्णसंकर जो वो मेरा भक्तहै, तो परमार्थमें उसको साधु संन्यासी समझना चाहिये क्योंकि उत्तम पदका भागी वोही है. ज्ञातृपुरुष (विद्वान्) व्यवहारमेंभी उसको श्रेष्ठ जानते हैं परमार्थमें तो वो बेसन्देह सबसे श्रेष्ठहै. बारहवें अंकसे सत्रावें अंकतककी टीका लिखते हैं—मैत्रेयी, गार्गी, मदालसा, मीरां,करमेती, इत्यादि हजारों परमपदको प्राप्त हुई. वर्तमानकालमें बहुत स्त्री, उदार,दाता, तपस्वी, ज्ञानी भक्त, प्रसिद्ध, हैं जिनके सहायसे और मुख्य जिनके वास्ते यह टीका बनी वे बीबीबीरा, और बीबीजानिकी, ये दोनों स्त्री ब्राह्मणी हैं, जानिकीको दो विशेषण विद्वानोंने दिये हैं "ब्राह्मणवंशविद्वज्जनैर्वन्दिता"अर्थात् ब्राह्मणोंके वंशमें जो विद्वज्जन वे उसको भक्तिके और विरक्तिके प्रतापसे वन्दन करते हैं और श्रीसम्प्रदायचन्द्रिका अर्थात् श्रीसंप्रदायके प्रकट और प्रसिद्ध करनेके लिये यह जानिकी चांदनीके सदृश है. गुजरातदेशमें जो अहमदाबादनगर वहांकी रहनेवाली शंकरलालविष्णुनागरब्राह्मणकी बेटी, मानकलालप्रसिद्ध सांकललालकी पत्नी, श्रीमान् उत्तमगुणोंकी खान, अब श्रीवृन्दाव-

नचंद्रमें वास करती है. घरमें इनका नाम पार्वतीथा. श्रीसम्प्रदा-
यको जब ये शरणागत हुईं तब विधिवत् द्वितीयनाम बीबीजानिकी
रक्खा गया. बीबीबी राका द्वितीय नाम बीबीझूनिया. भी प्रसिद्ध है.
इन्होंने श्रीबीरविहारीजी और बीरेश्वरमहादेवजीका मंदिर बनाकर
सर्वस्व दानकरदिया यहभी वृन्दावनमें वास करती हैं. हरीरामसार-
स्वतब्राह्मणकी बेटी शिवदत्तकीपत्नी है. सर्वस्वदानसे विशेष कोई दान
नहीं सर्वस्वदानका फल अक्षय है और जीतेजी प्रत्यक्ष होता है.
इसमें इतिहास यह है—श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य श्रीशंकरा-
चार्यमहाराजजी एक स्त्रीके घर भिक्षाके लिये गये. उससमय स्त्रीके
घरम कुछ न था. स्त्री बड़ी पछिताई श्रीमहाराजको करुणा आई
और कहा कि तेरे घरमें जो दाना अन्नका कोई या फल सूखा पड़ा
हो ढूंढकर ला, एक आमला उस स्त्रीको मिला अतिसंकोचके साथ
महाराजके भिक्षावस्त्रमें दिया जो कि उस स्त्रीके घरमें सिवाय उस-
आमलेके कुछ नथा. श्रीमहाराजने सर्वस्वदानकी कल्पनाकर
लक्ष्मीजाका आवाहन किया. श्रीजी आईं. महाराजनेकहा इसस्त्रीको
विशेष द्रव्य दो. महाराणीजीने कहा हमको देनेमें इनकार नहीं.
परंतु सप्तजन्म यह दारिद्री रहेगी ऐसे इसके कर्म हैं. और यह मर्या-
दाभी आपकी बांधी हुई है. महाराजने कहा इसने इससमय सर्वस्व-
दान किया इसका प्रत्यक्ष शीघ्र मनवांछित फल होना चाहिये.
देवीजी बोलीं कि सत्यहै जो आज्ञा हो. महाराजने कहा कि इसका
घर सोनेके आमलोंसे भर दो उसीसमय सोनेके आमले उसके
घरमें वरसे, घर भरगया. श्रीमहाराज उस स्त्रीको सर्वस्वदानका
माहात्म्य कहकर परमपदके प्राप्तीका वरदान दे गये. विचारो
भक्तिमार्गमें तर्कका अवसर नहीं, स्त्री शूद्रादि भक्तिकरके सब परम-
पदके अधिकारी हैं. भक्तिका फल प्रत्यक्ष देखनेके लिये बीबीजानिकी
और बीबीबीराकी कथा लिखी गई "भक्तिभक्तभगवंतगुरु, चतुर्ना-

मवपुएक ॥ तिनकेपदवंदनाकिये, नाशतविघ्नअनेक" अथवा "तिनकेजसबरननकिये, नाशतविघ्नअनेक" चारोंका प्रभाव इस टीकामें लिखागया. ग्रंथके बीचका यह मंगलाचरण है. आनंदचन्द्र प्रभाग्रंथ वार्तिकभाषामें बीबीबीरा और बीबीजानिकीने मिलकर बनायाहै. संख्यामें दशहजार श्लोकोंसे कम नहीं सिवाय होगा. अ, क, ह, इत्यादि अक्षरोंके संख्यापर अकारसे हकारपर्यन्त कोई सौ प्रामाणिकमहानुभावोंकी (कथा उसमें सिवाय वैराग्य विद्या भक्ति इत्यादिकोंसे विशेष) लिखीहैं, उसग्रंथसे और शाब्दादिप्रमाणोंकरके यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि स्त्री शूद्रादि सब लोग लुगाईमात्र भक्तिके प्रतापसे परमगतिको प्राप्त होते हैं जिससे परे अन्यश्रेष्ठ कोई गति नहीं उसकोही परमगति कहते हैं ॥ ३२ ॥

मू०-किंपुनर्ब्राह्मणाःपुण्याभक्taराजर्षयस्तथा ॥
अनित्यमसुखंलोकमिमंप्राप्यभजस्वमाम् ॥ ३३ ॥

तथा १ ब्राह्मणाः २ राजर्षयः ३ पुण्याः ४ भक्ताः ५ पुनः ६ किम् ७ असुखम् ८ अनित्यम् ९ इमम् १० लोकम् ११ प्राप्य १२ माम् १३ भजस्व १४ ॥ ३३ ॥ अ०-उ० व्यवहारमें जो ब्राह्मण क्षत्रिय कहलाते हैं यह मेरी भक्ति करके परमगतिको प्राप्त हों तो इसमें क्या कहना है. अर्थात् यह बात बेसंदेह है, इसमें व्यवहार परमार्थ दोनोंका सम्मत है. परन्तु विना मेरे भक्ति हे अर्जुन ! जो तू चाहे कि मैं व्यवहारमें क्षत्रिय कहलाता हूं इस हेतुसे परमगतिको प्राप्त होजाऊंगा इसका लेशमात्रभी भरोसा मत रख, मैं तुझको समझाता हूं कि यह व्यावहारिकजातिका अभिमान छोड जल्द मेरा भजन कर शरीरोंका भरोसा नहीं. शरीरका नाम दुःखालय है. अर्थात् यह शरीर दुःखोंका घर है इसमें सुखकी आशा छोड वर्तमानमें जैसा है तू वैसाही भजन कर

तात्पर्य इसश्लोकका लिखागया अब अक्षरार्थ लिखते हैं-श्रीभगवान् कहते हैं कि जैसे व्यवहारमें जो शूद्रवर्णसंकरादि कहलाते हैं वे मेरा आश्रय लेकर मुझको प्राप्त होंगे. अर्थात् परमगतिको प्राप्त होते हैं. तैसे १ सि० ही व्यवहारमें जो ❀ ब्राह्मण २ सि० और ❀ राजऋषि (क्षत्रिय) ३ सि० कैसे हैं यह कि व्यवहारमें भी उनको जन्मसेही ❀ पवित्र ४ सि० कहते हैं, यह मेरे ❀ भक्त ५ सि० होकर अर्थात् मेरी भक्तिकरके परमगतिको प्राप्त हो तो ❀ फिर ६ क्या ७ सि० कहना है. इसबातकाही अर्जुन निश्चय रख बेसन्देह तू भक्तिकरके परमगतिको प्राप्त होगा. इसवास्ते ❀ अनित्य ८ सि० और ❀असुख ९ अर्थात् नहीं है किसी कालमें सुख जिसमें ऐसे ९. इस १० शरीरको ११ प्राप्त होकर १२ मेरा १३ भजनकर १४ अर्थात् मुझको भज १४. तात्पर्य अनित्यहोनेसे तू तो देर मतकर और असुख होनेसे यह मत समझ कि जिसकालमें सुख होगा तब भजन करूंगा. इसमें कभी सुख होताही नहीं, सुख भजनमें हीं है. व्यवहारके जातीका आश्रयछोड़, भक्तिका आश्रय ले. जिस भक्तिके प्रतापसे व्यवहारमें जो शूद्रवर्णसंकर कहे जाते हैं वे भी परमगतिको प्राप्त होते हैं और तू तो व्यवहारमेंभी उत्तम कहलाता है, तू क्यों देर करता है जल्द भजन कर. यह मतलब है महाराजका ॥ ३३ ॥

मू०-मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसियुक्त्वैवमात्मानंमत्परायणः ॥ ३४ ॥

मन्मनाः १ भव २ मद्भक्तः ३ मद्याजी ४ माम् ५ नमस्कुरु ६ एवम् ७ आत्मानम् ८ युक्त्वा ९ मत्परायणः १० माम् ११ एव १२ एष्यसि १३ ॥ ३४ ॥ अ०-उ० भजनका प्रकार दिखलाते हुए फलपूर्वक इस प्रसंगको समाप्त करतेहैं-मुझमें है मन जिसका १

सि०ऐसा ❀हो तू २ अर्थात् मुझमेंही मन लगा २. मेरा भक्त ३ सि०हो और ❀मेरा भजन करनेवाला ४ सि० हो तू ❀ अर्थात् मेरी पूजा कर ४. सि०और ❀ मुझको ५ नमस्कार कर ६ इस-प्रकार ७ मनको ८ सि० मुझमें ❀लगाकरके ९ मुझ परायणहुआ १० मुझको ११ ही १२ प्राप्त होगा तू १३. अर्थात् मुझ परमान-न्दस्वरूपको प्राप्त होगा १३ ॥ ३४ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.

मू०–श्रीभगवानुवाच ॥ भूयएवमहाबाहोशृणुमे परमं वचः॥यत्तेहंप्रीयमाणायवक्ष्यामिहितकाम्यया॥१॥

महाबाहो १ भूयः२ एव ३ मे ४ वचः ५ शृणु ६ यत् ७ परमम् ८ ते ९ प्रीयमाणाय १० हितकाम्यया ११अहम् १२ वक्ष्यामि १३ ॥ १ ॥ अ०–उ०सातवें और नववें अध्यायमें संक्षेपकरके तो मैंने अपने विभूतियोंका निरूपण किया. अब विस्तारपूर्वक कहता हूं. हे अर्जुन! १ फिरभी २।३ मेरा ४ वचन ५ सुन ६ सि० कैसा है वो वचन कि ❀ जो ७ परमार्थनिष्ठावाला ८ अर्थात् मेरा वचन सुननेसे परमार्थमें निष्ठा होजाती है, वारंवार तुझसे इस-लिये कहता हूं कि मेरे वचन सुननेमें तेरी प्रीति है ८ तुझप्रीतिमा-नूके अर्थ ९।१० अर्थात् तू मेरे वचनमें श्रद्धाकरताहै, इसवास्ते तेरे-अर्थ अर्थात् तुझसे १०. हितकी कामनाकरके ११ अर्थात् तू मेरा प्यारा है, मैं यह चाहता हूं कि तेरा पीछे भला हो इसवास्तेभी ११. मैं १२ कहूंगा १३ ॥ १ ॥

मू०-नमेविदुःसुरगणाःप्रभवंनमहर्षयः ॥
अहमादिर्हिदेवानांमहर्षीणांचसर्वशः ॥ २ ॥

मे १ प्रभवम् २ न ३ सुरगणाः ४ विदुः ५ न ६ महर्षयः ७ हि८ सर्वशः ९ देवानाम् १० महर्षीणाम् ११ च १२ अहम् १३ आदिः १४ ॥ २ ॥ अ०-उ० सिवाय मेरे मेरेप्रभावको कोई नहीं जानता इसवास्ते भी कहूंगा-मेरे १ प्रभावको २ न ३ देवतोंके समूह ४ जानते हैं ५ न ६ महर्षी ७ क्योंकि ८ सबप्रकारसे ९ देवतोंका १० और महर्षियोंका भी ११ । १२ मैं १३ आदि १४ सि० हूं ❀ तात्पर्य प्रभुके अचिन्त्यशक्तिको और सामर्थ्यको जब देव नहीं जानते तो फिर मनुष्य कब जानसक्ते हैं क्योंकि कारणसे कार्य होता है, इसवास्ते कार्य कारणको नहीं जानसक्ता परंतु कार्यसे कारणका अनुमान होसक्ताहै-तात्पर्य सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मासे पृथक् कोई परमेश्वरको नहीं जानसक्ता ॥ २ ॥

मू०-योमामजमनादिंचवेत्तिलोकमहेश्वरम् ॥
असंमूढःसमर्त्येषुसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३ ॥

यः १ माम् २ अजम् ३ अनादिम् ४ च ५ लोकमहेश्वरम् ६ वेत्ति ७ सः ८ मर्त्येषु ९ असंमूढः १० सर्वपापैः ११ प्रमुच्यते १२ ॥ ३ ॥ अ०-उ० मुझको इसप्रकार जो जानता है सो तो जानता है और वो ज्ञानी बेसन्देह मुक्त होगा जो १ मुझको २ अर्थात् सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मको मुझसे अभिन्न २ जन्मरहित ३ अनादि ४ । ५ सि० और सच्चिदानन्द सोपाधिकमायोपहित हुआ ❀ लोकोंका महेश्वर ६ सि० है. इसप्रकार जो मुझको ❀ जानता है ७ सो ८ मनुष्योंमें ९ अज्ञानरहितहै १० अर्थात् उसीका अज्ञान दूर हुआ १०-सि० वोही सब पापोंकरके ११ अर्थात समस्तकर्मोंके फल (अगले पिछले) ११ बेसन्देह मुक्त होगा १२. (जो इसश्लोकका अर्थ ऐसे किया

जाय कि मुझ वासुदेवको अजअनादि लोकोंका महेश्वर जानता है सो मनुष्योंमें ज्ञानी है, सब पापोंकरके मुक्त होगा) इस अर्थमें यह शंका है कि श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजमूर्तिमान्को उपासक जनभी अजादि महेश्वर कहते हैं और ज्ञाननिष्ठावालेभी यही कहते हैं. वे कौन हैं कि जो श्रीमहाराजको जन्मादिवाला जीव कहते हैं. प्राकृत मूर्ख स्त्री बालक और नास्तिक इन्होंका इसजगह कुछ प्रसंग नहीं. कर्मी कर्महीकों फलदाता जानते हैं कर्मसे पृथक् कोई ईश्वर नहीं मानते. विचारो कि यह उपदेश श्रीभगवान्का किसीको है. तात्पर्य मायोपहितसच्चिदानन्दको अविद्योपहितसच्चिदानन्दसे अर्थात् ईश्वर को जीवसे जोलक्ष्यार्थमें अपृथक् समझतेहैं कि,मायोपहित हुआ यही अविद्योपाहित जीव सच्चिदानन्द महेश्वरहै इसी हेतुसे अज अनादिहै जब ऐसा सच्चिदानन्दआत्माको जानेंगे तब वे मुक्त होंगे. जो ज्ञान इस श्लोकमें कहा है, वो कुछ सहज नहीं समझना. पिछले श्लोकमें श्रीभगवान् कहचुके हैं कि, मेरे प्रभावको ऋषि और देवताभी नहीं जानते,मनुष्य तो क्या जानेंगे.बेसन्देह जो ईश्वरसे अभिन्न निर्विकार आत्माको सच्चिदानन्द जानेगा, वोही भगवत्के प्रभावको जानेगा. और जो आपको भक्त, ऋषि, देवता,मनुष्य इत्यादि ऐसा जानेंगे.वे नहीं जानेंगे, इसप्रकार समझना चाहिये ॥ ३ ॥

मू०—बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहःक्षमासत्यंदमःशमः ॥
सुखंदुःखंभवोभावोभयंचाभयमेवच ॥ ४ ॥

बुद्धिः १ ज्ञानम् २ असंमोहः ३ क्षमा ४ सत्यम् ५ दम ६ शमः ७ सुखम् ८ दुःखम् ९ भवः १० भावः ११ भयम् १२ च १३ अभयम् १४ एव १५ च १६ ॥ ४ ॥ अ०—उ० अब तीन श्लोकोंमें सोपाधिक अपने स्वरूपकी ईश्वरता प्रगट करते हैं.—सारासारको भलेप्रकार जाननेवाली अंतःकरणकी वृत्ति १ आत्माका निश्च

करनेवाली आत्माकार अंतःकरणकी वृत्ति २ जिस काममें प्रवृत्त होना विवेकपूर्वक होना और उसजगह चित्त व्याकुल न होना, सदाचैतन्य रहना ३ पृथिवीवत् सहनशील होना ४ यथार्थ (सन्देहरहित) बोलना ५ इन्द्रियोंका निरोध ६ अंतःकरणका निरोध ७ अनुकूलपदार्थमें जो अंतःकरणकी वृत्ति ८।९ उद्भव होना १० उद्भव न होना ११ त्रास होना १२। १३ त्रास न होना १४। १५। १६ सि० अगले श्लोकके साथ इसका संबंध है, अगले श्लोकमें श्रीभगवान् कहेंगे कि, यह शमादि पृथक् पृथक् भाव मुझ सोपाधिक ईश्वरसे होते हैं अर्थात् शुद्धसच्चिदानन्दआत्मा निर्विकार है इसप्रकार निरुपाधिक और सोपाधिक सच्चिदानन्दको जानना भगवत्का जानना है ❀ ॥ ४ ॥

मू०–अहिंसासमतातुष्टिस्तपोदानंयशोयशः ॥
भवन्तिभावाभूतानांमत्तएवपृथग्विधाः ॥ ५ ॥

अहिंसा १ समता २ तुष्टिः ३ तपः ४ दानम् ५ यशः ६ अयशः ७ पृथग्विधाः ८ भावाः ९ भूतानाम् १० मत्तः ११ एव १२ भवन्ति १३ ॥ ५ ॥ अ०–हिंसारहित १ रागद्वेषादिरहित २ सि० दैवयोगसे अपनेआप जो पदार्थ प्राप्त होजाय उसीमें ❀ संतोष ३ इन्द्रियोंका निग्रह ४ सि० न्यायसे कमायाहुआ अन्न सुपात्रोंको ❀ देना ५ सत्कीर्ति अर्थात् सज्जनोंमें कीर्ति होना ६. अकीर्ति अर्थात् जो लोग भगवत्से विमुख हैं और भगवद्भक्तोंसे वैर रखते हैं इसहेतुसे उनकी जो बुराई होती है, उसको अकीर्ति कहतेहैं ७. ये सब कीर्ति अकीर्ति नानाप्रकारके भाव ८। ९ सि० बुद्धि ज्ञानादि ❀ प्राणियोंके १० मुझको ११ ही १२ होते हैं १३. तात्पर्य सोपाधिक चैतन्यसे ये सब होते हैं "हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधिहाथ" । पुराणोंमें कथाहै कि पृथिवीपर भगवत्संबंधी स्त्री पुरुषोंके मुखसे जबतक

जिसका यश श्रवण करनेमें आता है तबतक वे कीर्तिमान् स्वर्गमें निवास करते हैं ॥ ५ ॥

मू०-महर्षयः सप्तपूर्वेचत्वारोमनवस्तथा ॥

मद्भावामानसाजातायेषांलोकइमाः प्रजाः ॥ ६ ॥

पूर्वे १ चत्वारः २ सप्त ३ महर्षयः ४ तथा ५ मनवः ६ मद्भावाः ७ मानसाः ८ जाताः ९ येषाम् १० लोके ११ इमाः १२ प्रजाः १३ ॥६॥अ०-सि०मैथुनीसृष्टिसे ❋ पहले १ सि०जोहुए ❋ चार२ सि०सनकादि और ❋ सात ३ सि० भृग्वादि ❋ महर्षी ४ तैसेही५ मनु६सि० स्वायम्भ्वादि ❋ मेराही है प्रभाव जिनमें७सि० मुझ हिरण्यगर्भात्माके ❋ संकल्पमात्रसे ८ उत्पन्नहुए हैं ९ अर्थात् उनके शरीरोंको मायामय समझना ९. सि० उनका प्रभाव यह है कि ❋ जिनकी १० लोकमें ११ यह १२ प्रजा १३ सि० है ❋ तात्पर्य प्रजा दोप्रकारकी है निवृत्तिमार्गवाली एक, प्रवृत्तिमार्गवाली दूसरी. निवृत्तिमार्गके आचार्य सनकादि, प्रवृत्तिमार्गके आचार्य भृग्वादि हैं, ये दोनों मार्ग अनादि हैं. सनकादिमहाराजने प्रवृत्तिमार्गके तरफ कभी किसीकालमें दृष्टिभी नहीं की. जबसे उनका आविर्भाव हुआ तबसेही बालजितेन्द्रिय ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित परमहंस हुए विचरते रहते हैं. जिसजगह जाते हैं सब देवता विष्णुमहेशादि उनके सामने खडे होजाते हैं और यह सामर्थ्य रखते हैं कि चाहें जिस देवताको शाप देदें, अनुग्रह करदें, यह प्रताप ज्ञाननिष्ठा और निवृत्तिका समझना। मोक्षमार्ग निवृत्तिमार्गवाले संन्यासीपरमहंसोंसे ही मिलताहै,जो आपप्रवृत्तिबद्धहैं वे दूसरेको कैसे मुक्त करेंगे ६॥

मू०-एतांविभूतिंयोगंचममयोवेत्तितत्त्वतः ॥

सोविकंपेनयोगेनयुज्यतेनात्रसंशयः ॥ ७ ॥

एताम् १ मम २ विभूतिम् ३ योगम् ४ च ५ यः ६ तत्त्वतः

वेत्ति ८ सः ९ अविकम्पेन १० योगेन ११ युज्यते १२ अत्र १३ न १४ संशयः १५ ॥ ७ ॥ अ०—उ० यथार्थज्ञानका मुक्ति फल है सो दिखलाते हैं. इस १ मेरे २ विभूतिको ३ और योगको ४।५ जो यथार्थ ६।७ जानता है ८ सो ९ निश्चल १० योगकरके ११ युक्त होजाता है १२ अर्थात् संशयविपर्ययरहित होजाता है १२. इसमें १३ नहीं है १४ संशय १५ ॥ ७ ॥

मू०—अहं सर्वस्यप्रभवोमत्तःसर्वंप्रवर्तते ॥
इतिमत्त्वाभजंतेमांबुधाभावसमन्विताः ॥ ८ ॥

सर्वस्य १ प्रभवः २ अहम् ३ मत्तः ४ सर्वम् ५ प्रवर्त्तते ६ इति ७ मत्वा ८ भावसमन्विताः ९ बुधाः १० माम् ११ भजन्ते १२ ॥ ॥८॥ अ०—उ० संशयविपर्ययरहित भगवद्भक्त ऐसा भगवत्को मानकर भजन करते हैं, फिर भगवत्की कृपासे उनको आत्मज्ञान होजाता है. यह बात चारश्लोकोंमें कहते हैं. सबकी १ उत्पत्ति है जिससे २ सि० सो मन्वादि ❀ मैं ३ सि० हूं ❀ मुझसे ४ सि० ही बुद्ध्यादिपदार्थ ❀ सब ५ चेष्टा ६ सि० करते हैं. अर्थात् सबका प्रेरक अन्तर्यामी हैं ❀ यह ७ समझकर ८ श्रद्धापूर्वक ९ विद्वान् १० मुझको ११ भजते हैं १२ ॥ ८ ॥

मू०—मच्चित्तामद्गतप्राणाबोधयंतःपरस्परम् ॥
कथयंतश्चमांनित्यंतुष्यंतिचरमंतिच ॥ ९ ॥

मच्चित्ताः १ मद्गतप्राणाः २ परस्परम् ३ बोधयन्तः ४ नित्यम् ५ माम् ६ कथयंतः ७ च ८ तुष्यंति ९ च १० रमन्ति ११ च १२ ॥ ९ ॥ अ०—उ० प्रीतिपूर्वक भजन करनेवालोंका लक्षण यह है. उत्तरोत्तर उनकी वृत्ति इसप्रकार भगवत्स्वरूपमें बढती है. एक अंकमें प्रथमभूमिकावालोंका लक्षण है. मुझसच्चिदानन्दमें है चित्त जिनका १ मुझमें लगादिया है प्राण जिन्होंने २ अर्थात् [illegible]

जीवना मेरे आधीन समझते हैं २. सि०परस्पर आपसमें ३ बोध-करते हैं अर्थात् दोचारभक्त तत्त्वके जिज्ञासू मिलकर विचार करतेहैं श्रुति स्मृति युक्ति इन प्रमाणोंकरके परस्पर बोधन करतेहैं ४. सि०कोई श्रुति प्रमाण देताहै, कोई स्मृति युक्तिकरके सिद्ध करदेते हैं. जब सब भक्तोंका और श्रुति स्मृति युक्तियोंका शंका समाधान पूर्वक एकपदार्थ (भगवत्तत्त्व) में सम्मत होजाताहै, उसको जानकर जिज्ञासुओंसे ❋ नित्य (सदा) ५ मुझको ६ कहते हैं अर्थात् भक्तोंको भगवत्स्वरूपका उपदेश करते रहते हैं ७।८. सि०और उसी भगवत्स्वरूपके आनन्दमें ❋सन्तोष करतेहैं ९।१० अर्थात् वो निरतिशय आनन्दहै, उस आनन्दसे परे विषयानन्दको तुच्छ समझते हैं ॥ सि०सदा उसी आनन्दमें ❋ रमतेहैं ११ । १२ अर्थात् उसमें प्रीतिरखते हैं, सच्चिदानन्दस्वरूपमें मग्न रहते हैं ॥ ९ ॥

मू०—तेषांसततयुक्तानांभजतां प्रीतिपूर्वकम् ॥
ददामिबुद्धियोगंतंयेनमामुपयांतिते ॥ १० ॥

सततयुक्तानाम् १ प्रीतिपूर्वकम् २ भजताम् ३ तेषाम् ४ तम् ५ बुद्धियोगम् ६ ददामि ७ येन ८ माम् ९ ते १० उपयान्ति ११॥१०॥

अ०—निरन्तर युक्त हुए १ प्रीतिपूर्वक २ सि०जो मेरा ❋ भजन करते हैं ३, उनको ४ वो ५ ज्ञानयोग ६ देऊँगा मैं ७ सि०कि ❋ जिसकरके ८ मुझको ९ वे १० प्राप्तहोंगे ११. टी०उनको ज्ञान योग देता हूं ४।५।६।७ ॥ १० ॥

मू०—तेषामेवानुकंपार्थमहमज्ञानजंतमः ॥
नाशयाम्यात्मभावस्थोज्ञानदीपेनभास्वता ॥ ११ ॥

तेषाम् १ एव २ अनुकम्पार्थम् ३ अहम ४ अज्ञानजम ५ तमः ६ नाशयामि ७ आत्मभावस्थः ८ भास्वता ९ ज्ञानदीपेन १० ॥११॥

ईनन्के १।२ भलेके लिये ३ मैं ४ अज्ञानसे उत्पत्तिहै जिसकी

ऐसा जो तम ५ । ६ अर्थात् संसार ६सि० तिसका ❀ नाशकरदेता हूं ७, बुद्धिके वृत्तिमें स्थित होकर ८ प्रकाशरूप ज्ञानदीपककरके९। १० तात्पर्य जो निरन्तर पूर्वरीतिकरके मेरा भजन करतेहैं उनको निरतिशय परमानन्दके प्राप्तिके लिये मूलाज्ञान और तूलाज्ञानका मैं नाश करदेता हूं, निर्मलबुद्धिके वृत्तिमें स्थित होकर ऐसा प्रकाश करता हूं कि, सब संसार उसको मिथ्या प्रतीत होने लगता है और आत्मा शुद्धस्वरूप, सच्चिदानन्द, निराकार, निर्विकार, अपरोक्ष होजाता है. ऐसा ज्ञानरूप दीपक उसके हृदयमें प्रज्वलित करता हूं कि अपनेआप सब पदार्थ नित्य अनित्य भलेप्रकार फुरने लगते हैं, फिर विवेक वैराग्यादि साधनचतुष्टयसम्पन्न होकर आत्मज्ञानद्वारा परमानन्दको प्राप्त होजाता है ॥ ११ ॥

मू०–अर्जुनउवाच ॥ परंब्रह्मपरंधामपवित्रंपरमंभवान् ॥
पुरुषंशाश्वतंदिव्यमादिदेवमजंविभुम् ॥ १२ ॥

अर्जुनउवाच। भवान् १ परम् २ ब्रह्म ३ परम्४ धाम ५परमम्६ पवित्रम् ७ पुरुषम् ८ शाश्वतम् ९ दिव्यम् १० आदिदेवम् ११ अजम् १२ विभुम् १३ ॥१२॥ अ०–अर्जुन कहता है, सि० हे कृष्णचंद्रमहाराज ! ❀ आप १ परंब्रह्म२।३परंधाम४।५परमपवित्र६।७ सि०हो. व्यासादि आपको ऐसा कहते हैं और ❀ पुरुष ८ नित्य९ दिव्य१० आदिदेव ११ अज १२ व्यापक १३ सि० कहते हैं. इस श्लोकका अगले श्लोकके साथ सम्बन्धहै ❀ ॥ १२ ॥

मू०–आहुस्त्वामृषयःसर्वेदेवर्षिर्नारदस्तथा ॥
असितोदेवलोव्यासःस्वयंचैवब्रवीषिमे ॥ १३ ॥

सर्वे १ ऋषयः २ देवर्षिः ३ नारदः ४ तथा ५असितः६ देवलः ७ व्यासः ८ त्वाम् ९ आहुः १० स्वयम् ११ च १२ एव १३ मे १४ ब्रवीषि १५ ॥१३॥अ०–उ० इस श्लोकका पिछले श्लोकके साथ

संबंध है. सब १ ऋषि २ देवर्षि नारदजी ३।४ और ५ असित६ देवल ७ व्यासजी ८ आपको ९ सि०ऐसा ❀ कहते हैं १० सि० कि जैसा पिछले श्लोकमें परंब्रह्मसे लेकर विभूतक निरूपण किया❀ और आपभी ११।१२।१३ मुझसे१४सि०अपनेआपको वैसाही❀ कहते हो १५. सि० कि जैसा आपको व्यासादि कहतेहैं ❀॥१३॥

मू०–सर्वमेतदृतंमन्येयन्मांवदसिकेशव ॥
नहितेभगवन्व्यक्तिंविदुर्देवानदानवाः ॥ १४ ॥

केशव १ यत् २ माम् ३ वदसि ४ एतत् ५ सर्वम् ६ ऋतम् ७ मन्ये ८ भगवन् ९ हि १० ते ११ व्यक्तिम् १२ न १३ देवाः १४ विदुः १५ न १६ दानवाः १७ ॥ १४ ॥ अ०–हे केशव ! १ जो २ मुझसे ३ आप कहते हो ४ यह ५ सब ६ सत्य ७ मैं मानता हूं ८. हे भगवन् ! ९ बेसंदेह (यथार्थ)१० आपके ११ स्वरूपको वा प्रभाव-को १२ न १३ देव १४ जानते हैं १५ न १६ दानव १७ तात्पर्य परमात्माका शुद्धस्वरूप विषयवत् कोईभी नहीं जानसक्ता. भगव-त्का उपाधिसहित स्वरूप विषयवत् जाना जाता है. आत्मा स्वयं-प्रकाश है ॥ १४ ॥

मू०–स्वयमेवात्मनात्मानंवेत्थत्वंपुरुषोत्तम ॥
भूतभावनभूतेशदेवदेवजगत्पते ॥ १५ ॥

पुरुषोत्तम १ भूतभावन २ भूतेश ३ देवदेव ४ जगत्पते ५ स्वयम् ६ एव ७ आत्मना ८ आत्मानम्९त्वम्१० वेत्थ११ ॥१५॥ अ०–हे पुरुषोत्तम !१ हे भूतभावन !२ हे भूतेश! ३हे देवदेव!४हे जग-त्पते ! ५ आपही ६।७ आत्माकरके ८ आत्माको ९ आप१०जान-ते हो ११. तात्पर्य जैसे सूर्य स्वयंप्रकाश है, सूर्यके देखनेमें किसी पदार्थकी अपेक्षा नहीं, ऐसेही भगवतका शुद्धस्वरूप सच्चिदानन्द आत्माकरकेही जाना जाता है. मन वाणी और उनके देवताक

विषय नहीं फिर मनुष्योंका विषय तो कैसे होसक्ता है. टी०भूतोंके उत्पन्न करनेबाले २ भूतोंके ईश्वर ३ देवतोंके भी देवता ४ जगत्के स्वामी ५ ये सब हेतुगर्भित विशेषण हैं ॥ १५ ॥

मू०-वक्तुमर्हस्यशेषेणदिव्याह्यात्मविभूतयः ॥
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वंव्याप्यतिष्ठसि॥१६॥

आत्मविभूतयः १ दिव्याः २ हि ३ अशेषेण ४ वक्तुम्५अर्हसि६ याभिः ७ विभूतिभिः ८ इमान् ९ लोकान् १० व्याप्य ११ त्वम् १२ तिष्ठसि १३ ॥१६॥अ०-उ०जब कि अपने स्वरूपको और अपने ऐश्वर्यको आपही जानतेहो, इसवास्ते आपसेही आपकी विभूति सुना चाहता हूं, अपना ऐश्वर्य्य १ दिव्य २।३ समस्त ४ कहनेको ५ योग्यहो अर्थात् जो जो आपकी दिव्य विभूति हैं वे समस्त मुझसों कहिये ६ जिन विभूतिकरके ७।८ इस लोकको ९।१० व्याप्तकर ११ आप १२ स्थित हो १३ तात्पर्य जिन जिन विभूतिकरके इसलोकमें आप व्याप्त हो रहेहो मैं उनका चिन्तवन करना चाहता हूं इसवास्ते मुझसे कहो ॥ १६ ॥

मू०-कथंविद्यामहंयोगिंस्त्वांसदापरिचिंतयन् ॥
केषुकेषुचभावेषुचिंत्योसिभगवन्मया ॥ १७ ॥

योगिन् १ कथम् २ त्वाम् ३ सदा ४ परिचिन्तयन् ५ अहम् ६ विद्याम् ७ भगवन् ८ मया ९ केषु १० केषु ११ च १२ भावेषु १३ चिन्त्यः १४ असि १५ ॥१७॥ अ०-हे योगीश्वर! १ किसप्रकार २ आपको अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्दको ३ सदा ४ चिंतवन करता हुआ ५ मैं ६ जानूं ७. तात्पर्य इसप्रकार मुझको उपदेश कीजिये कि जिसप्रकार आपका शुद्धस्वरूप जाना जाय. हे कृष्णचंद्र! ८मुझकरके ९ किन किन पदार्थोंमें१०।११।१२।१३ चिंतवन करनेके योग्य १४ हो आप १५ अर्थात् किस किस पदार्थके

चिंतवन करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर आपका यथार्थका स्वरूप जाना जाता है. उन पदार्थोंको मैं जानना चाहताहूं. (१० से १६ तक) तात्पर्य अन्तःकरणके शुद्धिका उपाय अर्जुन बूझता है ॥ १७ ॥

मू०-विस्तरेणात्मनोयोगंविभूतिंचजनार्दन ॥
भूयःकथयतृप्तिर्हिशृण्वतोनास्तिमेऽमृतम् ॥ १८ ॥

जनार्दन १ विस्तरेण २ आत्मनः ३ योगम् ४ विभूतिम् ५ च ६ भूयः ७ कथय ८ हि ९ अमृतम् १० शृण्वतः ११ मे १२ तृप्तिः १३ न १४ अस्ति १५ ॥ १८ ॥ अ०-उ० जब मेराचित्त बहिर्मुख हो, तबभी आपका चिंतवन करता रहूं इसवास्ते हे प्रभो ! १ विस्तारकरके २ अपना योग ३।४ और विभूति ५।६ फिर ७ कहो ८ क्योंकि ९ अमृतरूप १० सि० आपका वचन ❀ सुननेसे ११ मेरी १२ तृप्ति १३ नहीं १४ होती है १५. टी० दुष्टजनोंको जो दुःख दे, वा भक्तजनोंको आनन्द दे, वा भक्तजन जिससे मोक्षकी याचना करें, उसको जनार्दन कहते हैं. यह नाम श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजका है १. सर्वज्ञतादि अचिन्त्यशक्तियोंको योग कहते हैं ५. ऐश्वर्यको विभूति कहते हैं. जैसे राजा हाथी, घोडे, सेना इत्यादि ऐश्वर्यसे जाना जाता है. ऐसेही ईश्वर अपने विभूतियोंकरके जानेजातेहैं और जैसे राजाके मंत्रियोंका आश्रय लेनेसे राजा मिलजाताहै, इसीप्रकार परमेश्वर जो आगे विभूति वर्णन करेंगे, उनके आश्रयसे शुद्ध सच्चिदानंद परमेश्वर प्राप्त होजाते हैं. श्रीकृष्णचन्द्र इस अध्यायमें वासुदेव और रामचन्द्रादि इनको अपनी विभूति कहेंगे इसबातका तात्पर्य अपने बुद्धिके अनुसार समझना चाहिये ॥ १८ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ हंततेकथयिष्यामिदिव्याह्यात्मविभूतयः ॥ प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठनास्त्यंतोविस्तरस्यमे ॥ १९ ॥

श्रीभगवान् उवाच. हन्त १ प्राधान्यतः २ दिव्याः ३ हि ४ आत्मविभूतयः ५ ते ६ कथयिष्यामि ७ कुरुश्रेष्ठ ८ मे ९ विस्तरस्य १० अन्तः ११ न १२ अस्ति १३ ॥ १९ ॥ अ०—सि० जिज्ञासु जब प्रश्न करता है, पीछे उसके गुरु जिस समय कृपा करके उत्तर देनेको चाहते हैं तो उस प्रश्नके आदरार्थ और जिज्ञासुके प्रसन्नताके लिये ऐसा बोलते हैं कि हन्त ❋ श्रीकृष्णचंद्रमहाराज कहते हैं, हन्त अर्थात् हां जो तुमने बूझा यह हमने अंगीकार किया अच्छा बूझा है अब उसका उत्तर सुनो १ प्रधान प्रधान २ सि० जो जो ❋ दिव्य ३।४ मेरी विभूति ५ सि० हैं तिनको ❋ तुझसे ६ कहूंगा ७. हे अर्जुन ! ८ मेरे ९ विस्तारका १० अर्थात् मेरे विभूतियोंके विस्तारका १० अन्त ११ नहीं १२ हैं १३ ॥ १९ ॥

मू०—अहमात्मागुडाकेशसर्वभूताशयस्थितः ॥
अहमादिश्चमध्यंचभूतानामंतएवच ॥ २० ॥

गुडाकेश १ सर्वभूताशयास्थितः २ आत्मा ३ अहम् ४ भूतानाम् ५ आदिः ६ च ७ मध्यम् ८ च ९ अन्तः १० एव ११ च १२ ॥ २० ॥ अ०—हे गुडाकेश ! सि० गुडाकेश यह जो शब्द है इस शब्दका अर्थ घनकेशभी है अर्थात् गुंजान बाल हों जिसके उसको घनकेश कहते हैं. यह नाम अर्जुनका है. अर्थात् श्रीभगवान् कहते हैं कि ❋ हे अर्जुन ! १ सि० चैतन्य हो, अपनी विभूति सुनाता हूं. प्रथम सबसे श्रेष्ठ विभूतिको सुन, सर्व भूतोंके हृदयमें विराजमान २ आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्दरूप ३ मैं ४ सि० हूं. सदा इसीका ध्यान करना चाहिये और जो इसमें मन न लगे और समझमें न आवे तो स्थूलविभूतियोंको सुन. ❋ भूतोंका ५ आदि ६ और ७ मध्य ८ और ९ अन्त १० मैंही ११।१२ सि० हूं ❋ तात्पर्य यह समझ कि ये सब भूत मुझसेही हुए, मुझमेंही स्थित हैं, मुझमेंही लय

होंगे. तात्पर्य ऐसा चिंतवन करना यही परमेश्वरकी उपासना है ॥२०॥

मू०–आदित्यानामहंविष्णुर्ज्योतिषांरविरंशुमान् ॥
मरीचिर्मरुतामस्मिनक्षत्राणामहंशशी ॥ २१ ॥

आदित्यानाम् १ विष्णुः २ अहम् ३ ज्योतिषाम् ४ अंशुमान् ५ रविः ६ मरुताम् ७ मरीचिः ८ अस्मि ९ नक्षत्राणाम् १० शशी ११ अहम् १२ ॥ २१ ॥अ०–आदित्योंमें १ विष्णुनामवाला २आदित्य में ३ सि० हू ❀ ज्योतियोंमें ४ किरणवाले ५ श्रीसूर्य नारायण पूर्णब्रह्म शुद्धसच्चिदानंद ६ सि०मैं हूं ❀ मरुद्गणोंमें ७ मरीचि ८ मैं हूं ९. नक्षत्रोंमें १० चन्द्र ११ मैं १२ सि०हूं❀॥२१॥

मू०–वेदानांसामवेदोस्मिदेवानामस्मिवासवः ॥
इन्द्रियाणांमनश्चास्मिभूतानामस्मिचेतना ॥२२॥

वेदानाम् १ सामवेदः २ अस्मि ३ देवानाम् ४ वासवः ५ अस्मि ६ इंद्रियाणाम् ७ मनः ८ च ९ अस्मि १० भूतानाम् ११ चेतना १२ अस्मि १३ ॥ २२ ॥अ०–वेदोंमें १ सामवेद २ मैं हूं ३ देवतोंमें ४ इन्द्र ५ मैं हूं ६ इन्द्रियोंमें ७ मन ८।९ मैं हूं १० प्राणियोंमें ११ ज्ञानशक्ति १२ मैं हूं १३ ॥ २२ ॥

मू०–रुद्राणांशंकरश्चास्मिवित्तेशोयक्षरक्षसाम् ॥
वसूनांपावकश्चास्मिमेरुःशिखरिणामहम् ॥ २३ ॥

रुद्राणाम् १ शंकरः २ च ३ अस्मि ४ यक्षरक्षसाम् ५ वित्तेशः ६ वसूनाम् ७ पावकः ८ च ९ अस्मि १० शिखरिणाम् ११ मेरुः १२ अहम् १३ ॥ २३ ॥अ०–रुद्रोंमें १ श्रीसदाशिवजीमहाराज शंकर भगवान् शुद्धसच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म २ मैं हूं ३। ४ यक्षराक्षसोंमें ५ कुबेर ६ वसूनमें ७ अग्नि मैं हूं ८।९।१० शिखरियोंमें ११ सुमेरु १२ मैं १३ सि०हूं❀ ॥ २३ ॥

मू०-पुरोधसांचमुख्यंमांविद्धिपार्थ बृहस्पतिम् ॥
सेनानीनामहंस्कन्दः सरसामस्मिसागरः ॥२४॥

पार्थ १ पुरोधसाम् २ बृहस्पतिम् ३ माम् ४ मुख्यम् ५ विद्धि ६ सेनानीनाम् ७ च ८ स्कन्दः ९ अहम् १० सरसाम् ११ सागरः १२ अस्मि १३ ॥ २४ ॥ अ०-हे अर्जुन ! १ पुरोहितोंमें २ बृहस्पति ३ मुझको ४ मुख्य ५ तू जान ६. और सेनाके सरदारोंमें ७।८ देवसेनापति स्वामिकार्तिक ९ मैं १० सि० हूं ❀ स्थिर जलोंमें याने तालोंमें ११ समुद्र १२ मैं हूं १३ ॥ २४ ॥

मू०-महर्षीणांभृगुरहंगिरामस्म्येकमक्षरम् ॥
यज्ञानांजपयज्ञोस्मिस्थावराणांहिमालयः ॥ २५ ॥

महर्षीणाम् १ भृगुः २ अहम् ३ गिराम् ४ एकम् ५ अक्षरम् ६ अस्मि ७ यज्ञानाम् ८ जपयज्ञः ९ अस्मि १० स्थावराणाम् ११ हिमालयः १२॥ २५ ॥ अ०-महर्षियोंमें १ भृगु २ मैं ३ सि० हूं ❀ वाणीमें अर्थात् जो बोलनेमें आवे उसमें ४ एक ५ अक्षर ६ अर्थात प्रणव ओम् ६ मैं ७ सि० हूं ❀ यज्ञोंमें ८ जपयज्ञ ९ मैं १० सि० हूं ❀ स्थावरोंमें ११ हिमालय पर्वत १२ मैं हूं ❀ ॥ २५ ॥

मू०-अश्वत्थःसर्ववृक्षाणांदेवर्षीणांचनारदः ॥
गंधर्वाणांचित्ररथःसिद्धानांकपिलोमुनिः ॥ २६ ॥

सर्ववृक्षाणाम् १ अश्वत्थः २ देवर्षीणाम् ३ च ४ नारदः ५ गंधर्वाणाम् ६ चित्ररथः ७ सिद्धानाम् ८ कपिलः ९ मुनिः १०॥ २६ ॥ अ०-सबवृक्षोंमें १ पीपल २ देवऋषियोंमें ३ नारदजी ४।५ गंधर्वोंमें ६ चित्ररथ ७ सिद्धोंमें ८ कपिलमुनि ९।१० सि० मैं हूं ❀ ॥२६॥

मू०-उच्चैःश्रवसमश्वानांविद्धिमाममृतोद्भवम् ॥
ऐरावतंगजेन्द्राणांनराणांचनराधिपम् ॥ २७ ॥

अश्वानाम् १ उच्चैःश्रवसम् २ माम् ३ विद्धि ४ अमृतोद्भवम् ५ केवल

गजेन्द्राणाम् ६ ऐरावतम् ७ नराणाम् ८ च ९ नराधिपम् १० ॥ २७॥ अ०—घोडोंमें १ उच्चैःश्रवानामवाला घोडा २ मुझको ३ तू जान ४. सि० कैसा है वो घोडा कि जब ❋ अमृतके अर्थ समुद्र मथागयाथा उस-समय समुद्रमेंसे निकलाहुआ ५ सि० यह विशेषण उच्चैःश्रवाकाभी है और ऐरावतकाँ भी है ❋ हाथियोंमें ६ ऐरावतको ७ सि० मेरी विभूतिजान ❋ और नरोंमें ८।९ राजाको १० सि० मेरी विभूति तू जान ❋ ॥ २७ ॥

मू०—आयुधानामहंवज्रंधेनूनामस्मिकामधुक् ॥
प्रजनश्चास्मिकंदर्पःसर्पाणामस्मिवासुकिः ॥ २८ ॥

आयुधानाम् १ अहम् २ वज्रम् ३ धेनूनाम् ४ कामधुक् ५ अस्मि ६ प्रजनः ७ च ८ कन्दर्पः ९ अस्मि १० सर्पाणाम् ११ वासुकिः १२ अस्मि १३ ॥ २८ ॥ अ०—हथियारोंमें १ मैं २ वज्र ३ सि० हूं ❋ गौ-वोंमें ४ कामधेनू ५ मैं हूं ६ प्रजाके उत्पत्तिका जो हेतु ७।८ काम-देव ९ मैं हूं १० विषवाले सर्पोंमें ११ वासुकी १२ मैं हूं १३॥२८॥

मू०—अनन्तश्चास्मिनागानांवरुणोयादसामहम् ॥
पितॄणामर्यमाचास्मियमःसंयमतामहम् ॥ २९ ॥

नागानाम् १ अनंतः २ च ३ अस्मि ४ यादसाम् ५ वरुणः ६ अहम् ७ पितॄणाम् ८ अर्यमा ९ च १० अस्मि ११ संयमताम् १२ यमः १३ अहम् १४ ॥ २९ ॥ अ०—निर्विषनागोंमें १ शेषजी २।३ मैं हूं ४ जलचरोंमें ५ वरुण ६ मैं हूं ७ पितरोंमें ८ अर्यमानाम पितर ९।१० मैं हूं ११ दंडकरनेवालोंमें १२ यमराज १३ मैं १४ सि० हूं ❋ ॥ २९ ॥

मू०—प्रह्लादश्चास्मिदैत्यानांकालःकलयतामहम् ॥
मृगाणांचमृगेंद्रोहंवैनतेयश्चपक्षिणाम् ॥ ३० ॥

दैत्यानाम् १ प्रह्लादः २ च ३ अस्मि ४ कलयताम् ५ कालः ६

अहम् ७ मृगाणाम् ८ च ९ मृगेन्द्रः १० अहम् ११ पक्षिणाम् १२ वैनतेयः १३ च १४ ॥ ३० ॥ अ०—दैत्योंमें १ प्रह्लाद२।३ मैं हूं ४. संख्यावालेपदार्थोंमें ५ काल६मैं७ सि०हूं ❀ चौपायोंमें ८।९सिंह१० मैं ११ सि०पक्षियोंमें १२ गरुडजी १३।१४सि०मैं हूं ❀ ॥३०॥

मू०—पवनःपवतामस्मिरामःशस्त्रभृतामहम् ॥
झषाणांमकरश्चास्मिस्रोतसामस्मिजाह्नवी ॥ ३१ ॥

पवताम् १ पवनः २ अस्मि३शस्त्रभृताम्४ रामः ५ अहम्६झषाणाम् ७ मकरः ८ च ९ अस्मि १० स्रोतसाम् ११ जाह्नवी १२ अस्मि १३ ॥ ३१ ॥ अ०— वेगवालोंमें १ वायु २ मैं हूं ३. शस्त्रधारियोंमे ४ श्रीराचन्द्रजीमहाराज शुद्धसच्चिदानन्द पूर्णब्रह्म ५ मैं ६ सि०हूं ❀ मछलियोंमें७ मकरनामवाली मच्छी ८ मैं हूं९।१० वहनेवाले जलोंमें ११ श्रीगंगाभागीरथी १२ मैं हूं १३ ॥ ३१ ॥

मू०—सर्गाणामादिरंतश्चमध्यंचैवाहमर्जुन ॥
अध्यात्मविद्याविद्यानांवादःप्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥

अर्जुन १ सर्गाणाम् २ आदिः ३ मध्यम् ४ च ५ अंतः ६ अहम् ७ विद्यानाम् ८ अध्यात्मविद्या ९ प्रवदताम् १० वादः ११ अहम् १२ ॥ ३२ ॥ अ०—हे अर्जुन ! १ जगत्का २ आदि ३ मध्य और अन्त ४।५।६ मैं ७ सि०हूं ❀ विद्याके बीचमें ८ आत्म विद्या (वेदान्तशास्त्र) ९. सि०वेदांतशास्त्रमें केवल आत्माके बन्ध मोक्षका विचार है, इसीवास्ते इसको अध्यात्मविद्या कहते हैं, मोक्षशास्त्र यही है. विना इसशास्त्रके पढे सुने आत्मानात्मका ज्ञान कभी नहीं होता. अज्ञान संशय विपर्यय इसी शास्त्रके पढने सुननेसे नाश होते हैं. इसशास्त्रका सेवन करना साक्षात् भगवत्का प्रत्यक्ष सेवनकरना है ❀ चर्चा करनेवालोंमें१०वाद ११ मैं १२सि० हूं ❀ टी० चर्चा तीन प्रकारकी है. जल्प, वितंडा और वाद. जो केवल

अपनेही पक्षमें श्रुत्यादिकोंका प्रमाण देकर युक्तियोंके सहित अपनेही पक्षको सिद्ध करताजा. दूसरेपक्षपर दृष्टि न दे, उसको जल्प कहते हैं और जो दूसरेके पक्षमें दोषही कहता चलाजा, अपने पक्षके दोषोंका स्मरण न करे, उसको वितंडा कहते हैं और जो अपने और दूसरे पक्षको शंकाप्रमाणोंके साथ प्रतिपादन करे, गुरु शिष्यको बोधके लिये, उसको वाद कहते हैं. वाद परमार्थनिर्णयके लिये होता है उसका फल परमानन्द है. जल्पवितंडा वाक्यवाद हैं, उनका फल दुःख है. जिसका पक्ष चर्चामें दब जायगा, बेसन्देह वो दुःख पावेगा और जिसने विद्याके बलसे झूंठे बातको सिद्ध किया, वो बेसन्देह पापका भागी होकर परलोकमें दुःख पावेगा. न्यायशास्त्रादिविद्या अन्यपदार्थ है और परमार्थका यथार्थनिर्णय अन्यपदार्थ है. क्याहुआ जो किसीनें अनजानके सामने अपना झूंठापक्ष सिद्धकरदिया. किसीदिन विद्वानोंके सामने दबजायगा. चर्चाका सार सत्यार्थ है ॥ ३२ ॥

मू०—अक्षराणामकारोस्मिद्वंद्वःसामासिकस्यच ॥
अहमेवाक्षयःकालोधाताहंविश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

अक्षराणाम् १ अकारः २ अस्मि ३ सामासिकस्य ४ द्वन्द्वः ५ च ६ अहम् ७ एव ८ अक्षयः ९ कालः १० धाता ११ विश्वतोमुखः १२ अहम् १३ ॥ ३३ ॥ अ०—अक्षरोंमें १ अकार २ मैं हूं ३ समासोंमें ४ द्वन्द्वसमास ५ मैंहीहूं ६।७।८ अक्षय ९ काल १० सि० भी मैं हूं. पीछे काल वो कहाथा। कि जो संख्यामें आता है. पल, घडी, दिन, रात्रि, वर्ष और युगादिको क्षयकाल कहते हैं. यहां अक्षय यह कालका विशेषण है. अथवा परमेश्वरका नाम कालकाभी काल है ❀ कर्मफल विधाता ११ विराट १२ मैं १३ सि० हूं ❀ ॥ ३३ ॥

मू०—मृत्युःसर्वहरश्चाहमुद्भवश्च भविष्यताम् ॥
कीर्तिःश्रीर्वाक्चनारीणांस्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा ॥ ३४ ॥

मृत्युः १ सर्वहरः २ च ३ अहम् ४ भविष्यताम् ५ उद्भवः ६ च ७ नारीणाम् ८ कीर्तिः ९ श्रीः १० वाक् ११ च १२ स्मृतिः १३ मेधा १४ धृतिः १५ क्षमा १६ ॥ ३४ ॥ अ०— मृत्यु १ सबका हरनेवाला २ मैं ३।४ सि० हूं ❀ होनेवाले पदार्थोंमें ५ अर्थात् बड़ाई होनेके योग्य जो पदार्थ हैं, उनमें मोक्षके प्राप्तिका हेतु उद्भव, उत्कर्ष अभ्युदयभी ६। ७ सि० मैं हूं ❀ स्त्रियोंमें ८ कीर्ति अर्थात् महापुरुषोंमें शम दम औदार्य दानादिगुणोंकी ख्याति होना व कीर्ति ९ सि० भगवत्की विभूति है ❀ लक्ष्मी कांति वा शोभा १० मधुरवाणी ११। १२ बहुतदिनोंकी बात याद रहना १३ ग्रन्थधारणाशक्ति १४ क्षुत्पिपासादिसमयमें चित्तमें क्षोभ न होना १५ अपमानादिसमयमें क्षोभ न होना, १६ सि० ये सब परमेश्वरकी विभूति हैं. जिनके आभासमात्रसंबन्धसे स्त्री पुरुष श्रेष्ठ कहलाते हैं ❀ ॥ ३४ ॥

मू०—बृहत्सामतथासाम्नांगायत्रीछन्दसामहम् ॥
मासानांमार्गशीर्षोहमृतूनांकुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

साम्नाम् १ तथा २ बृहत्साम ३ छंदसाम् ४ गायत्री ५ अहम् ६ मासानाम् ७ मार्गशीर्षः ८ अहम् ९ ऋतूनाम् १० कुसुमाकरः ११ ॥ ३५ ॥ अ०—उ० वेदोंमें सामवेद मैं हूं, यह श्रीभगवान्ने पीछे कहा, अब कहते हैं कि सामवेदमें १ भी २ बृहत्सामऋचा ३ सि० मैं हूं ❀ छन्दोंमें ४ गायत्री ५ मैं ६ सि० हूं ❀ महीनोंमें ७ अगहन (मार्गशीर्ष) ८ मैं ९ सि० हूं ❀ ऋतुमें १० वसन्तऋतु ११ सि० मैं हूं मीन और मेषका सूर्य जबतक वर्तता है. इनहीं दोनों महीनोंको वसन्त कहते हैं. इसी ऋतुमें यह टीका बनी है ॥ ३५॥

मू०—द्यूतंछलयतामस्मितेजस्तेजस्विनामहम् ॥
जयोस्मिव्यवसायोस्मिसत्त्वंसत्त्ववतामहम् ॥ ३६ ॥

छलयताम् १ द्यूतम् २ अस्मि ३ तेजस्विनाम् ४ तेजः ५ अहम् ६

जयः ७ अस्मि ८ व्यवसायः ९ अस्मि १० सत्त्ववताम् ११ सत्त्वम् १२ अहम् १३ ॥ ३६ ॥ अ०– छलकरनेवालोंमें १ जुवा २ मैं हूं ३ तेजस्वी पुरुषोंमें ४ तेज ५ मैं ६ सि० हूं. जीतनेवालोंमें ❀ जय ७ मैं हूं ८ सि० निश्चल करनेवालोंमें ❀ आत्मनिश्चय ९ मैं हूं १० सत्त्वगुणी पुरुषोंमें ११ सत्त्वगुण १२ मैं हूं १३ टी० छलया लोगोंके लिये जुवा अपनी विभूति परमेश्वरने कही है ११२॥ ३६॥

मू०–वृष्णीनांवासुदेवोस्मिपांडवानांधनंजयः ॥
मुनीनामप्यहंव्यासःकवीनामुशनाकविः ॥ ३७ ॥

वृष्णीनाम् १ वासुदेवः २ अस्मि ३ पांडवानाम् ४ धनंजयः ५ मुनीनाम् ६ अपि ७ अहम् ८ व्यासः ९ कवीनाम् १० उशना ११ कविः १२ ॥ ३७ ॥ अ०– वृष्णियोंमें १ वासुदेव २ मैं हूं ३ अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज शुद्धसच्चिदानन्दपूर्णब्रह्म वसुदेवजीके मूर्तिमान् पुत्र, कि जो अर्जुनको उपदेशकरते हैं यही वासुदेव हैं ३.पांडवनमें ४ अर्जुन ५ सि० जिसको भगवान् उपदेश करते हैं ❀ मुनीश्वरोंमें ६। ७ मैं ८ श्रीवेदव्यासजी ९ सि० हूं ❀ कविपुरुषोंमें १० शुक्राचार्य ११ कवि १२ सि० मैं हूं ❀ ॥ ३७ ॥

मू०–दंडोदमयतामस्मिनीतिरस्मिजिगीषताम् ॥
मौनंचैवास्मिगुह्यानांज्ञानंज्ञानवतामहम् ॥ ३८ ॥

दमयताम् १ दंडः २ अस्मि ३ जिगीषताम् ४ नीतिः ५ अस्मि ६ गुह्यानाम् ७ मौनम् ८ च ९ एव १० अस्मि ११ ज्ञानवताम् १२ ज्ञानम् १३ अहम् १४ ॥ ३८ ॥ अ०–निरोधकरनेवालोंमें १ दंड २ मैं हूं ३ जीतनेकी इच्छा जिनको है उनमें ४ नीति ५ मैं हूं ६ गुप्तपदार्थोंमें ७ चुपरहना ८।९।१० मैं हूं ११ ज्ञानवालोंमें १२ ब्रह्मज्ञान (आत्मज्ञान) १३ मैं १४ सि० हूं ❀ तात्पर्य दूसरेका स्वरूप और ऐश्वर्य जाननेसे किसीको क्या मिलना है अपना स्वरूप और अपना ऐश्वर्य जानना चाहिए ॥ ३८ ॥

मू०-यच्चापिसर्वभूतानांबीजंतदहमर्जुन ॥
नतदस्तिविनायत्स्यान्मयाभूतंचराचरम् ॥ ३९ ॥

सर्वभूतानाम्१ यत्२च३ अपि४बीजम्५ तत्६ अहम्७ अर्जुन८ चराचरम् ९ भूतम् १० मया ११ विना १२यत्१३स्यात्१४तत१५ न १६ अस्ति १७ ॥ ३९ ॥ अ०-सब भूतोंका १ जो २।३।४ बीज ५ सो ६ मैं ७ सि०हू ❋ हे अर्जुन! ८ चराचर ९ सत्तामात्र १० मेरे ११ विना १२ जो १३ हों १४ सो १५ नहीं १६हैं १७ तात्पर्य ऐसा पदार्थ कोई नहीं कि, जिसमें सत् चित् और आनन्द ये तीन अंश भगवान्के नहीं ॥ ३९ ॥

मू०-नांतोस्तिममदिव्यानांविभूतीनांपरंतप ॥
एषतूद्देशतःप्रोक्तोविभूतेर्विस्तरोमया ॥ ४० ॥

परंतप १ मम २ दिव्यानाम् ३ विभूतीनाम् ४ अतः ५ न ६ अस्ति ७ एषः८ तु९ विभूतेः १० विस्तरः११ उद्देशतः१२ मया १३ प्रोक्तः १४ ॥ ४० ॥ अ०-हे अर्जुन! १ मेरे २ दिव्य ३ विभूतियोंका ४ अन्त ५ नहीं ६ है ७ सि०और जो वर्णन किया ❋ यह ८ तो ९ विभूतियोंका १० विस्तार ११ संक्षेपसे १२ मैंने १३ कहाहै १४ ॥ ४० ॥

मू०-यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वंश्रीमदूर्जितमेववा ॥
तत्तदेवावगच्छत्वंममतेजोंशसंभवम् ॥ ४१ ॥

यत् १ यत् २ सत्त्वम् ३ विभूतिमत् ४ श्रीमत् ५ वा ६ ऊर्जितम् ७ एव ८ तत्९ तत् १० एव ११ मम १२ तेजोंशसंभवम् १३ त्वम् १४ अवगच्छ १५ ॥ ४१ ॥अ०-उ०जो तू मेरे ऐश्वर्यका विस्तार जानना चाहता है तो इसप्रकार जान. जो१ जो२ पदार्थ३ ऐश्वर्यवान् ४ श्रीमान् ५ वा ६ सि० किसी अन्यगुणकरके ❋

श्रेष्ठ ७ ही ८ सि० कहलाताहै ❀ तिस ९ तिसको १० ही ११ मेरे १२ तेजके अशंसे उत्पन्न हुआ १३ तू १४ जान १५ तात्पर्य संसारमें जो जो पदार्थ श्रेष्ठ हैं: वे वे सब भगवत्की विभूति हैं जो जिस गुणकरके श्रेष्ठ समझाजाता है वो गुण भगवत्काही अंश है॥ 'आनन्दो ब्रह्म' इसश्रुतिसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि आनन्द ब्रह्म है. तो फिर जो जो पदार्थ विशेष आनन्दजनक हैं सो भगवत्की विभूति है ॥ ४१ ॥

मू०—अथवाबहुनैतेनाकिंज्ञानेनतवार्जुन ॥
विष्टभ्याहमिदंकृत्स्नमेकांशेनस्थितोजगत् ॥ ४२ ॥

अर्जुन १ अथवा २ एतेन ३ बहुना ४ ज्ञानेन ५ तव ६ किम् ७ अहम् ८ इदम् ९ कृत्स्नम् १० जगत् ११ एकांशेन १२ विष्टभ्य १३ स्थितः १४ ॥ ४२ ॥ अ०—हे अर्जुन! १ अथवा २ इस ३ बहुत ४ सि० पृथक् पृथक् ❀ ज्ञानकरके ५ तुमको ६ क्या ७ सि० काम है, ऐसे समझ कि ❀ मैं ८ इस ९ समस्त १० जगत्को ११ एक अंशसे १२ धारणकरके १३ स्थित हूं १४ तात्पर्य यह कि, सब जगत् भगवत्के एक अंशमें कल्पित है, भगवत्से जुदा नहीं. जगतमें जो आनंद प्रतीत होता है, यही प्रभुका अंश है अंशसे अंशीका ज्ञान जल्द होताहै ॥ ४२ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः ११.

मू०—अर्जुनउवाच ॥ मदनुग्रहायपरमंगुह्यमध्यात्मसं-
ज्ञितम्॥यत्त्वयोक्तंवचस्तेनमोहोयं विगतोमम॥१॥

अर्जुन उवाच-मदनुग्रहाय १ परमम् २ गुह्यम् ३ अध्यात्मसंज्ञितम् ४ यत् ५ वचः ६ त्वया ७ उक्तम् ८ तेन ९ अयम् १० मम ११ मोहः १२ विगतः १३ ॥१॥ अ०-उ० पिछले अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहा कि, यह जगत् समस्त मेरे एकअंशमें कल्पित है यह सुन अर्जुनको इच्छा हुई कि, विश्वरूप श्रीभगवान्का देखना चाहिये. इसवास्ते अर्जुन श्रीभगवान्की स्तुति करता हुआ बोलताहै चार मंत्रोंमें मेरेपर अनुग्रह करनेकेवास्ते १ अर्थात् मेरा शोक दूर करनेके लिये १ परमार्थनिष्ठावाला २ गुप्त ३ आत्मा और अनात्मा इनका ज्ञान हो जिससे ४ सि० ऐसा ❋ जो ५ वचन ६ आपने ७ कहा ८ तिसवचनकरके ९ यह १० मेरा ११ मोह १२ गया १३ अर्थात इन (भीष्मादि) को मैं मारता हूं, ये मारे जाते हैं. इस प्रकार जो शुद्ध निर्विकार आत्माको कर्ता कर्म समझता था यह मेरी भ्रान्ति आपके कृपासे दूर हुई ११।१२।१३ तात्पर्य मैंने जाना कि आत्मा शुद्धसच्चिदानंद निर्विकार है. कर्ता कर्म इत्यादि सब भ्रांतिसे प्रतीत होता है जैसे शुक्तिमें रजत, रज्जुमें सर्प, आकाशमें नीलता, नावमें बैठे हुएको मंदिरोंका चलना प्रतीत होताहै, इसीप्रकार आत्मा विकरवान् प्रतीत होता है वास्तव आत्मा निर्विकार है, यह मैं समझा ॥ १ ॥

मू०-भवाप्ययौहिभूतानांश्रुतौविस्तरशोमया ॥
त्वत्तःकमलपत्राक्षमाहात्म्यमपिचाव्ययम् ॥ २ ॥

कमलपत्राक्ष १ त्वत्तः २ मया ३ विस्तरशः ४ भूतानाम् ५ भवाप्ययौ ६ हि ७ श्रुतौ ८ माहात्म्यम् ९ च १० अपि ११ अव्ययम् १२ ॥ २ ॥ अ०-हे भगवन्! १ आपसे २ मैंने ३ विस्तारपूर्वक ४ भूतोंकी ५ उत्पत्ति और लय ६।७ सि० इन दोनोंको ❋ सुना ८. अर्थात

सब भूतोंकी उत्पत्ति आपसेही है और सब भूत तुम्हारेही स्वरूपमें लय होजातेहैं. यहभी मैंने सुना और समझा८ और माहात्म्य ९।१० भी ११ सि०आपका ❀ अक्षय १२ सि०सुना ❀ तात्पर्य आप जगत्को रचतेभी हो, पालन संहारभी करते हो, शुभाशुभ कर्मोंका फलभी देते हो, बन्ध मोक्ष सब आपके आधीन हैं जैसी भक्तोंकी इच्छा होती है, उनकेवास्ते वैसेही नानारूप धारण करतेहो, वैसेही चरित्र करतेहो,ऐसे विषमव्यवहारमेंभी आप सदा अकर्ता, निर्विकार, निर्लेप, उदासीन ऐसे रहतेहो, यही आपका माहात्म्य है. करनेको न करनेको और औरका और करदेनेको जो समर्थ उसीको ईश्वर कहते हैं, ऐसे आपहीहैं. आपके कृपासे मैंने अब आपका माहात्म्य सुनकर आपको जाना ॥ २ ॥

मू०–एवमेतद्यथात्थत्वमात्मानंपरमेश्वर ॥
द्रष्टुमिच्छामितेरूपमैश्वरंपुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

परमेश्वर १ यथा २ आत्मानम् ३ आत्थ ४ त्वम् ५ एतत् ६ एवम् ७ पुरुषोत्तम ८ ते९ ऐश्वरम्१० रूपम् ११ द्रष्टुम् १२ इच्छामि १३ ॥ ३ ॥ अ०–हे परमेश्वर ! १ जैसा २ आत्माको३कहतेहो४ आप ५ यह ६ इसीप्रकारहै ७ अर्थात् बेसन्देह आप अचिंत्यशक्तिमान्हैं ७हे प्रभो !८आपके९ऐश्वररूपके १०।११ देखनेकी १२ इच्छा करता हूं १३ अर्थात् आपका ऐश्वर्य और विश्वरूप देखा चाहता हूं. याने ज्ञान, ऐश्वर्य, बल, वीर्य, शक्ति, तेज, इनकरके युक्त और आपका रूप देखना चाहता हूं १३. तात्पर्य परमार्थदृष्टिमें आप निराकार पूर्ण हैं. इसीस्वरूपको मूर्तिमान् देखा चाहता हूं. यद्यपि यह बात असम्भावित है, परंतु आप समर्थ हो, दिखासक्ते हो ॥ ३ ॥

मू०–मन्यसेयदितच्छक्यमयाद्रष्टुमितिप्रभो ॥
योगेश्वरततोमेत्वंदर्शयात्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

प्रभो १ योगेश्वर२यदि ३ मया ४ तत्५द्रष्टुम्६शक्यं७मन्यसे ८ ततः ९ मे १० त्वम् ११ अव्ययम् १२ आत्मानम् १३ दर्शय १४ इति १५॥४॥ अ०—उ० यदि आपके दृष्टिसे उसरूपके देखनेको मैं अधिकारीहूं तो दिखाइये-हे समर्थ! १ हे योगेश्वर! २ यदि ३मुझकरके ४ सोरूप ५ देखनेंको ६ शक्य ७ सि० है, ऐसा आप ❀ समझतेहो ८ अर्थात् उसरूपको मैं इन नेत्रोंकरके देखसकूंगा८. तो ९ मुझे १० आप ११ निर्विकार१२ आत्माको १३ दिखाइये १४ यह १५ सि० मेरा तात्पर्य है ❀ ॥ ४ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥पश्यमेपार्थरूपाणिशतशोथसहस्रशः ॥नानाविधानिदिव्यानिनानावर्णाकृतीनिच॥ ५ ॥

श्रीभगवान् उवाच—पार्थ १ शतशः २अथ३सहस्रशः४दिव्यानि५ मे ६ रूपाणि ७ पश्य ८ नाना ९ विधानि १० च ११ नाना १२ वर्णाकृतीनि १३ ॥ ५ ॥ अ०— श्रीभगवान् बोलते हैं. हे अर्जुन !१ सैकडों हजारों २।३।४दिव्य५मेरे ६ रूपोंको७ देख८नानाप्रकारके ९ भेद हैं जिसमें १० और ११ नानाप्रकारके १२ वर्ण नीलपीतादि और आकृति हैं, जिसमें १३ सि० ऐसा रूप देख वो विश्वरूप एकही था परंतु नानाप्रकारके जो उसमें भेद थे इसवास्ते श्लोकमें रूपका बहुवचन है रूपाणि इति ❀ ॥ ५ ॥

मू०—पश्यादित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौमरुतस्तथा। ॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणिपश्याश्चर्याणिभारत ॥ ६ ॥

भारत १ आदित्यान् २वसून्३रुद्रान्४अश्विनौ५ मरुतः६पश्य ७ तथा ८ बहूनि ९ अदृष्टपूर्वाणि १० आश्चर्याणि ११ पश्य १२ ॥ ६॥ अ०—हे अर्जुन! १ बारह सूर्योंको२ आठ वसुओंको३ग्यारह-रुद्रोंको ४ दोनों अश्विनीकुमारोंको ५ उंचास मरुत्गणोंको ६ देख७

और ८ बहुत ९ सि० पदार्थ जो तुमने और औरोंने पहले कभी ❀ नहीं देखे हैं १०, सि० ऐसे ❀ आश्चर्यरूपोंको ११ देख १२, सि० अब मैं दिखाता हूं ❀ ॥ ६ ॥

मू०—इहैकस्थंजगत्कृत्स्नंपश्याद्यसचराचरम् ॥
ममदेहेगुडाकेशयच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

गुडाकेश १ इह २ एकस्थम् ३ अद्य ४ मम ५ देहे ६ सचराचरम् ७ कृत्स्नम् ८ जगत् ९ पश्य १० यत् ११ च १२ अन्यत् १३ द्रष्टुम् १४ इच्छसि १५ ॥७॥ अ०—उ०समस्त भूत भविष्यत् वर्तमानकालकी व्यवस्था तुझको दिखाता हूं, जो असंख्यात जन्मोंमें तू या और कोई नहीं देखसक्ता वो सब तनकदेरमें दिखाता हूं. हे अर्जुन! १ इसीजगह २ मुझ एकमें स्थित ३ अभी ४ मेरे ५ देहमें ६ स्थावरजंगम ७ संपूर्ण ८ जगत्को ९ अर्थात् कार्यकारणके सहित समस्तजगत्को ९. देख १० और जो ११ । १२ अन्यपदार्थोंके देखनेकी १३ । १४ तू इच्छा करता है १५ अर्थात् इस जगत्का आश्रय क्या है, कैसा उत्पन्न हुआ है, कैसी इसकी स्थिति है, कैसा लय होता है; उपादान इसका क्या है, कैसा कैसा यह रूप बदलता है, इस लड़ाईमें किसकी जीत होगी- हे अर्जुन! जो तेरीइच्छा हो सब देख, जो मैं अपने इच्छासे दिखाता हूं सो देख और जो तेरी इच्छा हो सोभी देख ले. ऐसा समय मिलना कठिनहै १४.टी० गुडाका नाम निद्राकाहै निद्रा अर्जुनके वशमें थी, इस हेतुसे गुडाकेश अर्जुनका नाम है १ ॥ ७ ॥

मू०—नतुमांशक्यसेद्रष्टुमनेनैवस्वचक्षुषा ॥
दिव्यंददामितेचक्षुःपश्यमेयोगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

अनेन १ स्वचक्षुषा २ माम् ३ एव ४ द्रष्टुम् ५ न ६ शक्यसे ७ ते ८ तु ९ दिव्यम् १० चक्षुः ११ ददामि १२ मे १३ योगम् १४

ऐश्वरम् १५ पश्य १६ ॥ ८ ॥ अ०-उ० अर्जुनने कहाथा कि वो रूप मैं देख सक्ता हूं या नहीं ? श्रीभगवान् कहते हैं कि, इन नेत्रोंसे तो तू नहीं देखसकेगा, दिव्यचक्षु मैं देता हूं तिनकरके देखेगा, इन अपने नेत्रों करके १।२तु मुझको ३ बेसन्देह ४ देखनेको ५ नहीं ६ समर्थ है ७ परंतु तुझको ८ । ९ दिव्यचक्षु १० । ११ देता हूं १२ मेरे १३ योगको १४सि० और ❀ऐश्वर्यको १५ देख १६.टी०किसीलोकमें जो देखने सुननेमें न आवे उसको दिव्य या अलौकिक कहते हैं १० जो बात संभव न हो वो बात समझमें आजावे जिस करके उसको योग कहते हैं १४ जीवसे जो बात न होसके ईश्वरहीमें वो बात पावे और जिसकरके जीवसे जुदा ईश्वर पहिचाना जावे उसको ऐश्वर्य कहते हैं कि जिसको ईश्वरका असाधारण लक्षणभी कहते हैं.ईश्वरका एक साधारण और एक असाधारण. साधारण लक्षण है वो कि जो ईश्वरमेंभी पावे और जीवमेंभी पावे. जैसे कंसादिका मारना, गोवर्धनका उठाना, बहुरूप होजाना, इत्यादिकर्म तो जीवभी करसक्ता है. रावणादिकी कथा कैलासका उठालेना इत्यादि बहुत प्रसिद्ध हैं परंतु विश्वरूप जीव नहीं दिखासक्ता, यह ईश्वरका असाधारण लक्षण है १५ ॥ ८ ॥

मू०-संजय उवाच ॥ एवमुक्त्वाततोराजन्महायोगेश्वरोहरिः॥दर्शयामासपार्थायपरमंरूपमैश्वरम् ॥ ९॥

संजय उवाच-राजन् १ महायोगेश्वरः २ हरिः ३ एवम् ४ उक्त्वा ५ ततः ६ पार्थाय ७ परमम् ८ ऐश्वरम् ९ रूपम् १०दर्शयामास११॥९ ॥ अ०-उ०संजय धृतराष्ट्रसे कहता है, हे राजन्!१ महायोगेश्वर २ व्रजचन्द्र ३ इसप्रकार ४ सि० पूर्वोक्त ❀ कहकर ५ फिर ६ अर्जुनको ७ परम८ऐश्वर्य९ रूप१०दिखातभये११. टी०श्रीभगवान्ने परमऐसाअद्भुतरूप अर्जुनको दिखाया८।९॥९॥

मू०-अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥
अनेकदिव्याभरणंदिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥

अनेकवक्त्रनयनम् १अनेकाद्भुतदर्शनम्२अनेकदिव्याभरणम् ३ दिव्यानेकोद्यतायुधम्४ ॥ १० ॥ अ०-उ० उस विश्वरूपके ये विशेषण हैं. अनेक मुख और नेत्र हैं जिसमें १ अनेक अद्भुत आश्चर्य करनेवाले दर्शन हैं जिसमें २ अनेक दिव्यगहने हैं जिसमें ३ अनेक दिव्य शस्त्र उठाये हुए हैं जिसमें ४ तात्पर्य ऐसा रूप श्रीमहाराजका था कि, जो अर्जुनने देखा ॥ १० ॥

मू०-दिव्यमाल्यांबरधरंदिव्यगंधानुलेपनम् ॥
सर्वाश्चर्यमयंदेवमनंतंविश्वतोमुखम् ॥११॥

दिव्यमाल्यांबरधरम् १ दिव्यगंधानुलेपनम् २ सर्वाश्चर्यमयम् ३ देवम् ४ अनन्तम् ५ विश्वतोमुखम् ६ ॥ ११ ॥अ०- दिव्यमाल और वस्त्र धारण कररक्खेहैं जिसने१ दिव्यगंधका लेपन है जिसका२ सब आश्चर्यरूप है ३ प्रकाशरूप ४ नही है अन्त जिसका ५ सब तर्फहैं मुख जिसमें ६ ॥ ११ ॥

मू०-दिविसूर्यसहस्रस्यभवेद्युगपदुत्थिता ॥
यदिभाः सदृशीसास्याद्भासस्तस्यमहात्मनः १२॥

यदि १ दिवि २ सूर्यसहस्रस्य ३भाः ४ युगपत् ५ उत्थिता ६ भवेत् ७ तस्य ८ महात्मनः ९ भासः१० सा ११ सदृशी १२ स्यात् १३ ॥ १२॥ अ०-उ० उस विश्वरूपका प्रकाश ऐसाथा जो १ आकाशमें २ हजारसूर्योंकी३ प्रभा ४ एकबारही ५ उदित ६ हो ७ सि०तो❋तिस महात्माके ८।९ प्रभाके १० सो ११ सि०प्रभा ❋ बराबर १२ हो १३सि०न हो यह अभिप्रायहै क्योंकि यह अनुपमरूप है ❋ ॥ १२ ॥

मू०-तत्रैकस्थंजगत्कृत्स्नंप्रविभक्तमनेकधा ॥
अपश्यद्देवदेवस्यशरीरेपाण्डवस्तदा ॥ १३ ॥

तत्र १ एकस्थम् २ अनेकधा ३ प्रविभक्तम् ४ कृत्स्नम् ५ जगत् ६ तदा ७ पांडवः ८ देवदेवस्य ९ शरीरे १० अपश्यत् ११ ॥१३॥ अ०- तिसविश्वरूपमें १ एकहीके विषय स्थित २ अनेक प्रकारका ३ जुदाजुदा ४ समस्त ५ जगत्को ६ तिसकालमें ७ अर्जुन ८ देवतोंकेभी जो देवता उन देवदेवके ९ शरीरमें १० देखता भया ११ टी० पितर मनुष्य गंधर्वादिकोंसे३। ४ जगत्में जितने पदार्थ हैं, अर्जुनको सब भगवत्के शरीरमें दीखतेथे ५ । ६ इत्यभिप्रायः ॥ १३ ॥

मू०-ततःसविस्मयाविष्टोहृष्टरोमाधनंजयः ॥
प्रणम्यशिरसादेवंकृताञ्जलिरभाषत ॥ १४ ॥

ततः १ सः २ धनंजयः ३ विस्मयाविष्टः ४ हृष्टरोमा ५ कृतांजलिः ६देवम् ७ शिरसा ८ प्रणम्य ९ अभाषत १० ॥ १४ ॥ अ०-उ०जब अर्जुनने ऐसा स्वरूप देखा पीछे उसके १ सो २ अर्जुन ३ आश्चर्य करके युक्तहुआ ४ अर्थात् आश्चर्य मानता हुआ४. रोमावली प्रफुल्लित होगई हैं जिसकी ५ की है अंजलि जिसने ६ अर्थात् दोनों हाथ जोडकर६. सि० उसी ❀ देवको ७ शिरसे ८ प्रणाम करके९ अर्थात् शिर झुकाकर नमस्कार करके९. बोलताभया १० अर्थात् यह बोला कि जो आगे सत्रहश्लोकमें कहना है१०॥१४॥

मू०-अर्जुनउवाच ॥ पश्यामिदेवांस्तवदेवदेहेसर्वांस्त-
थाभूतविशेषसंघान् ॥ ब्रह्माणमीशंकमलासनस्थ-
मृषींश्चसर्वानुरगांश्चदिव्यान् ॥ १५ ॥

अर्जुन उवाच-देव १ तव २ देहे ३ सर्वान् ४ देवान्५ तथा६भूत-

विशेषसंघान् ७ कमलासनस्थम् ८ ईशम् ९ ब्रह्माणम् १० च ११ सर्वान् १२ ऋषीन् १३ दिव्यान् १४ उरगान् १५ च १६ पश्यामि १७॥ १५ ॥ अ०–उ० जैसा विश्वरूप अर्जुनके देखनेमें आया, उसको अर्जुन कहता है सत्रहश्लोकमें. हे देव! १ आपके २शरीरमें३ सबदेवतोंको ४ । ५ और भूतोंके विशेषसमुदायोंको ६ । ७ अर्थात् रजादिकोंको ६ । ७. कमलके आसनपर बैठे हुए देवतोंके स्वामी जो ब्रह्माजी उनको८।९।१० और ११ सब १२ सि० वसिष्ठादि ❋ ऋषियोंको १३ दिव्य १४सि० तक्षकादि ❋ नागोंको १५ भी१६ मैं देखता हूं १७ टी०आपके नाभिमें जो कमल उसपर ब्रह्माजीको विराजमान देखता हूं ८ । १० ॥ १५ ॥

मू०–अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रंपश्यामित्वांसर्वतोनंतरूपम् ॥ नांतंनमध्यंनपुनस्तवादिंपश्यामिविश्वेश्वरविश्वरूप ॥ १६ ॥

विश्वेश्वर १ विश्वरूप २ तव ३ न ४ आदिम् ५ पुनः ६ न ७ मध्यम् ८न ९ अन्तम् १० पश्यामि ११सर्वतः १२ अनन्तरूपम्१३ त्वाम् १४ अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रम् १५ पश्यामि १६ ॥ १६ ॥ अ०–हे विश्वके ईश्वर ! १ हे विश्वरूप! २ आपका३ न ४ आदि५ और ६ न ७ मध्य ८ न ९ अंत १० देखता हूं ११ सब तर्फसे१२ अनन्तरूपवाला १३ आपको १४ अनेक हाथ, पेट, मुख और नेत्र हैं जिनको १५ सि० ऐसा आपको ❋ देखता हूं १६॥ १६ ॥

मू०–किरीटिनंगदिनंचक्रिणंचतेजोराशिंसर्वतोदीप्तिमंतम् ॥ पश्यामित्वांदुर्निरीक्ष्यंसमंताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७॥

त्वाम् १ समंतात् २ किरीटिनम् ३ गदिनम् ४ चक्रिणम्५ च ६ तेजोराशिम् ७ सर्वतः ८ दीप्तिमन्तम् ९ दुर्निरीक्ष्यम् १०

दीप्तानलार्कद्युतिम् ११ अप्रमेयम् १२ पश्यामि १३॥१७॥ अ०—आपको १ सबतर्फसे २ मुकुटवाला ३ गदावाला ४ चक्रवाला ५ और ६ तेजका पुंज ७ सबतरफसे ८ दीप्तिमान् ९ दुःखकरके देखा जाता है १०. अर्थात् उसका देखना बहुत कठिन प्रतीत होता है १० चैतन्य ऐसे अग्नि और सूर्यके प्रभावत् प्रभा है उसकी ११ प्रमाण नहीं होसक्ता उसका कि इसस्वरूपकी इतनी चौड़ाई लम्बाई है १२ सि० ऐसा आपको ❀ देखता हूं १३ ॥ पश्यामि यह क्रिया सबके साथ लगतीहै, जितने त्वां इस एक अंकवाले पदके विशेषण हैं उनके ॥ १७ ॥

मू०—त्वमक्षरंपरमंवेदितव्यंत्वमस्यविश्वस्यपरंनिधानं॥
त्वमव्ययःशाश्वतधर्मगोप्तासनातनस्त्वंपुरुषोमतोमे१८॥

त्वम् १ परमम् २ अक्षरम् ३ वेदितव्यम् ४ त्वम् ५ अस्य ६ विश्वस्य ७ परम् ८ निधानम् ९ त्वम् १० अव्ययः ११ शाश्वतधर्मगोप्ता १२ सनातनः १३ पुरुषः १४ त्वम् १५ मे १६ मतः १७ ॥१८॥ अ०—उ० आपकी यह योगशक्ति देखनेसे तो मैं अब यह अनुमान करता हूं कि, आप १ परम २ ब्रह्म ३सि० हो, मुमुक्षुकरके ❀ जाननेके योग्य४ आप५ सि० ही हो ❀ इस ६ विश्वका ७ पर ८ आश्रय ९ सि०भी आपही हो और❀ आप१० नित्य ११ नित्यधर्मके पालनकरनेवाले १२ सनातन पुरुष १३। १४ आप १५ सि० ही हो ❀ मेरे १६ समझसे १७ सि० सभी ऐसाही प्रतिपादन करते हैं ❀ ॥ १८ ॥

मू०-अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुंशशिसूर्यनेत्रम्॥
पश्यामित्वांदीप्तहुताशवक्त्रंस्वतेजसाविश्वमिदंतपंतम् ॥ ॥ १९ ॥

त्वाम् १ पश्यामि २ अनादिमध्यान्तम् ३ अनन्तवीर्यम् ४

अनंतबाहुम् ५ शशिसूर्यनेत्रम् ६ दीप्तहुताशवक्त्रम् ७ स्वतेजसा ८ इदम् ९ विश्वम् १० तपन्तम् ११ ॥ १९ ॥ अ०— आपको १सि० ऐसा ❀ देखता हूं मैं २सि० कि जिसके विशेषण ये हैं ❀ नहीं है आदि मध्य अन्त जिसका ३ अनन्त पराक्रमहैं जिसके ४ अनंत भुजा हैं जिसकी ५ चन्द्रसूर्य नेत्र हैं जिसके ६ जलती हुई याने लपट उठती हुई अग्नि मुखमें है जिसके ७ अपने तेजकरके ८ इस विश्वको ९।१० तपाते हुए ११ सि० मुझको दीखते हो ❀ ॥ १९ ॥

मू०—द्यावापृथिव्योरिदमंतरंहिव्याप्तंत्वयैकेनदिशश्चस- र्वाः ॥ दृष्ट्वाद्भुतंरूपमुग्रंतवेदंलोकत्रयंप्रव्यथितंम- हात्मन् ॥ २० ॥

महात्मन् १ द्यावापृथिव्योः २ इदम् ३ अन्तरम् ४ एकेन ५ त्वया ६ हि ७ व्याप्तम् ८ सर्वाः ९ दिशः १० च ११. तव १२ इदम् १३ अद्भुतम् १४ उग्रम् १५ रूपम् १६ दृष्ट्वा १७ लोकत्रयम् १८ प्रव्यथितम् १९ ॥२०॥ अ०—हे भगवान्! १ आकाशपृथिवीका २ यह ३ अन्तर ४ अकेले ५ आपकरके ६ ही ७ व्याप्त ८ सि० है और ❀ पूर्वादि दशोंदिशा९।१०।११सि० भी आपकरके व्याप्त होरही हैं ❀ अर्थात् सब जगतमें आपही पूर्ण होरहे हो ११. आपका १२ यह १३ अद्भुत १४ क्रूर १५ रूप १६ देखकर १७ तीनोंलोक १८ भयको प्राप्त हुएहैं १९ तात्पर्य ऐसा मैं आपको देखताहूं॥२०॥

मू०—अमीहित्वांसुरसंघाविशंतिकेचिद्भीताः प्रांजल- योगृणंति ॥ स्वस्तीत्युक्त्वामहर्षिसिद्धसंघा स्तुवंतित्वांस्तुतिभिःपुष्कलाभिः ॥ २१ ॥

अमी१ सुरसंघाः २ त्वाम्३हि ४ विशन्ति ५केचित६ भीताः ७, प्रांजलयः ८ स्वस्ति ९ इति १० उक्त्वा ११ गृणन्ति १२ मह-

षिसिद्धसंघाः १३ पुष्कलाभिः १४ स्तुतिभिः १५ त्वाम् १६ स्तुवंति १७ ॥२१॥ अ०—ये १ देवतोंके समूह २ तुम्हारेमेंही ३ । ४ प्रविष्ट होते हैं ५ अर्थात् आपको देवतोंने अपना आश्रय समझ रक्खा है, आपके शरण प्राप्त हैं. सि० और उनमेंसे ❀ कोई ६ भयको प्राप्त हुए ७ दोनोंहाथ जोडरक्खे हैं जिन्होंने ८ स्वस्ति ९ यह १० सि० शब्द ❀ कहकर ११ अर्थात् आपका कल्याण हो भलाहो ११. सि० यह कहते हुए आपकी ❀ प्रार्थना कररहे हैं १२ अर्थात् आपकी जयहो जयहो आप हमारी रक्षा करो यह कह रहे हैं १२. सि० और ❀ बड़ेबड़े ऋषीश्वर सिद्धोंके समूह १३ बड़ेबड़े १४ स्तोत्रों करके १५ आपकी १६ स्तुति कर रहे हैं १७ ॥ २१ ॥

मू०—रुद्रादित्यावसवोयेचसाध्याविश्वेश्विनौमरुतश्चोष्मपाश्च ॥ गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघावीक्षंतेत्वांविस्मिताश्चैवसर्वे ॥ २२ ॥

रुद्रादित्य वसवः १ साध्याः २ च ३ ये ४ विश्वे ५ अश्विनौ ६ मरुतः ७ च ८ ऊष्मपाः ९ च १० गंधर्वयक्षासुरसिद्धसंघाः ११ च १२ सर्वे १३ एव १४ विस्मिताः १५ त्वाम् १६ वीक्षंते १७ ॥ २२ ॥ अ०—ग्यारह रुद्र, बारह सूर्य, आठ वसु, १ और साध्यदेवता २ । ३ जो ४ सि० हैं ❀ विश्वेदेव ५ अश्विनीकुमार ६ और उंचास मरुद्गण ७।८ और पितर ९।१० और गंधर्व (हूहूहाहादि) यक्ष (कुबेरादि) असुर (विरोचनादि) सिद्ध (कपिलदेवादि) इनसबके समूह ११। १२ सि० कहांतक कहूं, ❀ सब १३ ही १४ आश्चर्य युक्तहुए १५ आपको १६ देखते हैं १७. सि० इसप्रकारका रूप मैं आपका देखताहूं. ❀ टी० ऊष्मपा पितरोंका नाम इसवास्ते है कि, वे गरमगरमभोजनके भागी हैं. जबतक अन्न गरम रहताहै और

जबतक ब्राह्मण चुपचाप भोजन करते रहें बोले नहीं तबतकही पितर भोजन करते हैं ९। तदुक्तम्–"यावदुष्णंभवेदन्नंयावदश्नन्ति वाग्यताः॥ पितरस्तावदश्नन्तियावन्नोक्ताहविर्गुणाः" ॥ २२॥

मू०–रूपंमहत्तेबहुवक्त्रनेत्रंमहाबाहोबाहुबहूरुपादम्॥ बहूदरंबहुदंष्ट्राकरालंदृष्ट्वालोकाःप्रव्यथितास्तथाहम् ॥२३॥

महाबाहो १ ते २ महत् ३ रूपम् ४ दृष्ट्वा५लोकाः६ प्रव्यथिताः७ तथा ८ अहम्९ बहुवक्त्रनेत्रम्१०बहुबाहूरूपादम् ११ बहूदरम् १२ बहुदंष्ट्राकरालम् १३ ॥ २३॥ अ०–हे महाबाहो! १ आपका २ बडा ३ रूप ४ देखकर ५ लोक भयको ६ प्राप्त होरहेहैं ७ सि० और जैसे और लोक भयभीत होरहे हैं ❀तैसेही ८मैं९सि० भी भयको प्राप्त हूं क्योंकि वो रूपही आपका ऐसाहै कि, जिसके ये विशेषणहैं ❀बहुत मुख और नेत्र हैं जिसके १० बहुत भुजा,जंघा-चरण हैं जिसके११बहुत पेट हैं जिसके १२ बहुत विकराल कठिन डाढ हैं जिसकी १३ तात्पर्य ऐसा आपका रूप है कि जिसको देखकर मैं डरता हूं॥ २३॥

मू०–नभःस्पृशंदीप्तमनेकवर्णंव्यात्ताननंदीप्तविशालनेत्रम् ॥ दृष्ट्वाहित्वांप्रव्यथितांतरात्माधृतिंनविंदामिशमंचविष्णो॥ २४॥

विष्णो १ त्वाम् २ नभःस्पृशम् ३ दीप्तम् ४ अनेकवर्णम् ५ व्यात्ताननम् ६ दीप्तविशालनेत्रम् ७ दृष्ट्वा८ हि ९ प्रव्यथितांतरात्मा १० धृतिम् ११ शमम् १२ च १३ न १४ विन्दामि १५॥ २४॥ अ०–हे विष्णो! १ आपको २ आकाशके साथ स्पर्श करताहुआ३, अर्थात् समस्त आकाशमें व्याप्त ३ तेजरूप ४ अनेकवर्णवाला ५ फैला हुआ है मुख जिसका ६ प्रज्वलित होरहे हैं, याने बल रहे हैं

वडेबडे नेत्र जिसके ७ सि० ऐसा आपको ❀ देखकर ८ ही ९ बहुतभयको प्राप्त हुआ है अतःकरण मेरा १० धृति ११ और उपशमको १२।१३ नहीं १४ प्राप्त होता हूं १५ तात्पर्य मुझको न धीरज बँधता है, न मनमें संतोष होता है, ऐसा स्वरूप आपका देखके मेरा चित्त घबराता है ॥ २४ ॥

मू०—दंष्ट्राकरालानिचतेमुखानिदृष्ट्वैवकालानलसन्निभानि ॥ दिशोनजानेनलभेचशर्मप्रसीददेवेशजगन्निवास ॥ २५ ॥

देवेश १ जगन्निवास २ ते ३ मुखानि ४ कालानलसन्निभानि ५ दृष्ट्वा ६ एव ७ च ८ दंष्ट्राकरालानि ९ दिशः १० न ११ जाने १२ शर्म १३ च १४ न १५ लभे १६ प्रसीद १७ ॥ २५ ॥ अ०—हे देवतोंके इश्वर !१ हे जगत्के आश्रय !२ आपके ३ मुख ४ प्रलयाग्निके सम ५ देखकर ६।७।८ सि० कैसे हैं वे आपके मुख ❀ कठिन डाढ़ हैं जिसमें ९ ऐसे मुखोंको देख पूर्वादि दशोंदिशाको १० नहीं ११ जानता हूं मैं १२ अर्थात मुझको यह नहीं प्रतीत होता कि, पूर्व किधर, उत्तर किधर, पृथिवी कहां, आकाश कहांहै १२. और सुखको १३।१४ नहीं १५ प्राप्त हूं १६ अर्थात् मेरा अन्तःकरण विक्षेपको प्राप्त हुआ है ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६ प्रसन्न हूजिये १७ सि० आप ❀ ॥ २५ ॥

मू०—अमीचत्वांधृतराष्ट्रस्यपुत्राःसर्वेसहैवावनिपालसंघैः ॥ भीष्मोद्रोणःसूतपुत्रस्तथासौसहास्मदीयैरपियोधमुख्यैः ॥ २६ ॥

अमी १ च २ सर्वे ३ धृतराष्ट्रस्य ४ पुत्राः ५ अवनिपालसंघैः ६ सह ७ भीष्मः ८ द्रोणः ९ तथा १० असौ ११ सूतपुत्रः १२ अस्म-

दीयैः १३ अपि १४ योधमुख्यैः १५ सह १६ त्वाम् १७ एव १८ ॥ २६ ॥ अ०—उ० श्रीभगवान्‌ने कहाथा कि, इस संग्राममें जो जीतेगा, हे अर्जुन ! सोभी देख, वोही बात अर्जुन देखता हुआ कहता है पांच श्लोकोंमें—और ये १। २ सब ३ धृतराष्ट्रके ४ पुत्र ५ राजाओंके समूहसहित ६।७ भीष्मपितामह ८ द्रोणाचार्य ९ और १० वो ११ कर्ण १२ सि० और ❀ हमारे १३ भी १४ मुख्य योधाओंके साथ १५।१६ तुझमें १७ ही १८ सि० प्रवेश करते हैं ❀ अर्थात् आपके मुखमें प्रवेश करते हैं. इस श्लोकका अगले श्लोकके साथ सम्बन्ध है. तात्पर्य कुछ यह नहीं कि, दुर्योधनादिही आपके मुखमें प्रविष्ट होते हैं किन्तु हमारी ओरके भी सब राजा आपके मुखमें दौडदौड प्रवेश करते हैं यह आश्चर्य मैं देखता हूं ॥ २६ ॥

मू०—वक्त्राणितेत्वरमाणाविशंति दंष्ट्राकरालानिभयानकानि ॥ केचिद्विलग्नादशनांतरेषुसंदृश्यंतेचूर्णितैरुत्तमांगैः २७ ॥

त्वरमाणा १ ते २ वक्त्राणि ३ विशन्ति ४ दंष्ट्राकरालानि ५ भयानकानि ६ केचित् ७ चूर्णितैः ८ उत्तमांगैः ९ दशनांतरेषु १० विलग्नाः ११ संदृश्यन्ते १२ ॥ २७ ॥ अ०—सि० यह सब योधा ❀ दौडतेहुए १ आपके २ मुखोंमें ३ प्रविष्ट होते हैं ४ सि० कैसे हैं वे मुख कि ❀ कठिन डाढ दाँत हैं जिनमें ५, भयानकरूप ६ सि० जो मुखमें प्रविष्ट होते हैं उनमें ❀ कोई ७ सि० तो ऐसे हैं कि ❀ चूर्ण होगये हैं शिर जिनके ८।९ सि० वे ❀ दाँतोंके बीचमेंही १० लटके हुए ११ दीखते हैं १२ तात्पर्य जैसा अन्न भोजन हुए बाद दाँतोंमें रहजाता है (जिसको तिनकेसे निकालते हैं) इसप्रकार बहुत शूरवीर श्रीमहाराजके दाँतोंके सन्धिमें उलझेहुए दीखते हैं ॥ २७ ॥

मू०–यथानदीनांबहवोंबुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखाद्रवन्ति॥ तथातवामीनरलोकवीराविशंतिवक्त्राण्यभिविज्वलंति ॥ २८ ॥

यथा १ नदीनाम् २ बहवः ३ अम्बुवेगाः४ समुद्रम् ५ एव ६ अभिमुखाः ७ द्रवन्ति ८ तथा ९ अमी १० नरलोकवीराः ११ तव १२अभिविज्वलन्ति १३वक्त्राणि१४ विशंति१५॥२८॥ अ०–उ० अर्जुन दृष्टान्त देते हैं कि, इसप्रकार आपके मुखमें प्रविष्ट होते-हैं-जैसे १ नदीके २ बहुतऐसे ३ जलके वेग ४ समुद्रके ५ ही ६ सन्मुख ७ दौडते हैं ८ तैसे ९ ये १० नरलोकवीर ११ आपके१२ सब तरफसे जलते हुए मुखोंमें १३।१४ प्रविष्ट होतेहैं १५ तात्पर्य आपका मुख तो सब तरफसे प्रज्वलित होरहा है उसमें दौडदौड गिरतेहैं. महाराजके मुखमें सब तरफसे अग्नि जलतीहुई प्रतीत होती-है जैसे कहते हैं कि दीपक जलरहा है, ऐसे यहां कहा कि महाराजका मुख प्रज्वलित होरहा है ॥ २८ ॥

मू०–यथाप्रदीप्तंज्वलनंपतंगाविशन्तिनाशायसमृद्धवेगाः ॥ तथैवनाशायविशन्तिलोकास्तवापिवक्त्राणिसमृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

यथा १ समृद्धवेगाः २ पतंगाः ३ नाशाय ४ प्रदीप्तम् ५ ज्वलनम् ६ विशंति ७ तथा ८ एव ९ समृद्धवेगाः १० लोकाः ११ नाशाय १२ अपि १३ तव १४ वक्त्राणि १५ विशंति १६ ॥ २९ ॥ अ०–उ० नदीके दृष्टान्तसे तो यह प्रकट किया कि परवशहुए आपके मुखमें प्रविष्ट होते हैं. अब पतंगके दृष्टान्तसे यह दिखाता है कि, जानबूझ आपके मुखमें प्रवेश करते हैं बहुत शूर–जैसे १ समृद्धवेग हैं जिनका २ अर्थात् शीघ्र चाल है जिनकी दौडते हुए २ छोटेछोटे कीट ३ मरनेके लिये ४ प्रदीप्त ५ अग्निमें ६

अर्थात् जलतीहुई अग्नि या दीपक उसके अग्निमें ६. प्रवेश करते हैं ७ तैसे ८ ही ९बडावेगहै जिनका १० सि०ऐसे ❀ लोग शूरवीर ११ मरनेके लिये १२ ही १३ आपके १४ मुखमें १५ प्रवेश करते हैं १६ ॥ २९ ॥

मू०—लेलिह्यसेग्रसमानः समंताल्लोकान्समग्रान्वद नैर्ज्वलद्भिः ॥ तेजोभिरापूर्यजगत्समग्रंभास- स्तवोग्राः प्रतपंतिविष्णो ॥ ३० ॥

ज्वलद्भिः१ वदनैः २ समग्रान्३ लोकान् ४ समंतात्५ ग्रसमानः ६ लेलिह्यसे ७ विष्णो ८ तव ९ उग्राः१० भासः ११ तेजोभि १२ समग्रम्१३ जगत्१४ आपूर्य १५ प्रतपंति १६॥३०॥ अ०—दीप्ति- मान् १ मुखोंकरके२सब लोकोंका ३।४ अर्थात् महामहा इन शूरवी- रोंका ४. सबतरफसे ५ ग्रास करतेहुए ६ भलेप्रकार भक्षण कररहे हो ७ हे पूर्णब्रह्म व्यापक ! आपकी ८।९ तीव्र १० प्रभा ११ सि० अपने❀तेजसे १२ समस्त१३ जगत्को १४ व्याप्त करके १५ जलारहीहैं १६ अर्थात् आपके तेजके किरण सब जगत्में फैलकर जलारहे हैं. सब जगत्को चटनीके तरह चाटरहे हो, आप ऐसे मुझको दीखते हो १६. ॥ ३० ॥

मू०—आख्याहिमेकोभवानुग्ररूपोनमोस्तुतेदेववर प्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामिभवंतमाद्यंनहिप्र जानामितवप्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥

भवान् १ उग्ररूपः २ कः ३ मे ४ आख्याहि५ नमः ६ अस्तु ७ देववर ८प्रसीद ९ भवन्तम् १० आद्यम् ११ विज्ञातुम् १२ इच्छामि १३ तव १४ प्रवृत्तिम् १५ नहि १६ प्रजानामि १७ ॥ ३१ ॥ अ०—आप १ उग्ररूप २ कौन ३ सि० हो, यह ❀ मुझसे ४ कहो ५ सि०मेरा आपको ❀ नमस्कार ६ हो ७ हे देवतोंमें श्रेष्ठ !८

प्रसन्न हो ९ आप आद्य हो १०। ११ अर्थात् सबसे पहले आप हो १०। ११. सि० इसबातको ❋ भले प्रकार जाननेकी १२ इच्छा करता हूं १३ अर्थात आदिपुरुष जो आपहो उन आपको भले-प्रकार जाना चाहता हूं १३. आपके १४ प्रवृत्तिको १५ नहीं १६ जानता हूं १७ अर्थात यह ऐसा स्वरूप आपने क्यों धारण किया है १५। १६। १७। ॥ ३१ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ कालोस्मिलोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिहप्रवृत्तः ॥ ऋतेपित्वांनभविष्यंतिसर्वेयेवस्थिताःप्रत्यनीकेषुयोधाः ॥ ३२ ॥

श्रीभगवान् उवाच. लोकक्षयकृत् १ प्रवृद्धः २ कालः ३ अस्मि ४ लोकान् ५ समाहर्तुम् ६ इह ७ प्रवृत्तः ८ त्वाम् ९ ऋते १० अपि ११ ये १२ सर्वे १३ योधाः १४ प्रत्यनीकेषु १५ अवस्थिताः १६ न १७ भविष्यन्ति १८ ॥ ३२ ॥ अ०-उ०हे अर्जुन! जो तू बूझता है तो सुन कि, जो मैं हूं और जिस वास्ते मैंने यह रूप धारण किया है तीन श्लोकोंमें कहते हैं-लोकोंका नाश करनेवाला १ अतिउग्र २ काल ३ मैं हूं ४ लोकोंका नाश करनेको ५। ६ इसलोकमें ७ प्रवृत्त ८ सि० हुआ हूं तूने जो बूझाथा कि, आप आर किस वास्ते आपकी यह प्रवृत्ति है सो समझ और सुन ❋ तेरे ९ विना १० भी ११ ये १२ सब १३ योद्धा १४ दोनों सेनामें १५ सि० जो ❋ स्थित हैं १६ नहीं १७ होंगे १८ अर्थात् तू जो यह शंका करता है कि, मैं इनका मारनेवाला हूं ये सब तेरे विनामारे-भी सब मरेंगे. जो ये सब दीखते हैं मुझ कालरूपसे कोई भी नहीं बचेगा १७।१८. तात्पर्य क्षत्रियजातिमें तू मेरा भक्त है तुझको तो यह एक यश देता हूं ॥ ३२ ॥

मू०-तस्मात्त्वमुत्तिष्ठयशोलभस्वजित्वाशत्रून्भुंक्ष्वरा
ज्यंसमृद्धम्॥मयैवैतेनिहताःपूर्वमेवनिमित्तमात्रं
भवसव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

तस्मात् १ त्वम् २ उत्तिष्ठ ३ यशः ४ लभस्व ५ शत्रून् ६ जित्वा ७ समृद्धम् ८ राज्यम् ९ भुंक्ष्व १० एते ११ एव १२ पूर्वम् १३ एव १४ मया १५ निहताः १६ सव्यसाचिन् १७ निमित्तमात्रम् १८ भव १९ ॥ ३३ ॥ अ०-तिसकारणसे १ तू २ खडा हो ३ सि० युद्धके लिये ❀ यशका ४ प्राप्त हो ५ सि० जो भीष्मपितामह द्रोणादि देवतोंसे भी जीते न जावें उनको अर्जुनने जीता इस यशको प्राप्त हो. पीछे उसके ❀ वैरियोंको ६ जीतकर ७ पदार्थोंसे भरा हुआ ८ राज ९ भोग १० ये ११ तो १२ पहले १३ ही १४ मैंने १५ माररक्खे हैं १६ हे अर्जुन ! १७ निमित्तमात्र १८ तू होजा १९ अर्थात् इनका तो काल आ पहुँचा प्रत्यक्ष देखता है तू और यह कालके मुखमें अपने आप दौड जाते हैं. तू तो केवल एक नाम मात्र मारनेवाला हो, यश लेले १९. टी० बायेंहाथसे भी अर्जुन धनुष खैंचकर तीर चलाताथा इसवास्ते अर्जुनका नाम सव्यसाची है १७ ॥ ३३ ॥

मू०-द्रोणंचभीष्मंचजयद्रथंचकर्णंतथान्यानपियोध
वीरान् ॥ मयाहतांस्त्वंजहिमाव्यथिष्ठायुध्यस्व
जेतासिरणेसपत्नान् ॥ ३४ ॥

द्रोणम् १ च २ भीष्मम् ३ च ४ जयद्रथम् ५ च ६ कर्णम् ७ तथा ८ अन्यान् ९ अपि १० योधवीरान् ११ मया १२ हतान् १३ त्वम् १४ जहि १५ माव्यथिष्ठाः १६ युद्धयस्व १७ रणे १८ सपत्नान् १९ जेता २० असि २१ ॥ ३४ ॥ अ०-उ० पीछे हे अर्जुन ! तुमने यहँ

कहाथा कि मैं यह नहीं जानता ये हमको जीतेंगे या हम इनको वो अब सब तूनें प्रत्यक्ष देखलिया कि, बेसन्देह तूही जीतेगा—द्रोणाचार्य १।२ और भीष्मपितामह ३।४ और जयद्रथ ५।६ कर्ण ७-तैसेही८औरोंको९भी१०सि०कि जो जो ❀ योधा मुख्य हैं ११सि० इन सब ❀ मेरे १२ मारेहुओंको १३ तू १४ मार १५ मतडर १६ सि० इनके साथ ❀ युद्ध कर १७ रणमें १८ वैरियोंको १९ तू जीतेगा २०।२१ ॥ ३४ ॥

मू०—संजयउवाच ॥ एतच्छ्रुत्वावचनंकेशवस्यकृताञ्जलिर्वेपमानः किरीटी ॥ नमस्कृत्वाभूयएवाहकृष्णंसगद्गदंभीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

संजयः उवाच. किरीटी १ केशवस्य २ एतत् ३ वचनम् ४ श्रुत्वा ५ कृतांजलिः ६ वेपमानः ७ नमः ८ कृत्वा ९ आह १० भूयः ११ एव १२ भीतभीतः १३ सगद्गदम् १४ कृष्णम् १५ प्रणम्य १६ ॥ ३५॥अ०—उ०संजय धृतराष्ट्रसे कहताहै कि हे राजन्! मुकुटवाला अर्जुन १ भगवान्का २ यह ३ वचन ४ सुनकर ५ की है अंजलि जिसने ६ अर्थात् दोनों हाथ जोडेहुए ६. काँपता हुआ ७ नमस्कार ८ करके ९ बोला१० फिर११भी१२बहुतडरताहुआ १३ गद्गदकंठ होरहा है जिसका १४ श्रीकृष्णजीको१५प्रणाम करके १६ सि० यह बोला कि, जो आगे ग्यारहश्लोकोंमें कहना है ❀ तात्पर्य वारंवार "नमोनमःनमोनारायणाय" यह कहकर स्तुति करताहै॥ ३५॥

मू०—अर्जुनउवाच ॥ स्थानेहृषीकेशतवप्रकीर्त्याजगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यतेच ॥ रक्षांसिभीतानिदिशोद्रवंतिसर्वेनमस्यन्तिचसिद्धसंघाः॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच. हृषीकेश १ तव २ प्रकीर्त्या ३ जगत् ४ प्रहृष्यति ५ अनुरज्यते ६ च ७ भीतानि ८ रक्षांसि ९ दिशः १० द्रवंति ११

सर्वे १२ च १३ सिद्धसंघाः १४ नमस्यंति १५ स्थाने १६ ॥३६॥ अ०–उ० अर्जुन कहता है कि हृषीक नाम इंद्रियोंका है. इंद्रियोंका जो स्वामी याने प्रेरक अंतर्यामी उसको हृषीकेश कहते हैं १ अर्थात् हे कृष्णचन्द्रजी! १ आपके २ प्रकीर्तिकरके ३ अर्थात् आपका माहात्म्य कहनेसुननेसे ३. जगत् ४ आनन्दित होता है ५ और अनुरागको प्राप्त होता है अर्थात् आपमें जगत् प्रीति करता है ६।७ सि० और ❋ डरतेहुए राक्षस ९ पूर्वादि दिशाओंको १० दौडते हैं ११ सि० कोई पूर्वको कोई उत्तरको भागताहै ❋ और सब १२। १३ सिद्धोंके समूह १४ सि० आपको ❋ नमस्कार करते हैं १५ यह सब युक्तहै १६ अर्थात् यह बात ऐसीही चाहिये १६॥३६॥

मू०–कस्माच्चतेननमेरन्महात्मन्गरीयसे ब्रह्मणोप्यादिकर्त्रे॥अनंतदेवेशजगन्निवासत्वमक्षरंसदसत्तत्परंयत्३७॥

महात्मन् १ अनन्त २ देवेश ३ जगन्निवास ४ कस्मात् ५ ते ६ न ७ नमेरन् ८ ब्रह्मणः ९ अपि १० गरीयसे ११ च १२ आदिकर्त्रे १३ यत् १४ सत् १५ असत् १६ परम् १७ अक्षरम् १८ तत् १९ त्वम् २० ॥ ३७ ॥ अ०–उ० आपको नमस्कार करनेमें ये हेतु हैं. फिर यह कब होसक्ता है कि, यह सब जगत् आपको नमस्कार न करें–हे महात्मन्! १ हे अनन्त! २ हे देवेश! ३ हे जगन्निवास! ४ किस हेतुसे ५ आपको ६ नहीं ७ नमस्कार करे ८. सि० आपके सामने नम्र होनेमें चार हेतु तो मैंने कहे कि आप महात्मा हो, अनन्त, देवेश, जगतका आश्रय हो. और पांच सुनिये प्रथम यह कि आप ❋ ब्रह्माजीसे ९ भी १० गुरुतर ११ सि० हो. दूसरा यह कि ब्रह्माजीके कर्ताभी आपही हो. इसीवास्ते आपको ❋ आदिकर्ता १२ सि० कहते हैं, तुम्हारे अर्थ नमस्कार हो. आदिकर्त्रे और गरीयसे ये दोनों

ते इस छठे अंकवाले पदके विशेषण हैं. तीनों पदोंमें चतुर्थीविभक्तिहैं, सोई अर्थ समझना चाहिये. तीसरा यह कि ❀ जो १४ सत् याने व्यक्त१५असत् याने अव्यक्त१६ सि० और इनदोनोंसे ❀परे १७ सि० जो❀ अक्षरब्रह्म १८ सो १९ आप २० सि० ही हो ❀ अर्थात् तीसरा यह कि जो व्यक्तमूर्तिमान् हो, सोभी आप हो १५ चौथा यह कि जो अव्यक्तस्वरूप आपका है सोभी आप हो १६ पांचवां यह कि जो व्यक्त और अव्यक्तसे परे अक्षरपूर्णब्रह्मसशुद्धचिदानन्द है सोभी आप हो १८ ॥ ३७ ॥

मू०—त्वमादिदेवःपुरुषःपुराणस्त्वमस्यविश्वस्यपरंनिधानम् ॥ वेत्तासिवेद्यंचपरंचधामत्वयाततंविश्वमनंतरूप ॥ ३८ ॥

त्वम् १ आदिदेवः २ पुराणः ३ पुरुषः ४ त्वम् ५ अस्य ६ विश्वस्य ७ परंनिधानम् ८ वेत्ता ९ असि १० वेद्यम् ११ च १२ परम् १३ च १४ धाम १५ त्वया १६ विश्वम् १७ ततम् १८ अनंतरूप १९ ॥ ३८ ॥अ०—उ० और आपके सामने नम्र होनेमें सात हेतु औरभी ये हैं. प्रथम हेतु यह कि—आप १ आदिदेव २ पुराण३पुरुष ४ सि० हो. दूसरा हेतु यह कि❀ आप ५ इस विश्वके ६।७ लयका स्थान ८ सि० हो ❀ अर्थात् प्रलयसमय यह सब जगत मायोपहित आपके स्वरूपमें ही लय होजाताहै ८ सि० तीसरा हेतु यह कि सब पदार्थोंके ❀ जाननेवाले९हो आप १०सि०चौथा हेतु यह कि ❀ जाननेके योग्य ११ भी १२ सि०आपही हो अर्थात् आपकाही जानना श्रेष्ठ है और सब पंडिताई वृथा है. पांचवां हेतु यह कि❀ परमधामभी १३।१४।१५सि०अर्थात् परमहंसोंका पदभी आपही हो १३।१४।१५.सि०छठा हेतु यह कि❀ आपकरके १६ सि० यह समस्त ❀ विश्व १७ व्याप्त १८सि० होरहा है, सातवां

हेतु यह कि आप ❋अनन्तरूप १९ सि० हो. हे अनन्तदेव ! इन हेतु करके आप हमको पूज्यहो, इसवास्ते हम आपको बारम्बार नमस्कार करते हैं ॥ ३८ ॥

मू०-वायुर्यमोग्निर्वरुणःशशांकः प्रजापतिस्त्वंप्रपिता महश्च ॥ नमोनमस्तेस्तुसहस्रकृत्वःपुनश्चभूयो पिनमोनमस्ते ॥ ३९ ॥

वायुः १ यमः २ अग्निः ३ वरुणः ४ शशांकः ५ प्रजापतिः ६ प्रपितामहः ७ त्वम् ८ ते ९ नमः १० नमः ११ च १२ अस्तु १३ सहस्रकृत्वः १४ भूयः १५ च १६ अपि १७ पुनः १८ ते १९ नमः २० नमः २१ ॥ ३९ ॥ अ०-उ० अनन्त इस सातवें हेतुका इस श्लोकमें विस्तार करके कहता है-पवन १ यमराज २ अग्नि ३ वरुण ४ चन्द्रमा ५ ब्रह्मा ६ ब्रह्माकेभी पितामह ७ आप ८ सि०हो अर्थात् आप असंख्यात रूपहो ❋आपको ९ वारंवार नमोनमः १० । ११ । १२ हो १३ हजारवार १४ फिरभी १५ । १६ । १७ वारंवार १८ आपको १९ नमोनमः २० । २१ अर्थात् जैसे आप अनंतरूप हो वैसेही मेरे अनन्त नमस्कार हैं २१ तात्पर्य असंख्यात (वारंवार) नमस्कार करनसे अतिश्रद्धाभक्ति श्रीमहाराजमें प्रकट करता है ॥ ३९ ॥

मू०-नमःपुरस्तादथपृष्ठतस्तेनमोस्तुतेसर्वतएवसर्व ॥ अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वंसर्वंसमाप्नोषिततोसि सर्वः ॥ ४० ॥

सर्व १ पुरस्तात् २ ते ३ नमः ४ अथ ५ पृष्ठतः ६ ते ७ नमः ८ अस्तु ९ सर्वतः १० एव ११ अनन्तवीर्य १२ त्वम १३ अमितविक्रमः १४ सर्वम् १५ समाप्नोषि १६ ततः १७ सर्वः १८ आसि १९ ॥ ४० ॥ अ०-उ० फिरभी और प्रकारसे नमस्कार करता हुआ श्रीमहाराजकी स्तुति करताहै-हे सर्व ! १ अर्थात् सर्वरूप सबके आ-

त्मा १ पूर्वके ओरसे २ आपको ३ नमस्कार ४ और ५ पिछले तर्फसे ६ आपको ७ नमस्कार ८ हो ९ सबतर्फसे १० ही ११ सि० आपको नमस्कार करताहूं. इत्यभिप्रायः ❀ हे अनन्तवीर्य ! १२ आप १३ बेमर्यादपराक्रमवाले १४ सि०हो❀सब १५ सि०जगत्में❀भलेप्रकार आप व्याप्त हो १६ तिसकारणसे १७ सर्वरूप१८ आप हो १९. टी० कोई कोई वीर्यवान् अर्थात् बलवान् होते हैं, परंतु समयपर पराक्रम नहीं करते. वीर्य और विक्रम पराक्रम शब्दोंमें यह भेद इसजगह समझना, तात्पर्य यह है कि श्रीभगवान् अनन्त वीर्यभी हैं और अनन्त पराक्रमवालेभी हैं ॥ ४० ॥

मू०–सखेतिमत्वाप्रसभंयदुक्तंहेकृष्णहेयादवहेसखेति ॥ अजानतामहिमानंतवेदंमयाप्रमादात्प्रणयेनवापि ॥ ४१ ॥

सखा १ इति २ मत्वा ३ प्रसभम् ४ यत् ५ उक्तम् ६ हे कृष्ण!७ हे यादव ! ८ हे सखे !९ इति १०अजानता ११ तव १२ इदम् १३ महिमानम् १४ मया १५ प्रमादात् १६ वा १७ प्रणयेन १८ अपि१९ ॥ ४१ ॥ अ०–उ०अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजको पहले सदासे अपना सखा समझता था हँसी चौहलके समय जो चाहताथा सोई कहदेताथा अब श्रीमहाराजकी यह महिमा देख उस अपराधको क्षमा कराता है, दो श्लोकोंमें–सि०आपको प्राकृतवत् अपना ❀ सखा १ ही २ समझकर ३ हठपूर्वक ४ जो ५ सि०मैंने❀कहा६ सि०सो आप क्षमा कीजिये. मैंने क्या क्या कहा सो सुनो ❀ हे कृष्ण !७सि०मेरा कहा नहीं मानता. इसप्रकार आधानाम लेकर आपको बोला ❀हे यादव !८सि०यहां नहीं आता❀हे सखा!९तू क्या करताहै. इसप्रकार १० सि०प्राकृतोंके तरह आपको संबोधन किया❀नहींजाननेवाला मैं ११ आपके १२ इस महिमाका१३ १८

सि० था ❋ अर्थात् इस आपके महिमाको मैं नहीं जानताथा ११ सि०इस हेतुसे ❋ मैंने १५ प्रमादसे १६ सि०आपको ऐसा कहा ❋ अथवा १७ स्नेहसे १८ भी १९ सि० ऐसा कहना बनसक्ता है ❋ ॥ ४१ ॥

मू०—यच्चावहासार्थमसत्कृतोसिविहारशय्यासनभोजनेषु ॥ एकोथवाप्यच्युततत्समक्षंतत्क्षामयत्वा महमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥

विहारशय्यासनभोजनेषु १ एकः २ अथवा ३ तत्समक्षम् ४ अपि ५ अवहासार्थम् ६ यत् ७ च ८ असत्कृतः ९ असि १० अच्युत ११ तत् १२ त्वाम् १३ अहम् १४ क्षामये १५ अप्रमेयम् १६ ॥ ४२ ॥ अ०—विहार शय्या आसन भोजनके समय १ अकेले २ अथवा ३ तिन मित्रोंके सामने ४ भी ५ आपके और अपने हँसानेके लिये ६ जो ७ जो ८ असत्कार किया है ९ । १० सि०मैंने आपका ❋ हे निर्विकार ११ सो १२ आपसे १३ मैं १४ क्षमा कराता हूं १५ सि०आप क्षमा कीजिये. कैसे हैं आप ❋ नहीं है प्रमाण आपका १६ अर्थात् आप अप्रमेय हो १६. तात्पर्य आपके महिमाका पारावार नहीं, इत्यभिप्रायः ॥ आपके लीलाचरित्रोंमें जो तर्क करते हैं वे बडे मूर्ख हैं. आप अचिन्त्यशक्तिमान् हो. टी०सैनकरना, खेलना, इत्यादि क्रियाको विहार कहतेहैं. पलंगपर लेटना, उस समयको शय्याका समय कहते हैं, मसनद गद्दी तकिये लगेहुए बिछोनोंपर बैठना उसको आसनका समय कहतेहैं, भोजनका समय प्रसिद्ध स्पष्ट है. इन समयमें अर्जुन व्रजचन्द्रसे अकेलाभी और औरोंके सामने भी चौहलहंसी किया करताथा श्रीमहाराज कभी चुप होजातेथे, कभी आपभी छेडछाड करने लग-

❋ इसभक्तिके महिमाके प्रतापपर और मेरे संक्षेप लिखनेपर

सोचना चाहिये कि, निर्भाग यह माहात्म्य भगवत्का सुनते भी परन्तु संसारसे टूटकर नारायणके चरणकमलोंमें प्रीति नहीं करते नजानिये फिर कौनसा मुहूर्त आवेगा जिसदिन भगवत्में ऐसे श्रोताओंकी प्रीति होगी ॥ ४२ ॥

मू०-पितासिलोकस्यचराचरस्यत्वमस्यपूज्यश्चगुरुर्गरीयान् ॥ नत्वत्समोस्त्यभ्यधिकःकुतोन्योलोकत्रयेप्यप्रतिमप्रभाव॥४३ ॥

अस्य १ चराचरस्य २ लोकस्य ३ त्वम् ४ पिता ५ आसि ६ पूज्यः ७ च ८ गुरुः ९ गरीयान् १० त्वत्समः ११ न १२ अस्ति १३ अन्यः १४ अभ्यधिकः १५ कुतः १६ अप्रतिमप्रभाव १७ लोकत्रये १८ अपि १९ ॥४३॥ अ०-उ० अचिन्त्यप्रभाव श्रीभगवान्का निरूपण करता है-इस १ चराचर २ लोकके ३ आप ४ जनक ५ हो ६ और पूजनके योग्य ७।८ गुरु ९ गुरुतर १० सि० भी आपहो. जिससे एक अक्षर भी सीखा जावे, उसको भी गुरु कहते हैं या जिससे कोई लौकिक विद्या सीखी, या पुरोहितको याने संस्कार करानेवालेको भी गुरु कहते हैं. एक कुलगुरु होते हैं जैसे इनदिनोंमें कंठी बांधनेका रिवाज है, कंठीबंध भी गुरु कहलाते हैं और एक सद्गुरु होते हैं कि जो जिज्ञासुका अज्ञान, संशय, विपर्यय ये अपने ज्ञानके प्रतापसे दूर करके परमानन्दस्वरूप आत्माको प्राप्त कराते हैं. ऐसे गुरुतर दुर्लभ हैं. श्रीसदाशिवजी कहते हैं कि, हे पार्वतीजी ! धनके हरनेवाले गुरु बहुत हैं शिष्यका सन्ताप हरनेवाले गुरुतर दुर्लभ हैं. तदुक्तं ॥ "गुरवो बहवः सान्ति शिष्यवित्तापहारकाः॥ दुर्लभः स गुरुर्देवि शिष्यसन्तापहारकः॥" अर्जुन कहता है कि महाराज ❀ आपके समान ११ नहीं १२ सि० कोई भी फिर ❀ दूसरा १४ अधिक १५ कहांसे १६ है १३ सि० हो ❀ हे अनुपमप्रभाववाले! १७ तीनलोकमें १८

भी १९ सि० कोई न आपके सदृश, न आपसे अधिक. जैसा आपका प्रभाव है, ऐसा प्रभाववाला कोई उपमाकेवास्तेभी नहीं ❀ ॥४३॥

मू०—तस्मात्प्रणम्यप्रणिधायकायंप्रसादयेत्वामहमीशमीड्यम् ॥ पितेवपुत्रस्य सखेवसख्युःप्रियःप्रियायार्हसिदेवसोढुम् ॥ ४४ ॥

तस्मात् १ त्वाम् २ अहम् ३ प्रसादये ४ ईशम् ५ ईड्यम् ६ कायम् ७ प्रणिधाय ८ प्रणम्य ९ पुत्रस्य १० पिता ११ इव १२ सख्युः १३ सखा १४ इव १५ प्रियः १६ प्रियायाः १७ देव १८ सोढुम् १९ अर्हसि २० ॥४४॥ अ०—सि० अनजानमें मुझसे दोष हुआ ❀ तिसकारणसे १ आपको २ मैं ३ प्रसन्न करता हूं ४. सि० आप ❀ ईश्वर ५ स्तुतिकरनेयोग्य हैं ६. सि० इसवास्ते ❀ शरीरको ७ नीचे झुकाकर ८ बहुत नम्र होकर ९ सि० आपसे यह प्रार्थना करता हूं कि ❀ पुत्रका १० सि० अपराध ❀ पिता ११ जैसे १२ मित्रका १३ सि० अपराध ❀ मित्र १४ जैसे १५ पुरुष १६ स्त्रीका १७ सि० अपराध जैसे क्षमा करता है इसी प्रकार ❀ हे देव! १८ सि० मेरा पिछला अपराध ❀ क्षमाकरनेको १९ आप योग्य हो २० अर्थात् पीछे मुझसे जो जो दोष हुए हैं, आप कृपाकरके इन अपराधोंकी अब क्षमा कीजिये १९।२०. तात्पर्य आपसे मैं इससमय बहुत डरता हूं. अब कभी आपकी हंसी न करूंगा न औरोंसे कराऊंगा. इत्यभिप्रायः ॥ ४४ ॥

मू०—अदृष्टपूर्वंहृषितोस्मिदृष्ट्वाभयेनचप्रव्यथितंमनो मे॥तदेवमेदर्शयदेवरूपंप्रसीददेवेशजगन्निवास॥४५॥

देव १ देवेश २ जगन्निवास ३ तत ४ एव ५ रूपम् ६ मे ७ दर्शय ८ प्रसीद ९ अदृष्टपूर्वम् १० दृष्ट्वा ११ हृषितः १२ अस्मि १३

भयेन १४ च १५ मे १६ मनः १७ प्रव्यथितम् १८ ॥ ४५ ॥
अ०—उ०अपराध क्षमाकराके प्रार्थाना करता है, इसप्रकार अब आज्ञा नहीं करता है कि, मेरे रथको दोनों सेनाके बीचमें खड़ा करो—हे देव!१हे देवेश!२ हे जगन्निवास!३सोई४।५रूप ६ मुझको ७ दिखाइये ८ सि० कि जो श्यामसुन्दररूप पहले मैं देखताथा ❋ आप प्रसन्न होजाइये ९ पहले मैंने नहीं देखाथा १० सि० आपका यह रूप इसवास्ते जो उसको ❋ देखकर ११ मैं आनंदित होताहूं १२।१३ सि० परंतु इसरूपसे ❋ भयकरके १४।१५ मेरा १६ मन १७ डरता है १८ सि० भय इसवास्ते लगता है कि आप कालरूप भयंकर मूर्त्तिमान् होरहेहैं ❋ ॥ ४५ ॥

मू०—किरीटिनंगदिनंचक्रहस्तमिच्छामित्वांद्रष्टुमहंतथैव॥तेनैवरूपेणचतुर्भुजेनसहस्रबाहोभवविश्वमूर्ते॥४६॥

सहस्रबाहो१ विश्वमूर्ते२ तथा ३ एव ४ किरीटिनम् ५गदिनम्६ चक्रहस्तम् ७ त्वाम् ८ अहम् ९ द्रष्टुम् १० इच्छामि ११ तेन १२ एव १३ चतुर्भुजेन १४रूपेण १५भव१६॥४६॥अ०—उ०श्रीमहाराजका माधुर्यरूप अर्जुन जो उसे देखताथा उसीको देखने चाहता है—हे सहस्रबाहो!१ हे विश्वमूर्ते!२ तैसे३ ही ४ किरीटवाला५ गदावाला ६ चक्र है हाथमें जिनके७ सि० ऐसा ❋आपको८मैं९देखनेकी १०इच्छा करताहूं ११तिसही१२।१३चतुर्भुजरूपवाले१४।१५ सि० तस्मात् वैसेही❋होजाइये१६ सि० अब इस हजारोंभुजावाले विश्वरूपको शान्त कीजिये. अर्जुनको सदा श्रीकृष्णचन्द्रमहाराज चतुर्भुज दीखाकरतेथे. अर्जुन उसी रूपका उपासक है इसवास्ते अर्जुनको वोही रूप प्यारा लगता है ❋ ॥ ४६ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ मयाप्रसन्नेनतवार्जुनेदंरूपंपरं

दर्शितमात्मयोगात् ॥ तेजोमयंविश्वमनंतमाद्यंयन्मे त्वदन्येननदृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥

श्रीभगवान् उवाच. अर्जुन १ मया २ प्रसन्नेन ३ आत्मयोगात् ४ तव ५ इदम् ६ यत् ७ मे ८ आद्यम् ९ अनन्तम् १० तेजोमयम् ११ परम् १२ विश्वम् १३ रूपम् १४ दर्शितम् १५ त्वदन्येन १६ न १७ दृष्टपूर्वम् १८ ॥ ४७ ॥ अ०—उ० श्रीभगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन! १ मैंने २ प्रसन्न होकर ३ अपने योगसे ४ तुझको ५ यह ६ जो ७ अपना ८ आदि ९ अनन्त १० तेजोमय ११ परम् १२ विश्वरूप १३ । १४ दिखाया १५ सि० कसा है यह रूप ❋ सिवाय तेरे १६ अर्थात् सिवाय तुझसदृशभक्तोंके १६. नहीं १७ देखा है पहले १८ सि० किसी अभक्तने. योगमायादि अनेक अनन्त अचिन्त्यशक्ति हैं श्रीमहाराजव्रजचंद्रमें उनशक्तियोंकरके जब चाहें विश्वरूप दिखासक्ते हैं ❋ ॥ ४७ ॥

मू०—नवेदयज्ञाध्ययनैर्नदानैर्नचक्रियाभिर्नतपोभिरुग्रैः ॥ एवंरूपःशक्यअहंनृलोकेद्रष्टुंत्वदन्येनकुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

कुरुप्रवीर १ नृलोके २ त्वदन्येन ३ एवम् ४ अहम् ५ रूपः ६ द्रष्टुम् ७ न ८ वेदयज्ञाध्ययनैः ९ न १० दानैः ११ नच १२ क्रियाभिः १३ न १४ उग्रैः १५ तपोभिः १६ शक्यः १७ ॥ ४८ ॥ अ०—उ० यह मेरा विश्वरूप विनामेरीकृपाके वेदोक्तकर्मोंका अनुष्ठान करनेसे कोई नहीं देखसक्ता—हे अर्जुन १ मत्यलोकमें २ सिवायतेरे ३ इसप्रकार ४ मेरा ५ रूप ६ देखनेके ७ न ८ वेदयज्ञोंका अध्ययन करके ९ न १० दानकरके न ११ । १२ क्रिया करके १३ न १४ अत्यन्त तप करके १५ । १६ सि० कोई ❋ समर्थ १७ सि० हुआ न होगा ❋ टी० यज्ञ एक विद्याहै, उस विद्याका नाम यज्ञभी है ॥ ४८ ॥

मू०-मातेव्यथामाचविमूढभावोदृष्ट्वारूपंघोरमीदृङ्मसेदम्॥ व्यपेतभीःप्रीतमनाःपुनस्त्वंतदेवमेरूपमिदंप्रपश्य ॥ ४९ ॥

ईदृक् १मम २ इदम् ३ घोरम् ४ रूपम् ५ दृष्ट्वा ६ ते ७ व्यथा ८ मा ९ विमूढभावः १० च ११ मा १२ व्यपेतभीः १३ प्रीतमनाः १४ पुनः १५ त्वम् १६ मे १७ तत १८ एव १९ रूपम् २० इदम् २१ प्रपश्य २२ ॥ ४९ ॥ अ०-उ० श्रीभगवान्‌ने विश्वरूपकी बहुत स्तुतिभी की परन्तु अर्जुनका डर न गया तब श्रीमहाराजने अर्जुनसे कहा कि, हे अर्जुन क्यों डरता है फिर वोही श्यामसुन्दर स्वरूप जो प्यारा लगताहै देख-इसप्रकार १ मेरा २ यह ३ घोर ४ रूप ५ देखकर ६ तुझको ७ व्यथा ८ मत ९ सि० हो ❀ और मूढता १०।११ मत १२ सि० हो. मूढतासे दुःख और भय होता है ❀ भय दूर कर १३ मनमें प्रीतिकर १४ फिर १५ तू १६ मेरा १७ सोई १८।१९ रूप २० यह २१ देख २२ सि० यह कहकर श्रीभगवान् उसीसमय श्यामसुन्दरस्वरूप होगये कि जो अर्जुनको प्रिय लगताथा ❀ ॥ ४९ ॥

मू०-संजयउवाच ॥ इत्यर्जुनंवासुदेवस्तथोक्त्वास्वकंरूपंदर्शयामासभूयः ॥ आश्वासयामासच भीतमेनंभूत्वापुनःसौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

संजय उवाच. वासुदेवः १ इति २ अर्जुनम् ३ उक्त्वा ४ भूयः ५ तथा ६ स्वकम् ७ रूपम् ८ दर्शयामास ९ पुनः १० च ११ महात्मा १२ सौम्यवपुः १३ भूत्वा १४ एनम् १५ भीतम् १६ आश्वासयामास १७ ॥५०॥ अ०-उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहताहै कि हे राजन्! श्रीकृष्णचंद्रमहाराजने फिर अपना वोही सुन्दर स्वरूप अर्जु-

२३

नको दिखाया—वासुदेव १ इसप्रकार २ अर्जुनसे ३ कहकर ४ सि०
जैसे पहलेथे किरीटादियुक्त ❀ फिर ५ तैसेही ६ अपना ७ रूप ८
दिखाते भये ९ और फिर करुणाकर १०।११।१२ शान्तप्रसन्न
रूप १३ होकर १४ इस भयमानका १५।१६अर्थात् अर्जुनका १६
आश्वासन करते भये १७ तात्पर्य अर्जुनसे श्रीभगवान्‌ने कहा कि
हे अर्जुन ! अब डर मतकर सावधान हो ॥ ५० ॥

मू०—अर्जुनउवाच ॥ दृष्ट्वेदंमानुषंरूपंतवसौम्यंजनार्दन॥
इदानीमस्मिसंवृत्तःसचेताःप्रकृतिंगतः ॥ ५१ ॥

अर्जुन उवाच.जनार्दन १ तव २ इदम् ३ सौम्यम् ४ मानुष्यम्५
रूपम् ६ दृष्ट्वा ७ इदानीम् ८ सचेताः ९ संवृत्तः १० अस्मि ११
प्रकृतिम् १२ गतः १३ ॥५१॥ अ०—अर्जुन श्रीमहाराजसे कहताहै
सि०कि ❀ हे जनार्दन ! १ आपका २यह ३शान्त ४मनुष्यरूप ५।६
देखकर ७ अब ८ प्रसन्नचित्त ९ हुआ १० हूं मैं ११ सि० और
अपने ❀ स्वभावको १२ प्राप्तहुआ १३ ॥ ५१ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ सुदुर्दर्शमिदंरूपंदृष्टवानसिय-
न्मम॥देवाअप्यस्यरूपस्यनित्यंदर्शनकांक्षिणः५२

श्रीभगवान् उवाच. इदम् १ यत् २ मम ३ रूपम् ४ दृष्टवान् ५
असि ६ सुदुर्दर्शम् ७ अस्य ८ रूपस्य ९ देवाः १० अपि ११
नित्यम् १२ दर्शनकांक्षिणः १३ ॥ ५२ ॥ अ०—श्रीभगवान् कहतेहैं
सि० कि हे अर्जुन ! ❀ यह १ जो २ मेरा ३ रूप ४ देखा ५ है तुम
ने ६ सि०इसका ❀ देखना बहुत कठिन है ७ इस ८ रूपके ९
देवता १० भी ११ सदा १२ दर्शनकी इच्छावाले १३ सि० रहते
हैं ❀ अर्थात् देवताभी इसरूपके देखनेकी सदा इच्छा करते हैं १२
१३. सि० परन्तु यह विश्वरूप उनको दीखता नहीं ❀ ॥ ५२ ॥

मू०-नाहंवेदैर्नतपसानदानेननचेज्यया ॥
शक्यएवंविधोद्रष्टुंदृष्टवानसिमांयथा ॥ ५३ ॥

यथा १ माम् २ दृष्टवान् ३ असि ४ एवंविधः ५ अहम् ६ न ७ वेदैः ८ न ९ तपसा १० न ११ दानेन १२ नच १३। १४ इज्यया १५ द्रष्टुम् १६ शक्यः १७ ॥ ५३ ॥ अ०-उ० यह दर्शन बहुत दुर्लभ था कि, जो तुमने देखा सोई कहते हैं-जैसा १ मुझको २ देखा ३ है तुमने ४ इसप्रकारका ५ मुझको ६ न ७ वेदोंकरके ८ न ९ तपकरके १० न ११ दानकरके १२ न यज्ञकरकेभी १३।१४।१५ दृष्टिगोचर करनेको १६ शक्यहै १७ सि० कोई ❀ तात्पर्य भगवत्के दर्शनमें भक्ति मुख्यसाधन है, तपदानादि गौणसाधन हैं ॥५३॥

मू०-भक्त्यात्वनन्ययाशक्यअहमेवंविधोर्जुन ॥
ज्ञातुंद्रष्टुंचतत्त्वेनप्रवेष्टुंचपरंतप ॥ ५४ ॥

अर्जुन १ परंतप २ एवंविधः ३ अहम् ४ अनन्यया ५ भक्त्या ६ तु ७ तत्वेन ८ ज्ञातुम् ९ द्रष्टुम् १० च ११ प्रवेष्टुम् १२ च १३ शक्यः १४ ॥ ५४ ॥ अ०-उ० अनन्यभक्तिकरके भगवतका स्वरूप देखाजाता है, जानाजाता है, प्राप्त होता है, सोई कहते हैं श्रीभगवान्-हे अर्जुन! १ हे परंतप! २ इसप्रकार ३ अर्थात् जैसा विश्वरूप पीछे दिखाया ३. मुझको ४ अनन्य ५ भक्तिकरके ६ तो ७ परमार्थसे ८ जाननेको ९ और देखनेको १०। ११ और १२ सि० मुझमें ❀ प्रवेशकरनेको १३ शक्य १४ सि० है. औरोंको अपने तपके सामने तपानेवाला अर्थात् अर्जुनके तपको देखकर अन्यराजा मनमें तपाकरतेथे कि हाय ऐसा तप हमारा नहीं कि जैसा अर्जुनका है और जिसतपके प्रतापसे प्रभु अर्जुनको आपना परम प्यारा मित्र समझकर उसके इच्छाके अनुसार वर्तते हैं. परमार्थसे भगवतको जानना यहहै कि परमेश्वर निराकार, नित्यमुक्त, निर्विकार, शुद्ध,

सच्चिदानन्दस्वरूप,पूर्णब्रह्म,मुझसे अभिन्न हैं और देखना यह है कि, आत्माको पूर्वोक्त विशेषणोंकरके विशिष्ट साक्षात् अपरोक्ष देखना, अनुमानादि प्रमाणोंकरके देखना और सावयव मूर्तिमान्को देखना, देखना नहीं कहलाता और प्रवेश होना यह है कि अविद्या कार्यके सहित नाश होजावे पीछे शुद्ध परमानन्दस्वरूप रहजाना यही परमेश्वरमें प्रवेश होना है. ऐसा नहीं समझना कि, जोतमें जोत जा मिलती है, जैसे थोड़ा जल समुद्रमें जाकर प्रविष्ट होजाता है यह नहीं समझना ❀ ॥ ५४ ॥

मू०—मत्कर्मकृन्मत्परमोमद्भक्तःसंगवर्जितः ॥
निर्वैरःसर्वभूतेषुयःसमामेतिपांडव ॥ ५५ ॥

पांडव १ यः २ मद्भक्तः ३ मत्कर्मकृत् ४ मत्परमः ५ संगवर्जितः ६ सर्वभूतेषु ७ निर्वैरः ८ सः ९ माम् १० एति ११ ॥५५॥

अ०—उ० सब शास्त्रसाधनोंका सार मुक्तिका साधन कहते हैं—हे अर्जुन ! १ जो २ मेराभक्त ३ मेरे अर्थ कर्मकरता है ४ मैंही हूं परम पुरुषार्थ जिसका ५ सि० पुत्रादिमें ❀ आसक्तिरहित ६ सबभूतोंमें ७ निर्वैर ८ सो ९ मुझको १० प्राप्त होता है ११ तात्पर्य जो कर्मकरना सो भगवत्में प्रीति बढनेकेलिये करना प्राणिमात्रसे वैर नहीं करना इति सिद्धान्तः ॥५५.॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः १२.

मू०—अर्जुनउवाच ॥ एवंसततयुक्तायेभक्तास्त्वांपर्युपासते ॥ येचाप्यक्षरमव्यक्तंतेषांकेयोगवित्तमाः॥१॥

अर्जुनः उवाच. एवम् १ सततयुक्ताः २ ये ३ भक्ताः ४ त्वाम् ५ पर्युपासते ६ ये ७ च ८ अपि ९ अक्षरम् १० अव्यक्तम् ११ तेषाम् १२ के १३ योगवित्तमाः १४ ॥ १॥ अ०—अर्जुनकहता है. सि० कि हे नारायण ! ❋ इसप्रकार १ सदायुक्तहुए २ जो ३ भक्त ४ आपकी ५ उपासना करतेहैं ६ और जो ७। ८ निश्चय ९ अक्षर १० अव्यक्त-की ११ सि० उपासना करते हैं ❋ तिनमें १२ कौनसे १३ योग-वित्तमहैं १४. टी० कोई तो आपको शिव विष्णु रामकृष्णादि मूर्तिमान् समझते हैं और कोई विश्वरूप विराट् हिरण्यगर्भ और कोई कर्महीको आपका रूप समझते हैं. कोई अंशअंशी भावसे आपकी उपासना करतेहै. कोई पुरुष ईश्वरादि जानकर जिसप्रकार कि प्रथमअध्यायसें लेकर ग्यारहवेंतक आपने उपदेश किया इस प्रकार सदा आपके उपदेशका अनुष्ठान करते हैं. इसीको उपासना कहते हैं. जो भक्त आपकी ऐसी उपासना करते हैं अर्थात् किसी की सांख्यपातंजलयोगमें निष्ठा है, किसीकी शांडिल्यविद्यामें निष्ठा है, अनुक्त ऐसेभी आपके उपासनाके बहुतमार्ग हैं. अर्थात् जो मैंने नहीं कहे. अब इस अध्यायमें और यहभी निश्चयसे है कि, बहुत महात्मा आपको निर्गुण नित्यमुक्त अद्वैत ऐसा समझकर आपकी उपासना करतेहैं. और चतुर्थादि अध्यायोंमें आपने श्रीमुखसे निर्गुण उपासकोंको आर्तादि सब भक्तोंसे विशेष श्रेष्ठ कहा और कर्मनिष्ठ योगियोंकी वैसीही सगुणब्रह्मके उपासकोंकीभी आपने बहुत स्तुति की पिछले अध्यायोंमें. अब मैं यह समझा चाहता हूं कि, कर्मी योगी सगुणब्रह्मके उपासक जो भक्त और निर्गुणके जो उपासक इन सबमें कौन भले प्रकार योगको जानते हैं. योगका अक्षरार्थ एकता है, वित् इसका अर्थ जानना यह है, योगको जानता है उसको योगवित् कहते हैं. तर तम ये दोनों शब्द विशेषार्थमें आतेहैं अर्थात्

योगके जाननेवालोंमें विशेषश्रेष्ठ कौन है पूर्वोक्त इन सबमें इत्यभिप्रायः ॥ १ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यावेश्यमनोयेमांनित्य
युक्ताउपासते ॥ श्रद्धयापरयोपेतास्तेमेयुक्त-
तमामताः ॥ २ ॥

श्रीभगवान् उवाच. ये १ परया २ श्रद्धया ३ उपेताः ४ मनः ५ मयि ६ आवेश्य ७ नित्ययुक्ताः ८ माम् ९ उपासते १० ते ११ मे १२ युक्ततमाः १३ मताः १४ ॥ २ ॥ अ०—उ० अर्जुनका प्रश्न और यह उसका उत्तर ऐसे समझो कि जैसी ये दो कथा पुरानी हम लिखते हैं. राजाने सूरदासजीसे बूझा कि कविता आपकी अच्छी है या तुलसीदासजीकी, सूरदासजीने उत्तर दिया कि मेरी. राजाने फिर बूझा कि तुलसीदासजीकी कविता कैसी है. सूरदासजीने उत्तर दिया कि तुलसीदासजीकी कविता नहीं, मंत्र हैं आपकी प्रश्न कविताके विषयहै. विचारो इसबोलीमें बड़ाई किसकी हुई. एक भक्तने सरस्वतिदेवीसे बूझा कि कवि कालिदासजी श्रेष्ठ हैं या दंडीस्वामी ? सरस्वतीजीने उत्तर दिया कि दंडीस्वामी कवि श्रेष्ठ हैं और इस वाक्य का सरस्वतीजीने तीनवार उच्चार किया ॥ कविर्दंडीकविर्दंडीकविर्दंडीनसंशयः ॥ वहां कालिदासभी थे उनको यह आधा श्लोक सुनतेही क्रोध आया और क्रोधयुक्त होकर सरस्वती देवीजीसे कालिदासजीने बूझा क्या दण्डीकवि है मैं कवि नहीं ? देवीजीने कहा कि आपतो मेरा स्वरूपही हो. इसीप्रकार अर्जुनने उपासना और अनुष्ठान किया इन विषय प्रश्न कियाहै. ज्ञानी महात्मा क्रियावान् उपासक नहीं होते ॥ ब्रह्मविद्ब्रह्मैवभवति ॥ ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मही है. अर्जुनसे—श्रीभगवान्ने कहा कि जो १ परम श्रद्धाकरके २।३ युक्त, ४ मनको ५ मुझमें ६ प्रवेशितकरके ७ नित्ययुक्त हुए ८ मुझ सगु-

णब्रह्मकी ९ उपासना करते हैं, १० वे ११मुझको १२ युक्ततम १३ संमत १४ सि०हैं. ❋ अर्थात् उनको युक्ततम मानता हूं १४.युक्त योगीका नाम है वे योगियोंमें श्रेष्ठ हैं. इतितात्पर्यार्थः। और जो कोई यह प्रश्नकरे कि निर्गुण ब्रह्मके उपासक युक्ततमहैं या नहीं ? इसका उत्तर पहलेही दोकथाओंके प्रसंगमें होचुका, कि वे युक्तयोगी नहीं. श्रीभगवान् चौथे मंत्रमें कहेंगे कि वे तो मुझको प्राप्त ही हैं उनका यहां क्या प्रसंग है. तीसरे चौथे मंत्रमें और तेरहवे मंत्रसे लेकर अध्यायके समाप्तिपर्यन्त निर्गुण उपासकोंके लक्षण कहेंगे सगुणउपासकोंको जो कहनाथा सो कहा. यह उत्तर सूरदासजीके और देवीजीके उत्तरके सदृश समझना चाहिये. इस मंत्रमें यह अर्थ किसी प्रकार नहीं जानजाता कि निर्गुणउपासकोंसे सगुणब्रह्मके उपासकोंको श्रीभगवान्ने श्रेष्ठ कहा. श्रेष्ठ बेसंदेह हैं परन्तु किनसे श्रेष्ठ हैं, योगियोंसे, कर्मनिष्ठोंसें, विषयी ऐसे पामरोंसे श्रेष्ठ हैं. इत्यभिप्रायः॥ २॥

मू०–येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तंपर्युपासते ॥
सर्वत्रगमचिंत्यंचकूटस्थमचलंध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामंसर्वत्रसमबुद्धयः ॥
ते प्राप्नवन्तिमामेवसर्वभूतहितेरताः ॥ ४ ॥

दो श्लोकोंका एक अन्वय है. सर्वत्रसमबुद्धयः १ सर्वभूतहिते २ रताः ३ इंद्रियग्रामम् ४ संनियम्य५ ये ६अनिर्देश्यम्७अव्यक्तम् ८ अक्षरम् ९ सर्वत्रगम् १० अचिन्त्यम् ११ च १२ कूटस्थम् १३ अचलम् १४ ध्रुवम् १५ पर्युपासते १६ ते १७ तु १८ माम् १९ प्राप्नुवंति २० एव २१ ॥ ३ ॥ ४ ॥अ०–उ०निर्गुण उपासकोंका माहात्म्य सुन–सब कालमें समानज्ञान रहता है जिनका१ सब भूतोंके भलेमें २ प्रीति रखते हैं ३ अर्थात् सबका भला चाहते हैं ३. इंद्रियोंके समूहका ४ निरोधकरके ५ जो ६ अर्थात् महात्मा निर्गुण

उपासक ६. अनिर्देश्य७अव्यक्त ८ अक्षर९ सर्वत्रग १० अचिन्त्य११ और १२ कूटस्थ १३ अचल १४ ध्रुवकी १५ उपासना करते हैं १६. सि०ऐसा ❀ अर्थात् आत्माको ऐसा जानकर कि जैसा सातके अंकसे पंद्रहके अंकतक कहा और संसारको इन्द्रजालवत् शुक्तिमें रजतवत् समझकरउसी परमानन्दस्वरूप आत्मामें मग्न रहते हैं.१६सि०अपने स्वरूपको यथार्थ जानलेना जैसा ऊपर कहा यही उनकी उपासनाहै, जो ऐसी उपासना करते हैं ❀वे १७तो१८ मुझको १९प्राप्त हैं २० हि याने निश्चयसे२१अर्थात् जब कि उनका स्वरूप अनिर्देश्य है,कहनेमें नहीं आता. इस हेतुसे उनको योगवित्तम और युक्ततम और श्रेष्ठादिशब्दों करके निर्देश करना नहीं बनता. यही समझना चाहिये कि वे मेरास्वरूप हैं जैसा मैं मनवाणीका विषयनहीं ऐसेही वे हैं २०। २१. सि०उनको उपासक कहना यह एक बोली है. ❀टी०सदा सुख दुःख इष्टानिष्टादिके प्राप्तिमें आत्माको एकरस जानतेहैं. ब्रह्मज्ञानी १ कहनेमें नहीं आता है कि वो ऐसा है७ रूपरसादिवत् वो प्रगट नहीं ८ कभी कम नहीं होता ९ सबजगह प्राप्त है १० उसका चिंतवन नहीं होसक्ता क्योंकि वो चित्तसे भी सूक्ष्म परेहै ११ निर्विकार १२ निश्चल १४ नित्य १५ ॥ ३ ॥ ४ ॥

मू०—क्लेशोधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ॥
अव्यक्ताहिगतिर्दुःखंदेहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

अव्यक्तासक्तचेतसाम् १ तेषाम् २ अधिकतरः ३ क्लेशः४अव्यक्ता ५ हि ६ गतिः ७ देहवद्भिः ८ दुःखम् ९ अवाप्यते १० ॥ ५ ॥

अ०—उ०जब कि निर्गुण ब्रह्मके उपासक ब्रह्मरूप होतेहैं तो सगुणब्रह्मकी उपासना छोडकर निर्गुणब्रह्मकी उपासना करना चाहिये यह शंका करके श्रीभगवान् कहते हैं—अव्यक्तमें आसक्त है चित्त जिनका १ अर्थात् और उस उपासनाके योग्य वे अभी हुए नहीं।

तिनको २ बहुत अत्यंत ३ दुःख ४ सि० होता है. क्योंकि रूपरसादि विषयोंसे प्रीति दूर होना सहज नहीं ❀ अव्यक्ताहि गतिः ५।६। ७ अर्थात् अव्यक्तकी प्राप्ति ५।६।७. देहाभिमानियोंको ८ अर्थात् जो आत्माको क्रियावान् समझते हैं, शुद्धसच्चिदानंदआत्माको पूर्णब्रह्म नहीं समझते तिनको ८. दुःखसे ९ प्राप्त होतीहै १०. तात्पर्य उनको बहुत प्रयत्न करना पडताहै. देहाभिमानियोंके वास्ते अन्योपाय श्रीभगवान् अभी इसमंत्रसे आगे सात श्लोकोंमें याने बारहके श्लोकतक कहेंगे. उसका अनुष्ठान करनेसे निर्गुणब्रह्मकी प्राप्ति उनको सुलभ होजायगी. निर्गुणब्रह्मके उपासकोंने भी पहले वोही अनुष्ठान किया है, जब उनको परमानन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्ति हुई है. आत्मनिष्ठाको क्रिया समझना न चाहिये. सगुणब्रह्मके उपासनावत् सगुणब्रह्मके उपासनाका फल समझना. सगुणब्रह्मके उपासकका यावत् देहमें अध्यास बना रहै, देहइंद्रियादिके साथ ममता तादात्म्यता एकता बनी रहे, विवेकवैराग्यादि साधन न हो, तबतक वे निर्गुणब्रह्मके उपासनाके योग्य नहीं. जो निर्गुणब्रह्मकी महिमा सुनकर उस उपासनामें चित्तको आसक्त करेंगे, उनको प्रथम तो बहुत दुःख होगा, क्योंकि निर्गुणब्रह्म आत्मा अति सूक्ष्म देहेन्द्रियादिसे विलक्षण है. देहाभिमानीको उसकी प्राप्ति होना बहुत कठिन है. वो ब्रह्मको आत्मासे जुदा समझता है. इसप्रकरणका अर्थ जो हमने लिखा है सो तो श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीशंकराचार्यमहाराजजीके भाष्यानुसार और श्रीस्वामी आनंदगिरिजीने भाष्यपर जो टीका बनाई है और श्रीशंकरानंदी और मधुसूदनी इत्यादि टीकाओंके अनुसार यथामति लिखा है. कोई२भेदवादी जानकर, या भूलकर, या अमर्ष ईर्षादिसे, जो इस प्रकरणका अनर्थ करतेहैं सोभी संक्षेप करके लिखा जाता है. लीलाविग्रह अतएव मूर्तिमान् ऐसे रामकृष्णादिकी उपासना पुराणोक्त है. मन्दमध्यम अधिकारियोंके लिये अंतःकरण

शुद्धिका साधन है.इसहेतुसे साधनोंके प्रकरणमें जितनी उस उपासनाकी स्तुति महिमा बडाई लिखी जा, वो सब सत्य अर्थात् प्रमाणहै. परंतु वे लोग निर्गुण उपासनाकी प्रत्यक्ष निंदा (असूया) करते हैं. और कोई अर्थका अनर्थ करतेहैं, अक्षरोंका अर्थ फेर देतेहैं.वे इस प्रकरणका क्या अनर्थ करतेहैं सो सुनो. अर्जुनने श्रीकृष्णचंद्रजीसे प्रश्न किया कि सगुणब्रह्मके उपासक श्रेष्ठहैं, या निर्गुणब्रह्मके. श्रीभगवान्ने उत्तर दिया कि सगुणब्रह्मके उपासक श्रेष्ठ हैं. यद्यपि निर्गुणब्रह्मके उपासक भी मुझकोही प्राप्त होंगे. परंतु उनको उस उपासनामें बहुत दुःख होता है. क्योंकि देहधारीसे निर्गुणकी उपासना होना बहुत कठिन है और जो सगुणब्रह्मके उपासक हैं उनको जल्दी विना श्रम संसारसे मैं उद्धरूंगा वे लोग यह अर्थ करते हैं. तन्न अर्थात् सो नहीं है अर्थ इस प्रकरणका. क्यों नहीं सो सिद्धांत कहते हैं. विचारो कि अर्जुनका प्रश्न यह है,कि तिनमें योगवित्तम कौन है. योगवित्तमका अर्थ जो हमने किया, उसको विचारो और जो वे कहते हैं, उसको विचारो. श्रीभगवान्ने उत्तर दिया कि सगुणब्रह्मके उपासक युक्ततम हैं, मेरे मतमें और निर्गुणब्रह्मके उपासक तो मुझको निश्चयसे प्राप्तहैं हीं. युक्ततमका अर्थ जो हमने किया सो विचारो और जो वे करते हैं सो विचारो. यह अर्थ कैसा निकलता है,कि सगुणब्रह्मके उपासक निर्गुण ब्रह्मोपासकोंसे श्रेष्ठ हैं.प्राप्नुवंति इस वर्तमानक्रियाका अर्थ सगुणोपासक भविष्यत् अर्थ करदेते हैं और तु इस शब्दका भी यह अर्थ करते हैं. अर्थात् वे भी मुझको प्राप्त होंगे. अब एक तो इस अर्थको विचारो, कि वे तो मुझको प्राप्त हैं निश्चयसे और एक इस अर्थको विचारो, कि वेभी मुझको प्राप्त होंगे. कितना अन्तर पडगया और अर्थका अनर्थ हुआ या नहीं.मुक्तपुरुषोंको साधक कहदिया और तु इस शब्दका तो यह अर्थ छोडकर, भी यह अर्थ करदिया कि, परमेश्वरके प्राप्तिमें भी यह शब्द सन्देह

उत्पन्न करता है. और उसीजगह एव यह शब्द है, उसका अर्थ निश्चयसे और ही यह होता है. उसको छोडदेते हैं, उसका कुछ अर्थ करतेहीनहीं-प्रकरणका अर्थ स्पष्ट है. निर्गुणब्रह्मके उपासक भगवत्को जीतेही प्राप्त हैं, किसीसाधनकी उनको अपेक्षा नहीं और सगुणब्रह्मके उपासक युक्ततम हैं. उत्तमयोगी साधकका नाम युक्ततम है. साधक योगियोंमें श्रेष्ठ हैं, यह युक्ततमका अर्थ है. निर्गुण उपासकोंसे कभी श्रेष्ठ नहीं होसक्ते. क्योंकि ज्ञानीलोक भगवद्रूप हैं. चौथे अध्यायमें श्रीभगवान्‌ने स्पष्ट कहा है, कि ज्ञानी मेरा आत्माहै, तीसरे अध्यायमें यह कहाहै कि मैंने दोनों निष्ठा कही हैं. विरक्तोंके वास्ते ज्ञाननिष्ठा, अज्ञानियोंके लिये कर्मनिष्ठा. यह जो तू बूझताहै कि दोनोंमें श्रेष्ठ क्याहै. यह प्रश्नही अयोग्यहै. क्योंकि अधिकारी प्रति दोनों श्रेष्ठ हैं. अर्थात् ज्ञाननिष्ठाके श्रेष्ठ होनेमें तो कुछ सन्देह है नहीं क्योंकि वो कर्मनिष्ठाका फलहै, मोक्षदाता है, विषयी बहिर्मुखोंके निष्ठासे कर्मनिष्ठा श्रेष्ठ है, कर्मनिष्ठामेंही उपासनाका अन्तर्भाव है, जैसा प्रश्न अर्जुनने तीसरे अध्यायमें किया कि ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा इनदोनोंमेंसे कौनसी निष्ठा श्रेष्ठहै. ऐसाही यह प्रश्न किया कि उपासकोंमें कौन श्रेष्ठ है, प्रश्नअनजानमें होता है. अर्जुन ज्ञाननिष्ठाको भी साधन समझा. श्रीभगवान्‌ने यह तो न कहा कि यह प्रश्न अयोग्य है, परन्तु उसी प्रश्नके अनुसार प्रकरणको पृथक् करके ऐसा उत्तर देदिया कि किसीने अपनेको निकृष्ट न समझना. पांचवें मंत्रका वे यह अर्थ करते हैं कि निर्गुण ब्रह्मके उपासकोंको बहुत दुःख होता है. यहभी असत्य है. क्योंकि दुःख साधकोंको होता है. निर्गुणब्रह्मके उपासक साक्षात् परमानन्दको प्राप्त हैं श्रीभगवान्‌ने उसी मंत्रमें विशेषण दिया कि जिनको देहका अभिमान है उनको दुःख होता है, विचारो देहाभिमानी ज्ञानी होते हैं, या उपासक. विनादेहाभिमान उपासना-

नहीं बनसक्ती. और विनादेहाभिमानगये साक्षात् निर्गुणब्रह्मकी उपासना नहीं बनसक्ती. यह नियम है और जिसको देहाभिमान है, उसको हम ज्ञानी, निर्गुणब्रह्मका उपासक नहीं कहते. यहां प्रसंग सच्चे उपासकोंका है. जो कोई वेषधारीमें देहाभिमानकी शंका करे तो हम तिलकमालाधारीमें हजारशंका अभक्ति पाखंडकी करसक्ते हैं. विचारो एकतो साक्षात् परमानन्दको प्राप्त हैं. परमानन्दरूपआत्माको अपरोक्ष समझकर उपासना करते हैं. और एक आनन्दकी इच्छा करते हुए आनन्दजनक रामकृष्णादिकी उपासना करते हैं, दृष्टान्तमें समझो कि एकतो भोजन कररहा है और एक भोजन बनारहा है, दोनोंमें दुःख किसको है और जो सगुणब्रह्मके उपासक यह कहैं, कि हमारे इष्टदेवभी रामकृष्णादि आनन्दरूप मूर्तिमान् हैं सो नहीं होसकता. आनन्दपदार्थ अमूर्तिमान् सदा निरवयव रहता है लक्षरूपरामकृष्णादिका आनन्दरुप है सो उनको परोक्ष है और वो ज्ञानियोंको अपरोक्ष हैं. और यही भेद भी है सगुणब्रह्मकी उपासना और निर्गुणब्रह्मकी उपासना इनमें. और जो वे यह कहै कि हमको भी आनन्दरूप अपरोक्ष है तो हम उनको ज्ञानी निर्गुणब्रह्मके उपासक कहेंगे. यही सिद्धान्त है, कि जिनको परमानन्दके अपरोक्ष होनेमें यही परीक्षा है, कि जिनको देहाभिमान, वर्णाश्रम, जाति, इत्यादि दास स्वामी भावका अभिमान है. भेदभाव जिनमें प्रतीत होता है, ऐसे देहाभिमानियोंको परमानन्द अपरोक्ष कहां है. सगुणोपासक निर्गुणोपासनाका समूल खंडन करते हैं. क्योंकि परमानन्दकी प्राप्ति उन्होंने केवल सगुणोपासनासे मानी, कि जिसको परमपद मुक्ति कहते हैं, और निर्गुणउपासनाका फल दुःख बताया तो निर्गुणोपासना आपही खंडित होगई. और निर्गुणोपासक सगुणोपासनाका खण्डन नहीं करते, न उनको बुरा कहते हैं. जब सगुणोपासक वृथा निर्गु-

णोपासकोंसे तकरार वाद करने लगते हैं;तब निर्गुणोपासक यथार्थ व्यवस्था कहदेते हैं. इसी हेतुसे यह प्रसंग हमनेभी लिखाहै. समझो और विचारो कि जो निर्गुण ब्रह्मके उपासनामें दुःख होता तो वे सगुणोपासनाको छोडकर क्यों अंगीकार करते. दूसरा यह कि निर्गुणोपासक तो दोनों उपासनाका आनंद जानताहै, सगुणोपासक एककाही जानते हैं, जो अनुभव की हुई, वरतीहुई बात कहे.उसके वाक्यमें श्रद्धा होतीहै. तीसरा यह कि जो ज्ञानी होगा वो बेसन्देह विद्यावान् होगा. विनाब्रह्मविद्या भगवत्‌की पहँचान नहीं होसक्ती. चौथा निर्गुणउपासनामें प्रवृत्ति नहीं, सगुणउपासनामें अत्यन्त प्रवृत्ति है. जहां प्रवृत्ति होगी और जहां द्रव्य गहने और वस्त्रादिका जहां सम्बन्ध होगा, वहां सब अनर्थ होंगे.पांचवां सगुणोपासक बहुत सगुणोपासनाको छोड निर्गुणोपासना करने लगते हैं. निर्गुणोपासकने (कभी न सुनाहोगा कि उसने) अपनी उपासना छोडकर सगुणोपासना की हो. मूर्खोंका यहां प्रसंग नहीं. आनन्दको छोड दुः खमें कोई नहीं प्रवृत्त होता, दुःखको छोड़ आनन्दमें सब प्रवृत्त होते हैं. इस हेतुसे विचारकरो कि दुःख किस उपासनामें है और आनन्द किस उपासनामें है. छठवाँ भगवद्गीता अद्वैतामृतवर्षिणीहै, इसमें जो द्वैतसिद्धांत समझते हैं वे अद्वैतामृतवर्षिणीका अर्थ करें. तात्पर्य सगुणोपासना साधन है, निर्गुणोपासना फल है. इत्यभिप्रायः ॥५॥

मू०—येतुसर्वाणिकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्पराः ॥
अनन्येनैवयोगेनमांध्यायंतउपासते ॥ ६ ॥

सर्वाणि १ कर्माणि २ तु ३ मयि ४ संन्यस्य५ ये६ मत्पराः ७ अनन्येन८ योगेन ९ एव १०माम्११ ध्यायंतः १२ उपासते १३ ॥ ६ ॥अ०—उ०सगुणब्रह्मोपासकोंके वास्ते निर्गुणब्रह्मके प्राप्तिका उपाय अधिकारभेदसे कै प्रकारका कहतेहैं छह श्लोकोंमें—भगवद्भक्त

जैसा अपना सामर्थ्य जाने सोई उपाय करें. सब कर्मोंका१।२ तो३ मुझमें ४ संन्यासकरके ५ जो ६ मुझपरायण ७ अनन्ययोग करके ८।९ निश्चय १०मेराध्यान करते हुए ११।१२ उपासना करते हैं१३ सि०मेरी. तिनका मैं उद्धार करूंगा. इसश्लोकका अगले श्लोकके साथ संबंधहै ❋तात्पर्य इसश्लोकमें उनभक्तोंका प्रसंगहै.कि जिन्होंने इस जन्ममें या पिछलेजन्मोंमें अग्निहोत्रादि कर्मोंका अनुष्ठान करके अंतःकरण शुद्ध करलिया है. उन कर्मोंका तो संन्यास करके दिनरात्रि गंगाप्रवाहवत् सगुणब्रह्मका ध्यान करते हैं. सिवाय परमेश्वरके और कुछ अपनेको आश्रय नहीं जानते, भगवद्भक्तिकोही सार सिद्धान्त समझते हैं. दूसरेमतको बुरा कहना न भला कहना. यह लक्षण उत्तमसगुणब्रह्मके उपासकोंकाहै, ऐसे भक्तोंका ब्रह्मविद्याद्वारा अनायास शीघ्र परमेश्वर उद्धार करते हैं ॥ ६ ॥

मू०–तेषामहंसमुद्धर्तामृत्युसंसारसागरात् ॥
भवामिनचिरात्पार्थमय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥

पार्थ १ मयि २ आवेशितचेतसाम् ३ तेषाम् ४ मृत्युसंसारसागरात् ५ न ६ चिरात् ७ समुद्धर्ता ८ अहम् ९ भवामि १० ॥ ७॥

अ०–उ० भक्तोंको धीरज बँधानेके लिये अपने छातीपर हस्तकमल रखकर प्रतिज्ञा करते हैं–कि, हे अर्जुन! १ मुझमें २ लगरहाहै चित्त जिनका ३ तिनका ४ मृत्युसंसारसमुद्रसे ५ जलदी ६।७ उद्धारकरनेवाला ८ मैं ९ हूं १० तात्पर्य जो श्रीकृष्णचन्द्ररामचन्द्रादिसदाशिवादिके भक्त हैं,वे जलदी संसारसमुद्रसे पार होंगे. जैसे कोई मणिके प्रभाको मणि समझकर लेनेके लिये दौडताहै. प्रभा तो मणी न था; परंतु उसजगह सच्चामणि दीखपडता है, जब उस मणिका मिलना सहज होजाता है. इसी प्रकार सगुणब्रह्मकी उपासना करते करते शुद्धसच्चिदानन्दका ज्ञान होजाताहै भगवत्का जानना यही संसारसे उद्धार होना है. फिर उसको जन्ममरण नहीं होता. श्रीभगवान् यह

प्रतिज्ञा पूर्ण होनेके लिये अपना यथार्थ स्वरूप तेरहवें अध्यायमें निरूपण करेंगे, जिसके जाननेसे शीघ्र उद्धार होजावे ॥ ७ ॥

मू०-मय्येवमनआधत्स्वमयिबुद्धिंनिवेशय ॥
निविशिष्यसिमय्येवअतऊर्ध्वंनसंशयः ॥ ८ ॥

मयि १ एव २ मनः ३ आधत्स्व ४ मयि ५ बुद्धिम् ६ निवेशय ७ अतः ८ ऊर्ध्वम् ९ मयि १० एव ११ निविशिष्यसि १२ न १३ संशयः १४ ॥ ८ ॥ अ०-उ० जिनका मन मुझमें आसक्त है उनका मैं उद्धार करूंगा. यह मैंने प्रतिज्ञा कीहै-इसवास्ते हे अर्जुन! तू भी मुझमें १ निश्चय २ मनको ३ स्थितकर ४ मुझमें ५ बुद्धिका ६ प्रवेशकर ७ इससे ८ पीछे ९ मुझमें १० ही ११ वासकरेगा तू १२ नहीं १३ संशय १४ सि० है इसवाक्यमें ❀ तात्पर्य वेदकी यह श्रुति है ॥ "देहान्तेदेवःपरंब्रह्मतारकंव्याचष्टे" ॥ इति । अर्थात् देहके अन्तसमय परब्रह्म अपने इष्टदेव तारकमंत्रका (ॐकारका) उपदेश करते हैं. उसीसमय ब्रह्मज्ञान होकर परमान्दको प्राप्त होजाता है. यही परमेश्वरमें वास करना है ॥ ८ ॥

मू०-अथचित्तंसमाधातुंनशक्नोषिमयिस्थिरम् ॥
अभ्यासयोगेनततोमामिच्छाप्तुंधनंजय ॥ ९ ॥

धनंजय १ अथ २ मयि ३ चित्तम् ४ समाधातुम् ५ न ६ शक्नोषि ७ स्थिरम् ८ ततः ९ अभ्यासयोगेन १० माम् ११ आप्तुम् १२ इच्छ १३ ॥ ९ ॥ अ०-उ० पूर्वोक्त उपायसेभी सुगम उपाय कहते हैं-हे अर्जुन! १ और जो २ मुझमें ३ चित्त ४ समाधान करनेको ५ नहीं ६ तू समर्थ है ७. स्थिर ८ सि० नहीं करसक्ता है मनको ❀ तो ९ अभ्यासयोग करके १० मेरे ११ प्राप्तिकी १२ इच्छाकर १३. सि० मूर्तिमान् परमेश्वरमें या विश्वरूपमें, जो दिनरात चित्त स्थिर रहे, तो वारंवार यह अभ्यास करना कि, जब मन दूसरे पदार्थमें जावे

उसीसमय वहांसे हटाकर उसीस्वरूपमें समाधान करे. इसीको अभ्यासयोग कहतेहैं ❀ तात्पर्य अभ्यास करते करते अवश्य मन एकजगह निश्चल होजाता है. अभ्यासमें जलदी न करे. असंख्यातवर्षोंसे मन भगवत्से विमुख होरहा है. अबभी जो दोचारवर्षमें अभ्यासके बलसे भगवत्के सन्मुख होजा तोभी बडी बात है. अभ्यासमें प्रथम दुःख प्रतीत होताहै, दुःख समझकर अभ्यास नहीं छोडदेना॥९॥

मू०—अभ्यासेप्यसमर्थोसिमत्कर्मपरमोभव ॥
मदर्थमपिकर्माणिकुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥

अभ्यासे १ अपि २ असमर्थः ३ असि ४ मत्कर्मपरमः ५ भव ६ मदर्थम् ७ अपि ८ कर्माणि ९ कुर्वन् १० सिद्धिम् ११ अवाप्स्यसि १२ ॥ १० ॥ अ०—उ०उससे भी सुगम उपाय कहते हैं—अभ्यासमें १ भी २ असमर्थ ३ तू है ४. सि० तो ❀ मत्कर्मपरायण५ हो तू६ अर्थात् साधुओंके शिर आँखोंसे टहलकरना, दिनरात्रि उनके सेवामें लगेरहना, शिवालय केशवालय बनाना, मंदिरोंमें बुहारी देना लीपना, ठाकुरसेवाके बर्तन मांजना, शुद्धजल अपने हाथसे लाना बहुत क्रियाके साथ रसोई बनाना, प्रथम परमेश्वरको भोग लगाना और ढूंढकर साधुको जिमाना, ऐसे ऐसे बहुत कर्म साधु महात्मा बतासक्ते हैं, ऐसे कर्मोंमें तत्पर होना चाहिये ६ सि० श्रीभगवान् कहते हैं, कि ❀ मेरे अर्थ७ भी ८ कर्मोंको ९ करता हुआ १०सि० अंतःकरणशुद्धिद्वारा ज्ञानको प्राप्त होकर ❀ मोक्षको ११ तू प्राप्त होगा १२ तात्पर्य भगवद्भजनसंबंधी और भगवत्सेवासंबंधी जो कर्म हैं, वे सब अंतःकरणको शुद्ध करसक्ते हैं ॥ १० ॥

मू०—अथैतदप्यशक्तोसिकर्तुंमद्योगमाश्रितः ॥
सर्वकर्मफलत्यागंततःकुरुयतात्मवान् ॥ ११ ॥

अथ १ एतत् २ अपि ३ कर्तुम् ४ अशक्तः ५ असि ६ ततः ७

मद्योगम् ८ आश्रितः ९ सर्वकर्मफलत्यागम् १० कुरु ११ यतात्मवान् १२ ॥ ११ ॥ अ०–उ०उससे भी सुगम उपाय कहते हैं-जो १ यह २ भी ३ करनेको ४ असमर्थ ५ है तू ६ तो ७ भक्तियोगका ८ आश्रयकरके ९ सबकर्मोंके फलका त्याग १० कर तू ११ मनको जीतकर १२ अर्थात् अब तू फिर संकल्प विकल्प कुछ मत कर. जो कुछ नित्य नैमित्तिक और प्रायश्चित्तादि कर्मोंका अनुष्ठान होसके वोही कर. उसके फलमें आसक्ति मत कर. यह समझ कि, मैं तो तनमनधनकरके भगवत्के शरण हूं. मैं तो उनका दास हूं. वे महाराज अंतर्यामी हैं. जैसा चाहें मुझसे शुभाशुभ कर्म करावें, और जैसा चाहें उन कर्मोंका फल दें, मुझको तो सिवाय परमेश्वरके और कुछ किसी तरहका आश्रय नहीं परंतु यह प्रकट रहे कि, धनादिके प्राप्तिके लिये जहां तक होसके राजादिमनुष्योंका दास जान बूझकर न बने. व्यवहारका भार तो परमेश्वरको सौंप देना. और परमार्थमें मोक्षके लिये जहांतक बनसके प्रयत्न करना चाहिये उलटा ऐसा नहीं समझना कि, परलोकका भार तो परमेश्वरको सौंप देना. अर्थात् यह समझना कि, परमेश्वर जो चाहे सो करे, मेरे करनेसे क्या होता है. यह मोक्षमार्गमें नहीं समझना. व्यवहारमें यह समझना कि, मेरे करनेसे कुछ नहीं होता, जो प्रारब्धमें लिखा गया है वोही होगा. मोक्षमार्गमें पुरुपार्थ मुख्य है. व्यवहारमें प्रारब्ध मुख्य है. इत्यभिप्रायः १२ ॥ ११ ॥

मू०–श्रेयोहिज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानंविशिष्यते ॥
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनंतरम्॥१२॥

अभ्यासात् १ ज्ञानम् २ श्रेयः ३ हि ४ ज्ञानात् ५ ध्यानम् ६ विशिष्यते ७ ध्यानात् ८ कर्मफलत्यागः ९ त्यागात् १० अनन्तरम् ११ शान्तिः १२ ॥ १२ ॥ अ०–उ०सब कर्मोंके फलका त्याग इसहेतुसे

श्रेष्ठ है–अभ्याससे १ ज्ञान २ श्रेष्ठ है ३ निश्चयसे ४ शास्त्रीयज्ञानसे५ ध्यान ६ विशेष है ७ ध्यानसे ८ कर्मोंके फलका त्याग ९ सि० श्रेष्ठ है ❀ त्यागसे १० पीछे ११ शान्ति १२सि०होती है❀टी० बिना भलेप्रकार वेदोंका तात्पर्य जानेहुए जो किसी कर्मके अनुष्ठानमें अभ्यास करना, उससे प्रथम वेदोंका तात्पर्य समझना जानना यह ज्ञान श्रेष्ठ है २।३. क्योंकि जिसको परोक्षज्ञान यथार्थ होगया वो अवश्यही कभी न कभी उसका अनुष्ठान भी करेगा. अविद्यावानके अनुष्ठान करनेसे विद्यावान् विना अनुष्ठान कियेभी श्रेष्ठ है क्योंकि वो एक मार्गपर है अविद्यावान् मूर्खको कहां विचार है कि मुझको किस कर्मका अधिकार है. जो उसको प्रिय लगता है वोही करने लगता है, इसी हेतु कर्मोंका फल उनको प्रत्यक्ष नहीं होता और पंडित ज्ञानियोंसे अर्थात् परोक्षज्ञानियोंसे विद्यावान् रामकृष्णादिका ध्यान करनेवाले श्रेष्ठहैं ६।७ मूर्तिमान् परमेश्वरके ध्यान करनेवालोंसे भी जो विद्यावान् कर्मोंका निष्काम अनुष्ठान करते हैं अर्थात् श्रौत, स्मार्तकर्म और भगवदाराधन और हिरण्यगभ सूर्यादिकी उपासना और भी भगवत्संबंधी जो कर्म, इन सबकर्मोंके फलका त्यागकरते हैं वे श्रेष्ठ हैं. ९ क्योंकि, शान्ति कर्मोंका फल त्यागनेसे होती है विना त्याग संसारसे चित्त उपराम नहीं होता, लौकिक और वैदिक दोनोंकर्मोंके फलसे जब चित्त उपराम होताहै. दोनों कर्मोंके फलसे जब वैराग्य होता है, तब शान्ति और उपरति होती है १२. वैराग्य और उपरति ये दोनों ज्ञाननिष्ठाके अंतरंग मुख्य साधन हैं और फिर ज्ञाननिष्ठ होकर कृतार्थ होता है अर्थात् परमानन्दको प्राप्त होजाता है ॥ १२ ॥

मू०–अद्वेष्टासर्वभूतानांमैत्रःकरुणएवच ॥
निर्ममोनिरहंकारःसमदुःखसुखःक्षमी ॥ १३ ॥

सर्वभूतानाम्१ अद्वेष्टा२ मैत्रः ३ करुणः ४ एव५ च६ निर्ममः७ निरहंकारः ८ समदुःखसुखः ९ क्षमी १० ॥ १३ ॥ अ०–उ० शान्तपुरुष और ज्ञाननिष्ठ महापुरुषोंके लक्षण श्रीभगवान् सात श्लोकोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कहेंगे–सि० ज्ञानीजन ❀ सब भूतोंके १ सि० साथ (इस प्रकार वर्तते हैं, जो कि आपसे जाति रूप और धनादिमें बडे हैं) ❀ द्वेष नहीं करते २ सि० बहुवचन आदरके-लिये लिखते हैं. बराबरके साथ ❀ मित्रता ३ सि० रखते हैं छोटोंपर ❀ दयाही ४ । ५ । ६ सि० कहते हैं. यह चाहते हैं कि जस हम विद्यावान् धनवाले हैं. परमेश्वर करें यह भी ऐसेही हो-जावें और जहांतक होसके यथाशक्ति उनके ऊपर उपकार करते हैं और दुष्टजन चोर जार और पापी जनोंकी उपेक्षा करते हैं अर्थात् उनको न बुरा कहना न भला कहना न उन्होंपर उपकार करना न अपकार करना " खलपरिहारियश्वानकीनांई " दुष्टोंको कुत्तेके सदृश समझते हैं कुत्तेको टूक डालनेमें क्षती नहीं इत्य-भिप्रायः ॥ पुत्र, स्त्री, मित्र, धन और मन्दिर, इत्यादिमें ❀ ममता-रहित ७सि० यह समझते हैं कि शरीर और मन यह भी तो हमारे हैं नहीं फिर पुत्रादि हमारे क्या होंगे ऐसा होकर फिर ❀ अहं-काररहित ८ सि० कभी वाणीसे तो क्या कहना कि, हम ऐसे हैं चित्तमें अनुसंधान भी न रखना और ❀ समहैं दुःखसुख जिनको ९ सि० यही समझते हैं कि सुख और दुःख दोनों अनित्य हैं जैसे दुःख विनासंकल्प और विनायत्न आता है, ऐसा ही सुख आता है और जैसा सुख चलाजाता है वैसाही दुःख भी चलाजाता है दुःखके निवृत्तिके लिये और सुखके प्राप्तिके लिये कुछ यत्न नहीं करते और जो कोई बेप्रयोजनभी अपने स्वभावके अनुसार उनको वाणी और शरीरादिकरके दुःख देते हैं उनकी ❀ क्षमाकरते हैं १० तात्पर्य यह समझते हैं कि यह प्रारब्धका भोग है आध्यात्मिक

आधिदैविक तापभी तो सहने पडते हैं जैसे उनको सहते हैं, ऐसे ही इसको सहना चाहिये. उनही तीनोंतापोंमें एक यह भी आधि भौतिक ताप है, हमारे ही कर्मोंका फल है. कोई दुःखदेनेवाला नहीं, हमारा मनहीं कारण है दुःख सुख देनेमें. ऐसे क्षमावान्॥१३॥

मू०–संतुष्टःसततंयोगीयतात्मादृढनिश्चयः॥
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्योमद्भक्तःसमेप्रियः॥ १४॥

सततम् १ संतुष्टः २ योगी ३ यतात्मा ४ दृढनिश्चयः ५ मयि६ अर्पितमनोबुद्धिः ७ यः ८ मद्भक्तः ९ सः १० मे ११ प्रियः १२ ॥ १४ ॥ अ०– सदा १ सन्तुष्ट २ अर्थात् कभी किसी कालमें किसी पदार्थकी चाह न होना सदा छके रहना२. अष्टांगयोगवान्३ अर्थात् यमनियमादिपरायण ३. जीताहै स्वभाव जिसने ४ तात्पर्य पूर्वावस्थामें जो प्राकृतवत् स्वभाव था उसको जीतकर सौम्य शान्त स्वभाव करलिया है जिसने उसको यतात्मा कहते हैं, दृढनिश्चय है जिसका ५ सि० आत्मामें वेदशास्त्रोंमें कभी जिनको संशयका वा विपर्ययका उदय होता ही नहीं वेदोक्त आत्माको शुद्ध सच्चिदानन्द बेसन्देह जानता है ❀ मुझआत्मामें ६ अर्पित किया है मन और बुद्धि जिसनें ७ अर्थात् अंतःकरणके वृत्तियोंके आत्माकार करदिया है जिसने ७. सि० ऐसा ❀ जो ८ मेरा भक्त ९ सो १० मुझको ११ प्यारा १२ सि० है चौथे अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहाथा कि, ज्ञानी मुझको बहुत प्यारा है, उसीका इन सात श्लोकोंमें उपसंहार करते हैं. जिस श्लोकमें प्रिय यह पद नहीं तो भी वहां समझलेना चाहिये. तेरहवें और अठारहवें मंत्रमें यह पद नहीं और पांचों मंत्रोंमें है ❀ ॥ १४ ॥

मू०–यस्मान्नोद्विजतेलोकोलोकान्नोद्विजतेचयः॥
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तोयःसचमेप्रियः॥ १५॥

यस्मात् १ लोकः २ न ३ उद्विजते ४ यः ५ च ६ लोकात् ७ न ८ उद्विजते ९ हर्षामर्षभयोद्वेगैः १० च ११ यः १२ मुक्तः १३ सः १४ मे १५ प्रियः १६ ॥१५॥ अ०—जिससे १ जीव २ सि०मात्र ❁ न ३ उद्वेगकरे ४ अर्थात् किसी प्रकार जिससे अपनी हानी समझकर चित्तमें कोई प्राणी क्षोभ न करे ४. और जो ५।६ किसी जीवसे ७ न ८ उद्वेग करे ९ हर्ष आमर्ष भय और उद्वेग इन चारोंसे १०।११ जो १२ छूटा हुआ १३ सो १४ मुझको १५ प्रिय १६ सि० है ❁टी०इष्टवस्तुके देखने सुननेसे रोमांचका खडा होजाना, मनमें रंजन होनेलगना, इसको हर्ष कहते हैं. दूसरेको विद्यावान्, वा रुपये वाला देखकर और सुनकर मन मैला या उदास हो जाना, इसको आमर्ष कहतेहैं. किसी प्रकारकी मनमें शंका होना उसको भय कहतेहैं. चित्तका एकजगे स्थिर न होना उसको उद्वेग कहते हैं तात्पर्य ऐसा व्यवहार (चालचलन) जिन महापुरुषोंका है कि जिनसे कोई किसीप्रकार बुरा न माने वेही भगवत्को प्यारे हैं ॥ १५ ॥

मू०—अनपेक्षःशुचिर्दक्षउदासीनोगतव्यथः ॥
सर्वारंभपरित्यागीयोमद्भक्तःसमेप्रियः ॥ १६ ॥

अनपेक्षः १ शुचिः २ दक्षः ३ उदासीनः ४ गतव्यथः ५ सर्वारंभपरित्यागी ६ यः ७ मद्भक्तः ८ सः ९ मे १० प्रियः ११ ॥१३॥ अ०—जो पदार्थ अपने आप प्राप्त हो उनकी भी इच्छा नहीं करता उपेक्षा करता है १ पवित्र २ सि०रहतेहैं. बाहर भीतरसे बाहर जलमृत्तिकादिकरके शुद्धरहना वस्त्रादि निर्मलरखना भीतर रागद्वेषादि नहीं रखना ❁चतुर ३ सि०व्यवहार और परमार्थके बातोंमें व्यवहारके समय व्यवहारकी बात करना परमार्थके समय परमार्थकी. प्रथम व्यवहार शुद्ध करना चाहिये, तब परमार्थ सिद्ध होता है. व्यवहारकी जिनको समझ नहीं, उनका परमार्थ कभी नहीं सुधरेगा. परमार्थमें जीवका कुछ नहीं बिगडा व्यवहार बिगडगया है उसीको सुधार,

ना चाहिये. व्यवहारमें परमार्थ और परमार्थमें व्यवहार नहीं मिलाते हैं चतुरमहात्मा ❀ उदासीन ४ अर्थात् किसी मतका अन्यपक्षका खंडन वा प्रतिपादन नहीं करना आनंद मतरखना जिसमें सबका सम्मत है ४. मनमें किसी प्रकारका खेद नहीं रखते ५ जितने इसलोकके वा परलोकके निमित्त आरंभहैं उन सबका त्याग करनेवाला ६ सि०ऐसा ❀ जो ७ मेराभक्त ८ सो ९ मुझको १० प्यारा ११ सि०है ❀ ॥ १६ ॥

मू०–योनहृष्यतिनद्वेष्टिनशोचतिनकांक्षति ॥
शुभाशुभपरित्यागीभक्तिमान्यःसमेप्रियः ॥ १७ ॥

यः १ न २ हृष्यति ३ न ४ द्वेष्टि ५ न ६ शोचति ७ न ८ कांक्षति ९ शुभाशुभपरित्यागी १० यः ११ भक्तिमान् १२ सः १३ मे १४ प्रियः १५ ॥ १७ ॥ अ०–जो १ न २ हर्षकरता है ३ न ४ द्वेष करता है ५ न ६ शोचकरता है ७ न ८ इच्छा करता है ९ शुभ और अशुभ इन दोनोंके त्यागनेका स्वभाव है जिसका १० सि०ऐसा ❀ जो ११ भक्तिमान् १२ सो १३ मुझको १४ प्यारा है १५. टी०इष्टपदार्थके मिलनेसे आनन्द नहीं होता, अनिष्टपदार्थोंसे द्वेष नहीं करता, पिछले बातोंका शोच नहीं करता, आगेको कुछ चाहता नहीं, शुभ और अशुभ ये दोनों पदार्थ अज्ञानके कार्य हैं, दोनोंको अनित्य समझकर दोनोंको त्यागकर शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप आत्मामें भक्ति (प्रीति) जो रखता है श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसा महापुरुष मुझको प्रिय है शुभ वैदिकमार्गका त्याग उनके वास्ते अच्छा है कि जो आत्मनिष्ठ हैं जैसे लक्षण ऊपर कहे ये भी सब हों. विनाज्ञान शुभमार्गको त्यागदेना मूर्खोंका काम है, विना ज्ञान हुए शुभमार्गको कभी नहीं त्यागना और ज्ञान हुए पीछे सिवाय आत्माके किसीको उत्तम शुभ वा श्रेष्ठ नहीं समझना सबको त्यागदेना ॥ १७ ॥

मू०-समःशत्रौचमित्रेचतथामानापमानयोः ॥
शीतोष्णसुखदुःखेषुसमःसंगविवर्जितः ॥ १८ ॥

शत्रौ १ च २ मित्रे ३ च ४ समः ५ तथा ६ मानापमानयोः ७ शीतोष्णसुखदुःखेषु ८ समः ९ संगविवर्जितः १० ॥ १८ ॥ अ०-शत्रुमें और मित्रमें १।२।३।४ बराबर ५ तैसेही ६ मानमें और अपमानमें ७ सि० समान ❀ शीतगरमीमें और दुःख सुखमें ८ समान ९ सि० शरीर, इंद्रिय, प्राण और अंतःकरण, इनका जो ❀ संग उस करके वर्जित १० तात्पर्य शरीर, इंद्रिय, प्राण और अंतःकरण इनके साथ जब आत्माका संग होता है तब आत्माकी शरीरादिमें आसक्ती होती है, फिर शीतादिमें इष्टानिष्टकी भ्रान्ति होती है. शत्रुमित्रके समतामें संगवर्जित यही हेतु है. आत्मानिष्ठ जो महापुरुष हैं वे शरीरादिमें अध्यास नहीं रखते, इसी हेतुसे शत्रुमित्रादिमें उनकी विषमता दूर होजाती है. जैसे उनको मानादि वैसेही अपमानादि मानापमानादि यह सब अंतःकरणका धर्म है, आत्मनिष्ठ अपनेको सबसे पृथक् जानते हैं, विना आत्मनिष्ठाके देहाभिमानियोंसे पूर्वोक्त लक्षणोंका अनुष्ठान नहीं होसक्ता यह सब लक्षण ज्ञाननिष्ठोहीमें बनसक्ते हैं ॥ १८ ॥

मू०-तुल्यनिंदास्तुतिर्मौनीसंतुष्टोयेनकेनचित् ॥
अनिकेतःस्थिरमतिर्भक्तिमान्मेप्रियोनरः ॥ १९ ॥

तुल्यनिन्दास्तुतिः १ मौनी २ येनकेनचित् ३ संतुष्टः ४ अनिकेतः ५ स्थिरमतिः ६ भक्तिमान् ७ नरः ८ मे ९ प्रियः १० ॥ १९ ॥ अ०-समान है निन्दा और स्तुति जिसको १ चुप रहना या वेदांत शास्त्रका मनन करना उसको मौनी कहते हैं २ जो पदार्थ प्रारब्धवशात् विनायत्न थोडा बहुत प्राप्त होजावे, उसी करके ३ संतोष मानना ऐसे पुरुषको संतुष्ट कहते हैं ४ एकजगह रह

नेका नियम नहीं करना, उसको अनिकेत ५ सि० कहते हैं अपने स्वरूपमें ❀निश्चय है बुद्धि जिसकी ६ सि०ऐसा ❀ भक्तिमान् ७ पुरुष ८ मुझको ९ प्यारा है १०"येनकेनचिदाच्छन्नोयेनकेनचिदाशिनः॥ यत्रकुत्रशयायीस्यात्तंदेवाब्राह्मणंविदुः"॥ महाभारतका यह श्लोक है तात्पर्य पूर्वोक्तलक्षण ब्रह्मनिष्ठज्ञानीभक्तोंके हैं. अर्जुनने बूझाथा कि अक्षरब्रह्मके उपासक कैसेहैं. श्रीमहाराजने उत्तर दिया कि ऐसे होते हैं ऐसे नहीं होते कि रासलीलामें तमाशा तो आप देखें राधाकृष्णको बेसमझ लोग (अन्यमतवाले) बुरा कहें और अच्छे पदार्थोंका मोहनभोग नाम रखकर आपही चट करजाना साधुअभ्यागतको न देना इस अध्यायमें भक्तोंके लक्षण जैसे श्रीमहाराजने कहे हैं जिनमें ये होंगे वोही भक्त भगवतको प्राप्त होगा अन्य नहीं इत्यभिप्रायः॥ १९॥

मू०–येतुधर्म्यामृतमिदंयथोक्तंपर्युपासते॥
श्रद्दधानामत्परमाभक्तास्तेतीवमेप्रियाः॥ २०॥

मत्परमाः १ ये २ श्रद्दधानाः ३ भक्ताः ४ इदम् ५ धर्म्यामृतम ६ यथा ७ उक्तम् ८ पर्युपासते ९ ते १० तु ११ अति १२ इव १३ मे १४ प्रियाः १५॥२०॥ अ०– मैं हूं परेसे परे जिनको ऐसे १ जो २ श्रद्धावान् ३ भक्त ४ इस धर्म करके युक्त ऐसे इस अमृतको ५। ६ जैसे ७ कहा है ८ सि० पीछे मैंने उसका ❀ अनुष्ठान करते हैं ९ वे १० सि० भक्त ❀तो ११ बहुतही १२।१३ मुझको १४ प्यारे हैं १५ अर्थात् भक्त जिनका नामभी है जो नाममात्र भक्त हैं वे भी भगवतको प्यारे हैं और अद्वेष्टादि लक्षणोंकरके जो सम्पन्न हैं वे तो अत्यन्त प्यारे हैं। "प्रियोहिज्ञानिनोत्यर्थमहंसचममप्रियः"॥१९तात्पर्य यह जो सातवें अध्यायमें उपक्रम कियाथा उसीका उपसंहार है पुनरुक्ति नहीं सब धर्मोंका

सार सिद्धान्त अमृतरूप यह उपदेश है. विचारना चाहिये कि ये लक्षण अनिकेतमौनादि निवृत्तिमार्गवाले ज्ञाननिष्ठसंन्यासी महापुरुषोंमें पाते हैं या जो घंटा घडचाल बजाते हैं, नृत्य देखते हैं, उनमें पाते हैं उदाहरणके वास्ते श्रीस्वामी पूर्णाश्रमजी महाराज संन्यासी परमहंस ज्ञाननिष्ठ नग्न मौन होकर श्रीभागीरथी गंगाजीके भीतरेही विचरते रहते हैं जितने लक्षण सात श्लोकोंमें श्रीभगवान्‌ने कहे सब उन महाराजमें प्रत्यक्ष हैं जो चाहे दर्शन करो. (चैत्रसुदीनौमी रामनौमी संवत् १९२१ में इस श्लोकका अर्थ मुझ आनंदगिरीने लिखा है) श्रीमहाराज पूर्वोक्त परमहंसजी विद्यमान हैं और भी बहुत महात्मा हैं. सिवाय संन्यासियोंके कोई तो बतावे कि ऐसा कौन हुआ है. पहले भी और अब आंखोंसे तो कौन देख सक्ता है, इतने पर भी जो विरक्तोंका माहात्म्य न समझेगा तो वो वेसंदेह प्रवृत्तलोकोंके पंजेमें फँसेगा ॥ २० ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३.

क्षे० अर्जुनउवाच–प्रकृतिंपुरुषंचैवक्षेत्रंक्षेत्रज्ञमेवच ॥
एतद्वेदितुमिच्छामिज्ञानंज्ञेयंचकेशव ॥ १ ॥

अर्जुन उवाच. केशव १ प्रकृतिम् २ पुरुषम् ३ च ४ एव ५ क्षेत्रम् ६ क्षेत्रज्ञम् ७ एव ८ च ९ ज्ञानम् १० ज्ञेयम् ११ च १२ एतत् १३ वेदितुम् १४ इच्छामि १५ ॥ १ ॥ यह श्लोक किसी राजाने बनाकर श्रीभगवद्गीताके पोथियोंमें लिखवादिया है जो अनजान हैं वे इस श्लोकको भी व्यासकृत समझते हैं, व्यासजीने सातसो ७०० श्लोक बनाये हैं यह मिलकर सातसो एक होजाते हैं. अर्थ इसका

यह है कि–हे केशव ! १ प्रकृति २ और पुरुष ३ । ४ । ५ क्षेत्र ६ और क्षेत्रज्ञ ७ । ८ । ९ ज्ञान १० और ज्ञेय ११ । १२ इनके १३ जाननेकी १४ इच्छा करताहूं मैं १५ तात्पर्य क्षेत्रादिपदोंका अर्थ जानना चाहताहूं. इस प्रश्नकी कुछ आकांक्षा न थी क्योंकि श्रीभगवान्ने बारहवें अध्यायमें आप यह कहा है कि, भक्तोंका मैं शीघ्र उद्धार करूंगा. जो इस प्रश्नमें पद है विना उनके अर्थ जाने ज्ञाननिष्ठा नहीं होसक्ती और विना ज्ञाननिष्ठाके संसारसे उद्धार नहीं होता, इसवास्ते ये सब पदार्थ श्रीमहाराजने विनाप्रश्न कहे. जो टीकासहित पोथी हैं उसमें यह श्लोक नहीं और बहुत विद्वान् मूल पोथियोंमें भी नहीं लिखते, कोई कोई मूलपोथियोंमें लिखदेते हैं, इस यंत्रके अनुसार सातसौ श्लोक गीताके अठारह अध्यायोंमें हैं ॥ १ ॥

अध्याय.	१	२	३	४	५	६	७	८	९	जोड
श्लो. सं.	४७	७२	४३	४२	२९	४७	३०	२८	३४	३७२
अध्याय.	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	जोड
श्लो. सं.	४२	५५	२०	३४	२७	२०	२४	२८	७८	३२८

सम्पूर्ण जोड ७०० श्लो.

मू०–श्रीभगवानुवाच ॥ इदंशरीरंकौंतेयक्षेत्रमित्यभिधीयते ॥ एतद्योवेत्तितंप्राहुःक्षेत्रज्ञमितितद्विदः ॥१॥

श्रीभगवान् उवाच. कौंतेय १ इदम् २ शरीम् ३ क्षेत्रम् ४ इति ५ अभिधीयते ६ यः ७ एतत् ८ वेत्ति ९ तम् १० तद्विदः ११ क्षेत्रज्ञम् १२ इति १३ प्राहुः १४ ॥ १ ॥ अ०–उ० बारहवें अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहाथा कि मैं भक्तोंका उद्धार संसारसे शीघ्र करूंगा जो कि विना आत्मज्ञानके उद्धार नहीं होता इसवास्ते इस अध्यायमें ब्रह्मज्ञान साधनसहित कहतेहैं–हे अर्जुन ! १ इस २ शरीरको ३ क्षेत्र ४ । ५ कहते हैं ६ जो ७ इसको ८ जानता है ९ तिसको १० तिनके ज्ञाता ११ अर्थात् क्षेत्रक्षेत्रज्ञके जाननेवाले ११. क्षेत्र-

१२। १३ कहतेहैं १४. तात्पर्य स्थूलशरीर क्षेत्र खेतके बराबर है, पाप पुण्य इसमें उत्पन्न होतेहैं, इसी हेतुसे इसको क्षेत्र कहते हैं, जो इसका अभिमानी उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं. क्षेत्रज्ञ वास्तवमें शुद्ध, सच्चिदानन्द, असंग, नित्य, मुक्त, ऐसा है. अविद्योपहित होकर व्यष्टिस्थूलसूक्ष्मकारणशरीरोंका अभिमानी बनकर विश्व, तैजस और प्राज्ञ कहाजाता है. और मायोपहित होकर समष्टिस्थूलसूक्ष्मकारणशरीरोंका अभिमानी बनकर विराट्, हिरण्यगर्भ और ईश्वर कहाजाता है और वोही माया अविद्यारहित, शुद्ध, सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त है. अध्यारोपापवादन्यायकरके सिद्धान्त यही है ॥ १ ॥

मू०—क्षेत्रज्ञंचापिमांविद्धिसर्वक्षेत्रेषुभारत ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानंयत्तज्ज्ञानंमतंमम ॥ २ ॥

भारत १ सर्वक्षेत्रेषु २ क्षेत्रज्ञम् ३ माम् ४ च ५ अपि ६ विद्धि ७ यत् ८ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ९ और १० तत ११ ज्ञानम् १२ मम १३ मतम् १४॥२॥अ०—उ०तत् और त्वम् इन दो पदोंका अर्थ पिछले मंत्रमें पृथक् पृथक् निरूपण किया अब महावाक्यार्थ निरूपण करते हैं. श्रीभगवान् स्पष्ट जीव और ईश्वर इनकी लक्ष्यार्थमें एकता दिखाते हैं—हे अर्जुन! १ सब क्षेत्रोंमें २ क्षेत्रज्ञ ३ मुझको ही ४।५।६ जान तू ७सि० औरजगे मत ढूंढ. इसप्रकार ❀जो८क्षेत्रक्षेत्रज्ञका९ ज्ञान १० सो ११ ज्ञान १२ मेरा १३ मत १४ सि० है. ❀तात्पर्य तत् और त्वम् इन पदोंके लक्ष्यार्थका ग्रहणकरके वाच्यार्थको त्यागकर, आधेय अधिकरणभाव, विशेषणविशेष्यभाव, लक्ष्यलक्षणभाव, इन तीन संबंधकरके और भागत्यागलक्षणाकरके सो यह देवदत्तहै.इस लौकिकवाक्यवत् क्षेत्रज्ञ और माम् इन पदोंकी लक्ष्यार्थमें एकता है.इस बातको इसजगह स्पष्ट करनेमें बहुत विस्तार होता है. आनन्दामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें विशेष लिखाहै.वेदांतशा-

स्त्रके जितने ग्रंथ हैं सब इसीकी टीका हैं. ऐसा ज्ञान जिसको हुआ वोही ज्ञानी परमपदका भागी होगा. इसलोकमें अनेक विद्याहैं सब लोक किसी न किसी विद्याके जाननेवाले नाई, धोबी, वेश्यादि, एकप्रकारके ज्ञानी हैं विनाब्रह्मविद्याके सब लौकिकविद्या, लोगोंको रिझानेके लिये शिश्नोदरके तृप्तिके लिये वाहवाहके लिये हैं, जिनका फल दुःख (श्रम) है जो इसशरीरमें सच्चिदानन्दक्षेत्रज्ञहै यही वासुदेव है आप श्रीमहाराज अपने मुखारविन्दसे कहते हैं ॥ २ ॥

मू०–तत्क्षेत्रंयच्चयादृक्चयद्विकारियतश्चयत् ॥
सचयोयत्प्रभावश्चतत्समासेनमेशृणु ॥ ३ ॥

तत् १ क्षेत्रम् २ यत् ३ च ४ यादृक् ५ च ६ यद्विकारि ७ यतः ८ च ९ यत् १० सः ११ च १२ यः १३ यत्प्रभावः १४ च १५ तत् १६ समासेन १७ मे १८ शृणु १९ ॥ ३ ॥ अ०–उ० प्रथम द्वितीय मंत्रोंमें जो संक्षेपकरके कहा है उसीका विस्तारकरके फिर श्रीभगवान् कहेनाते हैं. महाराजने यह जाना कि अभी अर्जुनके समझमें नहीं आया, इसवास्ते अर्जुनसे फिर कहतेहैं ऋषीश्वरों मुनीश्वरोंके अपेक्षासे फिरभी संक्षेपही करके कहते हैं. श्रीभगवान् इसमंत्रमें प्रतिज्ञाकरते हैं, कि हे अर्जुन! इतने शब्दोंका अर्थ तुझसे कहूंगा वे शब्द ये हैं–सो १ स्थूल शरीर २ जडदृश्यस्वभाववाला ३ और ४ इच्छादिधर्मवाला ५ और ६ इंद्रियादिविकारकरके युक्त ७ प्रकृतिपुरुषके संयोगसे होता है ८ और ९ स्थावरजंगमभेदकरके भिन्न १० क्षेत्रज्ञ ११ । १२ स्वरूपसे १३ और अचिन्त्यैश्वर्ययोगशक्तिआदि प्रभाव करके युक्त १४ । १५ इन सबका अर्थ १६ संक्षेपसे १७ मुझसे १८ सुन १९ ॥ ३ ॥

मू०–ऋषिभिर्बहुधागीतंछंदोभिर्विविधैःपृथक् ॥
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैवहेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

ऋषिभिः १ बहुधा २ गीतम् ३ छन्दोभिः ४ विविधैः ५ पृथक् ६

हेतुमद्भिः ७ ब्रह्मसूत्रपदैः ८ च ९ एव १० विनिश्चितैः ११ ॥४॥ अ०-उ० जो ज्ञान मैं तुझसे कहता हूं, यही ज्ञान अनादि वेदोक्त है और विद्वानोंने भी यही निश्चय किया है-ऋषीश्वरोंने १ बहुतप्रकारसे २ सि० इसी ज्ञानको ❀ निरूपण किया है ३ वेदोंने ४ सि० भी ❀ पृथक्पृथक् करके ५ पृथक् ६ सि० कहा है और ❀हेतुवाले ब्रह्मसूत्रपदोंकरके ७।८।९।१० सि० कहागया है. कैसे हैं वे सूत्रपद कि ❀बहुत भलेप्रकार निश्चय कियेगये हैं ११ टी० वसिष्ठादिने ध्यानधारणादिसाधनोंसे और प्रकृतिपुरुषके विवेकसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है. इसप्रकार ऋषियोंने भी निरूपण किया है और कर्मही फलदाताहै. यज्ञादिकरनेसे, देवतोंका पूजन करनेसे, परमपद-स्वर्गकी प्राप्ति होती है. बहुतजगह वेदोंमें इसप्रकार निरूपण किया है और व्यासजीने ब्रह्मसूत्रपदोंका संक्षेपकरके सूत्र बनाये हैं, कि जिनसे यथार्थ प्रभुका स्वरूप जानाजाताहै. ब्रह्मजानाजावे, तटस्थ-लक्षणा और स्वरूपलक्षणाकरके जिनसे उनको ब्रह्मसूत्र कहतेहैं॥४॥

मू०-महाभूतान्यहंकारोबुद्धिरव्यक्तमेवच ॥
इन्द्रियाणिदशैकंचपंचचेंद्रियगोचराः ॥ ५ ॥

महाभूतानि १ अहंकारः २ बुद्धिः ३ अव्यक्तम् ४ एव ५ च ६ दश इन्द्रियाणि ७।८ एकम् ९ पंच १० च ११ च १२ इंन्द्रियगोचराः १३॥ ५ ॥ अ०-उ० क्षेत्रका लक्षण दो श्लोकोंमें कहते हैं-आकाशादिपंच पंचीकृत १ भूतोंका कारण २ महत्तत्व ३ मूलाज्ञान ४।५।६ दश इन्द्रिय ७। ८ एक ९ मन १० और ११ इन्द्रियोंके विषय शब्दादिपंच १२ १३ सि० इन सबका भेद और अर्थ आनन्दामृतवर्षिणीके द्वितीय अध्यायमें लिखाहै ❀ ॥ ५ ॥

मू०-इच्छाद्वेषःसुखंदुःखंसंघातश्चेतनाधृतिः ॥
एतत्क्षेत्रंसमासेनसविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥

इच्छा १ द्वेषः २ सुखम् ३ दुःखम् ४ संघातः ५ चेतना ६ धृतिः ७एतत्८क्षेत्रम् ९ समासेन १० सविकारम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ ६॥ अ०—इसलोक वा परलोकके पदार्थोंकी—चाह १ अपने इष्टमें जो विघ्नकारी प्रतीत होता है उसमें जो अन्तःकरणकी वृत्ति २ सुख ३ सि० तीन प्रकारका अठारहवें अध्यायमें निरूपण होगा ❋ विक्षेप, (प्रतिकूल) जिसको दुःख कहते हैं ४ स्थूलशरीर ५ चेतना ६ अर्थात् ज्ञानात्मिका अंतःकरणकी वृत्ति, कि जिसके प्रकट होनेसे सब अनर्थोंकी निवृत्ति होजातीहै ६. संसारकार्यकारणसहित अत्यन्ताभावको प्राप्त होजाता है ६. धृति ७ सि० तीनप्राकारकी आठरहवें अध्यायमें निरूपण होगी ❋ यह ८ क्षेत्र९संक्षेपकरके१० विकारवान् ११ कहा है.१२ तात्पर्य क्षेत्र विकारवान्है, क्षेत्रज्ञ निर्विकार है. मूलाज्ञानसे क्षेत्रज्ञ भी विकारवान् प्रतीत होता है ॥ ६ ॥

मू०—अमानित्वमदंभित्वमहिंसाक्षांतिरार्जवम् ॥
आचार्योपासनंशौचंस्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥

अमानित्वम् १ अदंभित्वम् २ अहिंसा ३ क्षांतिः ४ आर्जवम् ५ आचार्योपासनम् ६ शौचम् ७ स्थैर्यम् ८ आत्मविनिग्रहः ९ ॥ ७॥ अ०—उ०आगे क्षेत्रज्ञका लक्षण कहना है उसके समझनेके लिये सत्वगुणी अंतर्मुख सूक्ष्म वृत्ति चाहिये इसवास्ते उसका साधन पांच श्लोकोंमें कहते हैं. जिसके ये बीस साधन होंगे उसके समझमें क्षेत्रज्ञका स्वरूप आवेगा प्रथम इन साधनोंमें प्रयत्न करना योग्यहै—मानरहित १ दंभरहित २ हिंसारहित ३ क्षमा ४ कोमलता ५ सद्गुरुकी सेवा ६ पवित्र (बाहरभीतर) ७ सि० सन्मार्गमें ❋स्थिरता८ शरीरका निग्रह ९ सि० इन सब साधनोंका अर्थ आनन्दामृतवर्षिणीके चतुर्थाध्यायमें भलेप्रकार लिखा है और उनका पृथक् पृथक् माहात्म्य और फल जैसा शास्त्रोंमें लिखाहै वोही प्रत्यक्षहोता.

हैं इन साधनोंका ऐसा फल नहीं कि जैसा एकादशीका फल परोक्ष है और ये साधन साधारण हैं, ब्राह्मणसे लेकर चांडालपर्यन्त इनमें सबका अधिकार है ❁ ॥ ७ ॥

मू०—इन्द्रियार्थेषुवैराग्यमनहंकारएवच ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

इंद्रियार्थेषु १ वैराग्यम् २ अनहंकारम् ३ एव ४ च५ जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्६॥८॥अ०—इन्द्रियोंके अर्थोंमें १ वैराग्य २ अहंकाररहित ३।४।५ जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधि, इन चारोंमें दुःखको और दोषोंको सदा देखते रहना ६ ॥ ८ ॥

मू०—असक्तिरनभिष्वंगःपुत्रदारगृहादिषु ॥
नित्यंचसमचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥

पुत्रदारगृहादिषु१ असक्तिः२अनभिष्वंगः ३ इष्टानिष्टोपपत्तिषु४ नित्यम् ५ समचित्तत्वम् ६ च ७ ॥ ९ ॥ अ०—पुत्रस्त्रीगृहादिमें १ सक्त न होना २ पुत्रादिके दुःखसुखमें अपनेको सुखी दुःखी नहीं मानना ३ इष्टअनिष्टके प्राप्तिमें४ सदा५ समचित्त रहना६।७॥ ९ ॥

मू०—मयिचानन्ययोगेनभक्तिरव्यभिचारिणी ॥
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥

मयि १ च २ अनन्ययोगेन ३ अव्यभिचारिणी ४ भक्तिः ५ विविक्तदेशसेवित्वम् ६ जनसंसदि७अरतिः ८ ॥ १० ॥अ०—मुझमें १।२ अनन्ययोगकरके ३ अव्यभिचारिणी ४ भक्ति ५ विविक्तदेशमें रहनेका स्वभाव ६ प्राकृतजनोंके सभामें ७ प्रीतिरहित ८ ॥ १० ॥

मू०—अध्यात्मज्ञाननित्यत्वंतत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ॥
एतज्ज्ञानमितिप्रोक्तमज्ञानंयदतोन्यथा ॥ ११ ॥

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वम् १ तत्वज्ञानार्थदर्शनम् २ एतत् ३

ज्ञानम् ४ इति ५ प्रोक्तम् ६ यत् ७ अतः ८ अन्यथा ९ अज्ञानम् १० ॥ ११ ॥ अ०—वेदान्तशास्त्रको नित्य पढे सुने विचारे १तत्त्वंपदोंके अर्थ जाननेमें सदा निष्ठा रखना २ यह ३ ज्ञान ४ यहांतक५ कहा ६ सि० जो येभी साधनकहे उनको ज्ञान कहते हैं. इसजगह ज्ञानका अर्थ यह है कि सच्चिदानन्दस्वरूप जानाजावे जिस करके उसको ज्ञान कहते हैं. ब्रह्मज्ञानके ये अन्तरंगसाधन हैं इसवास्ते उनकोभी ज्ञान कहा * जो ७ इससे ८ उलटा है ९ सि० तिसको * अज्ञान १० सि०—कहते हैं * अर्थात् जिसमें ये साधन नहीं वो अज्ञानी हैं. मानदंभादिको अज्ञानका कार्य होनेसे उनको भी अज्ञानही कहते हैं १० ॥ ११ ॥

मू०—ज्ञेयंयत्तत्प्रवक्ष्यामियज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ॥
अनादिमत्परंब्रह्मनसत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

यत् १ ज्ञेयम् २ तत् ३ प्रवक्ष्यामि ४ यत् ५ ज्ञात्वा ६ अमृतम् ७ अश्नुते ८ अनादिमत् ९ परम् १० ब्रह्म ११ तत् १२ न १३ सत् १४ न १५ असत् १६ उच्यते १७ ॥१२॥ अ०—उ०क्षेत्रज्ञ परमानन्दस्वरूपब्रह्मात्माका लक्षण कहते हैं—जो १ सि०—पूर्वोक्त साधनों करके * जाननेके योग्य२तिसको ३ भलेप्रकार कहूंगा४ जिसको ५ जानकर ६ अमृतको ७ प्राप्त होता है ८ अर्थात् जन्ममरणसे छूटकर सच्चिदानंदस्वरूपको प्राप्त होता है ७।८ सि०—फल निरूपण करके स्वरूपका वर्णन करते हैं * अनादि ९ परेसेपरे १० बडोंसे बडा ११ सो १२ न १३ सत् १४ न १५ असत् १६ कहा जाता है १७ तात्पर्य जो उसको सत् कहें तो असत् एक पदार्थ अर्थसे प्रतीत होता है और मनवाणीका विषयभी प्रतीत होता है. जो जो पदार्थ मनवाणीके विषय हैं, सब अनित्य हैं. यह दोष ब्रह्ममें भी आता है और इस बोलीसे अद्वैत सिद्ध

नहीं होता और जो असत् कहें तो यह अनर्थ है. क्योंकि उसके सत्ता सचोटीसे झूँठे पदार्थ सत्यप्रतीत होते हैं और जो कुछभी न कहें तो अज्ञानियोंका संसार कैसा निवृत्त हो. तात्पर्य वो ऐसा अचिन्त्यशक्तिमान् है कि वास्तवमें वो मनवाणीका विषय नहीं परंतु उसके भक्त तो उसको निरूपण करते हैं ॥ १२ ॥

मू०—सर्वतःपाणिपादंतत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतःश्रुतिमल्लोकेसर्वमावृत्यतिष्ठति ॥ १३ ॥

तत् १ सर्वतःपाणिपादम् २सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ३ सर्वतः श्रुतिमत् ४ लोके ५ सर्वम् ६ आवृत्य ७ तिष्ठति ८ ॥ १३॥अ०—उ० अचिन्त्याद्भुतशक्ति ब्रह्मकी निरूपण करते हैं—सो १ सि० ब्रह्म ऐसा है कि ❀ सब तर्फ हाथ पैर हैं जिसके २ सब तर्फ आँख शिर और मुख हैं जिसके ३ सब तर्फ कान हैं. जिसके ४ जगत्में ५ सबको ६ व्याप्तकर ७ स्थित है.८ अर्थात् सब प्राणियोंके अंतःकरणके वृत्तिमें प्राणादिके क्रियामें नखसे शिखापर्यन्त व्याप्त है.जिसको कूटस्थ कहते हैं. हस्तचरणादिसे जो क्रिया की जाती है यह उसीकी सत्ताहै. आँख, कान, नाक और इनके क्रमसे जो देखा सुना और सूँघा जाता है यह उसीकी चैतन्यता है, अंतःकरणमें जो सुख प्रतीत होता है यह उसी आनंदकी छाया है. जैसे दर्पणमें अपना मुख देखकर अपना ज्ञान होता है. ऐसेही अन्तःकरणके वृत्तिमें उस आनंदकी छाया देख वास्तवमें सच्चिदानंदका ज्ञान होता है. इसप्रकार वो विषय भी है ॥ १३ ॥

मू०—सर्वेन्द्रियगुणाभासंसर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥
असक्तंसर्वभृच्चैवनिर्गुणंगुणभोक्तृच ॥ १४ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासम् १ सर्वेन्द्रियविवर्जितम् २ असक्तम् ३ सर्वभृत् ४ च ५ एव ६ निर्गुणम् ७ गुणभोक्तृ ८ च ९ ॥ १४ ॥

अ०— सब इंद्रियोंके शब्दादि विषयोंमें विषयाकार होकर प्रतीत होता है. १ सि० और वास्तवमें ❀ सब इंद्रियों करके रहित२सि० वास्तवमें ❀ असक्त ३ सि० हैं. परंतु ❀ सबका आधार पालने-वाला ४।५।६ सि० कहा जाता है. वास्तवमें ❀सत्त्वादि गुणोंकरके रहित ७ सि० है परंतु ❀ गुणोंका भोक्ता ८।९ सि० प्रतीत होता है. विषयजन्य सुखदुःखादिका अनुभव करता हुआ प्रतीत होता है ❀ ॥ १४ ॥

मू०—बहिरन्तश्चभूतानामचरंचरमेवच ॥
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयंदूरस्थंचांतिकेचतत् ॥ १५ ॥

भूतानाम् १ अंतः २ बहिः ३ च ४ अचरम् ५ चरम् ६ एव ७ च ८ सूक्ष्मत्वात् ९ तत् १० अविज्ञेयम् ११ च १२ अंतिके १३ दूर-स्थम् १४ च १५ तत् १६ ॥ १५ ॥ अ०— भूतोंके १ भीतर२और बाहर ३।४ सि० भी है, जैसी चांदनी सब जगह व्याप्त है. उपाधिके संबंधसे किसी किसी जगह दीख पडती है, कहीं कहीं नहीं दीखती इसी प्रकार ज्ञानचक्षुरहित पुरुषोंको नहीं प्रतीत होता है, ज्ञानियोंको प्रतीत होता है ❀ अचर ५ सि० भी है और ❀ चर ६ भी ७।८ सि० है. जंगमोंके साथ संबंध होनेसे चर प्रतीत होता है. स्थावरोंके साथ संबंध होनेसे अचर प्रतीत होता है. या वो वास्तव अचर है ऐसा कहो ❀ सूक्ष्म होनेसे ९ सि० साकार प्रमेय नहीं इस हेतुसे ❀ सो १० नहीं जाननेके योग्यहै ११।१२ सि० बहिर्मुखस्थूलबुद्धिवा-लोंको ❀ समीप १३ सि० भी है ❀ और दूरस्थित है १४।१५ सो १६ सि० क्षेत्रज्ञपरमात्मा जो उसको अपना आत्माही जानते हैं, कि क्षेत्रज्ञपरमानन्दस्वरूप हमारा आत्माही है, आत्मासे पृथक् कोई पदार्थ नहीं, उनको समीप है और जो बहिर्मुख विषयी उसको रूपा-दिमान् वा बुद्ध्यादिका विषय अपनेसे पृथक् जानकर उसके

प्राप्तिके लिये दौडधूप करते हैं उनको कभी नहीं मिलेगा. जैसे मृग कस्तुरीके गंधके वास्ते भटकता फिरता रहता है वैसेही अज्ञानी भटकते रहेंगे ❀ ॥ १५ ॥

मू०—अविभक्तंचभूतेषुविभक्तमिवचस्थितम् ॥
भूतभर्तृचतज्ज्ञेयंग्रसिष्णुप्रभविष्णुच ॥ १६ ॥

तत् १ ज्ञेयम् २ अविभक्तम् ३ च ४ भूतेषु ५ विभक्तम् ६ इव ७ च ८ स्थितम् ९ भूतभर्तृ १० च ११ ग्रसिष्णु १२ च १३ प्रभविष्णु १४ ॥ १६ ॥ अ०—सो १ क्षेत्रज्ञ २ सि० वास्तवमें ❀ पृथक्पृथक् नहीं ३ और ४ भूतोंमें ५ पृथक्पृथक्वत् ६।७।८ स्थित ९ सि० है ❀ भूतोंका पालने वाला १० सि० स्थितिकालमें विष्णुरूपहोकर ❀ और ११ सि० प्रलय कालमें ❀ नाशकरनेवाला १२ सि० रुद्ररूप होकर ❀ और १३ सि० उत्पत्तिकालमें ❀ उत्पत्तिकरने वाला १४ सि० ब्रह्मरूप होकर ❀ तात्पर्य सो क्षेत्रज्ञ सब भूतोंमें एक है. उपाधिके सम्बंधसे पृथक्पृथक् प्रतीत होता है, वास्तवमें सो निर्विकार है ॥ १६ ॥

मू०—ज्योतिषामपितज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ॥
ज्ञानंज्ञेयंज्ञानगम्यंहृदिसर्वस्यधिष्ठितम् ॥ १७ ॥

तत् १ ज्योतिषाम् २ अपि ३ ज्योतिः ४ तमसः ५ परम् ६ उच्यते ७ ज्ञानम् ८ ज्ञेयम् ९ ज्ञानगम्यम् १० सर्वस्य ११ हृदि १२ धिष्ठितम् १३ ॥ १७ ॥ अ०—सो १ ज्योतिका २ भी ३ ज्योति ४ सि० है ❀ अर्थात् चन्द्रसूर्यादिकाभी प्रकाशक आत्माही है. इसी हेतुसे ❀ अज्ञानसे ५ परे ६ कहा है ७ सि० अज्ञानका कार्य बुद्ध्यादिका विषय नहीं. अज्ञानके कार्यसे जाननेमें नहीं आता है वो अपने आप ❀ ज्ञानस्वरूप है ८ सि० और अमानित्वादिसाधनोंकरके ❀ जाननेके योग्यहै, ९ तत्त्वज्ञानसेही जानाजाता है १० सबके ११ हृदयमें १२ विराजमान है १३ ॥ १७ ॥

मू०–इतिक्षेत्रंतथाज्ञानंज्ञेयंचोक्तंसमासतः ॥
मद्भक्तएतद्विज्ञायमद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

इति १ क्षेत्रम् २ तथा ३ ज्ञानम् ४ ज्ञेयम् ५ च ६ समासतः ७ उक्तम् ८ मद्भक्तः ९ एतत् १० विज्ञाय ११ मद्भावाय १२ उपपद्यते १३ ॥ १८ ॥ अ०–यह १ क्षेत्र २ और ३ ज्ञान ४ और ज्ञेय ५।६ संक्षेपकरके ७ सि० तुझसे ❀ कहा ८ मेरा भक्त ९ इसको १० जानकर ११ मेरे भावको १२ प्राप्त होताहै १३. तात्पर्य अमानित्वादि साधनसम्पन्न तत् त्वम् पदोंके अर्थको जानकर कृतार्थ होकर सच्चिदानन्द ऐसे अपने स्वरूपको प्राप्त होजाता है ॥ १८ ॥

मू०–प्रकृतिंपुरुषंचैवविद्ध्यनादीउभावपि ॥
विकारांश्चगुणांश्चैवविद्धिप्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

प्रकृतिम् १ पुरुषम् २ च ३ एव ४ उभौ ५ अपि ६ अनादि ७ विद्धि ८ विकारान् ९ च १० गुणान् ११ च १२ एव १३ प्रकृतिसंभवान् १४ विद्धि १५ ॥ १९ ॥ अ०–ईश्वरकी अचिन्त्यशक्तिमाया १ और सच्चिदानन्द ब्रह्म आत्मा २ । ३ ये ४ दोनों ५ ही ६ अनादि ७ सि० हैं. यह ❀ तू जान ८ देहेन्द्रियादि ९ और सुखदुःखमोहादिको १० । ११ । १२ । १३ प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ १४ तू जान १५. सि० यह सृष्टिप्रकार आनन्दामृतवर्षिणीके द्वितीयाध्यायमें भलेप्रकार लिखाहै ❀ ॥ १९ ॥

मू०–कार्यकारणकर्तृत्वेहेतुःप्रकृतिरुच्यते ॥
पुरुषःसुखदुःखानांभोक्तृत्वेहेतुरुच्यते ॥ २० ॥

कार्यकारणकर्तृत्वे १ हेतुः २ प्रकृतिः ३ उच्यते ४ सुखदुःखानाम् ५ भोक्तृत्वे ६ हेतुः ७ पुरुषः ८ उच्यते ९ ॥ २० ॥ अ०–कार्यकारणके करनेमें १ अर्थात् शरीरादिके उत्पत्तिमें १. हेतु २

प्रकृति ३ कही है ४ सुखदुःखोंके ५ भोगनेमें ६ हेतु ७ पुरुष ८ कहाहै ९. टी० अंतःकरणविशिष्टचैतन्यपुरुष भोक्ता कहजाताहै. यद्यपि प्रकृति जड है, उसको शरीरादिके उत्पत्तिमें केवल हेतु कहना बेजोगहै, परन्तु चैतन्यके सम्बंधसे उसको जगत्का उपादानकारण कहते हैं. और पुरुषनिर्विकार है, उसको सुखादिके भोगमें हेतु कहना बेजोग है, परन्तु प्रकृति सम्बन्धसे वो भोक्ता प्रतीत होता है. जैसे चुम्बकके सन्निधिसे लोहा चेष्टा करताहै, ऐसीही प्रकृतिपुरुषकी व्यवस्थाहै. और जैसे मित्रपुत्रादिके साथ स्नेह ममताकरनेसे उनके सुखदुःखमें आपभी सुखदुःखका भोक्ता होजाता है. ऐसेही जीवपुरुष देहेन्द्रियादिके साथ अध्यास (आसक्ति) करके दुःखादिका भोक्ता प्रतीत होने लगताहै. वास्तवमें वो शुद्धपरमानन्दरूपहै॥२०॥

मू०—पुरुषःप्रकृतिस्थोहिभुङ्क्तेप्रकृतिजान्गुणान् ॥
कारणंगुणसंगोस्यसदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

पुरुषः १ प्रकृतिस्थः २ हि ३ प्रकृतिजान् ४ गुणान् ५ भुङ्क्ते ६ सदसद्योनिजन्मसु ७ अस्य ८ कारणम् ९ गुणसंगः १० ॥ २१ ॥

अ०—आत्मा १ देहादिके साथ तादात्म्याध्यासकरके २ ही ३ प्रकृतिसे उत्पन्न हुए ४ सुखदुःखादिको ५ भोक्ता है. ६ सि० वास्तवमें अभोक्ता है ❀ देवतामनुष्यादि योनियोंके विषय जो इसका जन्म ७ इसका ८ कारण ९ गुणोंका संग १० सि० सतोगुणके सम्बन्धसे देवता, रजोगुणके संबन्धसे मनुष्य, तमोगुणके संबंधसे पशु, कहा जाता है ❀ ॥ २१ ॥

मू०—उपद्रष्टानुमंताचभर्ताभोक्तामहेश्वरः ॥
परमात्मेतिचाप्युक्तोदेहेस्मिन्पुरुषःपरः ॥ २२ ॥

अस्मिन् १ देहे २ पुरुषः ३ परः ४ उपद्रष्टा ५ अनुमन्ता ६ च ७ भर्ता ८ भोक्ता ९ महेश्वरः १० परमात्मा ११ इति १२ च १३ अपि १४

उक्तः १५॥ २२ ॥अ०—उ०जो आत्मा है वोही परमात्मा है. और जिसको परमात्मा परमेश्वर कहते हैं वो यही आत्मा है. जीवब्रह्मकी एकता स्पष्ट श्रीव्रजराज इसश्लोकमें दिखाते हैं—इसदेहमें ११२ सि० जो ❀ जीव ३ सि० है. सोई ❀ परेसेपरे ४ द्रष्टव द्रष्टा ५ सि० है. साक्षातद्रष्टा नहीं क्योंकि दृश्यपदार्थ जब सचे हों तब उसको द्रष्टाभी वास्तवमें कहाजावे. दृश्यपदार्थ अविद्याक हैं इस वास्ते मायोपहित होनेसे उसको उपद्रष्टा कहते हैं और कर्मजन्य सुखमें सुख मानकर आनन्दको प्राप्त होताहै वास्तवमें आप आनन्द स्वरूप है इसवास्ते उसको ❀ अनुमन्ता कहते हैं ६।७ सि० और मायोपहित हुआ यही सच्चिदानन्द अविद्योपहित सच्चिदानन्द जीवका ❀ पालन पोषण करनेवालाहै. ८ सि० और वोही ❀ भोक्ता है९ महेश्वर १० और परमात्मा यहभी ११।१२।१३।१४ कहा जाता है १५ तात्पर्य शुद्ध सच्चिदानन्दको मायाके संबंधसे ईश्वर कहते हैं और अविद्याके संबंधसे जीव कहते हैं जब दोनों उपाधि ब्रह्मज्ञानसे नष्ट होजातीहैं फिर केवल शुद्धसच्चिदानन्द एकही रहजाता है ॥ २२ ॥

मू०—यएवंवेत्तिपुरुषंप्रकृतिंचगुणैःसह ॥
सर्वथावर्त्तमानोपिनसभूयोभिजायते ॥ २३ ॥

यः १ एवम् २ पुरुषम् ३वेत्ति ४ प्रकृतिम् ५ च ६ गुणैः७ सह ८ सः ९ सर्वथावर्तमानः १० अपि ११ भूयः १२ न १३ अभिजायते १४ ॥ २३ ॥ अ०—जो१ इस प्रकार २ आत्माको ३ जानता है ४ और प्रकृतिको ५।६ गुणोंके साथ ७।८ सि० जानताहै ❀ अर्थात् प्रकृतिके स्वरूपको सत्त्वादिगुण और इद्रियार्थके सहित जो जानता है ७।८ सो ९ सर्वथा वर्तमान १० भी ११ फिर १२ नहीं १३ जन्मलेता है १४ टी० वेदोक्तमार्गपर चलो, अथवा प्रारब्धव-

शात् जैसी उसकी इच्छा हो वरतो, मुक्तिमें सन्देह नहीं. यह बात आनन्दामृतवर्षिणीके तीसरे अध्यायमें स्पष्ट लिखी है ॥ २३ ॥

मू०—ध्यानेनात्मनिपश्यंतिकेचिदात्मानमात्मना ॥
अन्येसांख्येनयोगेनकर्मयोगेनचापरे ॥ २४ ॥

केचित् १ आत्मानम् २ आत्मना ३ आत्मनि ४ ध्यानेन ५ पश्यंति ६ अन्ये ७ सांख्येन ८ योगेन ९ च १० अपरे ११ कर्मयोगेन १२ ॥ २४ ॥ अ०—कोई १ आत्माको २ अन्तर्मुखनिर्मलअन्तःकरणकी वृत्ति करके ३ इसदेहमें ४ आत्माकारवृत्तिकरके अर्थात् "अहंब्रह्मास्मि" इसका गंगावत् प्रवाह सदा बनारहे इसको ध्यान कहते हैं ५ सि० इसध्यान करके ❀ देखते हैं ६ कोई ७ सांख्ययोगकरके अर्थात् प्रकृतिपुरुषविवेकद्वारा अथवा वेदांतशास्त्रद्वारा ८ सि० और कोई ❀ अष्टांगयोगकरके ९।१० अर्थात् यम,नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, इनके द्वारा ९। १०. सि० और ❀ कोई ११ कर्मयोगकरके १२. सि० देखते हैं. यह क्रिया सबके साथ लगती है, कर्म दोप्रकारके हैं, गौण और मुख्य, स्नानश्राद्धादि बहिरंगकर्म गौण हैं, शमदमादि अंतरंगकर्म मुख्य हैं. मुख्य साधनोंमें सबका अधिकार है ❀ ॥ २४ ॥

मू०—अन्येत्वेवमजानंतः श्रुत्वान्येभ्यउपासते ॥
तेपिचातितरंत्येवमृत्युंश्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

अन्ये १ तु २ एवम् ३ अजानन्तः ४ अन्येभ्यः ५ श्रुत्वा ६ उपासते ७ ते ८ अपि ९ च १० मृत्युम् ११ अतितरंति १२ एव १३ श्रुतिपरायणाः १४ ॥२५॥ अ०—और कोई १।२ इसप्रकार ३ सि० ध्यानरहित आत्माको ❀ नहीं जानते हुए ४ सद्गुरुमहापुरुषोंसे ५ श्रवणकरके ६ उपासना करते हैं अर्थात् आत्माको साक्षात् अपरोक्ष तो नहीं जानते परन्तु वेदशास्त्रसद्गुरुद्वारा यह सुना है, कि मैं

ब्रह्म हूं ॥" अहंब्रह्मास्मि " यही जप करते हुए आत्माकी उपासना करते हैं ७ वे ८ भी ९ । १० संसारको ११ उलंघ जाते हैं १२ निश्चयसे १३. सि० क्योंकि वे ❀ श्रवणपरायण हैं. १४ सि० कमसमझ यह कहा करते हैं कि, विनाब्रह्मके जाने आपको ब्रह्म कहना न चाहिये, इसमें पाप होता है. तुम्हारेमें ब्रह्मकी क्या शक्ति है. प्रतीत होता है कि ये लोग यातो इर्षाअमर्षसे कहते हैं, या भगवत्वाक्यमें उनकी किंचित् श्रद्धा नहीं, या मूर्ख हैं क्योंकि इस मंत्रमें श्रीभगवान् स्पष्ट कहते हैं कि अनजान ब्रह्मका उपासक जो अहंब्रह्मास्मि यह उपासना करता है. वो परमगतिको प्राप्त होता है फिर न जानिये मूर्ख इस श्लोकका क्या अनर्थ करते हैं जब कि अनजान अवस्थामें यह उपासना न की तो ज्ञानावस्थामें व क्यों करेंगे. उपासना साधन है और वो फलके प्राप्तिके वास्ते करते हैं मूर्ख साधनसे पहलेही फल चाहते हैं. यह कहते हैं कि जब हमको ब्रह्म साक्षात् अपरोक्ष होगा तब हम अहंब्रह्मास्मि ऐसा कहेंगे विचारना चाहिये कि विनासाधन कहीं फल मिलता है कर्म और भेद उपासना ज्ञानके गौण साधन हैं ज्ञाननिष्ठाका मुख्य साधन यही है कि ॥ "अहंब्रह्मास्मि" यह महावाक्यश्रवणकरके इसीका सदा जप किया करे वेदवाक्यभी इसमें प्रमाण है ❀ ॥ २५ ॥

मू०—यावत्संजायतेकिंचित्सत्वंस्थावरजंगमम् ॥
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धिभरतर्षभ ॥ २६ ॥

यावत् १ किंचित् २ सत्त्वम् ३ स्थावरजंगमम् ४ संजायते ५ भरतर्षभ ६ तत् ७ क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् ८ विद्धि ९ ॥ २६ ॥ अ०— जहांतक १ जो कुछ २ पदार्थ ३ स्थावरजंगम ४ उत्पन्न होताहै ५. हे अर्जुन ! ६ तिसको ७ क्षेत्र क्षेत्रज्ञके संयोगसे ८ जान तू ९ ॥ २६ ॥

मू०—समंसर्वेषुभूतेषुतिष्ठंतंपरमेश्वरम् ॥
विनश्यत्स्वविनश्यंतंयःपश्यतिसपश्यति ॥ २७ ॥

सर्वेषु १ भूतेषु २ विनश्यत्सु ३ परमेश्वरम् ४ समम् ५ अविनश्यन्तम् ६ तिष्ठन्तम् ७ यः ८ पश्यति ९ सः १० पश्यति ११॥२७॥ अ०-उ० विनाविवेक संसार है यह पीछे कहा. अब उसके निवृतिके लिये विवेकबुद्धि बताते हैं कि, ऐसे आत्माका स्वरूप जानना चाहिये. तब जानना कि अब ज्ञान हुआ-सबभूतोंमें १।२सि० भूतोंका नाश हुए संतेभी ३ आत्माको ४ सम ५ अविनाशी ६ स्थित ७ जो ८ देखता है ९सो १० देखता है ११ तात्पर्य आत्माको जो अविनाशी पूर्णब्रह्म परमेश्वर जानते हैं ऐसा देहादिके नाशमेंभी उसको अविनाशी जानते हैं,वे आत्माको यथार्थ जानते हैं ॥ २७ ॥

मू०-समंपश्यन्हिसर्वत्रसमवस्थितमीश्वरम् ॥
नहिनस्त्यात्मनात्मानंततोयातिपरांगतिम् ॥२८॥

ईश्वरम् १ समवस्थितम् २ सर्वत्र ३ समम् ४ पश्यन् ५ हि ६ आत्मना ७ आत्मानम् ८ न ९ हिनस्ति १० ततः ११ पराम् १२ गतिम् १३ याति १४॥२८॥ अ०-ईश्वरको १ निश्चल २ सर्वत्र ३ सम देखता हुआ ४।५।६ आत्माकरके ७ आत्माको ८ नहीं ९ मारताहै. १० फिर ११ परमगतिको १२।१३ प्राप्त होता है १४. तात्पर्य जो ईश्वरको या जीवको विकारवान् ऐसा विषम देखता है, सो भेदवादी अपनेआप अपना नाश करता है. और ईश्वरकोभी आत्मासे जुदा समझकर परिच्छन्न अल्पप्रमेय करता है और आत्माकोभी इस हेतुसे महाहत्यामें आत्महत्यामें जो पाप होता है सो पाप भेदवादीको लगता है. इसी अर्थको व्यतिरेक मुखकरके भगवान्ने इसमें कहा है.अर्थात् जो आत्माको सर्वत्र ईश्वर ऐसा देखता है,सो आत्महत्यारा नहीं. जो आत्मको विषमप्रमेय अल्प देखता है वो आत्माही है. इत्यभिप्रायः ॥ २८ ॥

मू०-प्रकृत्यैवचकर्माणिक्रियमाणानिसर्वशः ॥
यःपश्यतितथात्मानमकर्तारंसपश्यति ॥ २९ ॥

सर्वशः १ क्रियमाणानि २ कर्माणि३ प्रकृत्या४ एव५ च ६ यः७ पश्यति ८ तथा ९ आत्मानं १० अकर्तारम् ११ सः १२ पश्यति १३ ॥ २९ ॥ अ०—सबप्रकार१ क्रियमाण२ कर्मोंको ३ प्रकृतिकरके४ ही ५।६ जो ७ देखता है, ८ तैसेही ९ आत्माको १० अकर्ता ११ वो १२ देखता है १३. तात्पर्य बुरे भले सबकर्म शरीर, इन्द्रिय, अंतःकरण, इन करके किये जाते हैं. आत्मा अकर्ता है, इसप्रकार जो आत्माको अकर्ता देखता है वोही आत्माको भले प्रकार पहँचानता है ॥ २९ ॥

मू०—यदाभूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ॥
ततएवचविस्तारंब्रह्मसंपद्यतेतदा ॥ ३० ॥

यदा १ भूतपृथग्भावम् २ एकस्थम् ३ अनुपश्यति ४ ततः ५ एव ६ च ७ विस्तारं ८ तदा ९ ब्रह्म १० सम्पद्यते ११ ॥ ३० ॥ जिसकालमें १ भूतोंके पग्भावको २ आत्माके विषय ३ देखता है ४ और तिससेही ५।६।७ विस्तारको ८ तिसकालमें ९ ब्रह्मको १० प्राप्त होता है ११. तात्पर्य अपने अज्ञानसेही सब जगद्विस्तार प्रतीत होता है. और जब आत्माकारवृत्ति होती है, उसकालमें सबजगत् अत्यंत अभावको प्राप्त हो जाता है. एक जीववादको जो जानते हैं, वे इस बातको समझ सक्ते हैं, कि अपने अज्ञानका नाश हुएसे समस्त जगत्का अभाव होजाता है ॥ ३० ॥

मू०—अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्मायमव्ययः ॥
शरीरस्थोपिकौंतेयनकरोतिनलिप्यते ॥ ३१ ॥

कौन्तेय १ अयम् २ परमात्मा ३ शरीरस्थः ४ अपि ५ अनादित्वात् ६ निर्गुणत्वात् ७ अव्ययः ८ न ९ करोति १० न ११ लिप्यते १२॥ ३१ ॥अ०—हे अर्जुन! १ यह २ परमात्मा ३ शरीरमें स्थित ४ भी ५ अनादि होनेसे ६ निर्गुण होनेसे ७ निर्विकार ८

सि०है. ❀न ९ करता है १० न ११ लिपायमान होता है १२. तात्पर्य देहादिके क्रियामें आत्मा कर्ता नहीं और कर्मोंके न करनेसे अज्ञानीवत् पापके साथ स्पर्श नहीं करता ॥ ३१ ॥

मू०—यथासर्वगतंसौक्ष्म्यादाकाशंनोपलिप्यते ॥
सर्वत्रावस्थितोदेहेतथात्मानोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

यथा १ आकाशम् २ सर्वगतम् ३ सौक्ष्म्यात् ४ न ५ उपलिप्यते ६ तथा ७ आत्मा ८ सर्वत्र ९ देहे १० स्थितः ११ न १२ उपलिप्यते १३ ॥ ३२ ॥ अ०—जैसा १ आकाश २ सबजगह व्याप्तहै ३ सूक्ष्म होनेसे ४ सि०किसीजगे ❀नहीं ५ लिपायमान होता है ६ तैसा ७ आत्मा ८ सबजगह ९ देहमें १० स्थित है ११. सि० कर्मोंके साथ और कर्मोंके फलके साथ. ❀ नहीं १२ लिपायमान होता है १३ ॥ ३२ ॥

मू०—यथाप्रकाशयत्येकःकृत्स्नंलोकमिमंरविः ॥
क्षेत्रंक्षेत्रीतथाकृत्स्नंप्रकाशयतिभारत ॥ ३३ ॥

यथा १ एकः २ रविः ३ इमम् ४ कृत्स्नम् ५ लोकम् ६ प्रकाशयति ७ तथा ८ क्षेत्री ९ कृत्स्नम् १० क्षेत्रम् ११ प्रकाशयति १२ भारत १३ ॥ ३३ ॥ अ०—जैसा एक १।२ सूर्य ३ इस ४ संपूर्ण ५ लोकको ६ प्रकाशित कररहा है ७. तैसेही ८ क्षेत्रज्ञ ९ समस्तक्षेत्रको १० प्रकाशितकररहा है ११. तात्पर्य जो ज्ञानानंद देहमें प्रतीत होता है, सब उसी ज्ञानानंदकी छाया है ॥ ३३ ॥

मू०—क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरंज्ञानचक्षुषा ॥
भूतप्रकृतिमोक्षंचयेविदुर्यांतितेपरम् ॥ ३४ ॥

ये १ एवम् २ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ३ अंतरम् ४ ज्ञानचक्षुषा ५ भूतप्रकृतिमोक्षम् ६ च ७ विदुः ८ ते ९ परम् १० यान्ति ११ ॥ ३४ ॥ अ०—जो १ इसप्रकार २ सि०पूर्वोक्त रीतिकरके ❀क्षेत्रक्षेत्रज्ञकए

भेद ४ ज्ञानचक्षूकरके ५ सि० देखते हैं और ❀ भूतोंकी जो प्रकृतिध्यान विवेकादि तिनके सकाशसे मोक्षको ६।७ जानते हैं. ८ वे ९ परमानंदस्वरूप आत्माको १० सि० प्राप्तवत्र ❀प्राप्त होते हैं ११ तात्पर्य बंधका हेतुभी प्रकृति है. और मोक्षमें भी हेतु प्रकृति है, तमोगुण रजोगुणके साथसंबंध करनेसे संबंधको प्राप्त होता है सतोगुणके साथ संबधकरनेसे मोक्षको प्राप्तहोताहै इसी अर्थको चतुर्दशाध्यायमें श्रीभगवान् स्पष्ट निरूपण करेंगे ॥ ३४ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः १४.

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ परंभूयःप्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ॥ यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वेपरांसिद्धि मितोगताः ॥ १ ॥

श्रीभगवान् उवाच. भूयः १ ज्ञानानाम् २ उत्तमम् ३ ज्ञानम् ४ परम् ५ प्रवक्ष्यामि ६ यत् ७ ज्ञात्वा ८ सर्वे ९ मुनयः १० पराम् ११ सिद्धिम् १२ इतः १३ गताः १४ ॥ १ ॥ अ०—उ० सतोगुणके बढानेसे रजोगुण और तमोगुण कमकरनेसे ज्ञानद्वारा परमानन्दकी प्राप्ति होती है इसवास्ते इसअध्यायमें सत्वादिका भेद कहते हैं—हे अर्जुन! फिर १ सि० भी ❀ ज्ञानोंमें २ सि० जो ❀उत्तम ज्ञान ३।४ परमार्थनिष्ठ ५ तिसको मैं कहूंगा ६ सि० इसअध्यायमें तुझसे ❀ जिसको ७ जानकर ८ सब मुनीश्वर ९।१० परमसिद्धिको ११।१२ इसदेहसे पीछे १३ प्राप्त हुए १४ तात्पर्य ज्ञान के प्रकारका है कर्मउपासनादिका अर्थ जानाजाता है जिन ज्ञानकरके [illegible]कोभी ज्ञान कहतेहैं और आत्माकापरमानन्दपरमस्वरूप साक्षात्

(अपरोक्ष) होता है जिस ज्ञान करके. एक यह उत्तम आत्मज्ञान है सब ज्ञानोंमें. आत्मज्ञान क्यों उत्तम है वह साक्षात् मुक्तिका मुख्य हेतु है और परब्रह्मकी निष्ठा प्राप्त करनेवाला है. इसी ज्ञान करके बहुत साधुमहात्मा स्थूलदेहको त्यागकर परमानन्दस्वरूपआत्मा को प्राप्त हुए हैं. हे अर्जुन ! तू मेरा प्याराहै, इस वास्ते यह उत्तम ज्ञान फिरभी तुझसे कहूंगा, यद्यपि पहले कहा है परन्तु अब शीघ्र समझमें आनेके वास्ते अन्य रीतिसे कहूंगा ॥ १ ॥

मू०—इदंज्ञानमुपाश्रित्यममसाधर्म्यमागताः ॥
सर्गेऽपिनोपजायंतेप्रलयेनव्यथंतिच ॥ २ ॥

इदम् १ ज्ञानम् २ उपाश्रित्य ३ मम ४ साधर्म्यम् ५ आगताः ६ सर्गे ७ अपि ८ न ९ उपजायन्ते १० प्रलये ११ च १२ न १३ व्यथंति १४ ॥ २ ॥ अ०—इस १ ज्ञानका २ आश्रयकरके ३ अर्थात् ये जो ज्ञान साधनसहित इस अध्यायमें कहते हैं तिसका अनुष्ठानकरके ३. मेरे स्वरूपको ४।५ प्राप्त हुए. ६ अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप हुए ६. सृष्टिसमय ७ भी ८ अर्थात् जब यह जगत्प्रलय होकर फिर उत्पन्न होगा उस समयभी ८. नहीं प्राप्त होंगे ९।१०. तात्पर्य मायासंबंधी स्थूलादि देहोंको नहीं प्राप्त होंगे. क्योंकि, मायाके संबंधसे दुःख होता है. मायाका ज्ञानसे नाश होजाता है ॥ २ ॥

मू०—ममयोनिर्महद्ब्रह्मतस्मिन्गर्भंदधाम्यहम् ॥
संभवःसर्वभूतानांततोभवतिभारत ॥ ३ ॥

मम १ योनिः २ महद्ब्रह्म ३ तस्मिन् ४ गर्भम् ५ दधामि ६ अहम् ७ भारत ८ ततः ९ सर्वभूतानाम् १० सम्भवः ११ भवति १२ ॥ ३ ॥ अ०—उ० श्रोताको सन्मुख करके सोई ज्ञान कहते हैं-मेरी १ योनि याने बीज धारण करनेका स्थान २ अर्थात् सबभूतोंका कारण २. प्रकृति (माया) ३ तिसमें ४ अर्थात् उस त्रिगुणात्मिका

मायामें ४. चिदाभासको ५ मैं धारणकरता हूं ६ । ७ हे अर्जुन ! ८ मायोपहितब्रह्मसे ९ सबभूतोंका १० आविर्भाव ११ होताहै १२ अर्थात् मायामें जब सच्चिदानन्दकी छायावत् छाया पडती है तब सबभूत (सूक्ष्मस्थूल) प्रकट होते हैं १२. तात्पर्य प्रभु जगत्के अभिन्न निमित्तोपादानकरण हैं. नहीं है भिन्न निमत्त और उपादानकारण जिन्होंसे ॥ ३ ॥

मू०—सर्वयोनिषुकौंतेयमूर्तयःसंभवंतियाः ॥
तासांब्रह्ममहद्योनिरहंबीजप्रदःपिता ॥ ४ ॥

कौन्तेय १ सर्वयोनिषु २ याः ३ मूर्तयः ४ संभवन्ति ५ तासाम् ६ योनिः ७ महत् ८ ब्रह्म ९ अहम् १० बीजप्रदः ११ पिता १२ ॥४॥
अ०—हे अर्जुन ! १ सबभूतोंमें २ जो ३ मूर्ति ४ उत्पन्न होतीहैं ५ तिनकी ६ योनि ७ प्रकृति ८।९ सि० है और ❀ मैं १० बीजदेनेवाला ११ पिता १२ तात्पर्य जो जो मूर्ति ब्रह्माजीसे ले चीटीपर्यन्त (जंगमस्थावर) जिस जिसजगह उत्पन्न होती हैं तिनकी प्रकृति उपादानकारण है और ईश्वर निमित्तकारण हैं ॥ ४॥

मू०—सत्त्वंरजस्तमइतिगुणाःप्रकृतिसंभवाः ॥
निबध्नंतिमहाबाहोदेहेदेहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥

सत्त्वम् १ रजः २ तमः ३ इति ४ गुणाः ५ प्रकृतिसंभवाः ६ महाबाहो ७ देहे ८ अव्ययम् ९ देहिनम् १० निबध्नन्ति ११ ॥५॥
अ०—उ० सत्त्वादिगुणोंने आत्माको बन्धनकररक्खा है, यह कहते हैं—सत्व १ रज २ तम ३ यह ४ गुण ५ प्रकृतिसे प्रकट होते हैं ६ हे अर्जुन! ७ सि० इस ❀ देहमें ८ निर्विकार ९ सि० ऐसे ❀ जीवको १० बंधन करते हैं. ११ तात्पर्य जीवके स्वरूपको भुला देते हैं आनन्दको अपनेसे जुदा पदार्थजन्य जानकर जीव भ्रान्त होजाता है गुणोंके संबंधसे अपने आनंदस्वरूपको भूलजाता है ॥ ५ ॥

मू०—तत्रसत्वंनिर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ॥
सुखसंगेनबध्नातिज्ञानसंगेनचानघ ॥ ६ ॥

अनघ १ तत्र २सत्वम् ३ निर्मलत्वात् ४ प्रकाशकम्५अनामयम्६ सुखसंगेन७ज्ञानसंगेन ८च९बध्नाति १०॥६॥अ०—उ०सतोगुणका लक्षण और बंधनप्रकार कहते हैं—हे अर्जुन! १ तीनों गुणोंमें२सतोगुण ३ निर्मल होनेसे ४ प्रकाशरूप ५ शान्तरूप ६ सि० है ❀ सुखके साथ ७ और ज्ञानके साथ ८।९ बंधन करता है १० सि० आत्माको सत्वगुण ❀ तात्पर्य सुख और ज्ञान ये दोनों अंतःकरणकी वृत्ति हैं, वे मिथ्या (अनात्मा) मायाका कार्य हैं. मैं सुखी मैं ज्ञानी यह समझकर जीव वृथा भ्रान्तिमें फँसता है. जिसकालमें सत्वगुण तिरोधान हो जाताहै तमोगुण और रजोगुण प्रकट होजातेहैं, तब यह ज्ञानसुख भी जाता रहता है-दुःखशोकादिमें फँस जाता है॥६॥

मू०—रजोरागात्मकंविद्धितृष्णासंगसमुद्भवम् ॥
तन्निबध्नातिकौन्तेयकर्मसंगेनदेहिनम् ॥ ७ ॥

कौन्तेय १ रजः २ रागात्मकम् ३ विद्धि ४ तृष्णासंगसमुद्भवम्५ तत् ६ देहिनम् ७ कर्मसंगेन ८ निबध्नाति ९ ॥ ७ ॥ अ०—उ० रजोगुणका लक्षण और बन्धनप्रकार कहतेहैं-हे अर्जुन! १रजोगुणको२ रागात्मक ३ जान तू. ४ अर्थात् जिससमय स्त्रीमित्रादिपदार्थोंका श्रवण, स्मरण और दर्शन इत्यादि करके अंतःकरणके वृत्तिमें स्नेह उत्पन्न होता है और मनरंजन होने लगता है, इसीको रागात्मक कहते हैं और रजोगुणका यही स्वरूप है ३।४. तृष्णासंगकी उत्पत्ति है जिससे ५ अर्थात् जब रजोगुणका आविर्भाव होताहै, तब जोजो पदार्थ देखनेमें या सुननेमें आता है, उनसबमें अभिलाष होने लगता है. मनमें ये संकल्पविकल्प उत्पन्न होने लगते हैं कि, अमुक पदार्थ जो हमको मिलेगा तो उसमें हमको यह यह आनन्द मिलेगा।

जब वो पदार्थ मिलजाता है, तब उनमें आसक्ति होजाती है उसके वियोगमें दुःख होताहै ऐसेऐसे रजोगुणके कार्यसे रजोगुणका ज्ञान होता है ५ सोऽस्मि ०रजोगुण ❋जीवको ७कर्मोंमें आसक्त करके ८ बंधन करता है. ९ सि० वेदोक्त कर्मोंमें और उनके फलमें फँस-जाता है जीव. रजोगुणज्ञानके सन्मुख नहीं होने देता है ❋ ॥ ७ ॥

मू०–तमस्त्वज्ञानजंविद्धिमोहनंसर्वदेहिनाम् ॥
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नातिभारत ॥ ८ ॥

भारत १ तमः २ तु ३ अज्ञानजम् ४ सर्वदेहिनाम् ५ मोहनम् ६ विद्धि ७ तत् ८ प्रमादालस्यनिद्राभिः ९ निबध्नाति १० ॥ ८ ॥ अ०–उ०तमोगुणका लक्षण और बंधनप्रकार कहते हैं–हे अर्जुन! १ तमोगुणको २ । ३ आवरणशक्तिप्रधान ४ सब जीवोंको ५ भ्रान्त करनेवाला ६ जान तू ७ सो ८ निद्रा आलस्य प्रमादकरके ९ बंधन करता है १० ॥ ८ ॥

मू०–सत्वंसुखेसंजयतिरजःकर्मणिभारत ॥
ज्ञानमावृत्यतुतमःप्रमादेसंजयत्युत ॥ ९ ॥

भारत १ सत्वम् २ सुखे ३ संजयति ४ रजः ५ कर्मणि ६ तमः ७ तु ८ ज्ञानम् ९ आवृत्य १० प्रमादे ११ संजयति १२ उत १३ ॥ ९ ॥ अ०–उ० सत्वादि अपने अपने आविर्भावमें जो करते हैं उनका सामर्थ्य दिखाते हैं–हे अर्जुन! १ सतोगुण २ सुखमें ३ लगाता है ४. अर्थात् जिससमय सत्वगुणका आविर्भाव होता है, उससमय वो सुखके सन्मुखकरता है ४. सि०और ❋रजोगुण ५ कर्मोंमें ६ सि०लगाता है ❋ और तमोगुण ७।८ ज्ञानको ९ ढाँककर १० प्रमादमें ११ जोडता है १२. आनंदामृतवर्षिणीके पाँचवे अध्यायमें ये सब अर्थ स्पष्ट लिखा है ॥ ९ ॥

मू०—रजस्तमश्चाभिभूयसत्वंभवतिभारत ॥
रजःसत्वंतमश्चैवंतमःसत्वंरजस्तथा ॥ १० ॥

रजः१ तमः२ च३ अभिभूय४ सत्वम् ५ भवति ६ भारत ७ सत्वम् ८ तमः९ च १० एव ११ रजः १२ सत्वम् १३ रजः १४तथा १५ तमः १६॥ १० ॥अ०—उ०एक गुण प्रकट रहता है, दोनोंका तिरोभाव रहताहै यह नियम है सोई इस मंत्रमें कहते हैं—रज १ और तमको २। ३ दबाकर ४ सत्व ५ प्रकट होता है ६ हे अर्जुन! ७ सत्व ८ और तमको ९।१०। ११सि० दबाकर ❀ रजोगुण १२सि० प्रकट होता है ❀और सत्वरजको१३।१४। १५ सि०दबाकर ❀ तमोगुण १६सि०प्रकट होताहै. ❀ तात्पर्य जिससमय जो गुण प्रकट होगा, उस समय वैसीही बात प्यारी लगेगी दूसरे गुणका कार्य उस समय अच्छा नहीं लगेगा जैसे रजोगुणके आविर्भावमें नाच, तमाशा, स्त्री और शब्दादि प्रिय लगतेहैं. निद्रा, आलस्य, शम, दम इत्यादि अच्छे नहीं लगते सतोगुणके आविर्भावमें स्त्र्यादिपदार्थ अच्छे नहीं लगते, सत्यदयासंतोषादि अच्छे लगते हैं ॥ १० ॥

मू०—सर्वद्वारेषुदेहेऽस्मिन्प्रकाशउपजायते ॥
ज्ञानंयदातदाविद्याद्विवृद्धंसत्वमित्युत ॥ ११ ॥

यदा १ अस्मिन् २ देहे ३ सर्वद्वारेषु ४ प्रकाशः ५ ज्ञानम् ६ उपजायते ७ तदा ८ सत्वं ९ विवृद्धम् १० विद्यात् ११ इति १२ उत १३॥११॥ अ०—उ० जब शरीरमें सतोगुण बढ़ रहताहै उसका लक्षण यह है—जिसकालमें १ इस देहके विषय २ . सर्वद्वारोंमें याने श्रोत्रादिमें ४ प्रकाश ५ ज्ञानात्मक ६ उत्पन्नहोताहै ७ तिसकालमें ८ सतोगुण ९ बढा हुआ १० जान ११ इत्यभिप्रायः १२। १३ ॥ ११ ॥

मू०—लोभःप्रवृत्तिरारंभःकर्मणामशमःस्पृहा ॥
रजस्येतानिजायंतेविवृद्धेभरतर्षभ ॥ १२ ॥

भरतर्षभ १ रजसि २ विवृद्धे ३ एतानि ४ जायंते ५ लोभः ६ प्रवृत्तिः ७ आरंभः ८ कर्मणाम् ९ अशमः १० स्पृहा ११ ॥ १२ ॥

अ०—उ० जब शरीरमें रजोगुण बढा रहता है, उसका लक्षण यहहै. हे अर्जु ! १ रजोगुण २ बढनेसे ३ ये ४ सि० लोभादि ❀ उत्पन्न होतेहैं ५ ज्यों ज्यों धनादिकी प्राप्ति हो त्यों त्यों सिवाय अभिलाष बढ़ता है ६ धनादिकी प्राप्तिके लिये ऐसे तन्मय होकर प्रयत्न करते रहना कि, स्वप्नमें भी चित्त शान्त न हो ७ मंदिर उपवनादिका जो प्रारम्भ कररक्खा है सो तो पूरा हुआ नहीं दूसरा और प्रारंभ कर दिया ८ कर्मोंका ९ अशम १० अर्थात् यह कामकरके वो काम करूंगा १०. बुरा भला कुछ न स्मरण करना जैसे बने यही इच्छा रखना किसी प्रकार धनादि प्राप्त हो ११ ॥ १२ ॥

मू०—अप्रकाशोप्रवृत्तिश्चप्रमादोमोहएवच ॥
तमस्येतानिजायन्तेविवृद्धेकुरुनन्दन ॥ १३ ॥

कुरुनन्दन १ तमसि २ विवृद्धे ३ एतानि ४ जायंते ५ अप्रकाशः ६ अप्रवृत्तिः ७ च ८ प्रमादः ९ मोहः १० एव ११ च १२ ॥ १३ ॥

अ०—उ० जब शरीरमें तमोगुण बढा रहताहै उसका लक्षण यहहै- हे अर्जुन! १ तमोगुण बढनेमें २।३ ये ४ सि० अप्रकाशादि ❀ उत्पन्न होतेहैं ५ अविवेक ६ और इस लोक परलोकके निमित्त प्रयत्न न करना ७।८ सि० और करना तो यह करना कि ❀ द्यूतादि खेल खेलना ९ और अपने उलटे समझसे ऐसा काम करना कि उसका न इस लोकमें फल न परलोकमें. जैसा क्रोधादि पड्वैरियोंके प्रेरणासे अन्यके हानिके लिये यत्न करना किसीको बुरा कहना इत्यादि १० । ११ । १२ ॥ १३ ॥

मू०—यदासत्त्वेप्रवृद्धेतुप्रलयंयातिदेहभृत् ॥
तदोत्तमविदांलोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

सत्वे १ प्रवृद्धे २ तु ३ यदा ४ देहभृत् ५ प्रलयं ६ याति ७ तदा ८ अमलान् ९ उत्तमाविदाम् १० लोकान् ११ प्रतिपद्यते १२ ॥ १४ ॥अ०–उ०मरणसमय जो गुण बढा होगा उसका फल वह होगा कि, जो अब दो श्लोकोंमें कहतेहैं–सतोगुण बढे हुएसन्ते १।२।३ जिसकालमें ४ जीव ५ मृत्युको ६ प्राप्त होता है ७ तिसफलमें ८ निर्मल उपासकोंके ९ । १० लोकोंको ११ प्राप्त होता है १२. तात्पर्य हिरण्यगर्भादिके उपासक जिन निर्मल लोकोंमें जाते हैं, उसी लोकको वो प्राप्त होता है, कि जिसका अन्तकालमें सतोगुण बढा रहे ॥ १४ ॥

मू०—रजसिप्रलयंगत्वाकर्मसंगिषुजायते ॥
तथाप्रलीनस्तमसिमूढयोनिषुजायते ॥ १५ ॥

रजसि १ प्रलयम् २ गत्वा ३ कर्मसंगिषु ४ जायते ५ तथा ६ तमसि ७ प्रलीनः ८ मूढयोनिषु ९ जायते १० ॥ १५ ॥अ०–रजोगुणमें १ मृत्युको २ प्राप्त होकर ३ कर्मसंगीमनुष्योंमें ४ उत्पत्ति होती है ५ तैसेही ६ तमोगुणमें ७ मराहुआ ८ पशुपक्षी इत्यादि मूढयोनियोंमें ९ जन्म लेता है १० ॥ १५ ॥

मू०—कर्मणः सुकृतस्याहुःसात्त्विकंनिर्मलंफलम् ॥
रजसस्तुफलंदुःखमज्ञानंतमसःफलम् ॥ १६ ॥

सुकृतस्य १ कर्मणः २ निर्मलम् ३ सात्त्विकम् ४ फलम् ५ आहुः ६ रजसः ७ तु ८ फलम् ९ दुःखम् १० तमसः ११ फलम् १२ अज्ञानम् १३ ॥ १६ ॥अ०–उ० इसदेहमें अपने आप विनायत्न इत्यादि जिसहेतुसे वर्ततेहैं, उसका कारण यहहै–सतोगुणी कर्मका ११रसि० कि जिसका लक्षण अठारहवें अध्यायमें कहेंगे. अर्थात्

पिछले जन्ममें जो सतोगुणी कर्मकियेहैं उन शुभकर्मोंका ॐ निर्मल२ सतोगुण ४ फल ५ कहते हैं ६ और रजोगुणीका फल ७ । ८ । ९ दुःख १०।सि०है ॐ तमोगुणका फल ११ । १२ अज्ञान १३सि० है ॐ तात्पर्य कोई प्रयत्नकरके सतोगुणको बढाते हैं किसीके स्वाभाविक शमदमादि देखनेमें आते हैं, सो पिछले सतोगुणीकर्मका फल समझना चाहिये. इसप्रकार रजोगुणतमोगुणकी व्यवस्था है ॥ १६॥

मू०-सत्वात्संजायतेज्ञानंरजसोलोभएवच ॥
प्रमादमोहौतमसोभवतोऽज्ञानमेवच ॥ १७ ॥

सत्वात् १ ज्ञानम् २ संजायते ३ रजसः ४ लोभः ५ एव ६ च ७ प्रमादमोहौ ८ तमसः ९ भवतः १० अज्ञानम् ११ एव १२ च १३ ॥ १७ ॥अ०-सतोगुणसे १ ज्ञान २ उत्पन्न होताहै ३ रजोगुणसे ४ लोभ ५ उत्पन्न होता है६ ।७प्रमादमोह ८ तमोगुणसे ९सि० उत्पन्न ॐ होते हैं १०. और अज्ञानभी ११ । १२। १३ सि०तमोगुणसे होता है ॐ तात्पर्य ज्ञान, लोभ, अज्ञान, प्रमाद, मोह ये उपलक्षण हैं ज्ञानादि कहनेमें सत्वादि तीनों गुणोंका समस्त कार्य समझ लेना चाहिये ॥ १७ ॥

मू-०ऊर्ध्वंगच्छंतिसत्वस्थामध्येतिष्ठंतिराजसाः ॥
जघन्यगुणवृत्तिस्थाअधोगच्छंतितामसाः ॥ १८ ॥

सत्वस्थाः १ ऊर्ध्वम् २ गच्छन्ति ३ राजसाः ४ मध्ये ५ तिष्ठंति ६ जघन्यगुणवृत्तिस्थाः ७ तामसाः ८ अधः ९ गच्छन्ति १० ॥ १८॥ अ०-उ०मरकर सत्त्वादि गुणोंके तारतम्यताके लेखसे फल होता है यह इसमंत्रमें कहते हैं-सतोगुणी १ ऊपरके लोकोंको २ प्राप्त होते हैं ३ रजोगुणी ४ मध्यमें ५ स्थितरहते हैं, ६ निकृष्टगुणमें १० [illegible]नेवाले ७ तमोगुणी ८ अधः याने नीचेको ९ प्राप्त होते हैं १०

सि० इसजगह तारतम्यताका जो विचार है सो आनंदामृतवर्षिणीके पंचमाध्यायमें लिखा है ॥ १८ ॥

मू०—नान्यंगुणेभ्यःकर्तारंयदाद्रष्टानुपश्यति ॥
गुणेभ्यश्चपरंवेत्तिमद्भावंसोधिगच्छति ॥ १९ ॥

यदा १ द्रष्टा २ गुणेभ्यः ३ अन्यम् ४ कर्तारम् ५ न ६ अनुपश्यति ७ गुणेभ्यः८ च ९ परम् १० वेत्ति ११ सः १२ मद्भावम् १३ अधिगच्छति १४ ॥ १९ ॥ अ०—उ० गुणोंके संबंधमें संसार है. यह बात पीछे कही. अब यह कहते हैं कि विवेकी गुणोंसे पृथक्है—जिसकालमें १ विवेकी २ गुणोंसे ३ पृथक् ४ कर्ताको ५ नहीं ६ देखता है ७ अर्थात् गुणही कर्ता है आत्मासाक्षीमात्र है ७. सि० जो ❀ गुणोंसे ८।९ परे १० सि० आत्माको ❀ जानता है ११ सो १२ मेरे भावको १३ प्राप्त होता है १४ अर्थात् शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपको प्राप्त होता है १३ । १४ ॥ १९ ॥

मू०—गुणानेतानतीत्यत्रीन्देहीदेहसमुद्भवान् ॥
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोमृतमश्नुते ॥ २० ॥

देही १ समुद्भवान् २ एतान् ३ त्रीन् ४ गुणान् ५ अतीत्य ६ जन्ममृत्युजरादुःखैः७विमुक्तः८ अमृतम् ९ अश्नुते१०॥२०॥अ०—जीव १ देहाकारको प्राप्त हुए २ इन ३ तीन ४ गुणोंको ५ उलंघकर ६ जन्ममृत्युजराव्याधिसे ७ छूटा हुआ ८ नित्यानंदस्वरूपको९ प्राप्त होता है. १० तात्पर्य यही तीनों गुण देहाकार होरहे हैं. इनके साथ ममता संग और अध्यास ये छोड़ देना, यही इनका उलंघन करना है और जन्ममृत्युजराव्याधि इनकेही संबंधसे होते हैं ये और इनके संबंधमें अपने शुद्धसच्चिदानंदस्वरूपको भूल जाता है, इनके त्यागमें प्रयत्न है, परमानंदके प्राप्तिमें कुछ यत्न नहीं ॥ २० ॥

मू०-अर्जुनउवाच ॥ कैर्लिंगैस्त्रीन्गुणानेतानतीतोभवति प्रभो॥किमाचारःकथंचैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते॥२१॥

अर्जुन उवाच. प्रभो १ कैः२ लिंगैः३ एतान्४ त्रीन् ५ गुणान् ६ अतीतः ७ भवति ८ किमाचारः ९ कथम् १० च ११ एतान् १२ त्रीन् १३ गुणान् १४ अतिवर्तते १५ ॥२१॥ अ०-अर्जुन प्रश्नकरता है, कि हे समर्थ! १ किनचिह्नकरके २।३ इनतीनगुणोंसे४।५।६ अतीत ७ होता है ८. सि०यह लक्षणप्रश्नहै ❀ अर्थात् कैसे प्रतीत होकि अमुकगुणातीत है, वा मैं गुणातीत हूं. वे कौनसे लक्षण हैं. और ६।७।८ क्या आचार है उसका ९ अर्थात् उसका व्यवहार चाल चलन कैसी होती है ९. सि० यह आचार प्रश्न है❀और किसप्रकार १०।११ इनतीनगुणोंका १२।१३।१४ उलंघन करता है १५ सि०यह उपायप्रश्न है ❀ अर्थात् वो क्यासाधनहै कि, जिसकरके पुरुष गुणातीत होजावे ॥ २१ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकाशंचप्रवृत्तिंचमोहमेवचपांडव ॥ नद्वेष्टिसंप्रवृत्तानिननिवृत्तानिकांक्षति ॥२२॥

श्रीभगवान् उवाच. प्रकाशम् १ च २ प्रवृत्तिम् ३ च ४ मोहम्५ एव ६ इति ७ पांडव ८ संप्रवृत्तानि ९ न १० द्वेष्टि ११ निवृत्तानि १२ न१३ कांक्षति १४ ॥ २२ ॥ अ०-उ० द्वितीयाध्यायमेंभी अर्जुनने यही प्रश्न कियाथा और उसका अन्य रीतिकरके श्रीमहाराजने उत्तरभी दियाथा.अब श्रीमहाराजने यह जाना कि,उस रीतिसे अर्जुनके समझमें नहीं आया. अब अन्य रीतिसेकहना चाहिये. इस वास्ते इसबातको संक्षेपकरके अन्यरीतिसे कहते हैं जिससे शीघ्र समझमें आजावे, ऐसे करुणाकरको छोड़ जो अन्य उपायसे मोक्ष चाहते हैं उनके अन्तःकरणमें रजोगुणी तमोगुणी वृत्तिं वढी हुई है-

प्रकाश १ और प्रवृत्ति २।३ और मोह ४।५।६।७ सि० ये तीन तीनोंगुणोंके कार्य हैं. ये तीनों उपलक्षण हैं. अर्थसे सत्वादिगुणोंका जितना कार्य है, सब समझलेना. जो ये अपने आप ❋ हे अर्जुन! ८ भलेप्रकार वर्तते रहे हो ९ सि० तो इनसे ❋ न १० वैरकरता है. ११ अर्थात् उनके प्रवृत्तिनिवृत्तिका कुछ उपाय नहीं करता है ११. सि० और फिर जब अपने आप दूर होजाते हैं. तब ❋ निवृत्तोंकी १२ नहीं १३ चाह करता है १४. सि० यह लक्षणप्रश्नका उत्तर है. ❋ तात्पर्य ब्रह्मज्ञानी न किसीगुणमें प्रीति करता है, न वैर करता है. सतोगुणमें प्रीति और रजोगुणतमोगुणमें द्वेष जिज्ञासूका होता है यह लक्षण स्वसंवेद्यहै, परसंवेद्य नहीं. अर्थात् ऐसे महात्माको दूसरा नहीं पहँचान सक्ता. क्योंकि वे आप अपनेको छिपाये रखतेहैं ॥२२॥

मू०–उदासीनवदासीनोगुणैर्योनाविचाल्यते ॥
गुणावर्ततइत्येवंयोवतिष्ठतिनेंगते ॥ २३ ॥

यः १ उदासीनवत् २ आसीनः ३ गुणैः ४ नविचाल्यते ५।६ गुणाः ७ वर्तंते ८ इति ९ एवम् १० यः ११ अवतिष्ठति १२ न १३ इंगते १४ ॥ २३ ॥ अ०–उ० गुणातीतका क्या आचार है, इसप्रश्नका उत्तर देते हैं. यह लक्षण ज्ञानीका परसंवेद्यभी है–जो १ उदासीनवत् २ स्थित ३ गुणोंकरके ४ नहीं ५ विचलता है ६ गुणवर्तते रहे हैं. ७।८ यह ९ सि० समझता है कि मेरा गुणोंसे क्या संबंध है ❋ इसप्रकार १० जो ११ स्थित १२ सि० अपने स्वरूपसे ❋ नहीं १३ विचलता है १४. सि० उसको गुणातीत कहते हैं ❋ ॥ २३ ॥

मू०–समदुःखसुखःस्वस्थःसमलोष्टाश्मकांचनः ॥
तुल्यप्रियाप्रियोधीरस्तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥२४॥

समदुःखसुखः १ स्वस्थः २ समलोष्टाश्मकांचनः ३ तुल्यप्रिया-

प्रियः ४ धीरः ५ तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ६ ॥ २४॥अ०-सुखदुःखमें सम १ अर्थात् सुख दुःखका प्रतीत होना यह अंतःकरणका धर्म है, यावत् अंतःकरण है तावत् बेसंदेह धर्मीको अपना धर्म प्रतीत होगा. जिस धर्मसे वो धर्मी कहा जाताथा जो वो धर्म न वर्ते तो फिर उसको उस धर्मवाला क्यों कहेंगे. दुःखसुख ज्ञानीको अवश्य प्रतीत होता है. समताका यह अर्थ नहीं कि यह दुःखसुख प्रतीत न होवे. तात्पर्य यह है, कि दुःखसुख परमानंदस्वरू आत्माको कमसिवाय नहीं करसक्के. १ अपने स्वरूपमें स्थित २ सम है लोहा पत्थर सोना जिसको ३ सम है प्रिय और अप्रिय जिसको ४ धैर्यवाला ५ सम है अपनी निंदा और स्तुति जिसको ६ सि० उसको गुणातीत कहते हैं. ❀ टी०जो आत्माकी निंदा करता है वो अपनी पहले करता है. और जो शरीरोंकी करता है तो सहाय करता है. और जो निंदा करता है वो अवगुणोंकी करता है. इस हेतुसे उसको सहायक जानना योग्य है. क्योंकि अवगुणोंको सब बुरा कहते हैं. सिवाय इसके अवगुण कहनेसे दूर होजाता है. इस बातको इतिहाससे स्पष्ट करते हैं. इतिहास—एकराजाने बहुतब्राह्मणोंको एकदिन जिमाया. भोजन किये पीछे वे ब्राह्मण सब मर गये, मरजानेका कारण यह हुआ, कि मैदानमें खीर होरहीथी. आकाशमें चील सर्पको लेजातीथी. सर्पके मुखमेंसे विष टपक खीरमें जा पडा, वो किसीको न दीखा. नगरमें यह चर्चा हुई, कि राजाने ब्राह्मणोंको विष देदिया. बहुत लोंगोका इसमें संमत न हुआ, तब एक दुष्टने यह बातकी निकाली राजा अमुक ब्राह्मणके स्त्रीसे प्रीति रखता है, अकेला उसब्राह्मणको मरवाना राजा योग्य न समझा, बहुतोंके साथ उसकोभी न्यौतकर विष देदिया, इसबातमें बहुत लोगोंका निश्चय होगया, जसेजसे यही चर्चा होने लगी, राजा बिचारा अक-

तदोष इसनिन्दाके मारे नगरको छोड़ बनमें चलागया. बनमें आकाशवाणी हुई कि, हे राजन्! तेरा कुछ दोष नहीं. यह व्यवस्था ऐसीहै. चील सर्प विषकी सब कथा सुनाई कि इसकथाको उन निंदक दुष्टोंनेभी सुना वो हत्या राजाको छोड़ परमेश्वरके पास पहुँचकर परमेश्वरसे कहा कि मुझको अब जगह बतलाइये, प्रभुने कहा कि, जिन्होंने राजाको दोष लगाया और कहा, या सुना, तुझको वहां रहना योग्य है. इसमें न राजाका दोष न चीलका, न सर्पका न रसोय्याका. राजा इसमें निमित्त था सो उसको फल होगया, राजा अपने घर आया और हत्या निन्दकोंके मुखपर पहुँची उस दिन-से हत्या निन्दकोंके मुखपर और जो किसीकी बुराई मनलगाकर सुनते हैं. उनके मुखपर वास करती है. प्रत्यक्षदेखलो कि जिससमय किसीकी कोई निन्दा करता हो, या सुनता हो, दोनोंकी सूरत हत्यारोंकीसी होगी ॥ २४ ॥

मू०–मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्योमित्रारिपक्षयोः ॥
सर्वारंभपरित्यागीगुणातीतः सउच्यते ॥ २५ ॥

मानापमानयोः १ तुल्यः २ तुल्यः ३ मित्रारिपक्षयोः ४ सर्वारं-भपरित्यागी ५ गुणातीतः ६ सः ७ उच्यते ८॥ २५ ॥ अ०–मानमें और अपमानमें १ सम २ मित्रके पक्षमें और अरिके पक्षमें सम ३।४ सब शुभ और अशुभ इनकर्मोंके आरंभका त्यागी ५ सि० सो ❋ गुणातीत ६।७ कहा है ८ तात्पर्य जीवन्मुक्त ज्ञानीको गुणातीत कहते हैं. सम होनेसे शान्ति होती है,शान्ति सुखका कारण है ॥ २५ ॥

मू०–मांचयोऽव्यभिचारेणभक्तियोगेनसेवते ॥
सगुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयायकल्पते ॥ २६ ॥

यः १ च २ माम् ३ अव्यभिचारेण ४ भक्तियोगेन ५ सेवते ६ सः ७ एतान् ८ गुणान् ९ समतीत्य १० ब्रह्मभूयाय ११ कल्पते १२ ॥ २६ ॥ अ०—उ० गुणातीत होनेका उपाय श्रीमहाराज कहते हैं जो १।२ मेरा३ अव्यभिचारीभक्तियोगकरके४ ।५ सेवन करताहै ६ अर्थात् परमेश्वरकी ऐसी उपासना करे कि वो दिनदिनप्रति बढे, कम न होने पावे. कोई अन्यकाम बीचमें न हो, उसीको अव्यभिचारिणी भक्ति कहते हैं ४।५।६. सो ७ इनगुणोंको ८।९ उलंघके१० ब्रह्मभावको ११ प्राप्त होता है १२. तात्पर्य परमानन्दस्वरूप आत्माके प्राप्तिका उपाय जैसा भक्ति है और विशेष इससमयमें ऐसा अन्य उपाय शीघ्र प्रत्यक्ष जीते भी फलका देनेवाला नहीं. यह अवतार श्रीव्रजचन्द्रमहाराजका इसीसमयके लोगोंका उद्धार करनेके लिये हुआ है. जैसे इस समयके पाप बलवान् हैं ऐसाही श्रीभगवानका यह अवतार इन पापोंके नाश करनेमें समर्थ है ॥ २६ ॥

मू०—ब्रह्मणोहिप्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्यच ॥
शाश्वतस्यचधर्मस्यसुखस्यैकांतिकस्यच ॥ २७ ॥

अव्ययस्य १ अमृतस्य २ ब्रह्मणः३ हि ४ अहम् ५ प्रतिष्ठा ६ च ७ शाश्वतस्य ८ च ९ धर्मस्य १० च ११ ऐकांतिकस्य १२ सुखस्य १३ ॥ २७ ॥ अ०—निर्विकार १ अविनाशी२ब्रह्मकी३ही४ मैं ५ मूर्ति ६।७ हूं और सनातन धर्मकी ८।९।१० भी ११ अखंड सुखकी १२।१३ सि० भी मैं मूर्ति हूं. ❋ तात्पर्य जो निराकार ब्रह्मको और धर्मको और परमानन्दको नहीं जानते हैं, श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजकी दिनरात उपासना करते हैं,वे ब्रह्मको अवश्य प्राप्तहोते हैं. गुणातीत होनेका उपाय अर्जुनने जो बूझाथा उसका उत्तर यह दो श्लोकों करके दिया. अर्थात् श्रीव्रजचन्द्रकी भक्ति करना यही

गुणातीत होनेका उपायहै, यावत् निराकार निर्गुण परमानन्दस्वरूप-आत्माका साक्षात्कार न हो, तावत् साकारमूर्तिका आश्रय रखना चाहिये. इत्यभिप्रायः ॥ २७ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

अथपञ्चदशोऽध्यायः१५.

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥ छन्दांसियस्यपर्णानियस्तंवेदस वेदवित् ॥ १ ॥

श्रीभगवान् उवाच. ऊर्ध्वमूलम् १ अधःशाखम् २ अश्वत्थम् ३ अव्ययम् ४ प्राहुः ५ यस्य ६ छन्दांसि ७ पर्णानि ८ यः ९ तम् १० वेद ११ सः १२ वेदवित् १३ ॥ १ ॥ अ०—उ० वैराग्यविना ज्ञान नहीं होता, इस वास्ते संसारको वृक्षवत् वर्णन करते हैं—मायोपहितब्रह्म जड है जिसकी १ सि० क्योंकि मायोपहितसे अन्यपदार्थ संसारमें ऊर्ध्व (ऊंचा) बडा नहीं. और शुद्धब्रह्म तो संसारसे पृथक् है, सो मनवाणीका विषय नहीं ❋ हिरण्यगर्भादि शाखा हैं जिसकी २ सि०क्योंकि हिरण्यगर्भादि मायोपहित ब्रह्मसे पीछे संसारको ❋ अश्वत्थ ३ अव्यय ४ कहते हैं५.सि०विनाज्ञान इसका नाश नहीं होता. इसवास्ते तो इसको अव्यय कहते हैं. और भगवतकी कृपासे जो ज्ञान होजावे तो यह ऐसाभी नहीं कि, कलतक ठहरा रहे. अश्वत्थमें अकार नकारके जगह है, श्व इसशब्दका अर्थ कलका वाचक है जो कलतक न ठहरे उसको अश्वत्थ कहते हैं. अश्वत्थका अर्थ इसजगह पीपल नहीं समझना. और यहभी

नहीं समझना कि, इसकी जड ऊपरको है वृक्षवत् और शाखा नीचेहैं. ऐसा अर्थ समझना चाहिये कि जो ऊर्ध्वं अधः इनका अर्थ ऊपर लिखा है ❀ जिसके ६ वेद ७ पत्र ८ सि०हैं क्योंकि वृक्षकी शोभा पत्रोंसेही होतीहै और पत्रोंको ही देख वृक्षमें राग उत्पन्न होता है. ऐसे वेदोक्त कर्मोंके फल सुन सुन संसारमें राग बढता चलाजाता है. वेदोंका तात्पर्य समझमें नहीं आता, रोचक वाक्योंका सिद्धान्त समझ बैठते हैं❀जो ९ तिनको १० जानता है ११ सो १२ वेदका जाननेवाला है १३. तात्पर्य जो वेदमार्गको एकसाधन समझता है. और फल उसको परमानंदस्वरूप आत्मा है सो वेदका अर्थ जानता है. द्वितीयाध्यायमें श्रीभगवान् कहचुकेहैं कि वेद अज्ञानियोंके वास्ते हैं कि जो सत्वादिगुणोंमें मोहको प्राप्त होरहे हैं॥ १ ॥

मू०—अधश्चोर्ध्वंप्रसृतास्तस्यशाखागुणप्रवृद्धाविषयप्रवालाः ॥ अधश्चमूलान्यनुसंततानिकर्मानुबंधीनिमनुष्यलोके ॥ २ ॥

तस्य १ शाखाः २ अधः ३ च ४ ऊर्ध्वम् ५ प्रसृताः ६ गुणप्रवृद्धाः७ विषयप्रवालाः ८ अधः ९ च १० मनुष्यलोके ११ कर्मानुबन्धीनि १२ मूलानि १३ अनुसंततानि १४॥ २ ॥अ०—तिससंसारवृक्षकी १ शाखा २ नीचे ३ और ऊपर ४।५ फैल रही हैं ६ सत्वादि गुणोंकरके बढी हुई हैं ७ विषय इसलोकपरलोकके पत्ते हैं उसवृक्षके ८ और नीचे ९।१० सि० भी❀ मनुष्यलोकमें ११ कर्मोंके फल रागद्वेषादि १२ उसकी जड १३ फैलरही हैं १४ अर्थात् बहुत दृढ होरही हैं. जैसे रज्जूसे गठडीको पेंचपर पेंच देकर बांधते हैं. चारोतर्फ तैसेही संसारकी जड मनुष्यलोकमें नीचे ऊपर अनुस्यूत ओतप्रोत होरही हैं. १३।१४. तात्पर्य कर्मकरनेका अधिकार मनुष्य लोकमेंही है और कर्मोंका जो अनुबन्ध अर्थात् पश्चात्भा-

वीरागद्वेषादिकर्मोंका फल यहभी संसारकी जड है.वास्तवमें संसारकी जड़ मायोपहितब्रह्म है. इसहेतुसे उसको ऊर्ध्व जड कहा. मनुष्यलोकमें कर्म इसकी जडहै. मायोपहितब्रह्मके अपेक्षामें मर्त्यलोक नीचा है. इसवास्ते इसजगह कहा कि, इसकी नीचे मनुष्यलोकमें भी कर्मकांड जड है. ब्रह्मलोक वैकुंठादि और मायोपहितब्रह्म, सूक्ष्म उपाधि करके उपहित-हिरण्यगर्भ स्थूल उपाधिकरके उपहित, विराट् और उसके अन्तर्गत ब्रह्मादिदेवता यह तो ऊपरको संसार की शाखा फैल रही हैं. और मर्त्यलोकमें पशु, पक्षी, मनुष्यादि-और यज्ञादि कर्म, यह नीचे संसारकी शाखा फैल रही हैं, जैसे जैसे सत्वादिगुणोंमें प्रीतिकरते हैं. तैसे तैसे ही शाखामेंसे शाखा बढती चलीजाती हैं.इसी हेतुसे न कुछ परलोक सावयवलोकोंका पता लगता है, कि चौदहलोक हैं या वैकुंठादि कितने लोक हैं. और एकएक देवताके उपासनामें अनेक अनेक भेद हैं और अबतक अनेकभेद शाखा निकलती चलीजाती हैं और नीचमनुष्योंका जो व्यवहार है, इसका कुछ प्रमाण नहीं. न जातिका प्रमाण न कुलके व्यवहारोंका प्रमाण है. संसारवृक्षमें शब्दादिविषय कोमल सुन्दर पत्र लगरहे हैं देवतामनुष्यपश्वादि सब प्राणियोंने विषयोंका आश्रय ले रक्खा है कोई साक्षात् भोगते हैं, कोई उनकेलिये वेदोक्तकर्म कर रहे हैं इस संसारकी व्यवस्था इसजगह बहुत संक्षेपकरके लिखी गई है. वैराग्यवान् पुरुषोंसे और योगवासिष्ठादिग्रंथोंसे इसकी व्यवस्था श्रवणकरना योग्य है, कि यह कैसे अनर्थोंका मूल है ॥ २ ॥

मू०–नरूपमस्येहतथोपलभ्यतेनांतोनचादिर्नचसं
प्रतिष्ठा ॥अश्वत्थमेनंसुविरूढमूलमसंगशस्त्रे-
णदृढेनछित्त्वा ॥ ३ ॥

इह १ अस्य २ रूपम् ३ तथा ४ न ५ उपलभ्यते ६ न-

अन्तम् ८ नच ९ आदिः १० च ११ न १२ संप्रतिष्ठा १३ सुवि-रूढमूलम् १४ एनम् १५ अश्वत्थम् १६ दृढेन १७ असंगशस्त्रेण १८ छित्वा १९ ॥ ३ ॥ अ०—संसारमें १ सि० जैसा ❋ इस संसारका २ रूप ३ सि० वर्णनकरते हैं ❋ तैसा ४ सि० बेसन्देह ❋ नहीं ५ प्रतीत होता है ६ सि० इसका ❋ न ७ अन्त ८ और न आदि ९ । १० । ११ न १२ स्थिति १३ सि० इसकी प्रतीत होती है कि, यह कैसा उत्पन्न हुआ कैसा लीनहोगा, कैसा ठहर रहाहै. क्षणभंगुर स्वप्नवत् या इन्द्रजालवत् इसके पदार्थ प्रतीत होते हैं अनर्थोंका मूल और दुःखोंका स्थान है. जो पदार्थ नरकका कारण उसके विना निर्वाह नहीं होता.जो उसका अशेषत्याग किया जावे तो यह असम्भव है. इसप्रकार ❋ बँधीहुई हैं भलेप्रकार जड़जिसकी १४ इस १५ अश्वत्थको १६ दृढ ऐसे असंगशस्त्रसे १७ १८छेदनकरके १९ सि० परमपद परमानन्दस्वरूप आत्माको ढूँढना चाहिये. अगले मंत्रके साथ इसमंत्रका संबंधहै ❋ तात्पर्य इस संसारकी व्यवस्था सबमतवाले जुदीजुदी कहते हैं. अपने मतको सब बडा कहते हैं, दूसरेको बुरा कहते हैं. कोई बेसन्देह समन्वय नहीं करता कि वास्तवमें संसारकी यह व्यवस्था है और अमुक अमुक जो यह कहते हैं. उनका तात्पर्य यह है को मुमुक्षुका कैसा निश्चय हो कि अमुकमत सच्चा है. जो निर्णय करो तो एकघटका निर्णय नहीं हो सक्ता एकघटके चर्चामें समस्त अवस्था समाप्त होजावे परन्तु घटका निर्णय न हो न्यायशास्त्रवाले चर्चाकेबलसे कुछका कुछ सिद्ध करदें विद्याकी तो यह व्यवस्था है एकमत नहीं कि जिसपर निश्चय बना रहे तात्पर्य यह है कि सब प्रकार संसार दुःखरूप है, इसका कभी निर्णय न करे इसके दूर होनेका यत्नकरे, कभी इसमें प्रीति न करे सदा संसारसे ग्लानि वनी रहे, तब परमानन्दस्वरूप [illegible]त्माकी प्राप्ति होती है ॥ ३ ॥

मू०—ततःपदंतत्परिमार्गितव्यंयस्मिन्गतानानिवर्तंति भूयः॥ तमेवचाद्यंपुरुषंप्रपद्येयतःप्रवृत्तिःप्रसृता पुराणी ॥४॥

ततः १ तत् २ पदम् ३ परिमार्गितव्यम् ४ यस्मिन् ५ गताः ६ भूयः ७ न ८ निवर्तंति९ तम्१० एव११ च १२ आद्यम् १३ पुरुषम् १४ प्रपद्ये १५ यतः १६ पुराणी १७ प्रवृत्तिः १८ प्रसृता १९ ॥४॥अ०—सि० असंग शस्त्रसे संसारका छेद करके ❀ पीछे१ सो २ पद ३ ढूढना योग्य है ४ जिसमें ५ प्राप्त होकर ६ फिर ७ न ८ लौटना पडे ९ ।सि०उसके ढूँढनेका भक्तिमार्ग कहते हैं ❀ तिसही १०।११।१२ आदिपुरुषको १३।१४ मैं शरण हूं १५।सि० कि ❀जिससे १६ अनादि १७ प्रवृत्ति १८ फैली है १९. तात्पर्य संसारके किसीपदार्थमें नीचे ऊपर प्रीति न करे, वैराग्यके पीछे वो पद ढूँढे कि जहा जाकर फिर जन्म लेना न पड़े. यत्न उसपदके प्राप्तिका यह है कि तटस्थ लक्षण जो परमात्माका है. उसलक्षणसे उसको लक्ष्य करके उसकी भक्ति करना चाहिये. भक्तिका स्वरूप यह है, कि जिस परमात्मासे यह अनादि अनिर्वाच्य संसारवृक्ष नीचे ऊपर फैला है. सोई आदि पुरुष मुझको आश्रय है, उसकी मैं शरण हूं. वोही मेरी रक्षा करनेवाला है. वो अन्तर्यामी सबके हृदयमें विराजमान समर्थ है. इस संसारवनसे पार मुझको वोही लगावेगा ऐसा चिंतवन सदा बना रहे. इसीको भक्ति कहते हैं ॥ ४ ॥

मू०—निर्मानमोहाजितसंगदोषाअध्यात्मनित्याविनिवृत्तकामाः॥ द्वंद्वैर्विमुक्ताःसुखदुःखसंज्ञैर्गच्छंत्यमूढाःपदमव्ययंतत् ॥ ५ ॥

निर्मानमोहाः १ जितसंगदोषाः २ अध्यात्मनित्याः ३ विनिवृत्तकामाः ४ सुखदुःखसंज्ञैः ५ द्वंद्वैः ६ विमुक्ताः ७ अमूढाः ८ तत् ९

अव्ययम् १० पदम् ११ गच्छन्ति १२ ॥ ५ ॥ अ०—उ० और भी आत्माके प्राप्तिके साधन कहते हैं—दूर होगये हैं, मान मोह जिनके १ जीता है संगका दोष जिन्होंने २ वेदांतशास्त्रके श्रवण मनन विचारमें नित्य लगे रहेते हैं ३ समस्तकामना (इसलोककी या परलोककी) जाती रही हैं जिनकी ४ सुखदुःख यहहै नाम जिनका ५ सिं० इत्यादि ❀ द्वंद्वकरके ६ छूटेहुए ७ ज्ञानी आत्मतत्वके जाननेवाले ८ जिस ९ निर्विकार १० पदको ११ प्राप्त होते हैं १२, सि० कि जिसपदके विशेषण अगले मंत्रमें हैं ❀ तात्पर्य मुमुक्षुको चाहिये कि प्रवृत्तिमार्गवालोंका संग नकरे और जिनग्रन्थोंमें प्रवृत्तिमार्गका विशेष निरूपण है, उनको कभी श्रवण न करे जिसपदार्थको जिह्वासे कहेगा, कानोंसे सुनेगा, अवश्य उसके गुणसंस्कार अंतःकरणमें प्रविष्ट होंगे, प्रवृत्तिशास्त्रमें स्त्री पुत्र राजा संयोगवियोगादि पदार्थोंका वर्णन विशेष हैं इसहेतुसे मुमुक्षुको कहना सुनना निषिद्ध है. ब्रह्मविद्यामें केवल वैराग्य, उपरति, शान्ति, शम, दम इत्यादि साधनोंका निरूपण हैं. स्त्र्यादिपदार्थोंका संबंध ऐसा अनर्थ नहीं करता कि जैसा जो उनका गुण वर्णन करता है उसका संग अनर्थ करता है ॥ ५ ॥

मु०—नतद्भासयतेसूर्योनशशांकोनपावकः ॥
यद्गत्वाननिवर्तंतेतद्धामपरमंमम ॥ ६ ॥

तत् १ सूर्यः २ न ३ भासयते ४ न ५ शशांकः ६ न ७ पावकः ८ यत् ९ गत्वा १० न ११ निवर्तंते १२ तत् १३ मम १४ परमम् १५ धाम १६ ॥ ६ ॥ अ०—उ० पूर्वोक्तपदके विशेषण कहते हैं जिसको १ सूर्य २ नहीं ३ प्रकाशितकरसक्ता है, ४ न ५ चंद्रमा, ६ न ७ अग्नि ८ सि० और ❀ जिसको ९ प्राप्त होकर १० नहीं ११ लौटकर आते हैं १२ सि० जन्ममरणमें ❀ सो १३ मेरा १४ परं धाम १५ । १६ सि० है ❀ तात्पर्य सूर्यादि जड़ पदार्थ अज्ञान-

का काय ज्ञानस्वरूप आत्माको कैसे प्रकाशित करसक्तेहैं, आत्माहीको परमपद परमधाम ऐसा कहतेहैं, तैजससावयव मंदिरोंका वैकुंठादि नामहैं जिनके उनके धाम इस जगह नहीं समझना, क्योंकि वहां सूर्यादि सब प्रकाश करसक्ते हैं. जैसे सूर्यादितेजका कार्य है, ऐसेही वे लोक हैं. प्रभुका धाम प्रभुसे जुदा नहीं. यह बात आठवें अध्यायमें स्पष्टकरचुके हैं ॥ ६ ॥

मू०—ममैवांशोजीवलोकेजीवभूतःसनातनः ॥
मनःषष्ठानीन्द्रियाणिप्रकृतिस्थानिकर्षति ॥ ७ ॥

जीवलोके १ सनातनः २ जीवभूतः ३ मम ४ एव ५ अंशः ६ प्रकृतिस्थानि ७ इंद्रियाणि ८ कर्षति ९ मनःषष्ठानि १० ॥ ७ ॥

अ०—संसारमें १ अनादि २ जीव ३ मेरा४ ही५ सि० घटाकाश अंशवत् ❋ अंश ६ सि० है, जैसे महाकाशका अंश घटाकाश, पर्वतवत् चिद्घनका अंश चित्कण जीवको समझना न चाहिये क्योंकि परमात्मा निरवयव आकाशवत् है, सावयव पर्वतवत् नहीं. जैसे पर्वतका अंश पत्थरका टूका होता है, ऐसा जीव अंश नहीं. आकाशका दृष्टान्त या बिंबप्रतिबिंबका दृष्टान्त समझना चाहिये, सो जीव सुषुप्तिकाल और प्रलयकालमें ❋ प्रकृतिमें स्थित रहताहै ७ सि० जो इंद्रियें, तिन ❋ इंद्रियोंको ८ खैंचता है ९ सि० कैसी हैं वे इंद्रियें ❋ मन है छटा जिनमें १० अर्थात् पंचज्ञानेंद्रिय पंचकर्मेंद्रिय पंचप्राण अंतःकरणचतुष्टय ये सब कारण अविद्यामें सूक्ष्म अविद्यारूप हुए रहतेहैं, सुषुप्तिप्रलयमेंसे इन सबको वोही अविद्योपहित चिदाभास (जीव) स्थूलसूक्ष्म भोगोंके लिये अपने साथ ले लेता है ॥ ७ ॥

मू०—शरीरंयदवाप्नोतियच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः ॥
गृहीत्वैतानिसंयातिवायुर्गन्धानिवाशयात् ॥ ८ ॥

ईश्वरः १ यत् २ शरीरम् ३ अवाप्नोति ४ यत् ५ च ६ अपि ७ उत्क्रामति ८ एतानि ९ गृहीत्वा १० संयाति ११ वायुः १२ गंधान् १३ आशयात् १४ इव १५ ॥ ८॥ अ०—देहका स्वामी जीव १ जिसकालमें २ देहको ३ प्राप्त होता है ४ और जिस कालमें ५।६।७ एकदेहसे दूसरे देहमें जाता है ८ सि० तिसकालमें ❀ इनका ९ ग्रहण करके १० प्राप्त होता है ११ सि० दूसरे देहमें दृष्टान्त कहते हैं ❀ वायु १२ गंधको १३ पुष्पादिसे १४ जैसे १५ सि० लेजाता है ❀ तात्पर्य इंद्रियादिको साथ लेकर जाता है ॥ ८॥

मू०—श्रोत्रंचक्षुःस्पर्शनंचरसनंघ्राणमेवच ॥
अधिष्ठायमनश्चायंविषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

श्रोत्रम् १ चक्षुः २ स्पर्शनम् ३ च ४ रसनम् ५ घ्राणम् ६ एव ७ च ८ मनः ९ च १० अयम् ११ अधिष्ठाय १२ विषयान् १३ उपसेवते १४ ॥ ९ ॥ अ०—श्रोत्र १ चक्षु २ त्वक् ३ और ४ रसना ५ और नासिका ६।७।८ और मन इनका ९। १० यह ११ सि० जीव ❀ आश्रय करके १२ विषयोंको १३ भोक्ता है १४. तात्पर्य बुद्धिमें चैतन्यका प्रतिबिंब जो सो भोक्ता जीव, मनमें प्रतिबिंब जो उसी चैतन्यका सो अंतःकरण. इंद्रियोंमें प्रतिबिंब जो चैतन्यका सो बहिःकरण, शब्दादिविषयोंमें जो प्रतिबिंब चैतन्यका सो कर्म कर्ताको प्रमाता चैतन्य, कर्मको प्रमेय चैतन्य कहते हैं. प्रमाता और प्रमेय ये दोनों चैतन्य जब एक होते हैं उसको प्रत्यक्ष भोग कहते हैं ॥ ९ ॥

मू०—उत्क्रामंतंस्थितंवापिभुंजानंवागुणान्वितम् ॥
विमूढानानुपश्यंतिपश्यंतिज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

विमूढाः १ उत्क्रामंतम् २ स्थितम् ३ वा ४ अपि ५ भुंजानम् ६ वा ७ गुणान्वितम् ८ न ९ अनुपश्यंति १० ज्ञानचक्षुषः ११ पश्यंति १२ ॥ १० ॥ अ०—उ० यथार्थ जीवका स्वरूप ज्ञानीही जाने

हैं, बहिर्मुख विषयी नहीं जानते. यह कहते हैं—बहिर्मुख १ सि० जीवको ❀ एक देहसे दूसरेदेहमें जाते हुएको २ और देहमें स्थित हुएको ३।४ भी ५ और भोक्ते हुएको ६ और इंद्रियादिके साथ संयुक्त हुएको ७।८ नहीं ९ देखते हैं १० ज्ञाननेत्रवाले ११ देखते हैं १२. तात्पर्य अविवेकी यह भी नहीं जानते, कि जीव किसीप्रकारविषयोंको भोक्ता है. अकेलाही भोक्ता है, या इंद्रियादिके संबंधसे भोक्ता है और यह शरीरमें कैसा स्थित है. शरीरादि इसका आश्रय है या आत्मा देहादिका आश्रय है. या कुछ अन्यप्रकारहै. यह कैसे इस देहमेंसे छूट दूसरे देहमें जाता है ॥ १० ॥

मू०—यतंतोयोगिनश्चैनंपश्यंत्यात्मन्यवस्थितम् ॥
यतंतोऽप्यकृतात्मानोनैनंपश्यंत्यचेतसः ॥ ११ ॥

यतंतः १ योगिनः २ च ३ एनम् ४ आत्मानि ५ अवस्थितम् ६ पश्यंति ७ अचेतसः ८ अकृतात्मानः ९ यतंतः १० अपि ११ एनम् १२ न १३ पश्यंति १४ ॥ ११ ॥अ०—उ०—यह नहीं समझना कि आत्माको तो सबही जानते हैं. ऐसा कौन है कि जो आपको न जाने, अपना आप जानना यही ज्ञानकी अवधि है-सब प्राणी तो आत्माको क्या जानेंगे; जो बहुत विद्यावान् वेदोक्त अनुष्ठान करनेवाले भी नहीं जानते, ज्ञानयोगमें यत्न करनेवाले १ योगी २।३ आत्माको ४ देहमें ५ स्थित ६ सि० और देहसे विलक्षण ❀देखते हैं ७ मन्दमति ८ मलिन अंतःकरणवाले ९ यत्न करते हुए १० भी ११ आत्माको १२ नहीं १३ देखते १४ तात्पर्य वैदिकमार्गवालेभी कोईकोई जो आत्माको नहीं जानते उसमें हेतु यह है, कि वे वेदान्तमें श्रद्धा नहीं करते, जीवको परिच्छिन्न समझते हैं और एक यह बड़ा आश्चर्य है कि वेदके दृष्टिसे अदृष्ट सूतकादि उनको लगजावे और आत्मामें यह निश्चय न हो कि मैं ब्रह्म हूं ॥ ११ ॥

मू०—यदादित्यगतंतेजोजगद्भासयतेखिलम् ॥
यच्चन्द्रमसियच्चाग्नौतत्तेजोविद्धिमामकम् ॥ १२ ॥

आदित्यगतम् १ यत् २ तेजः ३ अखिलम् ४ जगत् ५ भासयते ६ यत् ७ चन्द्रमासि ८ यत् ९ च १० अग्नौ ११ तत् १२ तेजः १३ मामकम् १४ विद्धि १५ ॥ १२ ॥ अ०—सूर्यमें १ जो २ तेज ३ समस्त ४ जगत्को ५ प्रकाशित करता है ६ जो ७ चन्द्रमामें ८ और जो ९। १० सि० तेज ❀ अग्निमें ११ सो १२ तेज १३ मेरा ही १४ जान १५ ॥ १२ ॥

मू०—गामाविश्यचभूतानिधारयाम्यहमोजसा ॥
पुष्णामिचौषधीःसर्वाःसोमोभूत्वारसात्मकः ॥ १३ ॥

गाम् १ आविश्य २ च ३ भूतानि ४ धारयामि ५ अहम् ६ ओजसा ७ रसात्मकः ८ च ९ सोमः १० भूत्वा ११ सर्वाः १२ औषधीः १३ पुष्णामि १४ ॥ १३ ॥ अ०—पृथिवीमें १ प्रवेश करके २। ३ भूतोंको ४ धारण करता हूं ५ मैं ६ बलकरके ७ और रसवाला ८। ९ चन्द्र १० होकर ११ सब औषधियोंको १२। १३ पुष्ट करता हूं १४ ॥ १३ ॥

मू०—अहंवैश्वानरोभूत्वाप्राणिनांदेहमाश्रितः ॥
प्राणापानसमायुक्तःपचाम्यन्नंचतुर्विधम् ॥ १४ ॥

प्राणिनाम् १ देहम् २ आश्रितः ३ अहम् ४ वैश्वानरः ५ भूत्वा ६ प्राणापानसमायुक्तः ७ चतुर्विधम् ८ अन्नम् ९ पचामि १० ॥ १४ ॥ अ०—जीवनके १ शरीरमें २ स्थितहुआ ३ मैं ४ जाठराग्नि ५ होकर ६ प्राणापानादिके साथ मिलकर ७ चारप्रकारके ८ अन्नको ९ पचाता हूं १० टी० पूरीआदिको भक्ष्य, खीरआदिको भोज्य, चटनी आदिको लेह्य, पौंडे आदिको चोष्य कहते हैं. तात्पर्य सूर्य, चन्द्रमा पृथिवी इत्यादि पदार्थोंमें जोजो गुण हैं, यह सब चैतन्य देवकी सत्ता ...ये सब जड हैं चैतन्य सबका प्रेरक है ॥ १४ ॥

मू०—सर्वस्यचाहंहृदिसंनिविष्टोमत्तःस्मृतिर्ज्ञानमपोहनंच ॥ वेदैश्चसर्वैरहमेववेद्योवेदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ १५ ॥

सर्वस्य १ हृदि २ अहम् ३ संनिविष्टः ४ मत्तः ५ च ६ स्मृतिः ७ ज्ञानम् ८ अपोहनम् ९ च १० सर्वैः ११ वेदैः १२ च १३ अहम् १४ एव १५ वेद्यः १६ वेदांतकृत् १७ च १८ वेदवित् १९ एव २० अहम् २१ ॥ १५ ॥ अ०—सबके १ बुद्धिमें २ मैं ३ प्रविष्ट हूं ४ और मुझसे ५ । ६ स्मृति ७ ज्ञान ८ सि० और इन दोनोंका ❀ भूलजाना ९ भी १० सि० मुझसे होता है ❀ और सब वेदोंकरके ११ ।१२।१३ मैं १४ ही १५ जाननेके योग्य १६ सि० हूं ❀ अर्थात् सब वेद मेराही प्रतिपादन करते हैं १६. वेदान्तकरनेवाला १७ और वेदोंका जाननेवालाभी १८ ।१९।२० मैं २१ सि० ही हूं ❀ तात्पर्य जहांजहां प्रभु अपनी विभूति कहते हैं, उनका अभिप्राय जीवब्रह्मकी एकता याने पूर्णता इसमें है. ज्ञानशक्ति क्रिया करके उपहित जो चैतन्य उससे ज्ञानस्मृति होती है. आवरणशक्तिप्रधान जो चैतन्य उससे भूल (अज्ञान) होता है ॥ १५ ॥

मू०—द्वाविमौपुरुषौलोकेक्षरश्चाक्षरएवच ॥
क्षरःसर्वाणिभूतानिकूटस्थोऽक्षरउच्यते ॥ १६ ॥

इमौ १ द्वौ २ पुरुषौ ३ लोके ४ क्षरः ५ च ६ अक्षरः ७ एव ८ च ९ सर्वाणि १० भूतानि ११ क्षरः १२ कूटस्थः १३ अक्षरः १४ उच्यते १५ ॥ १६ ॥ अ०—उ० कहे हुए पिछले अर्थको फिर संक्षेपकरके कहते हैं जिससे जल्द समझमें आजाय—ये १ दो २ पुरुष ३ लोकमें ४ सि० प्रसिद्ध हैं ❀ क्षर ५ और अक्षर ६ ।७।८।९ सब भूतोंको १० । ११ क्षर १२ कूटस्थको १३ अक्षर १४ कहते हैं १५ टी० लौकिकबोलीमें देहकोभी पुरुष कहते हैं, इसवास्ते दोनोंको ए

कहा, देहेन्द्रियादि पदार्थोंको क्षर कहते हैं और इसजगह मायाका नाम अक्षर है. कूटकपटमें जिसकी स्थिति है, सो माया. कूटस्थका अर्थ इसजगह अक्षरार्थसे माया समझना. यावत् ब्रह्मज्ञान नहीं होता तावत् माया अक्षर स्पष्ट प्रतीत होती है, इत्यभिप्रायः ॥ १६ ॥

मू०—उत्तमःपुरुषस्त्वन्यःपरमात्मेत्युदाहृतः ॥
योलोकत्रयमाविश्यबिभर्त्यव्ययईश्वरः ॥ १७ ॥

उत्तमः १ पुरुषः २ तु ३ अन्यः ४ परमात्मा ५ उदाहृतः ६ इति ७ यः ८ अव्ययः ९ ईश्वरः १० लोकत्रयम् ११ आविश्य १२ बिभर्ति १३ ॥ १७ ॥ अ०—उ० शुद्धसच्चिदानन्दपरमात्मा नित्य मुक्त, क्षर और अक्षर, इनदोनोंसे विलक्षण है यह समझ. इसको आत्मज्ञान कहते हैं. उत्तम १ पुरुष २ तो ३ अन्य ४ सि० ही है, घटपटवत् अन्यभेदवाला नहीं. बिम्बप्रतिबिम्बवत् अन्य है, उसीको ❀ परमात्मा ५ कहा है ६ यह ७ सि० समझ. अर्थात् वो यही आत्मा है कि, जिसको वेदोंमें ऋषीश्वर मुनीश्वरोंने परमात्मा कहा है ❀ जो ८ निर्विकार ९ ईश्वर १० त्रैलोक्यमें ११ प्रविष्ट होकर १२ धारण करता है १३. अर्थात् उसकी ऐसी अचिन्त्यशक्ति है कि वो वास्तवमें निर्विकार ईश्वर है परन्तु त्रिलोकको धारणकर रहा है १३ ॥ १७ ॥

मू०—यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपिचोत्तमः ॥
अतोस्मिलोकेवेदेचप्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

यस्मात् १ क्षरम् २ च ३ अक्षरात् ४ अपि ५ अहम् ६ उत्तमः ७ अतीतः ८ अस्मि ९ अतः १० लोके ११ वेदे १२ च १३ पुरुषोत्तमः १४ प्रथितः १५ ॥ १८ ॥ अ०—जिस हेतुसे १ क्षरअक्षरसे २ ३ । ४ भी ५ मैं उत्तम ६ अर्थात् मनवाणीका अविषय ७ सि० और दोनोंसे ❀ अतीत नित्यमुक्त ८ हूं ९ इसी हेतुसे १० शास्त्रमें ११

और वेदमें १२।१३ सि० मुझको ❀ पुरुषोत्तम १४ कहा है १५. तात्पर्य नित्यमुक्त, शुद्ध, सच्चिदानन्द, परिपूर्ण, ऐसे आत्माको पुरुषोत्तम कहते हैं. कभी किसीकालमें जहां बन्ध, मोक्ष, सत, असत इनशब्दों कुछ प्रसंगभी नहीं ॥ १८ ॥

मू०-योमामेवमसंमूढो जानातिपुरुषोत्तमम् ॥
सर्सविद्भजतिमांसर्वभावेनभारत ॥ १९ ॥

भारत १ यः २ असंमूढः ३ एवम् ४ माम् ५ पुरुषोत्तमम् ६ जानाति ७ सः ८ सर्ववित् ९ सर्वभावेन १० माम् ११ भजति १२ ॥ १९ ॥ अ०-उ० जो आत्मासे अभिन्न परमात्माकोही पुरुषोत्तम जानता है उसका माहात्म्य कहते हैं हे अर्जुन ! १ जो २ मूलज्ञानरहित ऐसा विद्वान् ३ इसप्रकार ४ सि० मैं क्षर और अक्षर इन दोनोंसे अन्य नित्यमुक्त शुद्ध सच्चिदानन्द हूं. ❀ मुझ ५ पुरुषोत्तमको ६ जानता है ७ सो ८ सर्वज्ञ विद्वान् ९ सर्वभाव करके १० मुझको ११ भजता है १२. तात्पर्य जिसको आत्मज्ञान हुआ वो सदा भजनही करता रहता है ॥ १९ ॥

मू०-इतिगुह्यतमंशास्त्रमिदमुक्तंमयानघ ॥
एतत्बुद्धाबुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्चभारत ॥ २० ॥

अनघ १ मया २ इदम् ३ गुह्यतमम् ४ शास्त्रम् ५ उक्तम् ६ इति ७ भारत ८ एतत् ९ बुद्धा १० बुद्धिमान् ११ कृतकृत्यः १२ च १३ स्यात् १४ ॥ २० ॥ अ०-उ० इस अध्यायमें समस्तवेद शास्त्रोंका सिद्धान्त श्रीनारायणने निरूपण करदिया. जो इस अध्यायके अर्थको जानगया वो कृतकृत्य हुआ उसको कुछ कर्तव्य नहीं रहा. और जिसका मन पापपुण्यमें खटकता है और जिसने आत्माको असंग अकर्त्ता नहीं जाना उसने इस अध्याय

अर्थभी नहीं समझा- क्योंकि श्रीमहाराज स्पष्ट कहते हैं कि, इस अध्यायके अर्थको जानकर कृतकृत्य होजाता है-हे अर्जुन ! १ मैंने २ यह ३ गुप्ततम ४ शास्त्र ५ कहा ६ इति इस शब्दका यह तात्पर्यार्थ है कि, समस्त गीताशास्त्र गुप्ततम है और गीताहीको शास्त्र कहते हैं. परंतु इसजगे शास्त्र शब्दका तात्पर्य इसीअध्यायसे है ७ हे अर्जुन ! ८ इसको ९ अर्थात् इसी अध्यायके अर्थको ९ जानकर १० ब्रह्मज्ञानी ११ कृतकृत्यही १२ । १३ होजाता है १४. तात्पर्य फिर उसको कुछ कर्त्तव्य नहीं. वो कर्मबन्धनसे मुक्त हुआ ॥ २० ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगोनाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः १६.

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ अभयंसत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ॥ दानंदमश्चयज्ञश्चस्वाध्यायस्तपआर्जवम् ॥ १ ॥

अभयम् १ सत्त्वसंशुद्धिः २ ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ३ दानम् ४ दमः ५ च ६ यज्ञः ७ च ८ स्वाध्यायः ९ तपः १० आर्जवम् ११ ॥१॥ अ०-ड०दैवीसम्पत्के २६ लक्षण ढाईश्लोकोंमें कहतेहैं-भय न होना १ अंतःकरणमें रागद्वेषादिका न होना २ ज्ञानयोगमें स्थित रहना ३ दान करना ४ सि०इसका लक्षण सत्रहवें अध्यायमें कहेंगे ❀ और इंद्रियोंका दमन करना ५।६ और यज्ञ करना ७।८ सि० इसका लक्षणभी सत्रहवें अध्यायमें कहेंगे ❀ वेदशास्त्रोंका पढना पाठ करना ९ तप दोप्रकारका है. एक सदा नित्यानित्यपदार्थोंका विचार करना, दूसरा चान्द्रायणादिव्रत करना १० सीधापन ११ ॥ १ ॥

मू०—अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागःशान्तिरपैशुनम् ॥
दयाभूतेष्वऽलोलुप्त्वंमार्दवंह्रीरचापलम् ॥ ॥ २

अहिंसा १ सत्यम् २ अक्रोधः ३ त्यागः ४ शान्तिः ५ अपैशुनम् ६भूतेषु७दया ८ अलोलुप्त्वम् ९ मार्दवम् १० ह्रीः ११ अचापलम् १२॥२॥अ०मन वाणी शरीर करके किसीको दुःख नहीं देना १ सत्य बोलना २ क्रोध न करना ३त्याग (समस्तपदार्थोंका)४अंतःकरणका उपशम याने निरोध ५ पीछे किसीका अवगुण नहीं कहना ६ [सि०यथार्थ पापका कहनेवाला बराबरका पापी होता है और जो बढाकर कहे तो दूना पापी होता है ❀ प्राणियोंमें ७ दया ८ नीचोंके सामने दीनता करना ९ कोमलता १० लज्जा रखना खोटे कामोंमें ११ चपल न होना १२ ॥ २ ॥

मू०—तेजःक्षमाधृतिःशौचमद्रोहोनातिमानिता ॥
भवंतिसंपदंदैवीमभिजातस्यभारत ॥ ३ ॥

तेजः १ क्षमा २ धृतिः ३ शौचम् ४ अद्रोहः५ अतिमानिता ६ न ७भारत ८ दैवीम् ९ संपदम् १० अभिजातस्य ११ भवन्ति १२ ॥ ३ ॥अ०—प्रागल्भ्यता १ अर्थात् दृष्टिमात्रसे दूसरा दबजाय बालक स्त्री मूर्खादि सहसा हँसी चोहल न कर बैठें. जैसी राजाकी दृष्टि रहती है. ऐसे ही पुरुषोंको तेजस्वी कहतेहैं १. सहना २ धैर्य ३ पवित्र रहना ४ वैर नहीं करना ५ अतिमानी ६ नहीं होना ७ हे अर्जुन ! ८ दैवी ९ सम्पत्के १० [सि० जो सन्मुख ❀ जन्माहै ११ सि० तिसमें ये लक्षण ❀ होतेहैं १२ [सि० कि, जो पीछे ढाईश्लोकमें कहे ❀ तात्पर्य देवतोंका पद जिसको प्राप्त होता है, उसको यह लक्षण होते हैं. जिसमें ये लक्षण स्वाभाविक न हों, उसको यत्न करना चाहिये ॥ ३ ॥

मू०—दंभोदर्पोऽभिमानश्चक्रोधःपारुष्यमेवच ॥
अज्ञानंचाभिजातस्यपार्थसंपदमासुरीम् ॥ ४ ॥

दंभः १ दर्पः २ अभिमानः ३ च ४ क्रोधः ५ पारुष्यम् ६एव ७ च ८ अज्ञानम्९च १० पार्थ ११ आसुरीम् १२ संपदम् १३ अभिजातस्य १४ ॥ ४ ॥ अ०—उ०इस मंत्रमें असुरोंके लक्षण संक्षेप करके कहतेहैं आगे फिर विस्तारसहित कहेंगे—जो अपनेमें कोई तनकसाभी गुण हो तो उसको एक भागका अनेकभाग बनाकर वारंवार लोगोंके सामने अनेक युक्तियोंके साथ प्रकट करना १ धन विद्याजातिवर्णाश्रमादिकी मनमें घमंड रहना २ और महात्मासाधुहरिभक्तोंके सामने नम्र न होना ३।४ द्वेष (वैर) करना ५ और कठोरता ६।७।८ अर्थात् आपतो छिप छिप मेवा मिश्री खावे घरके लोगोंको गुडभी नहीं. साधुहरिभक्तोंको देखकर दुष्टोंका हृदय भस्म होजाय और वाणीसे दुर्वाक्य कहनेलगे ६।७।८ सि० ऐसा कठोर ❀ और मूलाज्ञान ९।१० हे अर्जुन ! ११ आसुरीसम्पतको १२।१३ सि० जो प्राप्त होगा, असुरपदके सामने मुख करके जो ❀ उत्पन्न हुवाहै १४. सि०उसमें ऐसे लक्षण होते हैं कि, दंभादि जो इस मंत्रमें कहे ❀ तात्पर्य ऐसे प्राणी असुरपदको प्राप्त होंगे ॥ ४ ॥

मू०—दैवीसंपद्विमोक्षायनिबंधायासुरीमता ॥
माशुचःसंपदंदैवीमभिजातोसिपांडव ॥ ५ ॥

दैवीसम्पत् १ विमोक्षाय २ आसुरी ३ निबंधाय ४ मता ५ पांडव ६ माशुचः ७ दैवीम् ८ संपदम् ९ अभिजातः १० असि ११॥५॥अ०—उ०दैवीसंपत्का और आसुरी संपत्का फल कहते हैं—दैवीसंपत् १ मोक्षके लिये २ आसुरी ३ बंधकेलिये ४ मानी ५ है महात्मा महापुरुषोंने ❀ हे अर्जुन! ६ तू मत शोचकर ७

दैवीसंपत्के सन्मुख ८।९ जन्मा १० तू है ११. सि० दैवीसपत्के लक्षणोंके तर्फ तेरी वृत्ति है, देवतोंके पदको तू प्राप्त होगा ❀ तात्पर्य ज्ञानद्वारा मोक्ष होगा. दैवीसंपत्के लक्षण जिनमें हैं, उनकाही ज्ञानमें अधिकार है. असुरोंका नहीं ॥ ५ ॥

मू०–द्वौभूतसर्गौलोकेस्मिन्दैवआसुरएवच ॥
दैवोविस्तरशः प्रोक्तआसुरंपार्थमेश्रृणु ॥ ६ ॥

अस्मिन् १ लोके २ भूतसर्गौ ३ द्वौ ४ दैवः ५ आसुरः ६ एव ७ च ८ पार्थ ९ दैवः १० विस्तरशः ११ प्रोक्तः १२ आसुरम् १३ मे १४ श्रृणु १५ ॥ ६ ॥ अ० इसजगत्में १।२ भूतोंकी सृष्टि ३ दोप्रकारकी ४ सि० है. एक ❀ दैव ५ सि० देवसंबंधिनी. दूसरी ❀ आसुर ६।७।८ सि० असुरसंबंधिनी ❀ हे अर्जुन ! ९ दैव १० अर्थात् देवतोंका लक्षण १०. विस्तारपूर्वक ११ सि० मैंने ❀ कहा १२ असुरोंका लक्षण १३ मुझसे १४ सि० विस्तारपूर्वक अब ❀ सुन १५ सि० असुरस्वभावको त्यागना चाहिये. इत्यभिप्रायः ॥ ६ ॥

मू०–प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचजनानविदुरासुराः ॥
नशौचंनापिचाचारोनसत्यंतेषुविद्यते ॥ ७ ॥

प्रवृत्तिम् १ च २ निवृत्तिम् ३ च ४ आसुराः ५ जनाः ६ न ७ विदुः ८ तेषु ९ न १० शौचम् ११ न १२ अपि १३।१४ आचारः १५ न १६ सत्यम् १७ विद्यते १८ ॥ ७ ॥ अ०–प्रवृत्तिको १।२ और निवृत्तिको ३।४ असुरजन ५।६ नहीं ७ जानते हैं ८ तिनमें ९ न १० शौच ११ और न आचार १२।१३।१४।१५ न १६ सत्य १७ होता है १८. सि० कोई प्रवृत्ति ऐसी होतीहै, कि उसका फल निवृत्ति है. और कोई निवृत्ति ऐसी होती है, कि उसका फल प्रवृत्ति है. यह समझ असुरोंको नहीं और वेदोक्त आचार तो पृथक् रहा. दुष्ट स्नानतक नहीं करते और विना हाथ पैर धोये भोजन क-

लगते हैं कोई कोई यह कहते हैं कि विना झूंठ व्यवहार चलता ही नहीं जैसा झूंठ खानेमें उनको ग्लानि नहीं, ऐसा झूंठ बोलनाभी एक व्यवहार समझ रक्खा है. सत्यसम धर्म नहीं, असत्यसम अधर्म नहीं. इति सिद्धान्तः ॥ ७ ॥

मू०—असत्यमप्रतिष्ठन्तेजगदाहुरनीश्वरम् ॥
अपरस्परसंभूतंकिमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥

ते १ जगत् २ अनीश्वरम् ३ आहुः ४ असत्यम् ५ अप्रतिष्ठम् ६ अपरस्परसंभूतम् ७ कामहैतुकम् ८ अन्यत् ९ किम् १० ॥ ८ ॥

अ०—वे १ अर्थात् असुर १ जगत्को २ अनीश्वर ३ कहते हैं. ४ अर्थात् कर्मोंके फलका देनेवाला कोईभी नहीं सब ३।४. झूंठ ५ सि० है. जैसे आप झूंठे हैं ऐसेही जगत्को झूठा समझते हैं कहते हैं कि जगत्की कुछ व्यवस्था नहीं. ऐसे ही गोलमोल चला आता है.वेदपुराणादिधर्मकी ❀ प्रतिष्ठा नहीं ६ सि० समझते. वेदादि को वडा नहीं समझते. यह जानते हैं, जैसे विद्या मनुष्योंकी बनाई हुई है. वेदभी किसी मनुष्यके बनाये हुए हैं. धर्मके उपदेशको बहकाना समझते हैं. इसप्रकार जगत्को अप्रतिष्ठ अव्यवास्थित कहते हैं. (असत्यंअप्रतिष्ठं) ये दोनों जगत्के विशेषण हैं. जो कोई उन्होंसे बूझे कि क्योंजी यह जगत कैसा उत्पन्न हुआ है, इसका क्या हेतु है, तो उत्तर यह देते हैं कि अजी ❀ परस्पर स्त्री पुरुषोंके संबंधसे हुआहै ७ कामदेव इसका हेतु है ८ अन्य ९ क्या १० सि० हेतु होता ❀ ॥ ८ ॥

मू०—एतांदृष्टिमवष्टभ्यनष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः ॥
प्रभवंत्युग्रकर्माणःक्षयायजगतोहिताः ॥ ९ ॥

नष्टात्मानः १ अल्पबुद्धयः २ उग्रकर्माणः ३ अहिताः ४ एताम् ५ दृष्टिम् ६ अवष्टभ्य ७ जगतः ८ क्षयाय ९ प्रभवंति १० ॥ ९ ॥ अ०

मलिनचित्तवाले १ मंदमति २ हिंसात्मककर्मवाले ३ सि० धर्मके ❀ वैरी ४ इसदृष्टिका ५। ६ आश्रय करके ७ जगत्को ८ भ्रष्ट करनेकेलिये ९ हुए हैं १०. टी० 'जगतः अहिताः' अर्थात् जगत्के वैरी हैं. यहभी अर्थ होसक्ता है, दुष्टलोग साधु हरिभक्तोंके वैरी होते हैं. साधु जगत्के रक्षक हैं जब कि उनसे वैरी होते हैं. जबकि उनसे वैर किया तो सब जगत्से उनका वैरहुआ. जो लौकिकव्यवहार है सोई सत्य है यह दृष्टि रखते हैं ॥ ९ ॥

मू०—काममाश्रित्यदुष्पूरंदंभमानमदान्विताः ॥
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥१० ॥

दंभमानमदान्विताः १ दुष्पूरम् २ कामम् ३ आश्रित्य ४ अशुचिव्रताः ५ मोहात् ६ असद्ग्राहान् ७ गृहीत्वा ८ प्रवर्तन्ते ९॥ १० ॥

अ०—दंभमानमदकरकेयुक्त १ जिसका पूर्ण होना कठिन ऐसे २ कामनका ३ आश्रयकरके ४ अपवित्र आचार है जिनका ५ बेहूदेपनसे ६ दुराग्रहका ७ अंगीकारकरके ८ सि० निन्दितमार्गमें ❀ वर्तते हैं ९. तात्पर्य यह मंत्र जपकर अमुकभूतप्रेतको सिद्ध करेंगे. फिर उससे यह काम लेंगे. इसप्रकार बेहूदी बात सुनसुन, सीखसीख, कि जिन बातोंमें सिवाय दुःखविक्षेपके कभी कुछ अन्यसुखादि फल नहीं दंभादिकरके अंधे होरहे हैं. किसीकी सुनतेभी नहीं. जो अंगीकार करलिया उसमें कितनीही निन्दाक्षतिहो त्यागना नहीं और यही आशा रखना कि यह कर्तव्य हमारा हमको अवश्य सुखदेगा॥ १०॥

मू०—चिंतामपरिमेयांचप्रलयान्तामुपाश्रिताः ॥
कामोपभोगपरमाएतावदितिनिश्चिताः ॥ ११ ॥

अपरिमेयाम् १ च २ प्रलयांताम् ३ चिन्ताम् ४ उपाश्रिताः ५ कामोपभोगपरमाः ६ एतावत् ७ इति ८ निश्चिताः ९॥ ११॥ अ०—बे प्रमाण १ और २ मरण है अन्त जिसका ३ सि० ऐसे ❀ चिन्

का ४ आश्रय कियेहुए ५ अर्थात् सदा ऐसे चिंतामें लगे हुए कि जो मरनेसे तो समाप्ति हो. जीतेजी सदा बनी रहे ३।४।५ सि० काम और भोगोंसे श्रेष्ठ कुछ अन्य नहीं ❀ यह ८ निश्चय है जिनका ९ सि० ऐसे लोग अन्यायकरके पदार्थोंको संचय करते हैं. अगले मंत्रके साथ इसमंत्रका अन्वय है ❀ ॥ ११ ॥

मू०—आशापाशशतैर्बद्धाःकामक्रोधपरायणाः ॥
ईहन्तेकामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

आशापाशशतैः १ बद्धाः २ कामक्रोधपरायणाः ३ अन्यायेन ४ अर्थसंचयान् ५ कामभोगार्थम् ६ ईहन्ते ७ ॥ १२ ॥ अ०—आशाके सैकडों फांसीकरके १ बँधेहुए हैं २ अर्थात् असंख्यात आशामें फँसे हुए हैं छूट नहीं सक्ते १। २ कामक्रोधकोही परम स्थान बना रक्खा है ३ अर्थात् सदा कामक्रोधपरायण रहते हैं. ३ अनीतिकर के ४ द्रव्य मकान गाव इकट्ठे करतेहैं ५. भोगोंकेलिये६ सि० यही सदा ❀ चेष्टा करते हैं ७ तात्पर्य पदार्थोंके छीनलेनेमें तत्पर रहते हैं जैसे बने इत्यादि अनीतिकरके अपने भोगके अर्थ परायामाल छीनलेना और फिरभी असंख्यात आशामें फँसे रहना. सदा काम क्रोध बनेही रहते हैं. ऐसे पुरुष नरकमें पडेंगे वहां इसश्लोकका अन्वय है ॥ १२ ॥

मू०—इदमद्यमयालब्धमिदंप्राप्स्ये मनोरथम् ॥
इदमस्तीदमपिमेभविष्यतिपुनर्धनम् ॥ १३॥

अद्य १ इदम् २ मया ३ लब्धम् ४ इदम् ५ प्राप्स्ये ६ मनोरथम् ७ इदम् ८ मे ९ अस्ति १० इदम् ११ अपि १२ धनम् १३ पुनः १४ भविष्यति १५ ॥ १३ ॥ अ०—उ० दुष्टजनोंका मनोराज्य चार, मंत्रोंमें कहतेहैं—अब १ यह २ सि० तो ❀ मुझको ३ प्राप्त है ४ सि० और ❀ यह ५ प्राप्त करूंगा ६ सि० यह मेरा ❀ मनोरथ ७ सि०

है ❀ यह ८ सि० धन तो ❀ मेरा ९ है १० सि० और ❀ यह ११ भी १२ धन १३ फिर १४ सि० अवश्यही ❀ प्राप्त-होगा १५ सि० ऐसे पुरुष अपवित्रनरकमें पडेंगे, यह सोलहवें मंत्रमें श्रीमहाराज कहेंगे ❀ ॥ १३ ॥

मू०–असौमयाहतःशत्रुर्हनिष्येचापरानपि ॥
ईश्वरोहमहंभोगीसिद्धोहंबलवान्सुखी ॥ १४ ॥

मया १ असौ २ शत्रुः ३ हतः ४ च ५ अपरान् ६ अपि ७ हनिष्ये ८ अहम् ९ ईश्वरः १० अहम् ११ भोगी १२ अहम् १३ सिद्धः १४ बलवान् १५ सुखी १६ ॥ १४॥ अ०–मैंने १ वो २ शत्रु ३ सि० तो ❀ मारा ४।५ सि० और असुकअसुक ❀ औरोंको ६ भी ७ मारूंगा ८ मैं ९ समर्थ १० मैं ११ भोगी १२ मैं १३ सिद्ध १४ बलवाला १५ सुखी १६ सि० हूं ❀ टी० लोगोंके मारनेमें समर्थ हूं १० अच्छा खाता पीता हूं १२ कृतकृत्य हूं १४ मैंने बडेबडे काम किये हैं कि वे मेरेही करनेके योग्यथे, अन्यसे नहीं होसक्ते ॥ १४ ॥

मू०–आढ्योभिजनवानस्मिकोन्योस्तिसदृशोमया ॥
यक्ष्येदास्यामिमोदिष्यइत्यज्ञानविमोहिताः ॥१५॥

आढ्यः १ अभिजनवान् २ अस्मि ३ मया ४ सदृशः ५ कः ६ अन्यः ७ अस्ति ८ यक्ष्ये ९ दास्यामि १० मोदिष्ये ११ इति १२ अज्ञानविमोहिताः १३ ॥ १५ ॥ अ०–धनवान् साहूकार १ कुलीन २ मैं हूं, ३ मेरे ४ बराबर ५ कौन ६ अन्य दूसरा ७ है ८. सि० अब मैं एक ❀ यज्ञ करूंगा ९ सि० उसमें बहुत कुछ ❀ देऊँगा १० आनन्दको प्राप्त हूंगा ११ इसप्रकार १२ अज्ञानकरके मोहित हुए १३ सि० झूंठा वृथा मनोराज्य करते हुए, अवस्था व्यतीत करते हैं धनजातिके अभिमानमें जलेही जाते हैं. यज्ञकरनेक

जो मनोराज्य है उसमें उनका यह तात्पर्य है कि थोडा बहुत रजोगुणी तमोगुणी अन्न ऐसे वैसे ब्राह्मणोंको जिमाकर औरोंकी बुराई किया करेंगे और दो चार पैसे देनेकोही बड़ा दान समझते हैं. जबकभी किसी फकीरको, वा खुशामदीलोगोंको या नट वेश्यादिकोंको अपने बड़ाईके लिये कुछ देदेते हैं, तो अपनेको बड़ा दाता समझते हैं. और बहुत प्रसन्न होते हैं ❀ ॥ १५ ॥

मू०—अनेकचित्तविभ्रांतामोहजालसमावृताः ॥
प्रसक्ताःकामभोगेषुपतन्तिनरकेशुचौ ॥ १६ ॥

अनेकचित्तविभ्रान्ताः १ मोहजालसमावृताः २ कामभोगेषु ३ प्रसक्ताः४अशुचौ५नरके६पतंति७॥१६॥अ०—उ०—ऐसे लोगोंकी जो गति होती है उसको सुन—अनेकमनोराज्यमें चित्तविभ्रान्त होरहा है जिनका१ मोहके जालमें फँसे हुए२ कामभोगोंमें ३ आसक्त४ सि० है जो सो ❀ अपवित्र ५ नरकोंमें ६ पडेंगे ७ ॥ १६ ॥

मू०—आत्मसंभाविताःस्तब्धाधनमानमदान्विताः ॥
यजंतेनामयज्ञैस्तेदंभेनाविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥

आत्मसंभाविताः १ स्तब्धाः २ धनमानमदान्विताः ३ ते४ दंभेन ५ अविधिपूर्वकम् ६ नामयज्ञैः ७ यजंते ८ ॥ १७॥ अ०—अपने आपही आपको बड़ा समझकर अपनेको बडा प्रतिष्ठित जानते हैं१ अनम्र २ सि० किसीमहात्माके सामने नम्र नहीं होते ❀ धनकरके जो उनका मान होता है, उसमानके मदमें भरे रहते हैं ३ अर्थात् धनके चाहनेवाले मूर्ख धनीलोगोंकाही मान किया करतेहैं ३. सि० जो ऐसे उन्मत्त हैं ❀ वे ४ दंभकरके५ शास्त्रविधिरहित ६ नामयज्ञकरके ७ यजन करते हैं ८ अर्थात् वास्तव वो यज्ञ नहीं, कि जो वे करते हैं, उसका यज्ञ नाम बना रक्खाहै, या नामके वास्ते यज्ञ करते हैं. विधिरहित. इत्यभिप्रायः ॥ १७ ॥

मू०—अहंकारंबलंदर्पंकामंक्रोधंचसंश्रिताः ॥
मामात्मपरदेहेषुप्रद्विषन्तोभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

अहंकारम् १ बलम् २ दर्पम् ३ कामम् ४ क्रोधम् ५ च ६ संश्रिताः ७ आत्मपरदेहेषु ८ माम् ९ प्रद्विषंतः १० अभ्यसूयकाः ११ ॥ १८ ॥ अ०—अहंकार १ बल २ दर्प ३ काम ४ और क्रोध इनका ५।६ आश्रय किये हुए ७ अपने देहके विषय और दूसरे देहके ८ सि० जो मैं सच्चिदानंद विराजमान हूं ❀ मुझसे ९ द्वेष करते हैं १० सि० मेरी ❀ निंदाकरते हैं ११ सि० अपने देहमें या पराये देहमें जो आत्माको पूर्ण ब्रह्म नहीं समझते वे भगवत्के निन्दक हैं और जो दूसरेसे द्वेषकरते हैं वेभी प्रभुके द्वेषी हैं और जो मनुष्य देहपाकर आत्मज्ञानके लिये यत्न नहीं करते, वेभी प्रभुके वैरी हैं ❀ इत्यभिप्रायः ॥ १८ ॥

मू०—तानहंद्विषतःक्रूरान्संसारेषुनराधमान् ॥
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु ॥ १९ ॥

संसारेषु १ नराधमान् २ द्विषतः ३ क्रूरान् ४ तान् ५ अहम् ६ अशुभान् ७ आसुरीषु ८ योनिषु ९ एव १० अजस्रम् ११ क्षिपामि १२ ॥ १९ ॥ अ०—उ० ऐसे दुष्टोंको जो मैं दंडकरता हूं सो सुन दो मंत्रोंमें—संसारमें १ आदमियोंके विषय जो अधम नर २ सि० साधु महापुरुषोंसे ❀ वैर रखते हैं ३ निर्दय याने दया रहित ४ तिनको ५ मैं ६ अशुभ लोकमें अर्थात् रौरवादिनरकमें ७ और आसुरीयोनियोंमें ८।९ निश्चय १० सदाके लिये ११ फेकूंगा १२ अर्थात् पहले तो बड़ेबड़े नरकोंमें डालूंगा ऐसे दुष्टोंको कि जो मेरे भक्तसाधुजनोंको दुर्वाक्य बोलते हैं और जिनके लक्षण ऊपर कहे, उनको सदा इसीचक्रमें रक्खूंगा ॥ १२ ॥ १९ ॥

मू०-आसुरींयोनिमापन्नामूढाजन्मनिजन्मनि॥
मामप्राप्यैवकौंतेयततोयांत्यधमांगतिम्॥ २०॥

मूढाः १ आसुरीम् २ योनिम् ३ आपन्नाः ४ जन्मनि ५ जन्मनि ६ मां ७ अप्राप्य ८ एव ९ कौन्तेय १० ततः ११ अधमाम् १२ गतिम् १३ यांति १४ ॥ २० ॥ अ०-उ०ऐसें दुष्टोंको मेरे प्राप्तिका मार्गभी नहीं मिलेगा. क्योंकि मेरें प्राप्तिका मार्ग मेरे भक्त साधुजानते हैं. वे ऐसे दुष्टोंको न दर्शन देते हैं, न संभाषण करतेहैं और जो लालचसे ऐसे दुष्टोंको उपदेश करते हैं वे साधु भक्त नहीं वर्णसंकर कमीना कोई नीचजात हैं. मूढ १ आसुरी २ योनियोंको ३ प्राप्त हुए ४ जन्मजन्ममें ५ । ६ मुझको ७ नहीं प्राप्त होकर ८ निश्चय ९ हे अर्जुन ! १० पीछे ११ अधम १२ गतिको १३ प्राप्तहोंगे १४ तात्पर्य हे अर्जुन ! किसी युगमेंभी मेरे भक्तोंके कृपाविना मेरी प्राप्ति नहीं होती. जो मुझको बुरा कहते हैं, वो तो मैं सहजाताहूं परंतु जो मेरे भक्तका याने साधुका अपराध करे वो मुझसे नहीं सहाजाता. उसको मैं तुरंत कठिनसे कठिन तीव्र दंड करताहूं हिरण्यकशिपुने बहुत मुझसे द्वेष किया, परन्तु मुझको क्षोभ न हुआ जिसकालमें मेरे भक्तके साथ (प्रह्लादका) द्वेष किया एक पल न सहसका. जो कुछ कि मैंने किया सो भागवतादिमें प्रसिद्ध है इत्यभिप्रायः ॥ २० ॥

मू०-त्रिविधंनरकस्येदंद्वारंनाशनमात्मनः॥
कामःक्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत् ॥ २१ ॥

कामः १ क्रोधः २ तथा ३ लोभः ४ इदम् ५ त्रिविधम् ६ नरकस्य ७ द्वारम् ८ आत्मनः ९ नाशनम् १० तस्मात् ११ एतत् १२ त्रयम् १३ त्यजेत् १४ ॥ २१ ॥ अ०-उ० जितने दोष आसुरीसंपत्वाले पुरुषोंके कहे, उनमें काम क्रोध और लोभ येतीनसबकेकारण हैं. प्रथम उनको अवश्य त्यागना चाहिये. काम १ क्रोध२ और ३ लो-

म४यह५तीन प्रकारका६नरकका ७ द्वार ८ आत्माको९नरकमें और पशु आदिदुष्टयोनियोंमें प्राप्त करनेवाला१० सि०है ❀तिसकारणसे ११इन१२तीनको१३त्यागना१४ सि० चाहिये.❀ तात्पर्य कामादितीनोंहीं नरकके द्वार हैं. इनमेंसे जो एकभी होगा तो वोही एक नरकको प्राप्त करेगा. और जिसमें ये तीनों होंगे वो तो जीतेजी नरकमें हैं, मरकर उसको नरक प्राप्त हो तो इसमें क्या कहना है २१॥

मू०—एतैर्विमुक्तःकौन्तेयतमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः॥
आचरत्यात्मनःश्रेयस्ततोयातिपरांगतिम्॥ २२॥

कौंतेय १ एतैः २ त्रिभिः ३ तमोद्वारैः ४ विमुक्तः ५ नरः ६ आत्मनः ७ श्रेयः ८ आचरति ९ ततः १० परां ११ गतिम् १२ याति १३ ॥ २२ ॥अ०—उ०कामादिके त्यागका फल कहते हैं—हे अर्जुन! १ इन तीन नरकके द्वारोंसे २।३।४ छूटा हुआ ५ सि० जो❀पुरुष ६ आत्माका ७ भला प्रकार ८ करताहै ९ अर्थात् कामादिको प्रथम त्यागकर पीछे आत्मप्राप्तिके लिये शुभाचरण करता है, ९ तब १० परमगतिको ११।१२ प्राप्त होता है १३. तात्पर्य जैसे औषधि तब गुण करती है कि, जब प्रथम खटाई मिठाई आदि पदार्थोंका त्यागकरदे. तैसेही शुभकर्म जपपाठादि तब फल देंगे जब प्रथम कामादिका त्याग होगा. कामादिके त्यागनेसे अंतर्मुख वृत्ति होती है. विनाअंतर्मुख हुए विचार नहीं होसक्ता, विना विचार ज्ञान नहीं होता, विनाज्ञान मुक्ति नहीं. इसवास्ते कामादिका त्याग अवश्य होना चाहिये॥ २२॥

मू०—यःशास्त्रविधिमुत्सृज्यवर्ततेकामकारतः॥
नससिद्धिमवाप्नोतिनसुखंनपरांगतिम्॥ २३॥

यः १ शास्त्रविधिम् २ उत्सृज्य ३ कामकारतः ४ वर्तते ५ सः ६ ७ सिद्धिम् ८ अवाप्नोति ९ न १० सुखम् ११ न १२ पराम् १३ गतिम् १४ ॥२३॥ अ०—उ० कामादिका त्याग जो लोगोंसे नहीं

होसक्ता उसमें हेतु यह है कि, शास्त्रके विधिको छोड़ इच्छापूर्वक वर्त्तते हैं–जो १ शास्त्रविधिको २ उलंघकर ३ इच्छापूर्वक ४ वर्त्तता है ५ सो ६ न ७ सिद्धिको ८ प्राप्त होता है ९ न १० सुख-को ११ न १२ परमगतिको १३ ।१४ तात्पर्य उसको न इसलोकमें सुख होता है न सद्गति (मुक्ति) होती है. और इसलोकमें किसी प्रकारकी उसको सिद्धिभी नहीं होती. इसजगे उन लोगोंका प्रसंग है कि, जिनका शास्त्रमें अधिकार है, जानबूझ शास्त्रके विधिका उलंघन करते हैं. ज्ञानीजन कृतकृत्य हैं, उनका यहां प्रसंग नहीं और अनजानलोग या अन्यद्वीपनिवासी या शास्त्रसे अन्यमतवाले, शास्त्रविधिको उलंघकर अपने मतके अनुसार या स्वाभाविक इच्छापूर्वक वर्त्ततेहैं. उनकाभी यहां प्रसंग नहीं. क्योंकि उनकेलिये अर्जुन सत्रहवें अध्यायमें प्रश्न करेंगे और श्रीमहाराज स्पष्ट उत्तर देंगे ॥२३॥

मू०–तस्माच्छास्त्रंप्रमाणंतेकार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
ज्ञात्वाशास्त्रविधानोक्तंकर्मकर्तुमिहार्हसि ॥ २४ ॥

तस्मात् १ कार्याकार्यव्यवस्थितौ २ ते ३ शास्त्रम् ४ प्रमाणम् ५ शास्त्रविधानोक्तम् ६ कर्म ७ ज्ञात्वा ८ इह ९ कर्तुम् १० अर्हसि ११ ॥ २४ ॥ अ०–तिसकारणसे १ यह करना चाहिये और यह न करना चाहिये इसव्यवस्थामें २ तुझको ३ शास्त्र ४ प्रमाण ५ सि० है ❀ शास्त्रमें जो करना कहा है उसकर्मको ६ । ७ जान-करके ८ इसकर्मके अधिकार भूमिमें ९ अर्थात् इसमनुष्यदेहसे मर्त्य-लोकमें ९ सि० कर्म ❀ करनेको १० योग्य है तू ११ तात्पर्य जो शास्त्रने कहा सो कर. और जिसकर्मको बुरा कहा सो नकर. यहां शास्त्रही प्रमाण है बुद्धिका काम नहीं. इत्यभिप्रायः ॥ २४ ॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पत्तिवर्णनयोगोनाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः १७.

उ० सोलहवें अध्यायमें श्रीभगवान्ने कहा कि जो शास्त्रके विधिका उल्लंघन करके वर्तते हैं, (अपनी इच्छापूर्वक) उनको न इस लोकमें सुख होता है. न उनको सद्गति होती है. इसमें कम-समझोंको यह शंका प्रतीत होती है कि, जिन्होंने श्रीमहाराजका तात्पर्य नहीं जाना. वो शंका यह है कि, असंख्यात अन्य द्वीपके लोक और इस द्वीपमेंभी वेदोक्तमतसे अन्य मतवाले और ग्रामनिवासी बहुत अनजानलोक शास्त्रके विधिका उल्लंघन करके वर्ततेहैं, उनको इस लोकमें तो जैसा सुख अपने कर्मोंके अनुसार वेदोक्त कर्मकरनेवालोंको होता है,वैसाही उनको अपने अपने कर्मोंके अनुसार प्रत्यक्ष दीखता है. और परलोकमें सबकी दुर्गति हो, यह बात अयुक्त है. क्योंकि सब प्रजा एक ईश्वरकीहै. वो ईश्वर ऐसा नहीं कि सब अन्य द्वीपनिवासियोंकी दुर्गति करे यह शंका एक नाममात्र संक्षेप करके लिखी गई है. उत्तरभी इसका संक्षेप करके लिखा जाता है. प्रथम यह कि, श्रीभगवान्ने चौदहवें अध्यायमें स्पष्ट कहा है, कि सतोगुणी पुरुष ऊपरके लोकोंको प्राप्त होते हैं, रजोगुणी मध्यमें स्थित रहते हैं, और तमोगुणी अधोगतिको प्राप्त होते हैं. ये तीनों गुण यत्न करनेसे भी वर्तते हैं, और स्वाभाविकभी वर्तते हैं. सबलोग अपने गुणोंके तारतम्यतासे सद्गतिको और दुर्गतिको प्राप्त होंगे. वे किसी जातिमें वा किसी मतमें वा अनजान हों शास्त्रोक्त जो कर्म करते हैं, जिनकी शास्त्रमें श्रद्धाहै, जो वे यत्न करें,तो रजोगुणी तमोगुणी पसे अपने स्वभावको पलट सक्ते हैं, और जिनकी वेदशास्त्रमें श्रद्धा नहीं वे नहीं पलट सक्ते. वे अपने स्वभावके अनुसार रहेंगे. वैदिक अवैदिक मतमें इतना अन्तर है. दूसरी एक सूक्ष्म बात यह है

कि वेदोक्तकर्मधर्ममें ईश्वराराधानादिसब अध्यारोपहै. और जो शास्त्रके विधिका उल्लंघन करके अपने मतके अनुसार कर्म करते हैं, वो अध्यारोप है. विद्वानोंकी दृष्टिमें अध्यारोप कल्पित है. विना ज्ञान सब सम हैं. ज्ञानमें सतोगुणीका अधिकार है. सो सतोगुण स्वाभाविक हो वा प्रयत्न करके किसीने संपादन किया हो ज्ञानी सतोगुणको देखकर ज्ञानका उपदेश बेसन्देह करेंगे कि जिससे परमगति होती है. सोलहवें अध्यायमें श्रीमहाराजने उन लोगोंके वास्ते ऐसा कहा है. उनको न इस लोकमें सुख होगा न परलोकमें. कि जिनका शास्त्रमें अधिकार है और वे शास्त्रार्थको जानबूझ शास्त्रके विधिका उल्लंघन करते हैं. क्योंकि उनको कुछभी आश्रय न रहा ज्ञाननिष्ठोंका यहां प्रसंग नहीं. वे विधिनिषेधसे मुक्त हैं ॥

मू०–अर्जुनउवाच॥येशास्त्रविधिमुत्सृज्ययजंतेश्रद्धयान्विताः॥ तेषांनिष्ठातुकाकृष्णसत्वमाहोरजस्तमः॥ १ ॥

कृष्ण १ ये २ श्रद्धया३ अन्विताः४ शास्त्रविधिम् ५ उत्सृज्य ६ यजन्ते ७ तेषाम् ८ निष्ठा ९ तु १० का ११ सत्वम् १२ रजः १३ आहो १४ तमः १५ ॥ १ ॥ अ०–उ० यह पूर्वोक्तशंका करके अर्जुन प्रश्न करताहै–हे भगवन्१ सि० बहुतलोग ❀ जो २ श्रद्धा करके ३ युक्त ४ शास्त्रके विधिको ५ उल्लंघकर ६ सि० अपनी बुद्धिके अनुसार वा वेद शास्त्ररहित अपने गुरुमतके अनुसार ईश्वराराधनादि कर्म ❀ करते हैं ७ तिनकी ८ निष्ठा ९ । १० क्याहै ११ अर्थात् उनका तात्पर्य सिद्धान्त क्या है ११ सि० उनकी निष्ठा ❀ सतोगुणी १२ सि० वा ❀ रजोगुणी १३ वा १४ तमोगुणी १५, तात्पर्य जो लोग शास्त्रके अर्थको जानकर शास्त्रोक्त अनुष्ठान नहीं करते प्रत्युत अनादर करते हैं, उनका और ज्ञानियोंका तो यहां

प्रसंग नहीं अनजानपुरुष जो देखादेखी वा नास्तिकादि जो शास्त्रके विधिको उलंघकर वर्तते हैं उनकी क्या निष्ठा समझना चाहिये. उनकी क्या गति होती है. यह अर्जुनके प्रश्नका तात्पर्य है ॥ १ ॥

मू०—श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिविधाभवतिश्रद्धादेहिनां स्वभावजा ॥ सात्त्विकीराजसीचैवतामसीचेतितांशृणु ॥ २ ॥

देहिनाम् १ स्वभावजा २ त्रिविधा ३ श्रद्धा ४ भवति ५ सा ६ सात्त्विकी ७ राजसी ८ च ९ एव १० तामसी ११ च १२ इति १३ ताम् १४ शृणु १५ ॥ २ ॥ अ०—जीवोंके १ स्वाभाविक २ अर्थात् अपने आप पूर्वसंस्कारसेहीर तीन प्रकारकी३ श्रद्धा४ है, ५ सो ६ सि० श्रद्धा ❋ सतोगुणी ७ और रजोगुणी ८।९। १० और तमोगुणी ११।१२।१३ तिनको १४ सुन १५ सि० कहते हैं अगले श्लोकमें और कार्यभेदसे औरभी आगे बहुत श्लोकोंमें कहेंगे ❋ तात्पर्य शास्त्रमें जिनकी श्रद्धा यथाशक्ति शास्त्रोक्त जो अनुष्ठान करते हैं, उनकी श्रद्धा निष्ठा केवल सतोगुणी समझना. क्योंकि शास्त्रमें यह सामर्थ्य है कि स्वभावको पलट सक्ता है जिनकी शास्त्रमें श्रद्धा नहीं उनकी श्रद्धा तीनप्रकाकी समझना. जो पूर्वसंस्कारसे वे रजोगुणी तमोगुणी हैं, तो विना वेदोक्तकर्म किये उनका स्वभाव नहीं पलटेगा ॥ २ ॥

मू०—सत्त्वानुरूपासर्वस्यश्रद्धाभवतिभारत ॥ श्रद्धामयोयंपुरुषोयोयच्छ्रद्धःसएवसः ॥ ३ ॥

भारत १ सर्वस्य २ सत्त्वानुरूपा ३ श्रद्धा ४ भवति ५ अयम् ६ पुरुषः ७ श्रद्धामयः ८ यः ९ यच्छ्रद्धः १० सः ११ एव १२ सः १३ ॥ ३ ॥ अ०—उ० तीनप्रकारकी श्रद्धा ऐसे जानो जैसे अब कहते कपटी ॥ हे अर्जुन! १ सबके २ अंतःकरणके अनुसार ३ श्रद्धा ४ है ५

जीव७ श्रद्धावान् है ८ जो ९ जिसकी जैसी श्रद्धा है १० अर्थात् जो जिसश्रद्धाकरके युक्त है १० सो ११ निश्चयसे १२ सोई १३ सि० है. ❋ तात्पर्य जिसकी श्रद्धा जैसे कर्मोंमें (सतोगुणी आदिमें) है उसको वैसाही समझना चाहिये. आगे आहारादिका भेद (सत्त्वादि) कहेंगे. उस निष्ठा और अनुमानसे जानलेना कि यह पुरुष ऐसा है और इसकी यह निष्ठा है. यह इसकी गती होगी. ऐसा कोई पुरुष नहीं कि जिसकी किसीजगे श्रद्धा नहो. इसवास्ते सबको श्रीभगवान्ने श्रद्धावान् कहा. जिनके अंतःकरण शुद्ध हैं, उनकी सतोगुणी श्रद्धा है. जिनके मलिन अंतःकरण हैं, उनकी तमोगुणी रजोगुणी श्रद्धा है, पुरुषके सम्बन्धसे श्रद्धाको भी तीनप्रकारकी कही. मोक्षमें जो हेतु है और साधनचतुष्टयमें उसकी संख्या है, वो केवल सतोगुणीवृत्ति श्रद्धा है परमार्थमें जिसको श्रद्धा कहते हैं यह व्यवहारमें तीनप्रकारकी श्रद्धा है, कि जो कही ज्ञानमें अधिकार सतोगुणीश्रद्धावानका है ॥ ३ ॥

सू०-यजन्तेसात्त्विकादेवान्यक्षरक्षांसिराजसाः ॥

प्रेतान्भूतगणांश्चान्येयजन्तेतामसाजनाः ॥ ४ ॥

सात्त्विकाः१ देवान् २ यजंते ३ राजसाः ४ यक्षरक्षांसि ५ तामसाः ६ जनाः ७ प्रेतान् ८ भूतगणान् ९ च १० एव ११ यजंते १२ ॥ ४ ॥ अ०-उ०सत्त्वादिगुणोंको कार्यभेद करके दिखाते हैं. सतोगुणी १ देवतोंका २ यजन करते हैं ३ रजोगुणी ४ यक्षराक्षसोंको ५ सि०पूजते हैं ❋ तमोगुणीजन ६।७ प्रेत ८ और भूतगणोंकोही ९।१०।११ पूजते हैं १२ ॥ ४ ॥

सू०-अशास्त्रविहितंघोरंतप्यन्तेयेतपोजनाः ॥

दंभाहंकारसंयुक्ताःकामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

.. करते १ जनाः २अशास्त्रविहितम् ३ घोरम् ४ तपः ५ तप्यंते ६

दंभाहंकारसंयुक्ताः ७ कामरागबलान्विताः ८ ॥५॥ अ०—जो १ जन २ शास्त्रविधिरहित ३ मैला ४ तप ५ करते हैं ६ सि० उसमें कारण यह है कि ❀ दंभ अहंकारकरके युक्त हैं७ सि०फिर कैसे हैं कि ❀ कामरागबलकरके युक्त हैं.८ तात्पर्य कोईकोई ऐसा तप करते हैं कि वो कर्म स्वरूपसेही मैला है. अर्थात् उसकर्मके करनेमें ग्लानि आती है और उसके करनेमें शास्त्रकी विधिभी कोई नहीं. उसकर्मका नाम तप रखकर वृथा तपते हैं. हेतु इसमें यह है.प्रथम यह कि लोगोंको दिखानेकेलिये. दूसरा यह कि जैसा हम कर्म करते हैं, ऐसा किसीसे कब होसक्ता है, तीसरा किसी कामनाकेलिये.चौथा रजोगुणके वशसे उसकर्ममें प्रीति होगई है, त्याग नहीं सक्ता. वा पुत्रमित्रादिके प्रीतिसे मित्रादिके रिझानेकेलिये करता है पांचवाँ बलवाला होनेसे जो चाहता है सो करता है ॥ ५ ॥

मू०—कर्षयन्तःशरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥
मांचैवान्तःशरीरस्थंतान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥६॥

अचेतसः १ शरीरस्थम् २ भूतग्रामम् ३ कर्षयन्तः४ च५ अंतः६ शरीरस्थम् ७ माम् ८ एव ९ तान् १० आसुरनिश्चयान् ११ विद्धि १२ ॥ ६ ॥ अ०—अज्ञानी १शरीरमें जो स्थित२इंद्रियादि३ सि० तिनको ❀ पीडादेते हैं ४ और ५ भीतर ६ शरीरकेस्थित ७ सि०जो मैं हूं❀मुझको ८ भी ९ सि०दुःख देते हैं❀ तिनको१० असुरवत् ११ जान १२ तात्पर्य जो विनाविचार इंद्रियादिको दुःख देते हैं, और पूर्णब्रह्मशुद्धसच्चिदानन्द ऐसे आत्माको दास और अस्थिचर्मादिका पुतला समझते हैं वे लोग असुरवत् हैं जो असुरोंका निश्चय है. सो उनका प्रसिद्ध है तपका फल शांति है. शांतिकेलिये उपवासादि तप करते हैं जिसकर्म करनेसे उलटा तमोगुण रजोगुण बढे उसकर्मका नाम तप कहा जावे, यह दंभी कपटी पुरुषोंका काम है ॥ ६ ॥

मू०–आहारस्त्वपिसर्वस्यात्रिविधो भवतिप्रियः ॥
यज्ञस्तपस्तथादानंतेषांभेदमिमंशृणु ॥ ७ ॥

आहारः १ तु २ अपि ३ सर्वस्य ४ त्रिविधः ५ प्रियः ६ भवति ७ तथा ८ यज्ञः ९ तपः १० दानम् ११ तेषाम् १२ भेदम् १३ इमम् १४ शृणु १५ ॥ ७ ॥ अ०–उ० सतोगुण बढानेके लिये और रजोगुण तमोगुण कर्मकरनेकेलिये, आहार तप यज्ञ दानको सत्वादि तीनतीनभेदकरके कहते हैं और इसभेदसे सतोगुणीआदिपुरुषोंकी परीक्षाभी होसक्ती है अर्थात् जो सतोगुणी आहार यज्ञ तप और दान करता है, उसको सतोगुणी जानना चाहिये इसीप्रकार तमोगुणरजोगुणमें कल्पना करना–आहार १ भी २।३ सबको ४ तीनप्रकारका ५ प्रिय ६ है ७ और ८ यज्ञ ९ तप १० दान ११ सि० भी सबको तीनप्रकारका प्रिय है. हे अर्जुन ! ❋ तिनका १२ भेद १३ यह १४ सि० है कि जो अगले श्लोकोंमें कहूंगा वो ❋ सुन १५ तात्पर्य जो तुझमें रजोगुणी तमोगुणी वृत्ति हो उनको त्याग, सतोगुणीवृत्ति बढाव, कि जिससे तेरी ज्ञाननिष्ठा दृढ़ हो॥ ७ ॥

मू०–आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ॥ रस्याः
स्निग्धाःस्थिराहृद्याआहाराःसात्त्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः १ रस्याः २ स्निग्धाः ३ स्थिराः ४ हृद्याः ५ आहाराः ६ सात्त्विकप्रियाः ७ ॥ ८ ॥ अ०–उ०सतोगुणी आहारका लक्षण और फलभी एकही श्लोकमें कहतेहैं–अवस्था चित्तकी स्थिरता वा वीर्य वा उत्साह बल, आरोग्यता उपशमात्मकसुख प्रभूमें प्रीति इन छह पादर्थोंको बढाने वाला १ रसवाला २ कोमलतर ३ खानेके पीछे शरीरमें उसका रस

चिरकाल ठहरे ४ जिसके देखनेसेही मन प्रसन्न होजाय ५. सि० यह चारप्रकारका * आहार ६ सतोगुणीको प्रिय लगता है ७. सि०जैसे मोहनभोग तस्मै इत्यादि * ॥ ८ ॥

मू०—कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥
आहाराराजसस्येष्टादुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः १ आहाराः २ राजसस्य ३ इष्टाः ४ दुःखशोकामयप्रदाः५ ॥९॥ अ०—उ०रजोगुणी आहारको कहते हैं—अतिचरचरा, खट्टा, नमका, गरम, तीक्ष्ण, रूखा, दाहकरनेवाला १ आहार २ रजोगुणीको ३ प्रिय है ४ दुःख शोकरोगका देनेवाला है ५. सि० अतिशब्द सबकेसाथ लगाना अतिखट्टा, अतिनमका, अतिगरम, अतितीक्ष्ण, अतिरूखा, अतिदाहकरनेवाला, ऐसा भोजन रजोगुणीको प्रिय है ॥ ९ ॥

मू०—यातयामंगतरसंपूतिपर्युषितंचयत् ॥
उच्छिष्टमपिचामेध्यंभोजनंतामसप्रियम् ॥ १० ॥

यातयामम् १ गतरसम् २ पूति ३ पर्युषितम् ४ च ५ यत् ६ उच्छिष्टम् ७ च ८ अमेध्यम् ९ अपि १० भोजनम् ११ तामसप्रियम् १२॥१०॥अ०—उ०तमोगुणी आहारका लक्षण कहतेहैं-जो बनकर एक प्रहर बीत जावे१ ठंडा हो जावे, याने सूख जावे, २दुर्गंध जिसमें आवे ३ बासी ४ और ५ जो ६ जूंठा ७ और ८ अभक्ष्य९ भी १० भोजन ११ तमोगुणीको प्रिय है १२ ॥ १० ॥

मू०—अफलाकांक्षिभिर्यज्ञोविधिदृष्टोयइज्यते ॥
यष्टव्यमेवेतिमनःसमाधायससात्त्विकः ॥ ११ ॥

अफलाकांक्षिभिः १ यः २ यज्ञः ३ विधिदृष्टः ४ इज्यते ५ यष्टव्यम् ६ एव ७ इति ८ मनः ९ समाधाय १० सः ११ सात्त्विकः१२

॥ ११ ॥ अ०–उ०सतोगुणी यज्ञ कहते हैं–फलेच्छारहित पुरुष१ जो २ यज्ञ ३ विधिको देखकर ४ करते हैं, ५ यज्ञका करना अवश्य है ६ निश्चय ७ इसप्रकार ८ मनका ९ समाधान करके १० सि०करते हैं ❀ सो ११ सि० यज्ञ ❀ सतोगुणी १२ ॥ ११ ॥

मू०–अभिसंधायतुफलंदंभार्थमपिचैवयत् ॥
इज्यतेभरतश्रेष्ठतंयज्ञंविद्धिराजसम् ॥ १२ ॥

भरतश्रेष्ठ १ फलम् २ अभिसंधाय ३ तु ४ दंभार्थम् ५ अपि ६ च ७ एव ८ यत्९इज्यते १० तम् ११ यज्ञम् १२ राजसम् १३विद्धि १४ ॥ १२॥ अ०–उ०रजोगुणी यज्ञ कहते हैं-हे अर्जुन! १फलको२ अंतःकरणमें धारणकरके ३ वा ४ लोगोंको दिखानेकेलिये ५ भी ६।७।८जो ९ सि०यज्ञ ❀ किया जाता है १०, तिस ११ यज्ञको १२ रजोगुणी १३ जान तू १४ ॥ १२ ॥

मू०–विधिहीनमसृष्टान्नंमंत्रहीनमदक्षिणम् ॥
श्रद्धाविरहितंयज्ञंतामसंपरिचक्षते ॥ १३ ॥

विधिहीनम् १ असृष्टान्नम् २ मंत्रहीनम् ३ अदक्षिणम् ४ श्रद्धाविरहितम् ५ यज्ञम् ६ तामसम् ७परिचक्षते ८॥ १३॥ अ०–उ० तमोगुणी यज्ञ कहते हैं–वेदविधिरहित १सुंदर अन्न नहीं है जिसमें२ मंत्ररहित ३ दक्षिणारहित ४ श्रद्धारहित ५ यज्ञ ६ तमोगुणी ७ कहा है ८. तात्पर्य देखादेखी लोकोंकी लौकिक एक रीति समझकर प्रसिद्धिकेलिये कुपात्रोंको न्योंतकर ठंडा बासा कच्चा पक्का अन्न जिमादेना, न उनके सामने खडा होना, न उनके चरणोंको स्पर्श करना, न सुंदरप्रकार बोलना,न पीछे दक्षिणा देना; ऐसा यज्ञ तमोगुणीकहलाता है. ऐसे निर्भागोंके घर जो साधुब्राह्मण भोजन करनेको जाते हैं वे उससेभी निर्भाग हैं. क्योंकि सेरभर आटेकेलिये मूर्खोंको [illegible]ा लालाजी कहना पडता है ॥ १३ ॥

मू०–देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनंशौचमार्जवम् ॥
ब्रह्मचर्य्यमहिंसाचशारीरंतपउच्यते ॥ १४ ॥

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनम् १ शौचम् २ आर्जवम् ३ ब्रह्मचर्यम् ४ अहिंसा ५ च ६ शारीरम् ७ तपः ८ उच्यते ९ ॥ १४ ॥ अ०–उ० शरीरका तप कहते हैं–देवता, ब्राह्मण, गुरु, प्राज्ञ, कोईजाति विद्वान्, भक्त, ज्ञानी, इनका पूजन करना, १ पवित्र रहना २ नम्र रहना ३ ब्रह्मचर्यसे रहना ४ सि० ब्रह्मचर्यका लक्षण आनन्दामृतवर्षिणीके पांचवें अध्यामें लिखा है. आठप्रकारका मैथुन है उससे वर्जित रहना. ❀ हिंसा नकरना ५।६ सि० इसको ❀शरीरका ७ तप ८ कहते हैं ९. तात्पर्य देश, मकान, वस्त्र, पात्र, सब पवित्र हो जब शरीरकी पवित्रता है. और अन्न, जल, वीर्य, कुलादिभी पवित्र हो॥ १४ ॥

मू०–अनुद्वेगकरंवाक्यंसत्यंप्रियहितंचयत् ॥
स्वाध्यायाभ्यसनंचैववाङ्मयंतपउच्यते ॥ १५ ॥

यत् १ वाक्यम् २ अनुद्वेगकरम् ३ सत्यम् ४ प्रियम् ५ च ६ हितम् ७ च ८ स्वाध्यायाभ्यासनम् ९ एव १० वाङ्मयम् ११ तपः १२ उच्यते १३॥ १५॥ अ०–उ० वाणीका तप यह है–जो १ वाक्य २ सि० अन्यको ❀ उद्वेग न करे ३ सत्य ४ प्रिय ५ और ६ हितकरनेवाला ७ और ८ वेदशास्त्र पढनेका अभ्यास भी ९।१० वाणीका ११ तप १२ कहा है १३. तात्पर्य जो बात सच्ची शास्त्रविहित और हितकरनेवालीभी है परंतु जो कहनेके समय किसीको प्रिय न लगे, ऐसी बात कहनेमें भी दोष है. और ऐसी बात न कहनेमें भी दोष है कि श्रवणसमय तो प्रिय प्रतीत हो परंतु वेदविरुद्ध हो. अनुद्वेगकर सत्यं प्रियं हितं और चकारसे मितम् अर्थात् बहुत अर्थको संक्षेप करके थोडे अक्षरोंमें कहना यह पांचवा विशेषणवाक्यका चकारसे जानना चाहिये ॥ १५ ॥

मू०—मनःप्रसादःसौम्यत्वंमौनमात्मविनिग्रहः ॥
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते ॥ १६ ॥

मनःप्रसादः १ सौम्यत्वम् २ मौनम् ३ आत्मविनिग्रहः ४ भावसंशुद्धिः ५ इति ६ एतत् ७ तपः ८ मानसम् ९ उच्यते १० ॥ १६ ॥ अ०—उ० मनका तप कहते हैं—मन प्रसन्न रहना १ सि० सतोगुणीवृत्तिमें मन प्रसन्न रहता है. तमोगुणीरजोगुणीवृत्तिमें विक्षेप और मोहको प्राप्त होता है ❋ सरलता याने सीधापन २ मनन करना ३ विषयोंसे मनको रोकना ४ व्यवहारमें छल नहीं करना. ५ अर्थात् बाहर भीतर समवृत्ति रखना ५. यह ६।७ तप ८ मनका ९ कहाहै १० ॥ १६ ॥

मू०—श्रद्धयापरयातप्तंतपस्तात्रिविधंनरैः ॥
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैःसात्त्विकंपरिचक्षते ॥ १७ ॥

अफलाकांक्षिभिः १ युक्तैः २ नरैः ३ परया ४ श्रद्धया ५ तत् ६ त्रिविधम् ७ तपः ८ तप्तम् ९ सात्त्विकम् १० परिचक्षते ११ ॥ १७ ॥ अ०—उ० शरीरमनवाणीकरके तीनप्रकारका तप है, यह भेद तो पीछे कहा. अब तपको सात्त्विकादि भेद करके तीनप्रकारका कहते हैं. इसमंत्रमें सतोगुणी तपका लक्षण है—फलेच्छारहित १ एकाग्रचित्तवाले २ पुरुषोंने ३ परमश्रद्धाकरके ४।५ सो ६ तीनप्रकारका ७ तप ८ सि० मनवाणीशरीरकरके जो तप ❋ किया है ९ सि० सो तप ❋ सतोगुणी १० कहा है ११ तात्पर्य परमश्रद्धाके साथ चित्तको भलेप्रकार एकाग्रकरके फलेच्छारहितपुरुषोंने शरीरमनवाणीकरके जो तप किया है सो सतोगुणी है ॥ १७ ॥

मू०—सत्कारमानपूजार्थंतपोदंभेनचैवयत् ॥
क्रियतेतदिहप्रोक्तंराजसंचलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

यत् १ दंभेन २ सत्कारमानपूजार्थम् ३ च ४ एव ५ तपः ६ ... ७ तत् ८ इह ९ राजसम् १० प्रोक्तम् ११ चलम् १२ अध्रु-

वम् १३॥१८॥ अ०—जो १ दंभकरकेर सि० अथवा ❀ सत्कार मानपूजाके लिये३।४।५ तप ६ किया है ७ सो ८ शास्त्रमें ९ रजोगुणी १० कहा है ११. सि० क्योंकि ❀ अचल नहीं १२ अनित्य है १३. तात्पर्य अच्छेकर्म अपनी स्तुति करानेके वास्ते, लोगोंको दिखानेकेवास्ते, अपने सन्मानपूजाकेलिये, धनादिके प्राप्तिके लिये, और स्वर्गादि पुत्रमित्रादिकी प्राप्ति होनेकेलिये जो करते हैं वे पुरुषभी रजोगुणी हैं और वे कर्मभी सब रजोगुणी हैं. ऐसे कर्मोंका फल तुच्छ अनित्य होगा ॥ १८ ॥

मू०—मूढग्राहेणात्मनोयत्पीडयाक्रियतेतपः ॥
परस्योत्सादनार्थंवातत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

यत् १ तपः २ मूढग्राहेण ३ आत्मनः ४ पीडया ५ क्रियते ६ परस्य ७ उत्सादनार्थम् ८ वा ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ १९ ॥ अ०—जो१ तप २ दुराग्रह करके ३ सि० अविवेक पूर्वक ❀ इंद्रियोंको ४ दुःखदेकर ५ कियाहै, ६ दूसरेके ७ नाशार्थ ८ वा ९ सो १० सि० तप ❀ तमोगुणी ११ कहाहै १२ ॥ १९ ॥

मू०—दातव्यमितियद्दानंदीयतेऽनुपकारिणे ॥
देशेकालेचपात्रेचतद्दानंसात्त्विकंस्मृतम् ॥ २० ॥

दातव्यम् १ इति २ यत् ३ दानम् ४ दीयते ५ देशे ६ काले ७ च ८ पात्रे ९ च १० अनुपकारिणे ११ तत् १२ दानम् १३ सात्त्विकम् १४ स्मृतम् १५ ॥२०॥ अ०—उ०दान तीनप्रकारकाहै. प्रथम सतोगुणी दान कहते हैं—सि० अवश्य हमको दान ❀ देना चाहिये १ इसप्रकार २ सि० मनमें विचारकर ❀ जो ३ दान ४ दिया है ५ सि० सुन्दर ❀ देशमें ६ और उत्तमकालमें ७।८ सुपात्र, अनुपकारीको ९।१०।११ सो १२ दान १३ सात्त्विक १४ कहा है

१५ टी० गंगादितीर्थोंमें सुंदरजगे लीपीपोतीहुईमें जिसजगे बैठे हुए बुरी वस्तु न दीखे, दुर्गन्ध न आवे ६ पूर्णमासी व्यतीपातादिमें, भूकके समय, वा किसी सज्जनका काम अटक रहा है उससमय, भोजनकराना, मध्याह्नसे पहले ७. जिसको देना उससे उपकार किसी प्रकारका न चाहना, जहांतक बनसके अनजानपुरुषको छिपाकर दनी ११ विद्वान् साधु ब्राह्मण दानपात्र हैं, वा भूखा कोई जातिभी हो ९. इसदानके व्यवस्थामें एकपोथी जिसका नाम राजदूतोंकी कथा है. नागरी अक्षरोंमें, मुनशी शिवनारायण कायस्थ माथुर, कि जो आगरेमें श्रीमान् ऐश्वर्यवान् सद्गुणोंकी खान ब्रह्मविद्या और अंगरेजी फारसी छायाकी तसबीर अद्भुतबनाना इत्यादि लौकिकविद्यामें नागर प्रभुता पाकर अमानी दयावान्, परोपकारी प्रसिद्धहैं. उनकी बनाई हुई है. और प्राकृत (उर्दूविद्यामें) भी उन्होंनेही बनाई है. जिसका नाम का सदा नशाहीहै. उसपोथीके पढने सुननेसे विचारनेसे दानकी व्यवस्था भलेप्रकार प्रतीत होतीहै. तात्पर्य जो नौकरी, खेती, बनज करते हैं. वा जिनके पास किसीप्रकार द्रव्य है, उनको अवश्य दान करना चाहिये. क्योंकि पन्द्रह अनर्थ द्रव्यमें रहतेहैं, जो वो वेदोक्त दान न कियागया तो पन्द्रह अनर्थोंमें जो पाप होता है सो द्रव्यग्राहीको लगेगा. दान करनेसे उस पापकी निवृत्ति होती है. और दान करनेके लिये द्रव्यसंचय करना यह शास्त्रकी आज्ञा नहीं उसका यह फलहै, कि जैसे कीचमें हात साना फिर धोना. इस समयमें दान देना तो पृथक्रहा जो किसीको देता देखते सुनते हैं, तो जहांतक उनसे यत्न होसक्ता है, हँसी तर्ककरके उसकोभी वर्जितकरतेहैं मुमुक्षुको चाहिये कि ऐसे दुष्टोंका मुखभी न देखे. यह विचारकरले, कि दिनकी महीनेकी या वर्षकी कमाई इसमेंसे इतनाभाग दान करूंगा उस द्रव्यका, वा अन्नवस्त्रादिमोललेकर, दिनादिनप्रति वा वर्षमें महीनें जहांतक होसके गुप्त सुपात्रको देदिया करे जो प्रवृत्तिमें रहाकर-

दान नहीं करते. केवल माला तिलक घंटा घड़ियालसे मुक्ति चाहते हैं, परमेश्वर उनपर कभी प्रसन्न न होंगे ॥ २० ॥

मू०—यत्तुप्रत्युपकारार्थंफलमुद्दिश्यवापुनः ॥
दीयतेचपरिक्लिष्टंतद्राजसमुदाहृतम् ॥ २१ ॥

यत् १ तु २ प्रत्युपकारार्थम् ३ पुनः ४ वा ५ फलम् ६ उद्दिश्य ७ परिक्लिष्टम् ८ च ९ दीयते १० तत् ११ राजसम् १२ उदाहृतम् १३ ॥ २१ ॥ अ०—उ० रजोगुणीदान कहतेहैं. जो १ प्रत्युपकारके लिये २।३ वा ४।५ फलका ६ उद्देशकरके ७ वाक्लेशकलहसहित ८।९ दिया है १० सो ११ रजोगुणी १२ कहा है १३. टी० दानपात्रसे यह इच्छा रखना कि किसी समय किसी प्रकार यह हमको सहाय करेगा ३ यह चिंतवनकरके कि सन्तमहन्तोंकी टहल करनेसे धन-पुत्रादि मिलते हैं ६।७ क्याकरें जी हमारे पिताका आज श्राद्ध है, एक ब्राह्मण तो अवश्यही नौतना चाहिये. इसप्रकार लौकिक लज्जासे दान करके मनमें दुःख मानना. तात्पर्य महात्मा जो यह कहते हैं. कि दाता कलियुगमें नहीं हैं. यदिहैं भी तो सेवा कराकर देतेहैं. तदुक्तम् ॥ दातारोपिनसन्तिसन्तियदिचेत्सेवानुकूलाःकलौ ॥ तात्पर्य उनका यह है, कि कलियुगमें सतोगुणी दाता कमहैं विशेष रजोगुणी हैं. बहुत लोग दाता प्रसिद्धहैं. उनके दानकी यह व्यवस्था है, कि एकपुरुष राजाका नौकर है प्रजापर उसका हुकम है. किसीकी कथा कहलादेना वा शुभकामके नामसे चन्दाकरके कुछ उनको देदेना, कुछ आप रखलेना. कोई कोई सुपात्रोंकोभी अपने सुयशके लिये देतेहैं कोई साधुको अपने मकानपर ठहराय रखते हैं मकानके रक्षाके लिये. कोई साधुब्राह्मणकी टहल करते हैं दूसरे साधुब्राह्मण-को दुःखदेनेकेलिये. कोई लौकिकलज्जासे देखादेखी करते हैं. कोई इसप्रकार दान करते हैं. कि ब्राह्मणको नौकर रखलेते हैं वो उसने

जिमा देता है और खीचरीवस्त्रादिभी इसीप्रकार बांटते हैं. कोई ऐसे दानी प्रसिद्ध हैं कि छलदंभपाखंडकरके किसीका द्रव्य दबा लिया, वह दोष दबनेकेलिये दान करते हैं. उनकी वो व्यवस्था है "अहरनकी चोरी करें,करे सुईका दान । ऊंचेके देखन लगे, कितनी दूर बिमान" ऐसे दाता सद्गतिकी कदाचित् भी आशा न रक्खें॥२१॥

मू०–अदेशकालेयद्दानमपात्रेभ्यश्चदीयते ॥
असत्कृतमवज्ञातंतत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२॥

यत् १ दानम् २ अपात्रेभ्यः ३ अदेशकाले ४ च ५ दीयते ६ असत्कृतम् ७ अवज्ञातम् ८ तत् ९ तामसम् १० उदाहृतम् ११॥२२॥

अ०–जो १ दान २ कुपात्रोंको ३ और निषिद्धदेशकालमें ४।५ दियाहै ६ अथवा सुपात्रोंकोभी जो ❋ असत्कारपूर्वक ७ अवज्ञापूर्वक ८ सि० दिया है ❋ सो ९ तमोगुणी १० कहा है ११.टी० जिससमय महात्मा दैवयोगसे अपनेघरआवे,हाथजोडकर अभ्युत्थान न करे और ऐसा न बोले कि आपने बडी कृपा की ७ किसी आदमीसे कहदेना कि फकीर आया है, रोटी आटा देकर टालो.८चौकेसे बाहर बैठाकर अपवित्र जगेमें न्योतकर मध्याह्नसे पीछे जिमाना ४. नट, बाजीगर, वेश्या, इनको देना इत्यादि तमोगुणी दानहै ३.तात्पर्य द्रव्य बड़े बड़े दुःखपापोंसे प्राप्त होता है. बंधकाभी यह साधन है, मोक्षकाभी साधन है. इसको पाकर मोक्ष संपादन करे, एकदिन इससे अवश्य वियोग होगा. या तो द्रव्य पहले छोड देगा, या द्रव्य रक्खाही रहेगा, आपचले जावेंगे. श्रीभगवानने यह तीनप्रकारका भेद इसीवास्ते कहा है, कि दान सतोगुणी करना चाहिये. क्योंकि उससे परंपराकरके मोक्षकी प्राप्ति होती है. जो यह कहते हैं, कि अजी वेदोक्तसाधुब्राह्मण कहां हैं, यह उनकी समझ और श्रद्धा पुरुषार्थ यत्न मान बडाई इसमें दोष है कि जो उनको सुपात्र

नहीं मिलते. महात्मा जो यह कहते हैं. कि पृथिवीपर असंख्यात अमोल रत्न प्रसिद्ध हैं, जिनमें किसीकी ममता नहीं. निर्भागियोंको नहीं दीखते. उनका तात्पर्य सुपात्रोंसेहीहै. घरसे बाहर पैर नहीं रखते, कौवेकेसी दृष्टि है, माहात्माके भजन, पाठ, पूजा, विवेक, विद्यादि, सहस्रशः उनमें जो गुण हैं, उनको तो देखते नहीं कहते हैं कि अजी महात्मा किसीके घर क्यों जातेहैं इसानिर्भागीसे बूझना चाहिये कि जो घर आवें वे तो असाधुहैं, और तू मलमूत्रके पात्र स्त्री पुत्रादिको छोड़कर बाहर पैर न रक्खे तो फिर सुपात्र कैसे मिले निर्भागियोंके घर महात्मा नहीं जाते, यह बात सत्य है ॥ २२ ॥

मू०–ओंतत्सदितिनिर्देशोब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ॥
ब्राह्मणास्तेनवेदाश्चयज्ञाश्चविहिताः पुरा ॥ २३ ॥

ओम् १ तत् २ सत् ३ इति ४ ब्रह्मणः ५ निर्देशः ६ त्रिविधः ७ स्मृतः ८ तेन ९ ब्राह्मणाः १० वेदाः ११ च १२ यज्ञाः १३ च १४ पुरा १५ विहिताः १६॥२३॥ अ०–उ०जो मुमुक्षु यह चाहते हैं कि प्रभुके आज्ञासे यज्ञदानादिकर्म वेदोक्त सतोगुणी करें. परन्तु देशकालवस्तुके संबंधसे वा किसी अन्यप्रतिबन्धसे सतोगुणी वेदोक्त अनुष्ठान नहीं होसक्ता. इस हेतुसे दुःख पातेहैं उनकेलिये परम करुणाकर ब्रजचंद्र इसमंत्रमें उत्तम उपाय परमपवित्र गुप्त बतलाते हैं– ओम् १ तत् २ सत् ३ यह ४ ब्रह्मका ५ उच्चारण ६ तीनबेर ७ कहा है ८ सि० ब्रह्मविदोंने ❀ तिसने ९ अर्थात् ओंतत्सत् इसमंत्रनेही ९ ब्राह्मण १० और वेद ११।१२ और यज्ञ १३।१४पहले१५ उत्तम पवित्र किये हैं१६. तात्पर्य स्नान, दान, भोजन पाठ, इत्यादि, करनेसे पहले और. पीछे यह मंत्र ओंतत्सत् तीनबार कहे. अंगहीनक्रियाभी सतोगुणी होके वेदोक्त फल देगी. यह विधि अनादि है. महात्मा जानते हैं. इसके प्रतापसे सदा निर्दोष रहते हैं श्रीभग;

वान् अगले मंत्रोंमें ओंतत्सत् इन तीनों नामोंका माहात्म्य पृथक् पृथक् कहेंगे. यह परमात्माका एकएक नाम पवित्र करके ब्रह्मको प्राप्त करता है. जो तीनों नामोंका उच्चारण करेगा उसके पवित्र होनेमें क्या सन्देह है. इसमें यही कैमुतिक न्याय है. वेदोंमें यह मंत्र सार है जिसमंत्रमें इन तीनों नामोंमेंसे एकभी नाम होगा, उसमंत्रका फल शीघ्र अवश्य होगा. मंत्रोंमें इनहीं नामोंकी शक्ति है. पोथियोंके और मंत्रोंके आदिमें इन तीनों नामोंमेंसे एक दो नाम अवश्य होतेहैं. जब कि वेद ब्राह्मणादिकी बडाई इसमंत्रके प्रतापसे है, फिर विनाइ-समंत्रके जपे कोई क्रिया कब श्रेष्ठ होसक्ती है इसहेतुसे क्रियाके आदि अन्तमें इसमंत्रका तीनबेर अवश्य उच्चारण करना योग्य है ॥२३॥

मू०–तस्मादोमित्युदाहृत्ययज्ञदानतपःक्रियाः ॥
प्रवर्तन्तेविधानोक्ताः सततंब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥

तस्मात् १ ओम् २ इति ३ उदाहृत्य ४ यज्ञदानतपःक्रियाः ५ विधानोक्ताः६ सततम् ७ ब्रह्मवादिनाम् ८ प्रवर्तन्ते ९॥२४॥अ०–सि० अब पृथक पृथक् नामका इसमंत्रमें माहात्म्य कहते हैं. ओम् इसनामका माहात्म्यहै जब कि वेदादि इन नामोंसेही श्रेष्ठ पवित्रकिये गये हैं ❋ तिसहेतुसे १ओम् २ऐसा३उच्चारकरके ४ यज्ञदानतपरूप-क्रिया ५ वेदोक्त ६ सदा ७ ब्रह्मनिष्ठोंकी ८ होती हैं ९ ॥ २४ ॥

मू०–तदित्यनभिसंधायफलंयज्ञतपःक्रियाः ॥
दानक्रियाश्चविविधाः क्रियन्तेमोक्षकांक्षिभिः॥२५॥

मोक्षकांक्षिभिः १ तत् २ इति ३ फलम् ४ अनभिसंधाय ५ यज्ञः तपःक्रियाः ६ दानक्रियाः ७ च ८ विविधाः ९ क्रियन्ते १० ॥२५॥ अ०– मोक्षेच्छावाले १ तत २ यह ३ सि० नाम उच्चारणकरके और ❋ फलका ४ चितवन न करके ५ यज्ञतपरूपक्रिया ६

और दानक्रिया ७ । ८ नानाप्रकारकी ९ करतेहैं १०. सि० महावाक्यमें यही नाम है ❀ ॥ २५ ॥

मू०—सद्भावेसाधुभावेचसदित्येतत्प्रयुज्यते ॥
प्रशस्तेकर्मणितथासच्छब्दःपार्थयुज्यते ॥ २६ ॥

पार्थ १ सद्भावे २ साधुभावे ३ च ४ सत् ५ इति ६ एतत् ७ प्रयुज्यते ८ तथा ९ प्रशस्ते १० कर्मणि ११ सत् १२ शब्दः १३ युज्यते १४ ॥ २६ ॥ अ०—हे अर्जुन! १ सद्भावमें २ और साधुभावमें ३। ४ सत् ५ यह ६ । ७ सि० नाम ❀ कहाजाता है ८. और ९ सि० विवाहादि ❀ मंगलकर्ममें. १० । ११ सत् १२ शब्द १३ कहा जाता है १४ ॥ २६ ॥

मू०—यज्ञेतपसिदानेचस्थितिःसदितिचोच्यते ॥
कर्मचैवतदर्थीयंसदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥

यज्ञे १ तपसि २ दाने ३ च ४ स्थितिः ५ सत् ६ इति ७ च ८ उच्यते ९ तदर्थीयम् १० कर्म ११ च १२ एव १३ सत् १४ इति १५ एव १६ अभिधीयते १७ ॥ २७ ॥ अ०—उ० इस मंत्रमेंभी सत्नामका माहात्म्य है—यज्ञमें १ तपमें २ और दानमें ३।४ सि० जो ❀ स्थिति ५ सि० उसको ❀ सत् ६ ऐसा ७।८ कहते हैं. ९ ईश्वरार्थ १० कर्मको ११ भी १२।१३ सत्ही १४।१५।१६ कहते हैं. १७ तात्पर्य जो पुरुष यज्ञादि परमेश्वरार्थ सदा करते रहते हैं, उनको सत्फल प्राप्तहोगा, जिसका कभी नाश न हो ॥ २७ ॥

मू०—अश्रद्धयाहुतंदत्तंतपस्तप्तंकृतंचयत् ॥
असदित्युच्यतेपार्थनचतत्प्रेत्यनोइह ॥ २८ ॥

अश्रद्धया १ हुतम् २ दत्तम् ३ तपः ४ तप्तम् ५ च ६ यत् ७ कृतम् ८ इति ९ असत् १० उच्यते ११ पार्थ १२ तत् १३ प्रेत्य १४ नच १५ नो १६ इह १७ ॥ २८ ॥ अ०—उ० श्रद्धापूर्वक जो

दानादि नहीं करते, केवल लौकिक लज्जासे करते हैं, उनको फल न यहां होता है, न मरकर परलोकमें. यह अर्थ इसमंत्रमें प्रकट करते हुए अश्रद्धावान्की निंदा करते हैं–अश्रद्धासे १ हवनकिया २ दिया ३ तपकिया ४। ५ और जो किया ६। ७। ८ यह ९ सि० सब ❀ असत् १० कहाहै ११. अर्थात् निष्फल, निंदित, झूंठा, वृथा ऐसाहै ११ हे अर्जुन! १२ सो १३ न मरकरके १४। १५ न १६ इसलोकमें १७. तात्पर्य मोक्षमार्गमें सब कर्मोंसे प्रथम श्रद्धा है. जिसकी वेद ब्राह्मणादिमें श्रद्धाहै, सो मुक्त होगा. इत्यभिप्रायः॥ २८॥

इति श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अथ अष्टादशोऽध्यायः १८.

मू०–अर्जुनउवाच ॥ संन्यासस्यमहाबाहोतत्त्वमिच्छामिवेदितुम् ॥ त्यागस्यचहृषीकेशपृथक्केशिनिषूदन ॥ १ ॥

अर्जुनउवाच. महाबाहो १ हृषीकेश २ केशिनिषूदन ३ संन्यासस्य ४ च ५ त्यागस्य ६ तत्त्वम् ७ पृथक् ८ वेदितुम् ९ इच्छामि १० ॥ १ ॥ अ०–उ० इस अध्यायमें समस्तगीताकासार संक्षेपसेहै–अर्जुन कहता है हे महाबाहो! १ हे हृषीकेश! २ हे केशिनिषूदन! ३ संन्यास ४ और ५ त्यागके ६ तत्त्वको ७ पृथक् ८ जाननेकी ९ मैं इच्छा करता हूं १०. टी० १। २। ३ ये तीनोंनाम श्रीकृष्णचन्द्रकेहैं. तात्पर्य हे भगवन्! त्यागशब्दका और संन्यास शब्दका अर्थ मुझसे कहो. दोनों पदोंका अर्थ पृथक् पृथक् मैं जाननाचाहताहूं. त्याग और संन्यास इनदोनों पदोंका अर्थ भगवान् भलेप्रकार अगले मंत्रमें कहेंगे. प्रसंगसे चतुर्थाश्रम [illegible] का अर्थ संक्षेपकरके यहां लिखदेते हैं. त्याग और संन्यासका

अर्थ वास्तव एकही है. संन्यास दोप्रकारकाहै. अंतरंग१और बहिरंग २ संन्यास ज्ञाननिष्ठाका अंग है. अंतरंगसंन्यासका अर्थ तो श्रीभगवान् भले प्रकार इसअध्यायमें कहेंगे. बहिरंग संन्यासका अर्थ यहां लिखाजाता है, सो बहुत प्रकारका है. कुटीचक १ क्षेत्र २ बहूदक ३ विविदिषा ४ विद्वत् ५ हंस ६ परमहंस ७ और भी बहुत भेद हैं. इनका अर्थ अंकके क्रमसे लिखते हैं. वाणिज्यादिव्यवहार छोड ग्रामसे बाहर शरीरयात्रामात्र कुटीमें बैठ भगवद्भजन ब्रह्मविचार करना अपने संबंधी और औरोंको सम समझना कोई घरका वा बाहरका भोजन देजावे, उसीसे देहका निर्वाह करलेना. यह कुटीचकसंन्यासीका लक्षण है और कनिष्ठ अंग उसका यह भी है कि देहयात्रामात्र कुछ आजीविकाका यत्न करके एकान्तमें निवास करना १ जैसे कुटीचकका लक्षण कहा वैसाही कुटीशब्दके जगह क्षेत्र समझ लेना चाहिये. क्षेत्रमें देहयात्राके लिये माधुकरी मांग खानेमें दोष नहीं २ घरको त्यागकर विचरता रहे, एकजगे न रहे ३. वेदान्तशास्त्र श्रवण करनेकेलिये गृहस्थाश्रमको त्यागना और त्यागके पीछे दिनरात्रि सदा श्रवण मनन निदिध्यासन करते रहना ४. जीवन्मुक्तिका जो आनन्द उसकेलिये गृहस्थाश्रमका त्याग करना. इससंन्यासको वे धारण करतेहैं, जिनको गृहस्थाश्रमम संशयविपर्ययरहित साक्षात्कार ब्रह्मज्ञानका होगया है. ५ जिसप्रकार हंस दूध और जलको जुदा करके दूधही पान करता है, इसीप्रकार परमहंस महात्मा देहादिपदार्थोंसे अपने स्वरूपको पृथक् विलक्षण समझकर सदा स्वरूपमेंही निष्ठा रखते हैं. इसीको हंससंन्यास कहतेहैं. ६ वस्त्रादिकाभी त्याग करके मौन रहना उसको परमहंससंन्यास कहते हैं. ७ यह अर्थ संन्यासका एक नाममात्र लिखदिया है जो किसीको कुटीचकादिसंन्यास करना हो तो वो उसकी विधि मन्वादिधर्मशास्त्र और उपनिषदोंमसे श्रवण करके संन्यास करे. दंडधारणपूर्वक संन्यासमें तो कर्म-

डके विधिसे ब्राह्मणशरीरकोही अधिकार है. क्योंकि कर्मकांडमें वेदोक्तकर्मकरनेवाले ब्राह्मणजातिकोही बड़ा कहते हैं और उपासक भगवद्भक्तकोही बड़ा कहते हैं. भगवद्भक्तव्यवहारमें कोई जाति हो, सबसे बड़ा है और जो व्यवहारमेंभी ब्राह्मणजाति हो, तो क्या कहना है विदुरजी; गुह, निषाद, शबरी, इत्यादि हजारोंकी कथा साक्षी हैं और ज्ञानी ब्रह्मवित्को बडा कहते हैं. ब्राह्मणशब्दका अर्थ यही है, "ब्रह्मजानाति स ब्राह्मणः" जो व्यवहारमें ब्राह्मणजाति कहे-जाते हैं, उनको वैराग्य नभी हो, तोभी अवस्थाके चतुर्थभागमें- उनको गृहस्थाश्रम छोड़ना चाहिये. नहीं तो पाप प्रायश्चित्तका भागी होना पड़ेगा और जो वैराग्य हो तो वो कोई जाति सब अवस्थामें उसको संन्यासका अधिकार है. " यदहरेवविरजेत्तदहरेवप्रव्रजेत् " इसश्रुतिका यह अर्थ है कि जिसदिन वैराग्य हो, उसीदिन संन्यास करे. त्याग (संन्यास) में सबको अधिकार है हजारों विरक्तमहात्मा कि जो व्यवहारमें ब्राह्मणजाति नहीं, लेकिन ब्रह्मवित्, ज्ञानी, दर्श-नीय, पूजनीयहैं, और हजारों होगये. विना संन्यास और विरक्तताके मुक्ति न होगी परमेश्वरका अनुग्रह और पूर्वसंस्कारतो दूसरी बात है. गृहस्थाश्रममें जिसको ज्ञान हुआ यह पूर्वसंस्कार और परमेश्व-रकी कृपा समझना चाहिये. नहीं तो निवृत्तिमार्गकी बडाई क्या हुई. प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग दोनों बराबर होगये. साधुमहा-त्माविरक्तोंका माहात्म्य वेदशास्त्र और अवतारोंने क्या वृथाही कहा है. तात्पर्य विरक्त अवश्य होना चाहिये. विरक्तिमें और निवृत्तिमें सबको अधिकार है. देशकालवस्तुका नियम प्रवृतिमार्गमें है, निवृत्तिमार्गमें नहीं ॥ १ ॥

मू०-श्रीभगवानुवाच ॥ काम्यानांकर्मणांन्यासंसंन्या-
संकवयोविदुः ॥ सर्वकर्मफलत्यागंप्राहुस्त्यागं
विचक्षणाः ॥ २ ॥

कवयः १ काम्यानाम् २ कर्मणाम् ३ न्यासम् ४ संन्यासम् ५ विदुः ६ विचक्षणाः ७ सर्वकर्मफलत्यागम् ८ त्यागम् ९ प्राहुः १० ॥ २ ॥ अ०—सि० कोईकोई ❀ पंडित १ काम्य २ कर्मोंके ३ न्यासको ४ संन्यास ५ जानतेहैं. ६सि० कोई कोई ❀ पंडित७सब कर्मोंके फलत्यागको ८ त्याग ९ कहते हैं १०. टी० काम्यशब्दका अर्थ कोई तो ऐसा करते हैं. स्त्री धनादिके निमित्त जो कर्म वो त्यागना योग्य है. नित्य प्रायश्चित्तकर्म करना चाहिये इसीका नाम संन्यास है. और कोई महात्मा काम्यशब्दका अर्थ यह करते हैं कि समस्तकर्मोंका त्याग करना योग्य है, इसका नाम संन्यास है. सकामकर्मोंका त्याग दोनोंको सम्मत है और कुछ न करनेसे सकामकर्मभी अच्छा है. पुत्रस्वर्गादिकी इच्छाकरनेवाला यज्ञकरे. ऐसा वेदमें सुनाजाता है. परन्तु इसजगह काम्यशब्दका अर्थ यहीहै. कि सबकर्मोंके त्यागका नाम संन्यासहै. नहीं तो दोनोंजगह कर्मका विधि रहता है. जब कि एककर्मका विधि है. और वो किसीहेतुसे न बना तो कर्ताको प्रायश्चित्तभी अवश्यकहै और जबकी उसको पाप लगा और प्रायश्चित्त करना पड़ा, फिर मुक्त कैसा होगा. सदा बन्धनमें रहा इसहेतुसे अधिकार भेदकरके इस श्लोकका तात्पर्य यह समझना चाहिये. शुद्धांतःकरणवाले निष्काम पुरुष सब कर्मोंके त्यागको संन्यास जानतेहैं और इसभूमिकाके इच्छावाले सब कर्मोंके केवल फलत्यागको संन्यास जानते हैं सबकर्मोंके फलका त्याग इसीका नाम संन्यास जो कहते हैं तो चतुर्थाश्रम जो संन्यास है, उसका विधि क्या वृथाही रहा. तात्पर्य सब कर्मोंके फलका त्यागकरना और कर्म करना इसको कोईकोई पंडित त्याग कहते हैं और सबकर्मोंको स्वरूपसे त्याग देना, इसीको पंडित संन्यास कहतेहैं. जबतक अन्तःकरण शुद्ध न हो, तबतक कर्म कर ...

फल त्याग दे. और जब अन्तःकरण शुद्ध होजाय, तब सबकर्मोंको त्याग करदेना इत्यभिप्रायः ॥ २ ॥

मू०–त्याज्यंदोषवदित्येकेकर्मप्राहुर्मनीषिणः ॥
यज्ञदानतपःकर्म नत्याज्यमितिचापरे ॥ ३ ॥

एके १ मनीषिणः २ इति ३ प्राहुः ४ दोषवत् ५ कर्म ६ त्याज्यम् ७ च ८ अपरे ९ इति १० यज्ञदानतपःकर्म ११ न १२ त्याज्यम् १३ ॥ ३ ॥ अ०–एक १ पंडित २ यह ३ कहते हैं ४ सि० कि ❀ दोषवाला ५ कर्म ६ त्यागना योग्य है ७ और ८ अपर ९ अर्थात् कोई एक पंडित ९. यह १० सि० ` हैं कि ❀ यज्ञ दान तप कर्म ११ नहीं १२ त्यागना चाहिये १३. तात्पर्य सब कर्मोंके त्यागमें अन्यमतवालोंकाभी सम्मत है. इसीबातके दृढ़ करनेके लिये सांख्यशास्त्रवालोंका मत दिखाया. सांख्यशास्त्रवाले कहते हैं कि यज्ञादिकर्मोंमें हिंसा असमतादि दोष हैं. इसवास्ते उनको त्यागना योग्य है. और पूर्वमीमांसावाले यह कहते हैं कि वेदके आज्ञामें शंकाकरना न चाहिये. यज्ञादिकर्म करना योग्य है, जो वेदोंने कहा. यदि उसमें हिंसाभी प्रतीत होती हो, तोभी वो कर्म श्रेष्ठ है. अधिकारीप्रति दोनोंका कहना सत्य है प्रवृत्तिमार्गवाला अवश्य यज्ञादिकर्म करे. और निवृत्तिमार्गवाला कर्मोंमें विक्षेप समझकर कर्मको त्याग दे, शमदमादिका अनुष्ठान करे ॥ ३ ॥

मू०–निश्चयंशृणुमेतत्रत्यागेभरतसत्तम ॥
त्यागोहिपुरुषव्याघ्रत्रिविधः संप्रकीर्त्तितः ॥ ४ ॥

भरतसत्तम १ तत्र २ त्यागे ३ निश्चयम् ४ मे ५ शृणु ६ पुरुषव्याघ्र ७ हि ८ त्यागः ९ त्रिविधः १० संप्रकीर्तितः ११ ॥ ४ ॥ अ०–उ० आस्तिकमार्गवालोंमेंभी जो भेद प्रतीत होताहै, कि जो पिछले श्लोकमें कहा इसके निवृत्तिके लिये दोनोंका सिद्धांत तात्पर्यार्थ कहतेहैं–

हे अर्जुन ! १ तिस २ त्यागके विषय ३ निश्चय ४ मेरे ५ सि० वचनसे ❀ सुन ६ हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! ७ सि० त्यागका अर्थ जानना कठिन है ❀ क्यों कि ८ त्याग ९ तीनप्रकारका १० कहा है ११. तात्पर्य हे अर्जुन ! त्याग तीनप्रकारका है इस हेतुसे त्यागका अर्थ कठिनहै. त्याग और संन्यास इनदोनों शब्दोंका एकही अर्थ है, सो मुझसे सुन प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग ये दोनों अनादि हैं. वेदोंमें जहां कर्मका त्याग कहा है. वो निवृत्ति विरक्तमहापुरुषोंकेलिये कहा है. और जहां कर्मका अनुष्ठान कहा है वो प्रवृत्त रागीजनोंके लिये कहा है. ऐसा वेदोंका तात्पर्य सत्पुरुषोंकी कृपासे जानाजाता है. शास्त्रोंमें किंचिन्मात्र भेद नहीं, अपने समझका भेद है ॥ ४ ॥

मू०—यज्ञदानतपःकर्मनत्याज्यंकार्यमेवतत् ॥
यज्ञोदानंतपश्चैवपावनानिमनीषिणाम् ॥ ५ ॥

यज्ञः १ च २ दानम् ३ तपः ४ एव ५ मनीषिणाम् ६ पावनानि ७ एव ८ तत् ९ यज्ञदानतपःकर्म १० न ११ त्याज्यम् १२ कार्यम् १३ ॥५॥ अ०—उ० तीनप्रकारका याग श्रीभगवान् अभी आगे कहेंगे प्रथम दो श्लोकोंमें अपना सिद्धांत कहते हैं यज्ञ १ और २ दान ३, तप ४ निश्चय ५ पंडितोंको ६ पवित्र करनेवाले ७ सि० हैं ❀ इस वास्ते ८ सोई ९ यज्ञदानतपकर्मको १० नहीं ११ त्यागना योग्य है १२ करनेको योग्यहै १३. तात्पर्य यज्ञदानादिकर्म अंतःकरणको शुद्ध करते हैं, इसवास्ते ज्ञानके प्रथम भूमिकावालेको कर्म त्यागना न चाहिये. स्पष्टार्थ है कि पवित्रकी विधि अपवित्र वस्तुमें होती है अपवित्र वस्तुमें पवित्र विधि नहीं होती. जिनको संसारसे वैराग्य नहीं, और भगवद्भक्त जिनको प्राणोंके बराबर प्यारे नहीं, वे निश्चय करें कि हमारा अंतःकरण शुद्ध नहीं विरक्तोंकी सेवा पूजासे हमारा अंतःकरण शुद्ध होगा ॥ ५ ॥

मू०–एतान्यपितुकर्माणिसंगंत्यक्त्वाफलानिच ॥
कर्तव्यानीतिमेपार्थनिश्चितंमतमुत्तमम् ॥ ६ ॥

पार्थ १ एतानि २ कर्माणि ३ संगम् ४ च ५ फलानि ६ त्यक्त्वा ७ अपि ८ तु ९ कर्तव्यानि १० इति ११ मे १२ निश्चितम् १३ उत्तमम् १४ मतम् १५॥६॥अ०–हे अर्जुन! १ये २ सि०तपदानादि ❋कर्म ३ आसक्ति ४ और ५ फलका ६ त्यागकरके ७ निश्चयसे ८।९ करनेको योग्यहैं. १०यह ११ मेरा१२निश्चयसे १३ उत्तम १४ मत १५ सि० है ❋ तात्पर्य हे अर्जुन! तपदानादि अंतःकरणको शुद्ध करते हैं. इसवास्ते मुमुक्षुको अवश्य करना चाहिये. मेराभी यही उत्तम मत है, और औरोंकाभी कर्मके विधिमें यही तात्पर्य है. विना अंतःकरण शुद्ध हुए जो वेदोक्त बहिरंगकर्मोंका त्याग करदेतेहैं अवैदिक मार्गवालोंकी बात सुनकर या निवृत्तिमार्गवालोंकी श्रुतिस्मृतिप्रमाण देकर वे पापके भागी होते हैं क्योंकि शास्त्रार्थ उन्होंने उलटा समझा ॥ ६ ॥

मू०–नियतस्यतुसंन्यासःकर्मणोनोपपद्यते ॥
मोहात्तस्यपरित्यागस्तामसःपरिकीर्त्तितः ॥ ७ ॥

नियतस्य १ कर्मणः २ संन्यासः ३ न ४ उपपद्यते ५ तु ६ मोहात् ७ तस्य ८ परित्यागः ९ तामसः १० परिकीर्तितः ११ ॥७॥ अ०–उ०पीछे भगवान्‌ने कहाथा कि त्याग तीनप्रकारकाहै उसको कहते हैं–नित्यसन्ध्यादि १ कर्मका २ त्याग ३ न ४ करनाचाहिये ५ और ६ मोहसे ७ तिसका ८ त्याग ९ सि० करदेना ❋ तमोगुणी त्याग १० कहा है ११. तात्पर्य जिज्ञासु याने मुक्तिकी इच्छा है जिसको वो नित्यकर्मोंको त्याग न करे और जो भूली या मूर्खतासे त्याग करेगा तो वो त्याग तमोगुणी कहा जायगा. ऐसे त्यागका फल मोक्ष नहीं पीछे ऐसा त्याग महाक्लेश देता है ॥ ७ ॥

मू०—दुःखमित्येवयत्कर्मकायक्लेशभयात्त्यजेत् ॥
सकृत्वाराजसंत्यागंनैवत्यागफलंलभेत् ॥ ८ ॥

यत् १ कर्म २ कायक्लेशभयात् ३ त्यजेत् ४ दुःखम् ५ इति ६ एव ७ सः ८ राजसम् ९ त्यागम् १० कृत्वा ११ त्यागफलम् १२ न १३ लभेत् १४ एव १५ ॥ ८ ॥ अ०—जो १ कर्म २ कायक्लेशके भयसे ३ त्यागता है ४ सि० उसमें ❋ दुःख ५।६।७ सि० समझकर ❋ सो ८ रजोगुणी ९ सि० ऐसे ❋ त्यागको १० करके ११ त्यागके फलको १२ नहीं १३ प्राप्त होता है १४ निश्चयसे १५ तात्पर्य रजोगुणीपुरुष मैला अन्तःकरण होनेसे स्नानदानादिकर्मोंको दुखःरूप जानता है यह नहीं समझता कि इन कर्मोंसे मेरा अन्तः-करण शुद्ध होकर मुझको ज्ञान प्राप्त होगा कि जिससे सब दुखोंकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होती है इसवास्ते विना आत्मबोध हुएही या कायक्लेशके भयसे कर्मोंको त्याग देता है, विनाअन्तःकरण शुद्ध हुए त्यागका फल (ज्ञाननिष्ठा) उसको प्राप्त नहीं होता ॥८॥

मू०—कार्यमित्येवयत्कर्मनियतंक्रियतेऽर्जुन ॥
संगंत्यक्त्वाफलंचैवसत्यागःसात्त्विकोमतः ॥ ९ ॥

अर्जुन १ यत् २ नियतम् ३ कर्म ४ कार्यम् ५ इति ६ एव ७ संगम् ८ च ९ फलम् १० त्यक्त्वा ११ क्रियते १२ सः १३ त्यागः १४ एव १५ सात्त्विकः १६ मतः १७ ॥ ९ ॥ अ०—उ० सतोगुणी त्याग यह है—हे अर्जुन १ जो २ नित्य ३ कर्म ४ सि० है, सो ❋ करना चाहिये ५ यह निश्चयहै. ६।७ संगको ८ और ९ फलको १० त्याग कर ११ सि० जो त्याग ❋ किया जाता है १२ सो १३ त्याग १४ निश्चयसे १५ सतोगुणी १६ माना है १७ तात्पर्य हे अर्जुन ! जो नित्यकर्महै, उसको ब्रह्मजिज्ञासु अवश्य करे, परंतु उसमें संग न करे और उसके फलका त्याग करे सो त्याग सतोगुणी है.

इसप्रकार जो कर्म करते हैं, उनका अन्तःकरण शुद्ध होता है. फिर साधनचतुष्टयसंपन्न होकर, ब्रह्मविद्याका श्रवण करके अपने स्वरूपको जानकर कृतकृत्य होजाते हैं. उनको फिर कुछ कर्तव्य नहीं रहता ॥ ९ ॥

मू०-नद्वेष्ट्यकुशलंकर्मकुशलेनानुषज्जते ॥
त्यागीसत्त्वसमाविष्टोमेधावीछिन्नसंशयः ॥ १० ॥

अकुशलम् १ कर्म २ न ३ द्वेष्टि ४ कुशले ५ न ६ अनुषज्जते ७ त्यागी ८ सत्त्वसमाविष्टः ९ मेधावी १० छिन्नसंशयः ११ ॥ १० ॥

अ०-उ० जिसका शुद्ध अन्तःकरण होजाता है, उसका लक्षण यह है-बुरा १ सि० जो ❋ कर्म २ सि० उसके साथ ❋ नहीं ३ वैर करता है. ४ अच्छे कर्ममें ५ नहीं ६ प्रीति करता है. ७ बुरे भले दोनों कर्मोंका फल त्याग देता है. ८ आत्मा और अनात्माका जो विवेक उसकरके ९ अर्थात् विचारवान् ९ आत्मनिष्ठ १० संदेहरहित ११सि० ऐसा होताहै. ❋ तात्पर्य जबतक प्राणीको इच्छा रहती है, तबतक अच्छे कर्मोंमें प्रीति रखता है और उसके वास्ते नानाप्रकारके यत्न करता है. अच्छे कर्म और बुरे कर्मोंका साथहै बुरे कर्म परवश होजाते हैं इच्छारहित पुरुषको बुरा भला कर्म नहीं लगता जो भलेकर्मोंका फल चाहेगा उसको बुरेकर्मोंका फल परवश होगा. विवेकी विचारवान् शुद्धान्तःकरणवाला सन्देहरहित सदा आत्मनिष्ठ रहता है ज्ञानीको परमानन्दस्वरूप आत्माके सामने सब कर्मोंके फल तुच्छ प्रतीत होते हैं ॥ १० ॥

मू०-नहिदेहभृताशक्यंत्यक्तुंकर्माण्यशेषतः ॥
यस्तुकर्मफलत्यागीसत्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

देहभृता १ अशेषतः २ कर्माणि ३ त्यक्तुम् ४ नहि ५ शक्यम् ६ यः ७ तु ८ कर्मफलत्यागी ९ सः १० त्यागी ११ इति १२

अभिधीयते १३॥ ११ ॥ अ०—उ०जो कोई यह समझे कि कर्मोंका फल त्यागनेसे कर्मोंकोही त्यागदेना अच्छाहै. इसवास्ते श्रीभगवान् कहते हैं, कि अज्ञानी जीव समस्तकर्मोंको नहीं त्यागसक्ता. फलहीका त्याग करसक्ता है. कर्मोंका फल त्यागनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है.यह परम फल है और इसीसे ज्ञान होता है.ज्ञानी समस्तकर्म त्यागसक्ता है क्योंकि कर्मोंका फल जो अज्ञानकी निवृत्ति थी सो हुई. जबतक अज्ञान दूर न हो तबतक कर्मोंका त्याग न चाहिये-वर्णाश्रमाभिमानी अज्ञानी जीव १ समस्त २ कर्म३ त्यागनेको४नहीं५ समर्थ है.६ जो७।८ कर्मके फलका त्यागी ९ सि०है *सो १० त्यागी११। १२ कहा है १३ तात्पर्य अज्ञानीजीव कर्मोंके त्यागनेसे बन्धनको प्राप्त होता है. क्योंकि अन्तःकरणके शुद्धिका उपाय उसने छोडदिया और ज्ञानी कर्म करता हुआभी अकर्ता ही है. क्योंकि आत्मा सदा असंग अक्रिय ऐसाहै इसज्ञानके प्रतापसेमुक्त होताहै११

मू०—अनिष्टमिष्टंमिश्रंचत्रिविधंकर्मणःफलम् ॥
भवत्यत्यागिनांप्रेत्यनतुसंन्यासिनांक्वचित् ॥१२॥

अनिष्टम् १च २ इष्टम् ३मिश्रम् ४ त्रिविधम्५कर्मणः६ फलम्७ प्रेत्य ८ अत्यागिनाम् ९ भवति१०तु ११ संन्यासिनाम् १२ क्वचित् १३ न १४॥१२॥अ०—उ०जो कर्मोंका फल त्याग देतेहैं उनका अन्तःकरण शुद्ध होकर उनको परमानन्दपरमफलकीप्राप्ति होती है और जो सकामकर्म करते हैं, उनको इष्ट और अनिष्ट और इष्टानिष्ट अर्थात् मिलाहुआ यह तीनप्रकारका फल होता है और जो विना अन्तःकरण शुद्धहुए कर्म छोड देते हैं,वे सदा नरक और पशुपक्षियोंकी योनियोंमें जन्मलेकर वारंवार मरते हैं. इसवास्ते श्रीभगवान् वारंवार जिज्ञासुको निष्कामकर्मका उदेश फलके सहित करते-हैं नरकादि१ और २ स्वर्गादि ३ सि०और *मनुष्यादि

मनुष्यादि देहोंकी प्राप्ति४ सि० यह ❀ तीनप्रकार५कर्मका६फल ७ मरकरके ८ सकामोंको ९ होता है १०. और ११ संन्यासियोंको१२ कभी १३ नहीं १४ सि० होता है. ❀ तात्पर्य स्वर्गादि अनित्य और दुःखदा॰ पदार्थ हैं. भगवद्भजन करके जो अनित्यफलकी प्राप्ति हुई तो क्या हुआ नित्यएकरसपरमानन्दकीप्राप्ति होना चाहिये, सो संन्यासियोंकोही होतीहै-श्रीभगवान् स्पष्ट बेसन्देह कहतेहैं॥१२॥

मू०-पंचैतानिमहाबाहोकारणानिनिबोधमे ॥
सांख्येकृतांतेप्रोक्तानिसिद्धयेसर्वकर्मणाम् ॥१३॥

महाबाहो १ सर्वकर्मणाम् २ सिद्धये ३ एतानि ४ पंच ५ कारणानि ६ सांख्ये ७ कृतान्ते ८ प्रोक्तानि ९ मे १० निबोध ११ ॥ १३ ॥ अ०-उ०कर्म और कर्मोंके फलका तब त्याग होसक्ता है कि जब कर्मोंके जड़का ज्ञान हो. इसवास्ते कर्मोंके जो कारण हैं तिनको बताते हैं-हे अर्जुन!१सब कर्मोंके२ सिद्धिकेवास्ते३ ये ४ पांच५ कारण ६ सांख्यकृतान्तमें ७।८कहे हैं. ९ मुझसे१० सुन११सि० तिनको. ❀ टी०भले प्रकार परमात्माका स्वरूप जिस शास्त्रमें जानाजावे, उसको सांख्य कहते हैं. ब्रह्मविद्या वेदान्त शास्त्रका नाम सांख्य और कर्मोंका अन्त है जिसमें उसको कृतान्त कहते हैं. यह उसी सांख्यका विशेषण है ॥ १३ ॥

मू०-अधिष्ठानंतथाकर्ताकरणंचपृथग्विधम् ॥
विविधाश्चपृथक्चेष्टादैवंचैवात्रपंचमम् ॥ १४ ॥

अधिष्ठानम्१ तथा२ कर्ता३ करणम् ४ च ५ पृथग्विधम् ६ विविधाः ७ च ८ पृथक्चेष्टाः९ दैवम् १० च११एव १२ अत्र १३ पंचमम् १४ ॥१४॥अ०-उ०कर्म करनेमें ये पांच हेतुहैं- स्थूल शरीर भौतिक इन्द्रियादिका आश्रय १ चैतन्य और जडकी ग्रन्थि अहंकार२। ३. अर्थात् सोपाधिक चैतन्य २।३ और इन्द्रिय ४।५

पृथक् स्वरूपवाली ६. और कैप्रकारकी ७ ।८सि० ये दोनों चौथा पद करण याने इन्द्रिय इसके विशेषण हैं. मूलमें करणं, यह पद है चौथा और ❀ प्राणपानादि ९ और दैव १० ।११। १२ इनमें १३ पांचवां १४ अर्थात् इन्द्रियोंकी देवता तात्पर्य शरीर इन्द्रिय प्राण अन्तःकरण अज्ञान इनके साथ मिलाहुआ चैतन्य कर्ता है. पृथक् अकर्ता है ॥ १४ ॥

मू०–शरीरवाङ्मनोभिर्यत्कर्मप्रारभतेनरः ॥
न्याय्यंवाविपरीतंवापंचैतेतस्यहेतवः ॥ १५ ॥

नरः १ शरीरवाङ्मनोभिः २ यत् ३ कर्म ४ प्रारभते ५ वा ६ न्याय्यम् ७ वा ८ विपरीतम् ९ तस्य १० एते ११ पंच १२ हेतवः १३ ॥ १५ ॥ अ०–प्राणी १ शरीरवाणीमनकरके २ जो ३ कर्म ४ प्रारंभ करता है, ५ या ६ अच्छा ७ या ८ बुरा ९ तिसके १० ये ११ पांच १२ हेतु १३ सि० हैं जो पिछले श्लोकमें शरीरादि कहे ❀ शरीर १ सोपाधिचैतन्य २ इन्द्रिय ३ प्राण ४ दैव ५ अर्थात् आदित्यादि देवता यही पांच करण हैं केवल आत्मा कारण, कर्ता नहीं, यह अगले मंत्रमें भगवान् स्पष्ट कहेंगे ॥ १५ ॥

मू०–तत्रैवंसतिकर्तारमात्मानंकेवलंतुयः ॥
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्नसपश्यतिदुर्मतिः ॥ १६ ॥

तत्र १ एवम् २ सति ३ तु ४ यः ५ आत्मानम् ६ केवलम् ७ कर्तारम् ८ पश्यति ९ अकृतबुद्धित्वात् १० सः ११ दुर्मतिः १२ न १३ पश्यति १४॥१६॥ अ०–उ०जब कि सब कर्मोंमें ये पांच हेतु हैं तो फिर केवल आत्माको कर्ता समझना मूर्खता है–तहां १ अर्थात् सब कर्मोंमें १ इसप्रकारहुए सन्ते २ । ३ फिर ४ जो ५ आत्माको ६ केवल ७ कर्ता ८ देखता है, ९ सि० इसमें हेतु यहहै कि सच्छास्त्र सद्गुरूपदेशरहित होनेसे अर्थात् गुरुने उसको ब्रह्मज्ञानोपदेश नहीं

किया इसवास्ते ❀ अकृतबुद्धि होनेसे १० अर्थात् ब्रह्मज्ञान न होनेसे १०सो ११ मंदमति १२ सि० आत्माको यथार्थ ❀ नहीं १३ देखताहै. १४ टी०जैसे पिछले मंत्रमें कहा इसप्रकार वास्तव आत्मा शुद्ध सच्चिदानंद निर्विकार अक्रिय है. शरीरेन्द्रियादिभ्रान्तिके सम्बन्धसे जलचन्द्रवत् आत्मा कर्त्ता प्रतीत होता है अज्ञानियोंको, जिन्होंने वेदान्तशास्त्र श्रद्धापूर्वक नहीं श्रवण किया ॥ १६ ॥

मू०–यस्यनाहंकृतोभावोबुद्धिर्यस्यनलिप्यते ॥
हत्वापिसइमाँल्लोकान्नहंतिननिबध्यते ॥ १७ ॥

यस्य १ अहंकृतः २ भावः ३ न ४ यस्य ५ बुद्धिः ६ न ७ लिप्यते ८ सः ९ इमान् १० लोकान् ११ अपि १२ हत्वा १३ न १४ हन्ति १५ न १६ निबध्यते १७ ॥ १७ ॥ अ०–उ० सुमति याने श्रद्धावाले जो आत्माको अक्रिय जानते हैं, वे कर्म करते हुए भी अकर्त्ताही हैं इसबातको कैमुतिकन्यायसे श्रीभगवान् दृढ करते हैं अर्थात् जब बुरेकर्म हिंसादि उसको बन्धन नहीं करते, तो भलेकर्म यज्ञादि उसको कैसे बन्धन करेंगे–जिसको १ अहंकृत २ भाव ३ नहीं ४ अर्थात् यह कर्म मैंने नहीं किया, इस कर्म करनेमें शरीरादि पंच हेतु हैं. मैं शुद्ध असंग अविद्यारहित हूं. ऐसे जो समझता है ४ सि० और ❀ जिसकी ५ बुद्धि ६ नहीं ७ लिपायमान होती है ८ अर्थात् किसीप्रकारका कर्म शुभाशुभ प्रारब्धवशात् होजावे. किंचिन्मात्र हर्ष शोक न होवे जिसको ८ सो ९ इन १० लोगोंको ११ भी १२ मारकरके १३ नहीं १४ मारता है १५ न १६ बन्धनको प्राप्त होता है १७ तात्पर्य जो मुमुक्षु दिनरात मुक्तिके लिये यथाशक्ति यत्न करते हैं, जहांतक होसके देशकालवस्तुके अनुसार भगवद्भजन पूजा, पाठ, जप, तीर्थस्नानादिकर्म करते रहतेहैं. परलोकमें आस्तिक्यबुद्धि है, और शुभकर्मोंके प्रतापसे शुद्धान्तःकरण

होकर. आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है. जो कदाचित् किसी पिछले पापका उदय होनेसे प्रारब्ध वशात् कोई जाने वा विनाजाने बुरा बनजावे ऐसे मुमुक्षुसे कि जिसका लक्षण ऊपर कहा तो उसकर्मका दोष कभी उस महात्माको नहीं लगेगा. जो उसको दोष समझेंगे वो फल उनको होगा. वेदशास्त्रईश्वरका इसबातमें संमत है ॥ १७ ॥

मू०—ज्ञानंज्ञेयंपरिज्ञातात्रिविधाकर्मचोदना ॥
करणंकर्मकर्तेतित्रिविधःकर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

परिज्ञाता १ज्ञानम् २ ज्ञेयम् ३ त्रिविधा ४ कर्मचोदना ५ कर्ता ६ कर्म ७ करणम् ८ इति ९ त्रिविधः १० कर्मसंग्रहः ११ ॥ १८ ॥

अ०—उ०अब अन्यप्रकारसे आत्माको अकर्ता सिद्ध कहतेहैं—ज्ञाता १ ज्ञान २ ज्ञेय ३ तीनप्रकार ४ कर्मकी प्रेरणाहै५. सि०और ❋ कर्ता ६ कर्म ७ करण ८ यह ९ तीनप्रकार १० कर्मसंग्रह ११ सि०है ❋टी०जाननेवाला १ जिसकरके जानाजावे २ जाननेकेयोग्य ३ कर्मके प्रवृत्तिमें हेतु ५ क्रियाका आश्रय ११ तात्पर्य चिदाभास और अन्तःकरणकी वृत्ति, और श्रोत्रादिइन्द्रिय,यही कर्मके प्रवृत्तिमें हेतु हैं. आत्मा कूटस्थ निर्विकार है. बन्ध मोक्ष चिदाभासकोही हैं आत्मा बन्धमोक्षशब्दोंका विषयभी नहीं ॥ १८ ॥

मू०—ज्ञानंकर्मचकर्ताचत्रिधैवगुणभेदतः ॥
प्रोच्यतेगुणसंख्यानेयथावच्छृणुतान्यपि ॥ १९ ॥

कर्ता १ च २ कर्म ३ च ४ ज्ञानम् ५ गुणभेदतः ६ गुणसंख्याने ७ त्रिधा ८ एव ९ प्रोच्यते १० तानि ११ अपि १२ यथावत् १३ शृणु १४ ॥ १९ ॥अ०—उ०—कर्ताकर्मादि सब त्रिगुणात्मक है आत्मा त्रिगुणरहित है—कर्ता १ और २ कर्म ३ और ४ ज्ञान ५ गुणोंके भेदसे ६ सांख्य शास्त्रमें ७ तीनप्रकारके ८। ९ कहे हैं १० तिनको ११। १२ यथार्थ १३ सुन १४ तात्पर्य कर्ता

दिमें तीनतीन भेद हैं वे यह सत्त्व रज तम और यह तीनों गुण अज्ञानकरके कल्पितहैं, अज्ञानके दूरहोनेसे परमानन्दस्वरूप नित्य-प्राप्त आत्माकी प्राप्ति होती है तमोगुणको रजोगुणसे दूर करे, रजोगुणको सत्त्वगुणसे सत्त्वगुणको ब्रह्मविद्यासे दूरकरे, इसीवास्ते यह तीनप्रकारका भेद दिखाकर आत्माको इन तीनों गुणोंसे पृथक् दिखलाया है ॥ १९ ॥

मू०—सर्वभूतेषुयेनैकंभावमव्ययमीक्षते ॥
अविभक्तंविभक्तेषुतज्ज्ञानंविद्धिसात्त्विकम् ॥ २० ॥

विभक्तेषु १ सर्वभूतेषु २ येन ३ अविभक्तम् ४ एकम् ५ भावम् ६ अव्ययम् ७ ईक्षते ८ तत् ९ ज्ञानम् १० सात्त्विकम् ११ विद्धि १२ ॥ २० ॥ अ०—उ० सात्विकज्ञान यह है कि पृथक् पृथक् सबभूतोंमें १ । २ जिसज्ञानकरके ३ अनुस्यूत ४ एक ५ भाव ६ निर्विकार ७ [सि० परमात्माको ❀ देखता है ८ सो ९ ज्ञान १० सतोगुणी ११ तू जान १२ तात्पर्य जैसा वस्त्रमें सूत अनुस्यूत है इसी प्रकार ब्रह्माजीसे ले चींटीतक सबभूतोंमें सच्चिदानन्दस्वरूप शुद्ध निर्विकार परमात्मा एकही है देहोंके उपाधिसे पृथक् पृथक् देवता, मनुष्य, पश्वादि कहाजाता है. इसप्रकार जो आत्माको जानते हैं जिसज्ञानकरके सो ज्ञानसतोगुणीहै, अद्वैतवादियोंकायहीज्ञानहै॥२०॥

मू०—पृथक्त्वेनतुयज्ज्ञानंनानाभावान्पृथग्विधान् ॥
वेत्तिसर्वेषुभूतेषुतज्ज्ञानंविद्धिराजसम् ॥ २१ ॥

पृथक्त्वेन १ तु २ यत् ३ ज्ञानम् ४ तत् ५ ज्ञानम् ६ राजसम् ७ विद्धि ८ सर्वेषु ९ भूतेषु १० नाना ११ भावान् १२ पृथक् १३ विधान् १४ वेत्ति १५ ॥ २१ ॥ अ०—उ० भेदवादियोंके रजोगुणी ज्ञानको कहते हैं पृथग्भावकरके १ । २ जो ३ ज्ञान ४ तिसज्ञानको ५ । ६ रजोगुणी ७ तू जान ८ [सि० इसीबातको फिर स्पष्ट करके कहते हैं ❀

सबभूतोंमें ९। १० नानाप्रकारके ११ पदार्थोंको १२ पृथक् १३ प्रकार १४ जो जानता है १५ सि० जिस ज्ञान करके, तिसज्ञानको रजोगुणी तू जान ❀ तात्पर्य निरवयवपदार्थ सच्चिदानंदस्वरूप परमात्मासे आत्माको पृथग्भाव करके जानना. अर्थात् परमात्मा चिद्घन है और आत्मा चित्कण है. इसप्रकार भेदवादी आत्मदृष्टि-करके भी अर्थात् निरवयव आत्मामें भी भेदको सिद्धान्त जानते हैं अविद्याके उपाधिसे देहदृष्टिकरके भ्रान्तिजन्यभेद व्यवहारमें प्रतीत होता है, कि जिसको रजोगुणी भेदवादी सिद्धान्त समझते हैं इसी हेतुसे ज्ञान रजोगुणभेदवादियोंका है ॥ २१ ॥

मू०—यत्तुकृत्स्नवदेकस्मिन्कार्येसक्तमहैतुकम् ॥
अतत्त्वार्थवदल्पंचतत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥

यत् १ तु २ एकस्मिन् ३ कार्ये ४ कृत्स्नवत् ५ सक्तम् ६ अहैतुकम् ७ च ८ अतत्त्वार्थवत् ९ अल्पम् १० तत् ११ तामसम् १२ उदाहृतम् १३ ॥ २२ ॥ अ०—उ० तमोगुणीज्ञानको कहते हैं. जो ११२ सि० ज्ञान ❀ एक ३ कार्यमें ४ संपूर्णवत् ५ सक्त ६ सि० है ❀ अर्थात् एककार्यमें संपूर्णवत् जो ज्ञान जैसे आपको देहदृष्टिसे ब्राह्मणसंन्यासी इतनेही स्थूलशरीरको जानना और पाषाणके मूर्तिहीको और श्रीरामचन्द्रादि सावयवमूर्तिकोही परमार्थमें परमात्मा जानना. अर्थात् इनसे परे कुछ अन्य निरवयव सच्चिदानन्द शुद्धतत्त्व नहीं है. मूर्तिमान्ही परमात्मा है. यह शरीरही ब्राह्मणसं-न्यासी है. यही मूर्ति पाषाणकी परमेश्वर है यह ज्ञान ६. हेतुरहित ७ अर्थात् ऐसे ज्ञानमें कोई युक्ति नहीं ७ और ८ परमार्थ (सिद्धान्त) नहीं है ९ सि० परमतत्त्वसिद्धांतके प्राप्तिका एक साधन है. फिर कैसा है कि ❀ तुच्छ है. १० सि० क्योंकि इसका फल अल्प है

वैराग्यादिसाधनोंकी अपेक्षाकरके इसज्ञानसे चिरकालमें अन्तःकरण शुद्ध होता है. इसप्रकारका जो ज्ञान * सो ११ तमोगुणी १२ कहा है १३. तात्पर्य यह है कि ज्ञानीभी तीनप्रकाके हैं, विना सात्त्विक ब्रह्मज्ञानहुए रजोगुणी तमोगुणीज्ञानमें अटक जानना इसी ज्ञानसे मोक्ष समझ लेना मूर्खता है. जिस समझसे जो साधनको सिद्धान्त समझते हैं वोही तमोगुणी ज्ञान है ॥ २२ ॥

मू०–नियतंसंगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ॥
अफलप्रेप्सुनाकर्मयत्तत्सात्त्विकमुच्यते ॥ २३ ॥

अफलप्रेप्सुना १ यत् २ नियतम् ३ कर्म ४ संगरहितम् ५ अरागद्वेषतः ६ कृतम् ७ तत् ८ सात्त्विकम् ९ उच्यते १० ॥ २३ ॥

अ०–उ० कर्म तीनप्रकारका है प्रथम सतोगुणी कहते हैं. नहीं फलकी चाहहै जिसको तिसने १ जो २ नित्य ३ कर्म ४ संगरहित ५ विनारागद्वेषके ६ किया सो सतोगुणी ७।८।९ कहा है १०. तात्पर्य स्नान, ध्यान, पाठ, पूजा, तीर्थ, साधुसेवा इत्यादि कर्म करना शास्त्रकी आज्ञा है. कर्ममें आसक्ति (प्रीति) करनेसे फलकी चाह करनेसे बन्धन होता है. इसवास्ते कर्ममें प्रीति द्वेष आसक्ति इनका त्याग करना कि जो वो कर्म अन्तःकरणको शुद्ध करके परमानन्दस्वरूपआत्माको प्राप्त करे. आसक्ति प्रीति उसपदार्थमें चाहिये कि जो नित्य एकरस हो. और ऐसेही फलकी चाह न करना. फल प्राप्त होनेके पीछेभी साधनोंसे रागद्वेष न चाहिये ॥ २३ ॥

मू०–यत्तुकामेप्सुनाकर्मसाहंकारेणवापुनः ॥
क्रियतेबहुलायासंतद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥

कामेप्सुना १ यत २ कर्म ३ साहंकारेण ४ क्रियते ५ वा ६ तु ७ पुनः ८ बहुलायासम् ९ तत् १० राजसम् ११ उदाहृतम् १२ ॥२४॥ अ०–उ० रजोगुणी कर्म कहते हैं–फलकी काम । है जिसको

उसने १ जो २ कर्म ३ अहंकारके सहित ४ कियाहै५. और ६।७।८ बहुत श्रम हो जिसमें ९ सो १० सि० कर्म ❀ रजोगुणी ११ कहा है १२. तात्पर्य पुत्रस्त्रीधनस्वर्गादिभोगोंके निमित्त, वा यह अहंकारकरके कि हमारे बराबर अग्निहोत्री कौन है. जितने हमने तीर्थ किये कि उतने किसीसे होसक्ते हैं. ब्रह्मज्ञानसे क्या होता है, जो है सो कर्महो है. अब हम चारों धाम करचुके, इसहेतुसे हम कृतकृत्य हैं. और कर्म करनेमें इतना श्रम करना कि विचार किंचित् न होसके. जैसे कि तीर्थयात्रामें चार गौकोस चलना चाहिये. प्रातःकालसे सायंकालतक ब्राह्ममुहूर्त और प्रदोषकालमें भी रस्ता मापना इसप्रकारके कर्म सब रजोगुणी हैं ॥ २४ ॥

मू०—अनुबन्धंक्षयंहिंसामनवेक्ष्यचपौरुषम् ॥
मोहादारभ्यतेकर्मतत्तामसमुदाहृतम् ॥ २५ ॥

अनुबंधम् १ क्षयम् २ हिंसाम् ३ च ४ पौरुषम् ५ अनवेक्ष्य ६ मोहात् ७ कर्म ८ आरभ्यते ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृतम् १२ ॥ २५ ॥ अ०—उ० तमोगुणीकर्म कहतेहैं—पश्चाद्भावि १ द्रव्यादिका खर्च २ हिंसा ३ और ४ पुरुषार्थ ५ सि० इन चारोंको ❀ न देखके ६ मोहसे ७ सि० जो ❀ कर्मका ८ आरंभ किया ९ सो १० तमोगुणी ११ कहा है १२ तात्पर्य औरोंके देखादेखी या सुनकर विचार न करके, अर्थात् जो मैं यह कर्म करूंगा, तो मुझको पीछे इसका फल क्या होगा. कितना इस कर्ममें द्रव्यव्यय होगा, मुझको वा औरोंको कितना दुःख होगा, यह काम मुझसे होसकेगा वा नहीं यह न विचारकर मूर्खतासे कर्मका आरम्भ करदेना तमोगुणी कहा है क्योंकि विना विचारके शब्द बोलनेमें भी किसीजगह न्योता वैर होजाताहै. इसीप्रकार विनाविचार तीर्थव्रतमंदिरादिके आरंभ करदेनेमें सिवाय दुःख और पापके कुछ नहीं मिलता. खोटेकर्मोंका

कुछ प्रसंगही नहीं. वे तो विचारपूर्वक और विना विचार किये हुए अनर्थकी मूल हैं ॥ २५ ॥

मू०–मुक्तसंगोनहंवादीधृत्युत्साहसमन्वितः ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारःकर्तासात्त्विकउच्यते॥२६॥

मुक्तसंगः १ अनहंवादी२ धृत्युत्साहसमन्वितः ३ सिद्ध्यसिद्ध्यो ४ निर्विकारः ५ कर्ता ६ सात्त्विकः ७ उच्यते ८ ॥ २६ ॥

अ०–उ०कर्ता तीनप्रकारकाहै प्रथम सतोगुणी कर्ताको कहते हैं. संगरहित १ अहंकाररहित २ धैर्य उत्साहकरके युक्त ३ सिद्धिमें और असिद्धिमें ४ निर्विकार ५ सि० ऐसा ❀ कर्ता ६ सतोगुणी ७ कहा है८ तात्पर्य कर्मोंमें आसक्त न होना. चाहिये,क्योंकि अन्तःकरणशुद्धिके पीछे कर्मोंको त्यागना होगा. जिस पदार्थसे एक दिन जुदा होना है, उसमें प्राप्तिसमयभी प्रीति न रखना, अथवा संगरहितका अर्थ यह समझना चाहिये, कि मैं असंग हूं. अहंकार न करना कि मैं ऐसा वेदोक्तकर्म करता हूं कर्मकरनेमें धैर्य उत्साह रखना जो धैर्य उत्साह न होगा, तो कभी कर्ममें प्रवृत्ति और स्थिति न होगी. उत्साहसे कर्ममें प्रवृत्ति होती है, और धैर्यसे कर्ममें स्थिति रहती है. और कर्मके सिद्धिमें और असिद्धिमें निर्विकार रहना. दैवयोगसे जो कर्म प्रत्यक्षफल देवे, कि जैसा फल शास्त्रमें लिखा है या वैसा फल न हो तो दोनोंमें निर्विकार रहना. जो पदार्थ नाशशील है वो हुआ न हुआ समहै प्रत्युत होकर नाश होनेसे न होना श्रेष्ठ है परमफल अन्तःकरण शुद्धिद्वारा परमानदस्वरूप आत्मापर दृष्टि चाहिये सतोगुणी कर्मोंको जो सतोगुणी कर्ता पुरुष करेगा, तो वेसंदेह उसका अन्तःकरण शुद्ध होगा ॥ २६ ॥

मू०–रागीकर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धोहिंसात्मकःशुचिः ॥
हर्षशोकान्वितःकर्ताराजसःपरिकीर्त्तितः॥ २७ ॥

रागी १ कर्मफलप्रेप्सुः २ लुब्धः ३ हिंसात्मकः ४ अशुचिः ५ हर्षशोकान्वितः ६ कर्ता ७ राजसः ८ परिकीर्तितः ९ ॥ २७ ॥ अ०—उ० रजोगुणीकर्ताको कहते हैं—प्रीतिवाला १ अर्थात् पुत्रादिके प्रीत्यर्थ कर्म करनेवाला, कर्मोंके फलको चाहने वाला २ लोभी याने पराये धनकी इच्छा करनेवाला ३ दूसरेको दुःख देनेवाला ४ अपवित्र ५ हर्षशोककरके युक्त ६ सि० ऐसा ❋ कर्ता ७ रजोगुणी ८ कहा है. ९ तात्पर्य जो पुरुष पुत्रमित्रादिकोंको प्रसन्न करनेके लिये, अर्थात् यह जो मैं कर्म करता हूं इसकर्मके देखने सुननेसे मेरे मित्रादि आनन्दित होंगे, इसदृष्टिसे कर्म करना. कर्मोंमें राग रखना, फलको चाहना, पराई स्त्री धनादिकी इच्छा रखना, अर्थात् हमको अच्छा कर्मकरता हुआ देख सुनकर राजा प्रजा दान देंगे. कर्मकरनेके समय दूसरेके दुःखपर दृष्टि न देना. भीतर वाहरसे अपवित्र रहना, कर्मके सिद्धिमें हर्ष करना. असिद्धिमें शोक करना, इसप्रकारका कर्ता रजोगुणी है. जो इसप्रकार वेदोक्तकर्म भी करता है, तो वो कर्म मोक्षका हेतु न होगा ॥ २७ ॥

मू०—अयुक्तःप्राकृतःस्तब्धःशठोनैष्कृतिकोलसः ॥
विषादीदीर्घसूत्रीचकर्तातामसउच्यते ॥ २८ ॥

अयुक्तः १ प्राकृतः २ स्तब्धः ३ शठः ४ नैष्कृतिकः ५ अलसः ६ विषादी ७ दीर्घसूत्री ८ च ९ कर्ता १० तामसः ११ उच्यते १२ ॥२८॥ अ०—उ० तमोगुणी कर्ताको कहते हैं—कर्मकरनेके समय कर्ममें चित्त न रखना १ विवेकरहित २ अर्थात् यह न समझना कि कर्म करनेका यथार्थ फल क्या है २. अनम्र ३ मायावी ४ अर्थात् कर्म तो वेदोक्त करना और मनमें यह रखना कि दूसरेको धोखा देकर उसका धन छीन लेना चाहिये इस बातको छिपानेवाला ४. दूसरेके आजीविकाका नाश करनेवाला अपमान करने वाला

आलसी ६ सदा रोती सूरत, याने अप्रसन्न रहनेवाला ७. जो काम घड़ीके करनेकाहै उसको दो चार पहर या महीना लगा देने-वाला ८। ९ अर्थात् तनकसे कामका बहुत विस्तार करदेने-वाला ८। ९ |सि० ऐसा ❋ कर्ता १० तमोगुणी ११ कहा है १२.
टी० अपनेको कर्मनिष्ठ समझकर ज्ञाननिष्ठ भगवद्भक्तोंको शूद्रादि समझकर उनको नमस्कार न करना ॥ २८ ॥

मू०—बुद्धेर्भेदंधृतेश्चैवगुणतस्त्रिविधंशृणु ॥
प्रोच्यमानमशेषेणपृथक्त्वेनधनंजय ॥ २९ ॥

धनंजय १ बुद्धेः २ धृतेः ३ च ४ भेदम् ५ गुणतः ६ त्रिविधम् ७ पृथक्त्वेन ८ प्रोच्यमानम् ९ अशेषेण १० एव ११ शृणु १२ ॥ २९ ॥ अ०—हे अर्जुन! १ बुद्धिका २ और धैर्यका ३।४ भेद ५ गुणोंसे ६ तीनप्रकारका ७ जुदाजुदा ८ कहना है. ९ सि० जो अगले छःश्लोकोंमें उसको. ❋ विस्तारसेही १०। ११ सुन १२ तात्पर्य संसारमें रजोगुणीतमोगुणीबुद्धिवालेभी बुद्धिमान् कहेजाते हैं, सो वो समझ उनकी मोक्षकेलिये नहीं. परमार्थकी बात तमो-गुणी रजोगुणी बुद्धिवाले नहीं जानते उनको बुद्धिमान् समझकर परमार्थमें उनके समझऊपर विश्वास रखकर अनुष्ठान करना न चाहिये. इसीवास्ते बुद्धिका भेद श्रीभगवान् दिखाते हैं ॥ २९ ॥

मू०—प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचकार्याकार्येभयाभये ॥
बंधंमोक्षंचयावेत्तिबुद्धिःसापार्थसात्त्विकी ॥ ३० ॥

पार्थ १ या २ बुद्धिः ३ प्रवृत्तिम् ४ च ५ निवृत्तिम् ६ च ७ कार्याकार्ये८ भयाभये ९ बंधम् १० च ११मोक्षम् १२ वेत्ति १३ सा१४ सात्त्विकी १५॥३०॥अ०-उ०बुद्धि तीनप्रकारकी है.प्रथम सतोगुणी बुद्धिको कहतेहैं.हे अर्जुन!१ जो २ बुद्धि३ प्रवृत्तिको४और ५निवृत्तिको और ७ कार्य अकार्य ८ भयअभय ९ बन्ध १०और ११मोक्षको१२

जानती हैं १३ सो १४ सि० बुद्धि ❀ सतोगुणी १५. तात्पर्य प्रवृत्ति बंधको हेतु है. निवृत्ति मोक्षमें हेतुहै. इस देशकालमें ऐसे पुरुषने यह करना योग्य है, यह अयोग्य है, खोटे काम करनेमें भयहोगा, भगवद्भजन विवेक वैराग्यादि शुभकर्मोंमें भय नहीं, इसप्रकार कर्मकरनेसे बन्ध होता है. इसप्रकार कर्मोंके करनेसे मुक्ति होती है. ऐसी जिसकी बुद्धि है वो सतोगुणी है. बहुतकर्म ऐसे हैं कि वे किसीके लिये अच्छे हैं, किसीके लिये बुरे हैं. एककाम किसीदेशकालमें कोई करसक्ता है, किसीदेशकालमे वो काम नहीं होसक्ता. किसीको एक कर्म करनेका अधिकार है, किसीको उसीको त्यागनेका अधिकार है. ऐसीऐसी बहुत बातें हैं वो निवृत्ति सतोगुणीमहापुरुष जानते हैं. केवल वेदशास्त्रके पढनेसुननेसे तात्पर्यार्थ नहीं जाना जाता. एकएक बात समझानेको नानाप्रक्रिया याने रीति हैं. महात्मा अनेकदृष्टांत युक्तियोंसे समझासक्ते हैं, यदि वे प्रसन्न होजावें तो ॥ ३० ॥

मू०–ययाधर्ममधर्मंचकार्यंचाकार्यमेवच ॥
अयथावत्प्रजानातिबुद्धिःसापार्थराजसी ॥ ३१ ॥

पार्थ १ यया २ धर्मम् ३ अधर्मम् ४ च ५ कार्यम् ६ च ७ अकार्यम् ८ एव ९ च १० अयथावत ११ प्रजानाति १२ सा १३ बुद्धिः १४ राजसी १५॥ ३१॥ अ०–उ० रजोगुणीबुद्धिको कहतेहैं–हे अर्जुन! १ जिसबुद्धिकरके २ धर्मको ३ और अधर्मको ४ । ५ कार्य और अकार्यको ६।७।८।९।१० संदेहसहित ११ जानताहै १२ अर्थात यथावत् जैसेका तैसा नहीं जानताहै १२. सि० उसकी ❀ सो १३ बुद्धि १४ रजोगुणी १५ तात्पर्य धर्माधर्ममें कार्याकार्यमें जिसको संदेह बनाही रहता है, उसकी बुद्धि रजोगुणी है यह जीव सच्चिदानन्दस्वरूपपूर्णब्रह्म है वा नहीं वेदशास्त्रमें अद्वैतसिद्धान्त सत्य है वा नहीं कर्मोंके संन्याससे मोक्ष होताहै वा नहीं निष्कामकर्म करनेसे अ–

करण शुद्ध होता है वा नहीं वेदशास्त्रप्रमाण है वा नहीं, इसप्रकार संदेह रहना यह रजोगुणी बुद्धिका दोष है ॥ ३१ ॥

मू०-अधर्मंधर्ममितियामन्यतेतमसावृता ॥
सर्वार्थान्विपरीतांश्चबुद्धिःसापार्थतामसी ॥ ३२ ॥

सर्वार्थान् १ या २ बुद्धिः ३ तमसावृता ४ अधर्मम् ५ धर्मम् ६ इति ७ मन्यते ८ च ९सर्वार्थान् १०विपरीतान् ११ सा १२ तामसी १३ ॥ ३२ ॥ अ०-उ०तमोगुणी बुद्धि कहते है-हे अर्जुन१जो २ बुद्धि ३ तमोगुणकरके ढकी हुई ४ सि० इसबुद्धिकरके ❀ अधर्मकोही धर्म ५।६।७ मानता है ८ और ९ सब अर्थोंको १० विपरीत ११ सि० जिसबुद्धिकरके समझता है. ❀ सो १२ तमोगुणी १३ सि० बुद्धि है. ❀ तात्पर्य जो पुरुष सनातन ऐसे श्रौतस्मार्तधर्मको छोड इसकलियुगमें मनुष्योंने जो सम्प्रदाय और पन्थ अपने नामसे चलाये हैं, उनको धर्म समझकर उस रस्तेपर चलते हैं. तो विचार करना चाहिये कि श्रौतस्मार्तमार्गमें क्या दोष था जो उसको त्यागकर कल्पितमार्गको धर्म समझा. यही तमोगुणीबुद्धिका दोष है. और श्रुतिस्मृतियोंका अर्थ अपने मतके अनुसार करना यही विपरीत अर्थ है. तात्पर्य यह है कि श्रुतिस्मृतिप्रतिपाद्यमार्ग सनातन धर्म है. और कलियुगमें जो मत चले हैं. वे श्रुतिस्मृतिसे विरुद्ध हैं. क्यों कि जो वे श्रुतिस्मृतिके अनुसार होते तो उससंप्रदाय और पन्थका जुदा एकनाम क्यों बनाया. स्पष्ट प्रतीत होताहै कि कुछ श्रुतिस्मृतियोंका आशय लिया, कुछ श्रुतिस्मृतियोंका अर्थ उलटा किया, कुछ अपने बुद्धिसे लिख दिया, और कह दिया कि यह ग्रंथ श्रुतिस्मृतियोंके अनुसार है. यही दोष तमोगुणी बुद्धिका है ॥ ३२ ॥

मू०-धृत्या ययाधारयतेमनः प्राणेंद्रियक्रियाः ॥
योगेनाव्यभिचारिण्याधृतिःसापार्थसात्त्विकी ॥ ३३ ॥

पार्थ १यया २ धृत्या ३ मनःप्राणेंद्रियक्रियाः ४ धारयते ५ सा६ धृतिः ७ सात्त्विकी ८ योगेन ९अव्यभिचारिण्या १० ॥२३॥ अ०–उ० अंतःकरणकी वृत्ति सत्त्वादिभेदसे तीनतीन प्रकारकी हैं. उन सब वृत्तियोंमेंसे एकवृत्ति धृतिको सत्त्वादिभेदसे तीनप्रकारकी दिखाते हैं. प्रथम सतोगुणीधीरजको कहते हैं–हे अर्जुन! १ जिसधृति करके२। ३ मन प्राण इन्द्रियोंके क्रियाको ४ धारण करता है ५ सो ६ धृति७ सतोगुणी ८. सि०कैसी है धृति ❋ कर्मयोग करके अव्यभिचारिणी, ९।१० तात्पर्य स्वभावके वशसे अंतःकरणादि अपने अपने धर्ममें प्रवृत्त होते हैं. धैर्यसे सबको वश करनाचाहिये क्षुत्पिपासादिसमय व्याकुल न होना, यह न होसके तो जानना कि कर्मयोगमें अभी कचाई है, अभी अन्तःकरणकी वृत्ति सतोगुणी नहीं हुई. सतोगुणप्रधानवृत्ति परीक्षाके लिये यह धृतिका भेद श्रीभगवान्ने दिखाया है. जबतक इंद्रिय, प्राण, अन्तःकरण, इनका निरोध न होसके तबतक रजतम प्रधानवृत्तिको जानना और उसके निवृत्तिकेलिये कर्मयोगका अनुष्ठान करना चाहिये. केवल धृति तीनप्रकारकी है यह जानलेनेसे मुक्ति न होगी ॥ २३॥

मू०–ययातुधर्मकामार्थान्धृत्याधारयतेऽर्जुन ॥
प्रसंगेनफलाकांक्षीधृतिःसापार्थराजसी ॥३४ ॥

अर्जुन १ यया२ धृत्या ३ धर्मकामार्थान्४धारयते ५ तु ६पार्थ७ प्रसंगेन ८ फलाकांक्षी९ सा१० धृतिः ११ राजसी १२ ॥ ३४ ॥ अ०–उ०रजोगुणीधृतिको कहते हैं-हे अर्जुन१ जिस धृतिकरके२।३ धर्म काम अर्थको ४ धारण करता है ५ अर्थात् धर्मअर्थकाममेंहीमें तत्पर रहता है, मोक्षमें वृत्ति नहीं करता ५. और ६ हे अर्जुन! सि० धर्मादिके प्रसंग करके धृति ❋ चाहवाली है ९ सो १० धृति ११ रजोगुणी१२, तात्पर्य शास्त्र श्रवणसे तो यह निश्चय कि

कि कर्म निष्काम करना चाहिये, फिर उस कर्मके प्रसंगसे पुत्र धन स्वर्ग वैकुंठादिकी इच्छा करनेलगे तो जानना चाहिये कि अंतःकणकी वृत्ति रजप्रधान है. जबतक कर्मयोगका फल स्वर्गादि समझता रहेगा, परंपराकरके आत्माको फल न समझेगा, तबतक वृत्तिको रजप्रधान जानना चाहिये ॥ ३४ ॥

मू०–ययास्वप्नंभयंशोकंविषादंमदमेवच ॥
नविमुंचतिदुर्मेधा धृतिःसापार्थतामसी ॥ ३५ ॥

पार्थ १ दुर्मेधाः २ यया ३ स्वप्नम् ४ च ५ भयम् ६ शोकम् ७ विषादम् ८ मदम् ९ एव १० न ११ विमुंचति १२ सा १३ धृतिः १४ तामसी १५ ॥ ३५ ॥ अ०–उ० तमोगुणीधृतिको कहते हैं–हे अर्जुन १ तमोगुणीबुद्धिवाला २ जिस धृतिकरके ३ स्वप्न ४ और ५ भय ६ शोक ७ विषाद ८ मदको ९ । १० न ११ त्यागसक्ता है १२ सो १३ धृति १४ तमोगुणी १५, तात्पर्य जागने समय ब्रह्मादिमुहूर्तमें भी न जागे सोताही रहे और कर्म करनेके समय भी भय, शोक, विषाद, मद ये बनेही रहें. तो जानना चाहिये कि अन्तःकरणकी वृत्ति तमप्रधान है यावत् वृत्ति तमोगुणी रहे, तावत् स्नान ध्यान साधुसेवादिकर्मोंको अवश्य करे ॥ ३५ ॥

मू०–सुखंत्विदानींत्रिविधंशृणुमेभरतर्षभ ॥
अभ्यासाद्रमतेयत्रदुःखांतंचनिगच्छति ॥ ३६ ॥

भरतर्षभ १ इदानीम् २ तु ३ सुखम् ४ त्रिविधम् ५ मे ६ शृणु ७ यत्र ८ अभ्यासात् ९ रमते १० दुःखांतम् ११ च १२ निगच्छति १३ ॥ ३६ ॥ अ०–उ०कर्ताकर्मकरणादिका भेद सत्त्वादिभेदसे तीनतीन प्रकारका कहा. अब उन सबका फल तीनप्रकारका है यह कहते हैं. चतुर्दशाध्यायमें जो सत्त्वरजतमका भेद कहा तो ... वह दिखाया कि, ये तीनों गुण आत्माको बन्धन करते हैं और

सत्रहवें अध्यायमें जो भेद कहा तो वहां यह दिखाया कि, तपयज्ञादि रजोगुणीतामसी न करना, सात्त्विकी करना. क्योंकि सतोगुणी पुरुषका ज्ञानमें अधिकार है..और इसजगे (अठारहवें अध्यायमें) जो यह भेद कार्यकारणका सत्वादिभेदकरके कहा. और सबका फल (सुख) तीनप्रकारका कहते हैं. यहां यह दिखाते हैं कि कर्ताकर्मकरणादि फलसहित सब त्रिगुणात्मक हैं. आत्माका किसीसे कीसीप्रकारका वास्तवमें कुछ संबंध नहीं, अविद्याकासंबंध है. इसश्लोकके आधे मंत्रमें प्रतिज्ञा है और आधेमें सतोगुणीसुखका लक्षण है–हे अर्जुन ! १ अब २ तो ३ सुखको ४ तीनप्रकारका ५ मुझसे ६सुन ७सि०प्रथम सतोगुणीसुखको डेढश्लोकमें कहता हूं ❀ जिससात्त्विकसुखमें ८ सि० वृत्तिको ❀ अभ्याससे ९ अर्थात शनैःशनैः नित्यप्रति दिन बढता हुआ ९ रमता है १०. सि० जो वा म। ❀ दुःखोंके अन्तको ११।१२ प्राप्त होता है १३ अर्थात् उसको का ध्या:ख नहीं होता११।१२. तात्पर्य दुःखके पार होजाता है सब मू०–य: पढनेका सुननेका और कर्मोंके अनुष्ठान करनेका यही ि, कि सतोगुणीवृत्ति प्रधान होकर सदा सतोगुणीसुख बना रहे ,सुखमें रमनेसे जल्दी अनिर्वाच्य, अप्रमेय, परात्पर परमानन्द स्वरूप ऐसे आत्माकी प्राप्ति होती है ॥ ३६ ॥

मू०–यत्तदग्रेविषमिवपरिणामेमृतोपमम् ॥
तत्सुखंसात्त्विकंप्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७॥

यत् १ अग्रे २ विषम् ३ इव ४ तत् ५ परिणामे ६ आत्मबुद्धिप्रसादजम् ७ अमृतोपमम् ८ तत ९ सुखम् १० सात्त्विकम् ११ प्रोक्तम् १२ ॥ ३७ ॥ अ०–जो१ सि०सुख❀प्रथमप्रारंभसमय२ विषवत् ३ । ४ सि० प्रतीत होता है ❀ सो ५ पीछे६ अपने अंतःकरणके प्रसादसे ७सि० अमृतके सदृश ८सि० है. ❀ सोई ९

सुख १० सतोगुणी ११ कहा है १२. तात्पर्य वैराग्य, आत्मध्यान, ज्ञान, समाधि, इनके समय और शरीर, इन्द्रिय और प्राण, इनके निरोधमें प्रथमदुःख प्रतीत होता है. जब अन्तःकरणकी वृत्ति रजोगुणी तमोगुणी कम हो जाती हैं, निर्मल सतोगुणीवृत्ति प्रधान होजाती हैं अर्थात् दया, क्षमा, कोमलता, सत्य, संतोष, धैर्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, सावधानता, मुक्तिकी इच्छा, विवेक और वैराग्य, इत्यादि यह वृत्ति जब प्रधान होती हैं उससमयका सुख अमृतके सदृश इसवास्ते कहा, कि वो सुख वास्तवमें सच्चिदानन्दको दिखा देता है. बुद्धिकी प्रसन्नता इसीको कहते हैं, कि अंतःकरणका रजतम दूर होकर यह सुख प्रकट होता है. इस सुखके अवधिके सामनें रजोगुणीतमोगुणीसुख जो आगे कहेंगे वो तुच्छ है और इससुखके बड़ाईमें शास्त्र और अनुभव दोनों प्रमाण हैं जीतेजी इस सुखकी अवधिका अनुभव आ सक्ता है. आत्मनिष्ठ और योगी इस सुखकी अवधिको जीतेजी अनुभव ले सक्ते हैं और रजोगुणीसुखदुःख अवधिमें शास्त्रपुराणादि प्रमाण हैं. जीतेजी उससुखकी अत्र,शोक, अनुभव प्रत्यक्ष नहीं होसक्ता ॥ ३७ ॥ करणकी ध्यान

मू०-विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ॥
परिणामेविषमिवतत्सुखंराजसंस्मृतम् ॥ ३८ ॥

यत् १ विषयेंद्रियसंयोगात् २ तत् ३ अग्रे ४ अमृतोपमम् ५ परिणामे ६ विषम् ७ इव ८ तत् ९ सुखम् १० राजसम् ११ स्मृतम् १२ ॥ ३८ ॥ अ०-उ० रजोगुणी सुखको कहते हैं, जो १ सि० सुख ❋ शब्दादिविषय और श्रोत्रादि इन्द्रियोंके संबन्धसे २ अर्थात् सुननेसे देखनेसे बोलनेसे स्त्रीसंगादिसे जो सुख होता है २. सो ३ प्रथमक्षण (भोगसमय) ४ अमृतके बराबरहै ५ सि० और ❋ भोगके पश्चात् ६ विषके बराबर ७।८ सि० है जो सुख ❋ सो ९ १० रजोगुणी ११ कहा है १२ तात्पर्य विषके खानेसे तो

प्राणी एक बेरही मरता है, और शब्दादि विषयोंके भोगनेसे वारंवार मरता है. अष्टावक्रजी महात्माने कहा है कि, हे प्यारे ! जो तू मुक्त होने चाहता है तो विषयोंको विषवत् त्याग सावयव भगवन्मूर्ति और सावयव वैकुंठलोकादिकी जो इच्छा रखते हैं वे इसी रजोगुणीसुखके अवधिको चाहते हैं. उसको सतोगुणी वा दिव्यसुख समझना न चाहिये. क्यों कि वो सुख श्रवण दर्शनादिसे होता है. तमोगुणी सुख और मलिन रजोगुणीसुखकी जो इस लोकमें स्त्र्यादिके संबंधसे होता है, इससे सावयव लोकजन्यसुख श्रेष्ठ है. पुराणादिमें इस हेतुसे माहात्म्य लिखा है जो कोई शुद्ध सच्चिदानन्द निराकारब्रह्मकी उपासना करनेको समर्थ नहीं है, उनको चाहिये कि मूर्तिमान् रामकृष्णादिकी उपासना किया करें जो निष्काम करेंगे तो अन्तःकरणशुद्धिद्वारा मोक्ष होगा और जो मन्द, सुगन्ध, शीतल, पवन खानेके इच्छासे वा मणिमाणिक्यादि सौंदर्यता देखनेके इच्छासे सावयव भगवन्मूर्तिका ध्यान करते हैं तो जैसे इस लोकके भोगी वैसेही वे रहे ॥३८॥

मू०–यदग्रेचानुबन्धेचसुखंमोहनमात्मनः ॥

निद्रालस्यप्रमादोत्थंतत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥

यत् १ सुखम् २ निद्रालस्यप्रमादोत्थम् ३ च ४ अग्रे ५ च ६ अनुबंधे ७ आत्मनः ८ मोहनम् ९ तत् १० तामसम् ११ उदाहृतम् १२॥३९॥ अ०–उ० तमोगुणी सुखको कहते हैं–जो १ सुख २ निद्रा आलस्य और प्रमाद. इनसे उत्पन्न होता है ३ अर्थात् खेल, मनोराज्य, हिंसा, लड़ाई, विषाद, क्रोध इत्यादि जानलेना ३. और४ पहले ५ और ६ पीछे ७ आत्माको ८ मोहकरनेवाला ९ सो १० तमोगुणी ११ कहा है १२ तात्पर्य निद्रालस्य मनोराज्य क्रोधादिसमय न प्रथमसुख होता है, न पीछे, जीवको सुखकी भ्रांति रहती है. असंख्यात पशु जो आदमीके सूरतमें हैं, वे इसी तमोगुणी सुखकी

भ्रांतिमें मरजाते हैं. कभी किसी कालमें रजोगुणी सुखका अनुभव किया होगा, और सतोगुणी सुखकी तो गंधभी ऐसे पुरुषोंके पास नहीं आती जैसे रजोगुणी इस सुखको तुच्छ समझते हैं, ऐसेही सतोगुणी पुरुष तमोगुणी रजोगुणी इन दोनों सुखोंको तुच्छ समझता है. और ब्रह्मज्ञानी शुद्धानन्दको जाननेवाला तीनों सुखोंको तुच्छ जानताहै ये तीनों गुण सबमें रहते हैं जिसमें तमोगुण प्रधान, रजोगुण सतोगुण कम, उसको तमोगुणी कहते हैं. रजोगुणमें दो भेद हैं. जो इसी लोकके शब्दादि विषयोंमें तत्पर रहते हैं, वे बुरे कहेजाते हैं और जो परलोकमें रूपरसादि विषयोंको भोगते हैं, वा इस लोकमें वेदोक्तभोग भोगते हैं, वे अच्छे कहेजाते हैं. सतोगुणी भी दोप्रकारके हैं, एक ब्रह्मज्ञानरहित योगी और एक ज्ञानसहित योगी. ये दोनों रजोगुणसे श्रेष्ठ हैं ब्रह्मज्ञानरहितयोगीसे ब्रह्मवित् श्रेष्ठ हैं. तमोगुणी सबसे निकृष्ट है ॥ ३९ ॥

मू०–नतदस्तिपृथिव्यांवादिविदेवेषुवापुनः ॥
सत्त्वंप्रकृतिजैर्मुक्तंयदेभिःस्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

पृथिव्याम् १ वा २ दिवि ३ वा ४ देवेषु ५ पुनः ६ यत् ७ सत्वम् ८ एभिः ९ त्रिभिः १० गुणैः ११ प्रकृतिजैः १२ मुक्तम् १३ स्यात् १४ तत् १५ न १६ अस्ति १७ ॥४०॥ अ०–उ० जो जो क्रियाकारक फल देखने सुननेमें आता है, सबको त्रिगुणात्मक जानना योग्यहै--पृथिवीमें १ वा २ स्वर्गमें ३ वा४देवतोंमें५।६जो ७ पदार्थ ८ इन तीन गुणोंकरके ९।१०।११ सि० कि जो ❀ मायासे उत्पन्न हुए हैं १२सि०इन करके ❀ रहित१३हो१४सो१५ नहीं १६ है १७ तात्पर्य एकशुद्धसच्चिदानन्द स्वरूप नित्यमुक्त, आत्मा स्थूलसूक्ष्मकारण शरीरोंसे पृथक्, तीनों अवस्थाका साक्षी, त्रिगुणरहित ऐसा है.उससे पृथक् सबपदार्थ इसलोकपरलोकके जो जो देखने सुननेमें आते हैं, वे सब मायामात्र हैं. इसमायाने सबको भ्रान्त

कररक्खा है. देवता सतोगुणमें भ्रान्त, मनुष्य रजोगुणमें भ्रान्त, पशु तमोगुणमें भ्रान्त हैं, जो मनुष्य सत्त्वगुणमें भ्रान्त है. वो देवताके सदृश है, तमोगुणमें भ्रान्त है वो पशुके बराबर है ॥ ४० ॥

मू०–ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणांचपरंतप ॥
कर्माणिप्रविभक्तानिस्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

परंतप १ ब्राह्मणक्षत्रियविशाम् २ च ३ शूद्राणाम् ४ कर्माणि ५ गुणैः ६ स्वभावप्रभवैः ७ प्रविभक्तानि ८ ॥ ४१ ॥ अ०–उ० यह गुणोंकी भ्रान्ति कि जो पीछे कही वो विना ब्रह्मविद्याके नहीं दूर होती और विना अज्ञान दूर हुए परमानन्द स्वरूप आत्माका साक्षात्कार नहीं होता. इसवास्ते अज्ञानकी निवृत्तिकेलिये ब्राह्मणादि अपने अपने धर्मका अनुष्ठानकरें कि, जो धर्म ब्रह्मणादिका आगे कहना है–हे अर्जुन ! १ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके २ और ३ शूद्रोंके ४ कर्म ५ जिनकी प्रकृतिसे उत्पत्ति है ६ गुणोंकरके ७ पृथक् पृथक् ८ सि० हैं. अज्ञानकी निवृत्तिके लिये उनका अनुष्ठान करना चाहिये, इसवास्ते मैं कहता हूं ॐ तात्पर्य ब्राह्मणादिके कर्म गुणोंके अनुसार पृथक् पृथक् हैं, सोई दिखाते हैं. सत्त्वगुण जिसमें प्रधान सो ब्राह्मण. रजोगुण जिसमें प्रधान और सत्त्वगुण उससे कमहो, तम सत्त्वसेभी कम हो–सो क्षत्रिय. रजोगुण प्रधान हो जिसमें तमोगुण कम हो सत्त्व उससेभी कम हो सो वैश्य. तमोगुण प्रधान है जिसमें सो शूद्र. स्पष्टार्थ होनेके लिये एक यंत्रलिख देते हैं. जिसगुणके नीचे तीनका अंक

ब्राह्मण.			क्षत्रिय.			वैश्य.			शूद्र.		
सत्व	रज	तम	रज	सत्व	तम	रज	तम	सत्व	तम	रज	सत्व
३	२	१	३	२	१	३	२	१	३	२	१

उसको प्रधान जानना. जिसके नीचे दोका अंक उसको उससे कम जानना. जिसके नीचे एकका अंक उसको उससेभी कम जानना

जैसे क्षत्रिय वैश्य ये दोनों रजःप्रधान हैं. भेद इन दोनोंमें यह है, कि क्षत्रियमें सत्त्व सिवाय तम कम है. वैश्यमें तम सिवाय सत्त्व कम है. परमार्थमें तो यही चार विभाग हैं और लौकिकव्यवहारमें अनेक जाति हैं. उनमेंही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भी हैं, इसद्वीपमें हिंदूलोगोंकी यह रीति है कि, ब्राह्मणको जातिके अपेक्षामें बडा समझते हैं. क्षात्रियको उससे कम, वैश्यको उससे कम, और फिर अनेक जाति हैं. शूद्र व्यवहारमें किसीका नाम नहीं. कोई कोई कायस्थोंको शूद्र कहते हैं, परन्तु समस्त ब्राह्मणादि आचार्यलोगोंका इसमें संमत नहीं सिवाय इसके व्यवहारमें सब लोग उनको कायस्थही कहते हैं और उनका व्यवहार चाल चलन क्रिया धर्म ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंसे कम नहीं. मद्य मांस खानेपीनेसे यह शंका नहीं आसक्ती है कि, कायस्थ शूद्रहैं. क्योंकि ब्राह्मण क्षत्रियभी बहुत खाते हैं और बहुत कायस्थ मद्य मांसको छूतेभी नहीं. जैसे क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य श्रौतस्मार्तकर्म करते हैं. तैसेही वे करते हैं और जो नहीं करते तो सब ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य भी नहीं करते. यह कायस्थ क्षब्द संस्कृत है और जो इनके जातिके भेद भट, नागर, माथुर इत्यादि हैं. वे भी सब संस्कृतपद हैं. इस हेतुसे अन्त्यजभी ये नहीं होसक्ते. लौकिकमें बडाई, द्रव्य, ऐश्वर्य, हुक्म, सौंदर्य, लौकिक, विद्या इत्यादि करके होती है और परमार्थमें भगवद्भजनादि शुभ कर्म करनेसे और ज्ञाननिष्ठ होनेसे बडाई है. यह कोई नहीं कहसक्ता कि, कायस्थ भगवद्भजन करनेसे मुक्त न हों. तात्पर्य यह कि कायस्थ एक ऐसी जातिहै जैसे ब्राह्मण क्षत्रिय आदि जातिहैं. व्यवहारमें बहुत जाति हैं परमार्थमें चार. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व्यवहारमें रजपूतादिको भी चारवर्णमें समझते हैं जाट, गूजरादिको कोई क्षत्रिय कोई शूद्र कोई अन्त्यज ऐसा कहते हैं. यवनादिको म्लेच्छ कहत हैं. यह सब व्यवहारकी बोलचाल है.

जैसे मुसलमान वर्णाश्रमीको काफिर कहते हैं, ऐसेही हिंदू मुसलमानोंको म्लेच्छ कहते हैं. परमार्थदृष्टिमें सब द्वीपोंके निवासी गुणोंके तारतम्यतासे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रहैं क्योंकि सब त्रिगुणात्मक हैं और सब प्रजाका स्वामी एकही है, वो सम है यह बात कैसी समझमें आवे कि ऐसे स्वामीने अन्य द्वीपनिवासियोंके वास्ते परलोकका साधन न कहाहो. आगे जो श्रीभगवान् ब्राह्मणादिका धर्म कहेंगे वो ऐसा साधारण है कि अबतक उस धर्मका किसी एकभी जातिमें प्रचार नहीं शमदमादि मुसलमान अंगरेजोंमें विशेष देखनमें आते हैं, शमदमादिधारण करनेसे यह लोग पापके भागी न होंगे, इसीप्रकार खेती बनज और शूरतादिका यह नियम नहीं कि शूरतादिधर्म क्षत्रियहीमें हो, अन्यमें नहो. प्रत्युत जो व्यवहारमें क्षत्रिय कहे जाते हैं उनमें शूरतादि नहीं क्योंकि उनका राज्य बहुत दिनोंसे जाता रहा. ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र परमार्थदृष्टिमें परलोकका साधन करनेके लिये वेहैं कि जो पीछे यंत्रमें लिखेहैं. व्यवहारमें वे कोई जाति हों. व्यवहारमें जो ब्राह्मणादि कहलातेहैं. इनकी व्यवस्था यह है कि जिस कालमें समस्त मनुष्योंके चार विभाग किये गयेथे तो वो विभाग कोई दिन ऐसा चला कि ब्राह्मणका पुत्र सत्त्वप्रधान, शूद्रका पुत्र तमप्रधान होता रहा, वीर्यक्रियामें बिगाड न हुआ अब इस समयमें न वीर्यका ठिकाना है न क्रियाका और न यह नियम रहा कि ब्राह्मण जातिमें सत्त्वप्रधानही उत्पन्न हों ब्राह्मण तम प्रधान देखनेमें आते हैं म्लेच्छ शूद्र सत्त्वप्रधान देखनेमें आते हैं, जो तमप्रधानको वेद पढाया जावे तो वो कब पढसक्ता है और सत्त्वप्रधानसे टहल कराई जावे तो कब करसक्ता है, तात्पर्य व्यवहारमें तो यही समझना कि जैसा प्रचार है, अर्थात ब्राह्मण कैसाभी कुपात्रहो इसीके जिमानेसे लौकिक दृष्टिमें सूतक पातक दूर होता है परमार्थमें यह समझना कि जिसमें शमदमादि होंगे, वो मुक्तिका भागी होगा, मुमु-

क्षुका कल्याण भी इसीसे होगा ॥ तदुक्तंमहाभारते ॥ अर्थात् सोई महाभारतमें कहा है वाक्य वादकी कुछ अपेक्षा नहीं "न जातिः कारणं तात गुणाःकल्याणकारणम् ॥ वृत्तिस्थमपिचांडालंतंदेवाब्राह्मणंविदुः" ॥ इसश्लोकका अर्थ यह है कि, भीष्मजी राजायुधिष्ठिरसे कहते हैं कि हेतात! मुक्तिमें जाति कारण नहीं शमदमादिगुणकारण हैं,जो शमादिगुण चांडालमेंभी होंगे, तो देवता उसचांडालको ब्राह्मण कहैंगे. जो व्यावहारिकब्राह्मण शमदमादि साधनों करके युक्त हो तो वो सबसे श्रेष्ठ है इसमें कोई शंका नहीं करसक्ता. ॥ "अविद्योवास विद्योवा ब्राह्मणोमामकीतनुः ॥ अद्यापि श्रूयतेघोषोद्धारावत्यामहर्निशम्" ॥ इसश्लोकका स्पष्ट अर्थहै कि ब्रह्मका जाननेवाला विद्यावान् पढाहुआ हो वा न पढाहो,ब्रह्मवित् ब्रह्महीहै"ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति"॥ यह श्रुति है. लौकिक ब्राह्मण भगवत्स्वरूप होना तो बहुत कठिन है. दसरुपैये महीनेकी नौकरीभी उनको मिलना कठिन है सिवाय इसके ऐसे वाक्योंमें हठकरनेसे शास्त्रसे बडा विरोध आता है. मूर्खोंको मूर्खही पसंद करताहै. इसदेशमें जो अन्यद्वीपनिवासियोंका राज्य हुआ, ब्राह्मणादिवर्ण उनके दास (गुलाम) बने उसमें कारण ऐसेही मूर्ख हुए शास्त्रका पढना सुनना छोड दिया मूर्खोंके कहनेपर चलने लगे. जो पुरुष काम क्रोधलोभादिमें फँसाहुआ है उसके कहनेको सच्चा समझना कितनी बड़ी मूर्खताहै. यह कब समझमें आवेगा कि ऐसे आदमी धोखा न दें और जो पोथी बहुतदिनोंसे उनकेही पास रही हैं क्या आश्चर्य है कि उन पोथियोंमें कुछका कुछ न बनादियाहो. विशेष क्या लिखें इसीको वारंवार विचारना चाहिये ॥४१॥

मू०-शमोदमस्तपःशौचंक्षांतिरार्जवमेवच ॥
ज्ञानंविज्ञानमास्तिक्यंब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥ ४२ ॥

शमः १ दमः २ तपः ३ शौचम् ४ क्षांतिः ५ आर्जवम् ६ एव७

च ८ ज्ञानम् ९ विज्ञानम् १० आस्तिक्यम् ११ ब्रह्मकर्म १२ स्वभावजम् १३ ॥ ४२ ॥ अ०-उ० ब्राह्मणोंका कर्म कहते हैं. जिसमें शमादिगुण होंगे, सोई ब्राह्मण है. दुनियाके व्यवहारमें वो कोई जाति हो जो ब्राह्मण बनाचाहे वो शमादिकर्मोंका अनुष्ठान करे-अन्तःकरणका निरोध १ इन्द्रियोंका निरोध २ विचारकरना वा व्रतादिकरके शरीरका निरोध करना ३ बाहर भीतर पवित्र ४ क्षमा ५ कोमलता ६ और ७। ८ सि० शास्त्राचार्यद्वारा ❀ ज्ञान ९ अनुभव १० विश्वास ११ सि० वेदशास्त्राचार्यादिवाक्यमें. यह ❀ ब्राह्मणका कर्म १२ स्वाभाविक है, १३ अर्थात् पूर्वसंस्कारसे यह लक्षण ब्राह्मणमें अपने आप बेयत्न होतेहैं. ब्राह्मणकी निष्ठा सदा इनही कर्मोंमें रहती है. इस समयमें वीर्य और क्रियाका तो ठिकाना नहीं और जो यह लक्षणभी न देखेंगे तो कहो, कैसे उसको ब्राह्मण जानकर उसके वाक्यपर निश्चय किया जावे. शमादिकर्म ब्राह्मणोंके साधारणहैं और प्रतिग्रह लेना, सूतक पाकमें जीमना, रसोई करना, विवाहादिमें सम्बंधीकेघर आनाजाना, इसप्रकारके कर्म असाधारण हैं. इनकर्मोंमें अधिकार उनही ब्राह्मणोंका है कि जो लौकिकव्यवहारमें ब्राह्मण कहेजाते हैं. सिवाय उनके अन्य जातिको शोभा नहीं देते ॥ ४२ ॥

मू०-शौर्यंतेजोधृतिर्दाक्ष्यंयुद्धेचाप्यपलायनम् ॥
दानमीश्वरभावश्चक्षात्रंकर्मस्वभावजम् ॥ ४३ ॥

शौर्यम् १ तेजः २ धृतिः ३ दाक्ष्यम् ४ युद्धे ५ च ६ अपि ७ अपलायनम् ८ दानम् ९ ईश्वरभावः १० च ११ क्षात्रम् १२ कर्म १३ स्वभावजम् १४ ॥ ४३ ॥ अ०-उ० क्षत्रियोंका स्वाभाविककर्म कहते हैं. शूरता १ प्रागल्भ्य २ धैर्य ३ चतुरता ४ युद्धमें ५। ६। ७ पीछेको भागना नहीं ८ देना ९ अर्थात् सुपात्रोंको ९ नियाम-

कशक्ति १०।११ क्षत्रियोंका कर्म १२।१३ सि० यह * स्वाभाविक है. १४ तात्पर्य विचारकरो ये सब लक्षण आजकल अंगरेजोंमें मौजूद हैं. जैसे इनकर्मोंमें अधिकार उनको था कि जो व्यवहारमें क्षत्रिय जाति हैं. उन्होंसे यह कर्म न होसके. जिन्होंने वे कर्म किये, प्रत्यक्ष देखलो राजका भोग करते हैं. इसीप्रकार जो शमदमादिसाधनसंपन्न होगा, सो बेसन्देह परमानंद ब्रह्मसुखको भोगेगा. जो कोई यह शंका करे कि ये म्लेच्छ हैं, उनको राज्यका अधिकार नहीं मरकर सब नरकगामी होंगे. आप्तकाम विद्वान् इस बातको कभी नहीं पसन्द करेंगे. सत्वादिगुणोंके तारतम्यतासे सद्गति दुर्गति सबजीवोंको होती है और इसलोकमें सदा न पुण्यात्मा रहते हैं न पापात्मा. अधिकारके व्यवस्थामें यह भी सुनाजाता हैं कि चिकित्सावैद्यकविद्याके पढने करनेका अधिकार ब्राह्मणकोही है अब विचारो कि व्यवहारमें हिकमत वैद्यकविद्या किनकी अच्छी है और ब्राह्मणजातिसे अन्य जो वैद्यक करते हैं. उनसे रोगकी निवृत्ति होती है वा नहीं. इसीप्रकार सब कर्मोंकी व्यवस्था है ॥ ४३ ॥

मू०–कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यंवैश्यकर्मस्वभावजम् ॥
परिचर्यात्मकंकर्मशूद्रस्यापिस्वभावजम् ॥ ४४ ॥

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम् १ स्वभावजम् २ वैश्यकर्म ३ परिचर्यात्मकम् ४ कर्म ५ शूद्रस्य ६ अपि ७ स्वभावजम् ८ ॥४४॥ अ०–उ० आधे श्लोकमें वैश्यका कर्म, आधेमें शूद्रका कर्म कहते हैं–खेती, गौकी रक्षा, बनज करना १ सि० यह * स्वाभाविक २ वैश्यका कर्म ३ सि० है और *सेवाकरना,४ सि० यह *कर्म५ शूद्रका ही ६।७ स्वाभाविक ८ सि० है. * तात्पर्य शूद्रवैश्यक्षत्रियोंको चाहिये कि शमदमादिसंपन्न ब्राह्मणकी यथाअधिकार यथाशक्ति सेवा करे. तब सबके धर्मबने रहेंगे ॥ ४४ ॥

मू०–स्वेस्वेकर्मण्यभिरतःसंसिद्धिंलभतेनरः ॥
स्वकर्मनिरतःसिद्धिंयथाविन्दतितच्छृणु ॥ ४५ ॥

स्वे १ स्वे २ कर्मणि ३ अभिरतः ४ नरः ५ संसिद्धिम् ६ लभते ७ स्वकर्मनिरतः ८ सिद्धिम् ९ यथा १० विन्दति ११ तत् १२ शृणु १३ ॥ ४५ ॥ अ०–उ० अपने अपने कर्मोंका जो अनुष्ठान करते हैं उसका फल कहते हैं–अपने १ अपने २ कर्ममें ३ प्रीतिकरने वाला ४ नर ५ सि० अन्तःकरणशुद्धिद्वारा भगवत्प्रसादसे ❀ मोक्षको ६ प्राप्त होता है. ७ अपने कर्ममें निरंतर प्रीतिकरनेवाला ८ मोक्षको ९ जैसे १० प्राप्त होता है ११ सो १२ सुन १३ ॥ ४५ ॥

मू०–यतःप्रवृत्तिर्भूतानांयेनसर्वमिदंततम् ॥
स्वकर्मणातमभ्यर्च्यसिद्धिंविन्दतिमानवः ॥ ४६ ॥

यतः १ भूतानाम् २ प्रवृत्तिः ३ येन ४ इदम् ५ सर्वम् ६ ततम् ७ तम् ८ स्वकर्मणा ९ अभ्यर्च्य १० मानवः ११ सिद्धिम् १२ विन्दति १३ ॥ ४६ ॥ अ०–उ० आधे मंत्रमें तटस्थलक्षण ईश्वरका कहकर फिर आधे श्लोकमें उसीकी भक्ति करनेका फल कहतेहैं जिससे १ भूतोंकी २ प्रवृत्ति ३ अर्थात् जिसके सत्तासे सब जगत् चेष्टा करता है ३ सि० और ❀ जिसकरके ४ यह ५ सर्व ६ सि० जगत् ❀ व्याप्त ७ सि० होरहाहै ❀ तिस अन्तर्यामी ईश्वरका ८ अपने कर्मकरके ९ अर्थात् अपने कर्मसे ९ आराधन करके १० प्राणी ११ सि० अन्तः करणशुद्धिद्वारा उसी अन्तर्यामीकी कृपासे ज्ञाननिष्ठ होकर ❀ परमानन्दस्वरूपआत्माको १२ प्राप्त होता है. १३ तात्पर्य समस्त जगत्में आनंदपूर्ण होरहा है. कोई पदार्थ ऐसा नहीं कि जिसमें आनंद नहो और वा आनंदही साक्षात् भगवत्का स्वरूप है. जिससे तनकसे छायामें त्रिलोकी आनंदित है ॥ ४६ ॥

मू०—श्रेयान्स्वधर्मोविगुणःपरधर्मात्स्वनुष्ठितात्
स्वभावनियतंकर्मकुर्वन्नाप्नोतिकिल्बिषम् ॥ ४७ ॥

स्वनुष्ठितात् १ परधर्मात् २ स्वधर्मः ३ विगुणः ४ श्रेयान् ५ स्वभावनियतम् ६ कर्म ७ कुर्वन् ८ किल्बिषम् ९ न १० आप्नोति ११ ॥ ४७ ॥ अ०—उ० अपने धर्ममें अवगुण समझकर पराये धर्मका जो अनुष्ठान करते हैं उनको पाप होता है. अर्थात् जो प्रवृत्तिधर्मके योग्य हैं, वे निवृत्तिधर्मको श्रेष्ठ समझकर, जो निवृत्तिधर्मका अनुष्ठान किया चाहें, तो अंतःकरणमें रजोगुण तमोगुण भरे रहनेसे उस निवृत्तिधर्मका अनुष्ठान कब होसक्ता है, प्रवृत्तिधर्मकोभी छोड़कर, दोनों तर्फसे भ्रष्ट होजाते हैं और जो निवृत्तिधर्मके योग्य हैं, वे कुसंगके सामर्थ्यसे सेवा और किसी संस्कारसे अपने धर्मको छोड़ प्रवृत्तिधर्मका अनुष्ठान करेंगे, तो फिर गईहुई रजोगुणी तमोगुणीवृत्ति उसके अन्तःकरणमें प्रविष्ट होजावेगी, इसीको पाप कहते हैं. इसवास्ते अपनेही धर्मका अनुष्ठान करना चाहिये—सुन्दर १ पराये धर्मसे २ अपना धर्म ३ गुणरहित ४ सि० भी ❀ श्रेष्ठ ५ सि० है. ❀ अपने गुणके अनुसार जिसका नियम किया गया है, उसकर्मको ६।७ कर्ता हुआ ८ पापको ९ नहीं १० प्राप्तहोता ११ तात्पर्य जैसे विषमें रहनेवाला जीव विषखाकर नहीं मरता. इसी प्रकार अपने गुणके अनुसार कर्म करता हुआ बन्धको नहीं प्राप्त होता. मेवा तस्मैका भोजन बहुत सुन्दर है परंतु ज्वरवालेके कामका नहीं ॥ ४७ ॥

०—सहजंकर्मकौन्तेयसदोषमपिनत्यजेत ॥
सर्वारंभाहिदोषेणधूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

कौंतेय १ सहजम् २ कर्म ३ सदोषम् ४ अपि ५ न ६ त्यजेत् ७ सर्वारम्भाः ८ हि ९ दोषेण १० आवृताः ११ धूमेन १२ अग्निः १३

इव १४ ॥ ४८ ॥ अ०–उ० कोई कर्म शुभ अशुभ ऐसा नहीं कि जिसमें कुछ दोष न हो–सि० इसवास्ते ❀ हे अर्जुन! १ स्वभावके अनुसार जो गुण अपनेमें प्रधानहो,(सत्त्व,रज, वा तम)वैसेही कर्म शमादि, वा परिचर्या, युद्ध, कृषि, इत्यादिकर्म २।३ दोषसहित ४ भी ५ सि० हैं,परंतु यावत् अन्तःकरण शुद्ध न हो तावत् उनको ❀ नहीं ६ त्यागना ७. समस्त कर्म ८।९ सि० किसी न किसी ❀ दोषकरके १० मिले हुए हैं ११. धूमकरके १२ अग्नि १३ जैसा. १४ तात्पर्य गुणदोषका फल कांटेके तरह संग है, बुद्धिमान्को चाहिये कि धर्ममें कंटकवत् दोषपर दृष्टि नदे, गुणग्राही रहे ॥ ४८ ॥

मू०–असक्तबुद्धिःसर्वत्रजितात्माविगतस्पृहः ॥
नैष्कर्म्यसिद्धिंपरमांसंन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९ ॥

सर्वत्र १ असक्तबुद्धिः २ जितात्मा ३ विगतस्पृहः ४ परमाम् ५ नैष्कर्म्यसिद्धिम् ६ संन्यासेन ७ अधिगच्छति ८ ॥ ४९ ॥ अ०–सि० इसप्रकार कर्मकरे ❀ सर्वत्र शुभ अशुभ पापपुण्यजनक कीसीकर्ममें १ जिसकी बुद्धि आसक्त नहीं २ जीता हुआ है कार्यकारणसंघात जिसने ३ दूर होगई है इसलोकके पदार्थोंकी इच्छा जिसकी४सि० सो ❀ परम५निष्कामताके अवधिको ६ सबका त्यागकरके ७ प्राप्त होता है ८. तात्पर्य आनंदस्वरूप ऐसे निष्क्रिय आत्माकी प्राप्ति सबपदार्थोंका त्याग करनेसे होती है. सिवाय आनन्दस्वरूप आत्माके किसीके पन्थ मत सम्प्रदायमें आसक्त नहीं होना. यही परमसिद्धि है ॥ ४९ ॥

मू०–सिद्धिंप्राप्तोयथाब्रह्मतथाप्नोतिनिबोधमे ॥
समासेनैवकौन्तेयनिष्ठाज्ञानस्ययापरा ॥ ५० ॥

यथा १ सिद्धिम् २ प्राप्तः ३ ब्रह्म ४ आप्नोति ५ तथा ६ कौंतेय७ या ८ज्ञानस्य ९ परा १० निष्ठा ११ समासेन १२ एव १३

मे १४ निबोध १५ ॥ ५० ॥ अ०-उ० परानिष्ठा श्रीभगवान् अब आगे पांचश्लोकोंमें कहेंगे. इसवास्ते अर्जुनको संबोधन करके कहते हैं. कि हे कौन्तेय! चैतन्यहो, चित्तको एकाग्रकरके परमसिद्धान्तको सुन-जैसे १ सि० सबकर्मोंका यथाअधिकार अनुष्ठान करके और उनके फलका त्यागकरके नैष्कर्म्यके ❀ सिद्धिको २ प्राप्तहुवा ३ ब्रह्मको ४ प्राप्त होता है. ५ तैसा ६ हे अर्जुन ।७ जो ८ ज्ञानकी ९ परा १० निष्ठा ११ सि० है सो ❀ संक्षेप १२ ही १३ मुझसे सुन १४।१५ ॥ ५० ॥

मू०-बुद्ध्याविशुद्धयायुक्तोधृत्यात्मानंनियम्यच ॥
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वारागद्वेषौव्युदस्यच ॥५१॥

विशुद्धया १ बुद्ध्या २ युक्तः ३ च ४ धृत्या ५ आत्मानम् ६ नियम्य ७ शब्दादीन् ८ विषयान् ९ त्यक्त्वा १० च ११ रागद्वेषौ १२ व्युदस्य १३ ॥ ५१ ॥ अ०-उ० सोई ज्ञानकी परानिष्ठा श्रीभगवान् कहते हैं-सतोगुणीबुद्धिकरकेयुक्त १।२।३ और ४ सि० सतोगुणी ❀ धृतिकरके ५ कार्यकारणसंघातका ६ निरोधकरके ७ शब्दादिविषयोंका ८।९ त्यागकरके १० और ११ रागद्वेषको १२ दूर करके १३ सि० ब्रह्मको प्राप्त होता है. तीसरे श्लोकके साथ इसका संबंध है ❀ तात्पर्य शब्दादिके त्यागमें देहयात्रामात्र-क्रियाका निषेध नहीं शरीरका निरोध यह है, कि शौच स्नानादि समय तो अवश्य उठना, रात्रिके बीचमें डेढपहर सोना, सिवाय इसके एकजगह एकान्त आसनपर विनाआश्रय सीधा बैठकर आत्माका ध्यान करना चाहिये संन्यासी एकजगे जो न रहे तो चार गौ कोससे सिवाय न चले ॥ ५१ ॥

मू०-विविक्तसेवीलघ्वाशीयतवाक्कायमानसः ॥
ध्यानयोगपरोनित्यंवैराग्यंसमुपाश्रितः ॥ ५२ ॥

विविक्तसेवी १ लघ्वाशी २ यतवाक्कायमानसः ३ नित्यम् ४ ध्यानयोगपरः ५ वैराग्यम् ६ समुपाश्रितः ७ ॥ ५२ ॥ अ०—वनमें जंगलमें, पहाड़में, नदीके किनारे, इत्यादिदेशमें कि जिसजगह स्त्री, चोर, बालक, मूर्ख, सिंह, सर्प, इत्यादिका भयसंबंध न हो ऐसे देशके सेवनकरनेका स्वभाव है जिसका १ सि० ऐसाहो ❀ दोभाग अन्नकरके एकभाग जलसे पूर्ण करके और एकभाग श्वासके आनेजानेकेलिये अवशेष (खाली) रक्खे. तात्पर्य थोड़ीसी क्षुधा बनी रहै अर्थात् कमभोजन करनेका स्वभाव है जिसका, उसको लघ्वाशी कहते हैं २ जीतेहुए हैं वाणी शरीर मन जिसके ३ अर्थात जो लक्षण सत्रहवें अध्यायमें सतोगुणीतपका लिखा है. उसीप्रकार वर्तते हैं ३. सि० आत्मध्यान, योगको अर्थात निदिध्यासनको परात्पर जानकर ❀ नित्य ४ ध्यानयोगपरायण रहते हैं ५ सि० नित्यशब्दके कहनेका यह तात्पर्य है कि पढ़ना पढ़ाना जपपाठादिकर्मोंका त्याग चाहिये ज्ञान निष्ठाको ❀ वैराग्यका ६ बहुत अच्छीतरह आश्रयकर रक्खा है ७ सि० सिवाय परमानन्दस्वरूप आत्माके यावत् पदार्थ इसलोक-परलोकके देखे सुने हैं सबको अनित्य दुःखदाई अनात्मधर्मवाले जानकर किसीमें न कुछ प्रीति करता है, न द्वेष करता है. परमज्ञान निष्ठाका यह लक्षण है ❀ ॥ ५२ ॥

मू०—अहंकारंबलंदर्पंकामंक्रोधंपरिग्रहम् ॥
विमुच्यनिर्ममःशान्तोब्रह्मभूयायकल्पते ॥ ५३ ॥

अहंकारम् १ बलम् २ दर्पम् ३ कामम् ४ क्रोधम् ५ परिग्रहम् ६ विमुच्य ७ निर्ममः ८ शान्तः ९ ब्रह्मभूयाय १० कल्पते ११ ॥ ५३ ॥ अ०—देहादिमें अहंबुद्धि १ अर्थात् हम विरक्त संन्यासी ब्राह्मण जगत्के गुरु श्रीमान् विद्यावाले हैं ऐसा ऐसा अहंकार १. योग

बलसे किसीका बुरा भला करना, विद्याके बलसे दूसरेका मत खंडन करना २ विद्याविरक्तिधनऐश्वर्यादिका मनमें गर्व रखना ३ इस लोक परलोकके पदार्थोंकी इच्छा ४ नास्तिकादिके साथ द्वेष ५ देहयात्रासे सिवाय संचय करना ६ सि० जो ऊपर कहे इन सब अहंकारादिको मनसे ❀ त्यागकर ७ सि० संन्यासादिधर्म और अद्वैतवादमतादिमें ❀ ममतारहित ८ भूतादिकालके चिंतासे रहित ९ सि० पुरुष ❀ ब्रह्मको १० प्राप्त होता है, ११ तात्पर्य—परमानन्दस्वरूप नित्यप्राप्त ऐसे आत्माको प्राप्तवत् मानकर, यह कहा जाता है कि ब्रह्मको प्राप्त होता है. वास्तव ब्रह्म सदा एकरस है ॥ ५३ ॥

मू०—ब्रह्मभूतःप्रसन्नात्मानशोचतिनकांक्षति ॥
समःसर्वेषुभूतेषुमद्भक्तिंलभतेपराम् ॥ ५४ ॥

ब्रह्मभूतः १ प्रसन्नात्मा २ न ३ शोचति ४ न ५ कांक्षति ६ सर्वेषु ७ भूतेषु ८ समः ९ पराम् १० मद्भक्तिम् ११ लभते १२ ॥ ५४ ॥ अ०—उ० ब्रह्मको जो प्राप्त होता है उसका फल निरूपण करते हैं दो श्लोकोंमें—ब्रह्मस्वरूप हुआ १ प्रसन्नचित्त है जिसका २ सि० सोबीती हुईबातोंका ❀ नहीं ३ शोचकरता है ४ सि० आगेको कुछ ❀ नहीं ५ चाहता है ६ सबभूतोंमें ७।८ सम ९ सि० है जो श्रीभगवान् कहते हैं कि वो ❀ मेरे पराभक्तिको १०।११ प्राप्त होताहै १२ तात्पर्य सातवें अध्यायमें चार प्रकारकी भक्ति कही है चारोंमें जो पीछे परेकही उसको पराभक्ति कहते हैं ज्ञानकी परानिष्ठा कहो वा पराभक्ति कहो बात एक ही है. इसजगे पाषाणादिमूर्तियोंका पूजनादि और रामकृष्णादिसात्वयवमूर्तिमान्भगवत्की भक्ति इसजगे भक्ति नहीं. ज्ञाननिष्ठाका नाम यहांभक्ति है. यह पराभक्तिफल है और सेवापूजादि साधन हैं. प्रकरण देखकर अर्थ समझना चाहिये. इसअध्यामें पचापनवें श्लोकमें श्रीभगवान्ने स्पष्ट कहा है कि हे अर्जुन! ज्ञानकी परा-

निष्ठा मुझसे सुन. और वो प्रकरण अबतक समाप्त नहीं हुआ पचपनवें श्लोकमें समाप्त होगा. वहांतक ज्ञाननिष्ठाका वर्णन है ॥ ५४ ॥

मू०—भक्त्यामामभिजानातियावान्यश्चास्मितत्त्वतः ॥
ततोमांतत्त्वतोज्ञात्वाविशतेतदनन्तरम् ॥ ५५ ॥

तत्त्वतः १ यावान् २ च ३ यः ४ अस्मि ५ माम् ६ भक्त्या ७ अभिजानाति ८ ततः ९ तत्त्वतः १० माम् ११ ज्ञात्वा १२ तदनन्तरम् १३ विशते १४ ॥ ५५ ॥ अ०—उ० श्रीभगवान् कहते हैं, कि जो मेरा यथार्थ स्वरूप है, वो इसीज्ञाननिष्ठासे (कि जो पीछे चारश्लोकोंमें कही) जानाजाता है, और सब वेदविधि इसका साधन है,:वास्तव १ जैसा २ और ३ जो ४ मैं हूं ५ सि० वैसा ❋ मुझको ६ सि० ज्ञानलक्षणा ❋ भक्तिकरके ७ भलेप्रकार जानता है ८ पीछे उसके ९ सि० अर्थात् ❋ यथार्थ १० मुझको ११ जानकर १२ फिर १३ सि० मुझमेंही ❋ मिलजाताहै. १४ तात्पर्य जसे परमानन्दस्वरूप आत्मा उपाधिसहित और उपाधिरहित है,सो ज्ञाननिष्ठासेही जानाजाता है. जो आत्माका जानना वोही उसमें मिलना है.पहले जानना और पीछे उसमें मिलना यह एक बोलीकी रीति है. ब्रह्मका जाननेवाला ब्रह्मरूपही है, यह वेदार्थ है ॥ ५५ ॥

मू०—सर्वकर्माण्यपिसदाकुर्वाणोमद्व्यपाश्रयः ॥
मत्प्रसादादवाप्नोतिशाश्वतंपदमव्ययम् ॥ ५६ ॥

सदा १ सर्वकर्माणि २ मद्व्यपाश्रयः ३ कुर्वाणः ४ अपि ५ मत्प्रसादात् ६ अव्ययम् ७ शाश्वतम् ८ पदम् ९ अवाप्नोति १० ॥ ५६ ॥ अ०—उ० ज्ञाननिष्ठा भगवत्के कृपासे प्राप्त होती है, जब प्रथम वेदोक्तनिष्कामकर्म करे. यह परमपदका मार्ग श्रीभगवान् दिखाते हैं सदा १ सबकर्मोंको २ मुझ भगवत्का आश्रा लेकर ३ करता हुआ ४ निश्चय ५ भगवत्प्रसादसे ६ निर्विकारनित्यपदको ७।८।९ प्राप्त

होताहै. १० तात्पर्य प्रभुका आश्रा लेकर यथाशक्ति देशकालवस्तुके अनुसार निष्कामकर्म करना चाहिये. विनाआश्रय कर्मोंका निर्वाह कठिन है. और इससमयमें सिवायपरमेश्वरके और किसी कर्मधर्मका भरोसा नहीं. केवल उसी करुणाकरकी कृपासे सब अनर्थ दूर होसक्तेहैं. और परमपदपरमानन्दस्वरूप आत्माकी प्राप्तिहोना उसीके कृपाका फल समझना चाहिये,अकृतउपासकके ज्ञाननिष्ठाका कभी परिपाक नहीं होता ॥ ५६ ॥

मू०—चेतसासर्वकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्परः ॥
बुद्धियोगमुपाश्रित्यमच्चित्तःसततंभव ॥ ५७ ॥

मत्परः १ चेतसा २ सर्वकर्माणि ३ अपि ४ संन्यस्य ५ बुद्धियोगम् ६ उपाश्रित्य ७ सततम् ८ मच्चित्तः ९ भव १० ॥ ५७ ॥

अ०— मुझपरायणहोकर १ चित्तसे २ सबकर्मोंको ३ मेरेविषय ४ त्यागकरके ५ भि०और ❋ज्ञानयोगका ६ आश्रयकरके ७ सदा ८ मुझमें चित्तवाला ९ हो १० अर्थात् तेरा चित्त सदा मुझमेंही लगारहे ऐसा हो १० तात्पर्य यह कि सब धर्मकर्म वास्ते अन्तःकरणके शुद्धिके हैं जिसका अन्तःकरण शुद्ध होजाता है, उसपर परमेश्वर प्रसन्न होते हैं तब ज्ञानमें निष्ठा होती है फिर उसज्ञाननिष्ठाके परिपाकार्थ कर्मोंका त्याग आवश्यक है,यह प्रभुकीआज्ञा है. प्रभुके आज्ञासे कर्मोंका त्याग करना यही प्रभुमें कर्मोंका संन्यास करना है. कर्मोंका संन्याकरके फिर निरन्तर भक्ति करना चाहिये ज्ञानयोगका आश्रय यहहै कि हरिभक्तिसे मुझको ज्ञाननिष्ठा अवश्य प्राप्त होगी. ऐसे ज्ञाननिष्ठाकी आशा रखना यही ज्ञानयोगका आश्रा करना है. इसप्रकरणमें ज्ञानयोगका आश्रय करनेका यही अर्थ है ॥ ५७ ॥

मू०—मच्चित्तःसर्वदुर्गाणिमत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥
अथचेत्त्वमहंकारान्नश्रोष्यसिविनंक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

मच्चित्तः १ सर्वदुर्गाणि २ मत्प्रसादात् ३ तरिष्यसि ४ अथ ५ चेत् ६ त्वम् ७ अहंकारात् ८ न ९ श्रोष्यसि १० विनंक्ष्यसि ११ ॥ ५८ ॥ अ०—मुझमें चित्तलगाकर १ सबदुर्गमोंको २ मेरे प्रसादसे ३ तरजायगा तू ४ और ५ जो ६ तू ७ अहंकारसे ८ नहीं ९ सुनेगा १० सि०तो ❀ नष्ट होजायगा तू. ११ तात्पर्य—परमेश्वर मोक्षमार्गका सुगमउपाय अपनी भक्ति बताते हैं. जो वर्णाश्रमके अहंकारसे भक्तिका आदर न करेंगे तो उनका पुरुषार्थ भ्रष्ट होजायगा. विनाप्रसादप्रभुके अपने मतलबको न पहुँचेंगे हरिकी कृपा ऐसा पदार्थ है. कि कैसाही कठिन पदार्थ हो भगवद्भक्तको सुलभ होजाता है भगवान्‌की आज्ञा मानना यही भक्ति है. चतुरताका भक्तिमें कुछ काम नहीं ॥ ५८ ॥

मू०—यदहंकारमाश्रित्यनयोत्स्यइतिमन्यसे ॥
मिथ्यैवव्यवसायस्तेप्रकृतिस्त्वांनियोक्ष्यति ॥५९॥

यत् १ अहंकारम् २ आश्रित्य ३ इति ४ मन्यसे ५ न ६ योत्स्ये ७ ते ८ एव ९ व्यवसायः १० मिथ्या ११ प्रकृतिः १२ त्वाम् १३ नियोक्ष्यति १४॥५९॥ अ०—जिसअहंकारका १।२ आश्रय करके ३ यह ४ तू मानताहै ५ सि०कि ❀ नहीं ६ युद्ध करूंगा मैं ७ तेरा ८ यह ९ निश्चय १० झूँटा ११ सि०है ❀ तेरास्वभाव १२ तुझसे १३ युद्ध करावेगा. १४ तात्पर्य--जिसका जो धर्म है उसको उसीका अनुष्ठान करना चाहिये अन्यधर्मका अनुष्ठान उससे नहीं होसकेगा. जैसा अर्जुन क्षत्रिय है भिक्षामाँगना उससे कठिन है क्योंकि क्षत्रियमें रजोगुण प्रधान होता है. वो शूरतादिधर्मोंमेंही प्रेरता है. और वोही अंतःकरणके शुद्धिका हेतु है ॥ ५९ ॥

मू०—स्वभावजेनकौन्तेयनिबद्धःस्वेनकर्मणा ॥
कर्तुंनेच्छसियन्मोहात्करिष्यस्यवशोपितत् ॥६०॥

कौन्तेय १ स्वभावजेन २ स्वेन ३ कर्मणा ४ निबद्धः ५ यत् ६ कर्तुम् ७ न ८ इच्छसि ९ मोहात् १० अवशः ११ तत् १२ अपि १३ करिष्यसि १४ ॥ ६० ॥अ०—हे अर्जुन ! १ स्वाभाविक २ अपने ३ कर्मकरके ४ बँधाहुआ ५ जो ६सि०युद्ध ❀ करनेकी ७ नहीं ८ इच्छा करताहै तू ९ अविवेकसे १० अवशहुआ ११ सोई १२।१३ सि०युद्ध ❀ करेगा तू. १४ तात्पर्य—इस समय तेरे अन्तःकरणमें सतोगुणीवृत्तिका आविर्भाव होरहा है कि जिससे तुझको दया होरही है·युद्ध अच्छानहीं लगता, भिक्षामाँगना प्रिय प्रतीत होता है. जब यह वृत्ति तिरोभावको प्राप्त होगी. रजोगुणी वृत्ति कि जो विशेषकरके तेरे अन्तःकरणमें प्रधान रहती है उसका जब आविर्भाव होगा, उससमय यह दया तेरी सब जाती रहेगी रजोगुणके वशहोकर तू अवश्य युद्ध करेगा ॥ ६० ॥

मू०—ईश्वरःसर्वभूतानांहृद्देशेर्जुनतिष्ठति ॥
भ्रामयन्सर्वभूतानियंत्रारूढानिमायया ॥ ६१ ॥

अर्जुन १ ईश्वरः २ सर्वभूतानाम् ३ हृद्देशे ४तिष्ठति ५सर्वभूतानि६ मायया ७ भ्रामयन् ८ यंत्रारूढानि ९ ॥ ६१ ॥ अ०—उ० प्रकृतिके वश जीव है, और प्रकृति ईश्वरके वश है सोई हे अर्जुन १ ईश्वर २ सबभूतोंके ३ हृदयमें ४ विराजमान है ५ सबभूतोंको ६ मायाकरके ७ भ्रमा रहा है ८. सि०कैसे हैं वे भूत कि जैसे ❀ यंत्रमें आरूढ ९ अर्थात् कलमें लगीहुई पुतली जैसा बाजीगर (खिलारी) नचाता है, ९ तात्पर्य—जीव स्वतंत्र नहीं, शास्त्रमार्गको छोड़ अपनी बुद्धिसे बुरे भले कर्मोंको नहीं जान सक्ता श्रुतिस्मृति दो ईश्वरकी आज्ञा हैं जो दोनोंको सत्य समझ कर वेदोक्तमार्गपर चलता रहेगा, उसको ईश्वर सब बखेड़ोंसे छुडाकर परमानंदको प्राप्तकरदेंगे, और जो अपनी चतुराई चलावेगा, वो बेसन्देह धोखा खावेगा ॥ ६१ ॥

मू०–तमेवशरणंगच्छसर्वभावेनभारत ॥
तत्प्रसादात्परांशांतिंस्थानंप्राप्स्यसिशाश्वतम् ॥ ६२ ॥

भारत १ सर्वभावेन २ तम् ३ एव ४ शरणम् ५ गच्छ ६ तत्प्रसादात् ७ पराम् ८ शांतिम् ९ शाश्वतम् १० स्थानम् ११ प्राप्स्यसि १२ ॥ ६२ ॥ अ०–उ०जब कि जीव स्वतंत्र नहीं, तो उसको अवश्य परमेश्वरका आश्रय चाहिये. इसहेतुसे हे अर्जुन! तूभी परमेश्वरका आश्रय ले. हेअर्जुन १ सब भावकरके २ अर्थात् तनमनधनकरके. २ तिस ३ ही ४ रक्षाकरनेवालेको ५ प्राप्त हो. ६ अर्थात् उसीअन्तर्यामीका आश्रय ले६ उस अन्तर्यामीके प्रसादसे ७ परमशान्तिको ८।९सि०और ❀ नित्यस्थानको १०।११ प्राप्त होगा तू १२ ॥ ६२ ॥

मू०–इतितेज्ञानमाख्यातंगुह्याद्गुह्यतरंमया ॥
विमृश्यैतदशेषेणयथेच्छसितथाकुरु ॥ ६३ ॥

इति १ मया २ गुह्यात् ३ गुह्यतरम् ४ ज्ञानम् ५ आख्यातम् ६ ते ७ एतत् ८ अशेषेण ९ विमृश्य १० यथा ११ इच्छसि १२ तथा १३ कुरु १४ ॥ ६३ ॥ अ० यह १ मैंने २ गुप्तसे ३ अतिगुप्त ४ ज्ञान ५ कहा ६ तुझसे. ७ इस ८ समस्तका ९ विचारकरके १० जैसी ११ तेरी इच्छा हो १२ तैसाकर. १३ । १४ तात्पर्य ग्रन्थको प्रारंभसे अन्ततक भलेप्रकार विचारना चाहिये, तब ग्रन्थका तात्पर्य प्रतीत होता है. दोचारपत्र, वा दोचारअध्यायके विचारनेसे वक्ताका तात्पर्य नहीं जानाजाता. प्रत्युत मूर्खलोग पूर्वपक्षको सिद्धान्त समझ बैठते हैं. क्योंकि बहुतजगह पूर्वपक्ष कै कै पत्रोंमें होता है. इसी हेतुसे बहुतलोग साधनोंको सिद्धान्त समझ बैठते हैं ॥ ६३ ॥

मू०–सर्वगुह्यतमंभूयःशृणुमेपरमंवचः ॥
इष्टोसिमेदृढमतिस्ततोवक्ष्यामितेहितम् ॥ ६४ ॥

सर्वगुह्यतमम् १ मे २ परमम् ३ वचः ४ भूयः ५ शृणु ६ अति

दृढम् ८ मे ९ इष्टः १० असि ११ ततः १२ ते १३ हितम् १४॥६४॥ अ०-उ० जो तुझसे समस्तगीताशास्त्रका विचार न होसके, तो मैंही समस्तगीताका सारदोश्लोकोंमें कहताहूं. तू मेरा प्याराहै, तेरे हितकेवास्ते वारंवार कहता हूं. प्रथम तो कर्ममार्गही बतलाना गुप्त है और भक्ति मार्ग उससेभी गुप्ततर है और ज्ञाननिष्ठा सबसे गुप्ततम है ऐसे गुप्ततम १ मेरे२परम ३ वचनको४ फिर ५ सुन ६ अत्यन्त ७।८ मेरा९ प्यारा १० है तू ११ इसवास्ते १२ तेरे १३ हितकेलिये कहूँगा १४ ॥ ६४ ॥

मू०-मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमांनमस्कुरु ॥
मामेवैष्यसिसत्यंतेप्रतिजानेप्रियोसिमे ॥ ६५ ॥

मन्मनाः १ मद्भक्तः २ मद्याजी ३ भव ४ माम् ५ नमस्कुरु ६ माम् ७ एव ८ एष्यासि ९ ते १० सत्यम् ११ प्रतिजाने १२ मे १३ प्रियः १४ असि १५ ॥६५॥ अ०-उ० इस मंत्रमें कर्मनिष्ठाका सार कहतेहैं-मुझमें मनवाला १ सि० हो ❀ अर्थात् मुझ परमेश्वरमें मन लगा १ सि० और ❀ मेरा भक्त २ सि० हो ❀ अर्थात् मेरी भक्ति कर२सि० और ❀मेरा पूजन करनेवाला ३ हो तू ४ अर्थात् मेरा पूजनकर. ४ सि० और ❀ मुझको. ५ नमस्कारकर ६ मुझको ७ ही ८ प्राप्त होगा ९ तुझसे १० सत्य ११ मैं प्रतिज्ञा करता हूँ १२ मेरा १३ प्यारा १४ है. तू १५ तात्पर्य-ज्ञाननिष्ठाका साधन कर्मनिष्ठा है, कर्मोंमें भगवद्भक्ति सार है, सो दोप्रकारकी है, अन्तरंग, और बहिरंग है. नमस्कार पूजनादि बहिरंग है. भगवतमें मनलगाना इत्यादि अन्तरंग. यावत् परमेश्वरके स्वरूपमें भले प्रकार मन न लगे तावत् पाठमंत्रोंका जप, भगवत्सेवा, भगवद्भक्तोंकी सेवा, शास्त्रश्रवण इत्यादि करता रहे. यद्यपि ज्ञानके साधन बहुतहैं परन्तु सबमें ये तीन सार हैं. भगवद्भक्ति, साधुसेवा, शास्त्रका श्रवण और न तीनोंमें भी साधुसेवा सार है कि जिसके प्रतापसे सब साधन

प्राप्त हो जाते हैं. ये तीनों साधन सुगम प्रत्यक्ष फल देनेवाले हैं और इस समयमें इनका ही अनुष्ठान होसक्ता है. यज्ञादिकर्म और वर्णाश्रमविहित धर्मका अनुष्ठान होना कठिन है. साधु सेवादि साधनोंमें जो प्रतिबन्धहै. सो दिखातेहैं. बहुतजीव भगवत्से विमुख तो इसवास्ते हैं, कि भगवत्का निराकार, एकरस, नित्यमुक्त, शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप, उनके समझमें नहीं आता. दुराग्रह, अश्रद्धा, मन्दभाग्य,कमसमझ, इनकारणोंसे और रामकृष्णादि साकार भगवद्रूपको मनुष्य समझते हैं, और उस स्वरूपमें नानाप्रकारका तर्क करते हैं. भगवद्भक्तिमें यही प्रतिबन्ध है और यावत् भगवत्का स्वरूप शुद्ध, सच्चिदानन्द, नित्यमुक्त, शास्त्रके रीतिपूर्वक समझमें न आवे, तावत् मूर्तिमानईश्वरकी उपासना आवश्यक है. और शास्त्रके श्रवणसे इसहेतुसे विमुख हैं, कि ब्रह्मविद्यावेदान्तशास्त्रउपनिषद, सांख्य, पातंजल इत्यादि शास्त्र तो उनके समझमें आते नहीं प्रत्युत बहुतलोग यह भी नहीं जानते, कि उन पोथियोंमें, क्या बात है और रामायण महाभारत श्रीमद्भागवतादिग्रन्थोंको कहानी बताते हैं. उनग्रन्थोंके तात्पर्यको इतना तो समझतेही नहीं कि जैसे समुद्रमेंसे एक बूंद जल होता है. यावत् वेदांतशास्त्रका अर्थ भलेप्रकार समझमें न आवे, तावत् महाभारतादिग्रन्थोंको श्रवण करना चाहिये और साधुसेवासे इसवास्ते विमुख हैं कि साधुको कमजात, और बेविद्या, बेस्वरूप, ऐसे नामकर संग और सेवा साधुओंकी नहीं करते. अनेकमान बड़ाई अहंकारादिमें फँसे रहते हैं. वे. जैसे आप सदोष हैं साधुओंकोभी अपनेही सदृश जानते हैं. वे मंदभाग्यहैं इस हेतुसे उनकी शुभकर्म, पूजा, जप, शमदमादि वैराग्य, विद्या, इनपर दृष्टि नहीं जाती. गुण देखनेके आंखोंसे वे अन्धे हैं. कुकर्मोंसे कौवेकेसी दृष्टि उनकी होरहीहै. और एक बडा आश्चर्य यहहै कि साधुको अवश्य वेदोक्त निर्दोष तलाश करते हैं और जोरू, पुत्र मित्र इत्यादि

हजारों दोषभरे हुए हैं, उनको मोक्षका साधन समझते हैं. मूर्ख यह नहीं समझते कि निर्दोषमहात्मा निर्दोषोंकोही मिलते हैं मुझ ऐसे निर्भागोंको दर्शनभी नहीं देते कहते हैं कि. और बहुतलोग ऐसी साधुसेवा करते हैं, कि जहांतक उनसे होसके साधुवोंकी बुराईकरना, और साधुओंको दुःखदेना, इसीको मोक्षका साधन समझते हैं । तात्पर्य—इससमयमें साधु बहुत हैं. हंसके सदृश जो हैं, उनको दीखते हैं और जिनकी कौवेकीसी दृष्टि है उनको साधु न कभी मिलेंगे न शास्त्रार्थ उनके समझमें आवेगा, न भगवद्भक्ति उनसे होसकेगी. जैसे माता अपने पुत्रको मुखपर दुष्टोंकी दृष्टि बचानेके लिये स्याहीकी बिंदी लगादेती है, इसीप्रकार जो कदाचित् किसीसाधुमें कोई दोष अपने दोषसे प्रतीत हो, तो उस दोषको स्याहीके बिंदीवत् समझना चाहिये भगवद्भक्त भगवत्के पुत्रके सदृश हैं ॥ ७५ ॥

मू०—सर्वधर्मान्परित्यज्यमामेकंशरणंव्रज ॥
अहंत्वासर्वपापेभ्योमोक्षयिष्यामिमाशुचः ॥ ६६ ॥

सर्वधर्मान् १ परित्यज्य २ एकम् ३ माम् ४ शरणम् ५ व्रज ६ अहम् ७ त्वा ८ सर्वपापेभ्यः ९ मोक्षयिष्यामि १० माशुचः ११ ॥ ६६ ॥

अ०—उ० समस्तगीतामें कर्मनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठाका वर्णन है कर्मनिष्ठाका सारार्थ तो पिछले मंत्रमें कहा अब ज्ञाननिष्ठाका सार संक्षेपसे इसमंत्रमें कहते हैं सब धर्मोंको १ त्यागकर २ अकेले मुझशरणको ३ । ४।५ प्राप्त हो ६ मैं ७ तुझको ८ सब पापोंसे ९ छुड़ादूंगा १० मत शोचकर ११ तात्पर्य शरीर इन्द्रियप्राण अन्तःकरणके जो जो धर्म हैं उन सब धर्मोंको त्यागकर जो आश्रय लेना चाहिये सो कहते हैं शरण और एक ये दोनों -नम्-शब्दके विशेषण हैं "शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः ॥ अमरको

शमें शरणका अर्थ गृह है. अर्थात् आश्रय और रक्षा करनेवाला ये दो अर्थ हैं. श्रीभगवान् कहते हैं, कि मुझको प्राप्त हो कैसा हूं मैं, कि एक. अर्थात् अद्वैत. कभी किसी कालमें जिसमें दूसरा नहीं और फिर कैसा हूं मैं, कि आश्रय. शरण हूं, वा रक्षाकरनेवाला हूं "द्वितीयाद्वै भयं भवति" दूसरेसे अवश्य भय होता है, यह वेदने कहा है. इसवास्ते तू अद्वैतको प्राप्त हो; वो रक्षाकरनेवाला है वहां भय नहीं. वोही आश्रय है. इस मंत्रका तात्पर्य बेसंदेह अभेदमें है. और कहनेमें सुननेमें इसका तात्पर्यार्थ भेदमें प्रतीत होता है. जहांतक वाणी है, वहांतक व्यावहारिक द्वैत है, परमार्थमें द्वैत नहीं सिवाय इसके अक्षरार्थसे भी इसश्लोकका अर्थ अद्वैतविषय है. सोभी सुनो अहम् शब्द और माम् शब्द ये दोनों अस्मत्शब्दके प्रयोग हैं श्रीभगवान् स्पष्ट कहते हैं, कि अहं यह शब्द अर्थात् केवल माया अविद्यारहित शुद्धअहंकार अर्थात् अहं ब्रह्मास्मि (यह महावाक्यार्थ) यह निष्ठा तुझको संसारसे छुड़ावेगी-शरीरादिके जो धर्म उनके त्यागमें मत शोचकर. यह अर्थ गीताभाष्यमें बहुत विस्तारपूर्वक सिद्धान्ताभेदाद्वैतज्ञाननिष्ठामें किया है. क्योंकि सब धर्मोंका त्याग कर्मनिष्ठासे नहीं होसक्ता. ज्ञानीसे ही होसक्ता है. व्याकरणकी. रीतिसे युष्मत् अस्मत्शब्दोंके अर्थको और शब्दधर्मको अर्थधर्मको जो समझते हैं वे "माम् ॥ अहम् ॥ त्वाम् ॥ त्वम्" इन शब्दोंके अर्थको समझेंगे. और जो किसीका यह हठ और निश्चय है, कि इस मंत्रका अर्थभी भेदमें है, तो उसको उचित है कि कहे हुएका अनुष्ठान करे, हमको भगवद्भक्तिसे विरोध नहीं. भेदवादीका यदि ज्ञाननिष्ठासे विरोध है, इसमेंभी हमको लाभ है. क्योंकि अज्ञानी बनारहेगा तो सेवा करेगा, ज्ञानी बनबैठेगा तो हमको क्या लाभ होगा, ज्ञाननिष्ठाका उपदेश तो दूसरेके लाभार्थ है. श्रद्धा करो ना

मतकरो. श्रीभगवान् अश्रद्धावान्को ज्ञानका उपदेश करना निषेध करते हैं॥ ६६॥

सि० पांचश्लोकोंका अर्थ अन्यप्रकार दूसरे प्रकारसे लिखते हैं. उसीरीतिसे अर्थ शीघ्र समझमें आवेगा. पंडितशंकरलाल विष्णुनागरब्राह्मणकी बेटी बीबीजानकीने समस्तगीताका अर्थ उसीरीतिसे लिखा है. उसटीकाका नाम जानकीविनिर्मिता प्रसिद्ध है ❀

मू०—इदंतेनातपस्कायनाभक्तायकदाचन॥
नचाशुश्रूषवेवाच्यंनचमांयोभ्यसूयति॥ ६७॥

न०	व०	पद.		अर्थ.
१	१	इदम्	१	यह
				गीताशास्त्र
६	१	ते	२	तुमने
४	१	अतपस्काय	३	जिसने तप न कियाहो उस बहिर्मुखको
अ.		न	४	नहीं
				सुनाना चाहिये
अ.		न	५	न
४	१	अभक्ताय	६	अभक्तको
				जो गुरु भगवत का भक्त न हो उसको
अ.		कदाचन	७	कभी
				सुनाना न चाहिये
अ.		च	८	और
				जो
४	१	अशुश्रूषवे	९	शुश्रूषा टहल न करे अथवा जिसको सुननेकी इच्छा न हो उसको
अ.		न	१०	नहीं
१	१	वाच्यम्	११	कहना योग्य है
				अर्थात् पूर्वोक्तोंको सुनाना न चाहिये
अ.		च	१२	और

वि०	व०	पद.		अर्थ.
१	१	यः	१३	जो
२	१	माम्	१४	मुझको
				अर्थात् मेरी
क्रि.	१	अभ्यसूयति	१५	निन्दा करता है
				उसकोभी
अ.		न	१६	नहीं
				सुनाना योग्य है. यह मेरी आज्ञा है.

तात्पर्य जो मूलके अनधिकारी कहे, वेही इसटीकाके अनधिकारी हैं. ॥ ६७ ॥

मू०—यइमंपरमंगुह्यंमद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥
भक्तिंमयिपरांकृत्वामामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥

उ०तपस्वी भक्त शुश्रूषु जिज्ञासु निन्दारहित इस गीताशास्त्रके पढ़नेसुननेके अधिकारी हैं, ऐसे अधिकारियोंको जो यह गीताशास्त्र पढ़ाते सुनाते हैं, उनकी महिमा दोश्लोकोंमें कहते हैं.

वि०	व०	पद		अर्थ.
१	१	यः	१	जो
२	१	इमम्	२	इस
२	१	परमम्	३	परम
२	१	गुह्यम्	४	गुह्य
				गीताशास्त्रको
७	व०	मद्भक्तेषु	५	मेरे भक्तोंके विषय
क्रि.	१	अभिधास्यति	६	धारणकरावेगा
				अर्थात् गीताका अर्थ भले प्रकार प्रेमपूर्वक विनालोभ जो भगवद्भक्तोंको समझावेगा सो
७	१	मयि	७	मुझमें
२	१	पराम्	८	परा
		भक्तिम्	९	भक्ति

वि०	व०	पद.		अर्थ.
अ.	कृ.	कृत्वा	१०	करके
२	१	माम्	११	मुझको
अ.		एव	१२	ही
क्रि.	१	एष्यति	१३	प्राप्त होगा
१	१	असंशयः	१४	नहीं है संशय इसमें.

तात्पर्य गीताशास्त्रको जो पढ़ाते हैं वे परमभक्त महानुभावहैं ६८

मू०—नचतस्मान्मनुष्येषुकश्चिन्मेप्रियकृत्तमः ॥
भवितानचमेतस्मादन्यःप्रियतरोभुवि ॥ ६९ ॥

वि०	व०	पद.		अर्थ.
७	१	भुवि	१	पृथिवीके ऊपर
अ.		कश्चित्	२	कोई
५	१	तस्मात्	३	तिससे
				अर्थात् गीता पढानेवालेसे सिवाय
६	१	मे	४	मुझको
१	१	प्रियकृत्तमः	५	अत्यंत प्रसन्न करनेवाला
७	ब०	मनुष्येषु	६	मनुष्योंमें
अ.		न च	७	नहीं
क्रि.	१	भविता	८	है.
				और
५	१	तस्मात्	९	तिससे
				अर्थात् गीता पढानेवालेसे
६	१	मे	१०	मुझको
१	१	अन्यः	११	दूसरा अन्य
१	१	प्रियतरः	१२	प्यारा विशेष
अ.		नच	१३	नहीं

तात्पर्य जो गीताका अर्थ जानते हैं, उनको कुछ कर्तव्य नहीं, न
विधि उनपर है. उनको इसलोकपरलोकके पदार्थोंकी इच्छा

भीनहीं. ऐसे जो महात्मा किसीको विनाप्रयोजन दुःखविक्षेपसहकर गीताशास्त्र पढ़ावें, सुनावें, तो बेसन्देह उनसे सिवाय परमेश्वरको और कौन प्यारा लगेगा. ऐसे महात्मा भगवत्का नित्य अवतार कहलाते हैं ॥ ६९ ॥

मू०—अध्येष्यतेचयइमंधर्म्यंसंवादमावयोः ॥
ज्ञानयज्ञेनतेनाहमिष्टःस्यामितिमेमतिः ॥ ७० ॥

वि०	व०	पद.		अर्थ.
१	१	यः	१	जो
२	१	इमम्	२	इस
२	१	धर्म्यम्	३	धर्मके मिलेहुए
६	२	आवयोः	४	मेरे और तेरे
२	१	संवादम्	५	संवादको
क्रि.	१	अध्येष्यते	६	पढेगा
अ.		च	७	
३	१	तेन	८	तिसले
३	१	ज्ञानयज्ञेन	९	ज्ञानयज्ञसे
				मुझको प्रसन्नकिया अर्थात् जैसा ज्ञानयज्ञसे मैं प्रसन्न होताहूं वैसाही गीतापढनेवालेसे
१	१	अहम्	१०	मैं
१	१	इष्टः	११	प्रसन्न
क्रि.	१	स्याम्	१२	होताहूं
अ.		इति	१३	यह
६	१	मे	१४	मेरी
१	१	मतिः	१५	समझ
				है.

टी० चकारःपदपूरणार्थः ७ तात्पर्य चतुर्थ अध्यायमें बारह यज्ञ प्रभुने कह सबयज्ञोंसे ज्ञानयज्ञको बडा कहा, क्योंकि ज्ञानमे स... ...ोंकी समाप्ति है. गीताको जो पढते हैं उनके कर्मभी स

होजाते हैं. गीताका पढना पाठकरना यही सबसे बड़ाकर्म है, इसी एकशुभकर्मसे भगवत्पूजाकियेगये होकर प्रसन्न होजाते हैं ॥ ७० ॥

मू०-श्रद्धावाननसूयश्चशृणुयादपियोनरः ॥
सोपिमुक्तःशुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥७१॥

उ०जो गीताशास्त्रको श्रवण करते हैं उनकी स्तुति श्रीमहाराज अपने मुखसे करते हैं ॥

वि०	व०	पद		अर्थ.
१	१	यः	१	जो
१	१	नरः	२	पुरुष
अ.		च	३	
१	१	अनसूयः	४	निंदारहित
१	१	श्रद्धावान्	५	श्रद्धासहित
क्रि.	१	शृणुयात्	६	सुनै
अ.		अपि	७	भी
१	१	सः	८	सो
अ.		अपि	९	भी
				सब झगडोंसे
१	१	मुक्तः	१०	छूटाहुवा
६	ब०	पुण्यकर्मणाम्	११	धर्मात्माओंके
२	ब०	शुभान्	१२	शुभ ऐसे
२	ब०	लोकान्	१३	लोकोंको
क्रि.	१	प्राप्नुयात्	१४	प्राप्त होगा

टी०चकारःपादपूरणार्थः ३ ॥ ७१ ॥

मू०-कच्चिदेतच्छ्रुतंपार्थत्वयैकाग्रेणचेतसा ॥
कच्चिदज्ञानसंमोहःप्रनष्टस्तेधनंजय ॥ ७२ ॥

पार्थ १ त्वया २ एकाग्रेण ३ चेतसा ४ कच्चित् ५ एतत् ६ श्रुतम् ७ धनंजय ८ ते ९ अज्ञानसंमोहः १० कच्चित् ११ प्रनष्टः १२ ॥ ७२ ॥ अ०–उ० परमकरुणाकी खान श्रीभगवान् अर्जुनसे इस श्लोकमें यह बूझतेहैं. कि हे अर्जुन ! इस उपदेशसे तुम्हारे अज्ञानका नाश हुआ वा नहीं. जो अज्ञानका नाश न हुआ हो, तो फिर दूसरे प्रकारसे उपदेश करूंगा. सि० यह अपनी कृपा और आचार्योंका धर्म दिखाते हैं. जबतक शिष्यका अज्ञान दूर न हो तबतक गुरुको चाहिये कि फिर वारंवार दूसरे प्रकारसे उपदेश करे. यह आचार्योंका धर्महै. ❀ हे अर्जुन! १ तुमने २ एकाग्र ३ चित्तकरके ४ कुछ ५ यह ६ सि० कि जो मैंने उपदेश किया वह ❀ सुना. ७ सि० वो तुम्हारे समझमें आया वा नहीं और ❀ हे अर्जुन ८ तुम्हारा ९ तत्त्वज्ञानका विपर्यय अज्ञानसंमोह १० कुछ ११ नष्ट हुआ १२ सि० वा नहीं. "आवृत्तिरसकृदुपदेशात्" शारीरक भाष्यका यह सूत्रहै. ❀ तात्पर्य इसका यह है कि जबतक अज्ञान भले प्रकार नष्ट न हो तबतक वारंवार वेदांतशास्त्रका श्रवण करें. श्रवणकरनेसे अज्ञानका, मननसे, संशयका निदिध्यासनसे विपर्ययका नाश होताहै ॥ ७२ ॥

मू०–अर्जुनउवाच ॥ नष्टोमोहःस्मृतिर्लब्धात्वत्प्रसादान्मयाच्युत ॥ स्थितोऽस्मिगतसन्देहःकरिष्येवचनतव ॥ ७३ ॥

अच्युत १ त्वत्प्रसादात् २ मोहः ३ नष्टः ४ मया ५ स्मृतिः ६ लब्धा ७ गतसंदेहः ८ स्थितः ९ अस्मि १० तव ११ वचनम् १२ करिष्ये १३॥७३॥अ०–उ०अज्ञानसंशयविपर्ययरहित कृतार्थ हुआ अर्जुन श्रीभगवान्से कहता है कि आपकी कृपासे मेरा अज्ञान संश[य] [illegible] असंभावना विपरीतभावना प्रमाणगत और अप्रमेय

इनसबका नाश हुआ और आपकी कृपासे मैं कृतकृत्य हुआ. अब मुझको कुछ करनेके योग्य नहीं. मैं अक्रिय असंग ऐसा हूं—हे अविनाशी १ आपकी कृपासे २ मोह३ सि० मेरा * नष्ट ४ सि० हुआ और * मुझको ५ सि० अपने स्वरूपकी * स्मृति ६ प्राप्त हुई ७ सि० अब * सन्देहरहित ८ स्थित ९ हूं मैं, १० आपके ११ वचनको १२ करूंगा १३. टी० चौथे अध्यायमें अर्जुनने कहाथा. कि आपका जन्म तो अब हुआ है और इसजगे अविनाशी कहा यह ज्ञानका प्रतापहै १ मूलाज्ञान समस्तसंसारका जड़ २ स्मरण याने याद ६ कमसमझ यह समझते हैं. कि अर्जुनने यह कहा कि आपके वचनको करूंगा. अर्थात् युद्ध करूँगा और विद्वान यह समझते हैं कि अर्जुनने यह कहा कि आपका वचन करूंगा अर्थात् जो आपने कहा उसीप्रकार अनुष्ठान करूंगा. अर्थात् मैं कृतकृत्य हूं मुझको कुछ कर्तव्य नहीं. यह युद्धादि अज्ञानियोंकी दृष्टिमें है. इस आपके उपदेशका अनुष्ठान करूंगा जो अर्जुनको कुछ युद्धादि कर्तव्य रहा तो कृतकृत्यका अर्थ क्या क्रिया जावेगा ॥ ७३ ॥

मू०—संजयउवाच ॥ इत्यहंवासुदेवस्यपार्थस्यचमहा-
त्मनः॥संवादमिममश्रौषमद्भुतंरोमहर्षणम् ॥ ७४ ॥

इति १ वासुदेवस्य २ महात्मनः३पार्थस्य ४ च ५ इमम् ६ अद्भुतम् ७ रोमहर्षणम् ८ संवादम् ९ अहम् १० अश्रौषम् ११ ॥७४॥

अ०—उ० संजय धृतराष्ट्रसे कहता है कि, इसप्रकार १ श्रीकृष्णचन्द्रमहात्मा २।३ और अर्जुनका ४ । ५ यह ६ अद्भुत ७ रोमकाम्पकरनेवाला ८ संवाद ९ मैंने १० सुना ११ ॥ ७४ ॥

मू०—व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहंपरम् ॥
योगंयोगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतःस्वयम् ॥

एतत् १ परम् २ योगम् ३ गुह्यम् ४ स्वयम् ५ साक्षात् ६ कथयतः ७ योगेश्वरात् ८ कृष्णात् ९ व्यासप्रदात् १० श्रुतवान् ११ अहम् १२ ॥ ७५ ॥अ०– यह १ परम २ योग ३ गुप्त ४ आप ५ साक्षात् ६ कहते हुए ७ योगेश्वर ८ श्रीकृष्णचन्द्रमहाराजसे ९ व्यासजीके प्रसादसे १० सुना ११ मैंने. १२ तात्पर्य यह ब्रह्मविद्या परमयोग है और गुप्त है. महात्मा इसको गुप्तरखते हैं. साधनचतुष्टयसंपन्नसे कहते हैं. पहले यहविद्या ब्रह्मलोकमेंही थी. मुनीश्वरोंने तप करके इसलोकमें इसविद्याका प्रचार किया है ब्रह्मविद्या आकाशमें आकर उसने मुनीश्वरोंसे यह कहा, कि मर्त्यलोकमें जब मैं आऊँगी, तब तुम मुझको पुत्रीके सदृश समझकर अधिकारीको दो, मुनीश्वरोंने इस वाक्यका अंगीकार किया तब तमें विद्या इसलोकमें आई. सिवाय इसद्वीपके और किसीद्वीपमें नहीं और सिवाय ब्रह्मलोकके और किसीलोकमें नहीं. जो इस विद्याको लालच या आशासे अनधिकारीको पढाते सुनातेहैं, वे अधम. क्योंकि कंगालभी अपनी पुत्री अनाधिकारीको नहीं देता. जो पुरुष इसविद्याको लालचसे सीखते हैं सो विद्या भोगके लियेहैं जैसे वर्णसंकरपुत्र इसीलोककी शोभा है ॥ ७५ ॥

मू०–राजन्संस्मृत्यसंस्मृत्यसंवादमिममद्भुतम् ॥
केशवार्जुनयोः पुण्यंहृष्यामिचमुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥

राजन् १ इदम् २ केशवार्जुनयोः ३ पुण्यम् ४ अद्भुतम् ५ संवादम् ६ संस्मृत्य ७ च ८ संस्मृत्य ९ मुहुर्मुहुः १० हृष्यामि ११ ॥ ७६ ॥ अ०– हे राजन् १ इस २ केशव अर्जुनके ३ पुण्यरूप ४ अद्भुत ५ संवादका ६ स्मरणकरके ७ फिर ८ स्मरणकरके ९ वारंवार १० मैं आनंदित होता हूं. ११ तात्पर्य–हे राजन् श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुनका यह संवाद ...ण्यरूप है. इसके श्रवणमात्रसे ... होता है. इसवास्ते मुझको वारंवार स्मरण होता है, ... ॥ ७६ ॥

मू०—तच्चसंस्मृत्यसंस्मृत्यरूपमत्यद्भुतंहरेः ॥
विस्मयोमेमहान्राजन्हृष्यामिचपुनःपुनः ॥ ७७ ॥

तत् १ हरेः २ अत्यद्भुतम् ३ रूपम् ४ संस्मृत्य ५ च ६ संस्मृत्य ७ मे ८ महान् ९ विस्मयः १० च ११ राजन् १२ पुनः १३ पुनः १४ हृष्यामि १५ ॥७७॥ अ०—तिस १ श्रीमहाराजके २ अतिअद्भुतरूपका ३।४ अर्थात् विश्वरूपका ३।४ स्मरणकरके ५ फिर ६ स्मरणकरके ७ मुझको ८ बड़ा ९ आश्चर्य १० सि० होता है ❀ और ११ हे राजन् १२ क्षणक्षणप्रति १३।१४ में हर्षित होता हूं. १५ तात्पर्य—हे राजन्! श्रीमहाराजका वो अद्भुतविश्वरूप मेरे वारंवार यादमें आता है उसका जब मैं ध्यान करता हूं, तब मेरे रोम खड़े होजातेहैं को बडा आनन्द होता है. वो रूप बडा आश्चर्यकारक है ॥७७॥

मू०—यत्रयोगेश्वरःकृष्णोयत्रपार्थोधनुर्धरः ॥
तत्रश्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

यत्र १ योगेश्वरः २ कृष्णः ३ यत्र ४ धनुर्धरः ५ पार्थः ६ तत्र ७ श्रीः ८ विजयः ९ भूतिः १० नीतिः ११ ध्रुवा १२ मम १३ मतिः १४ ॥७८॥ अ०—जिससेनामें १ योगेश्वर २ श्रीकृष्णचन्द्र ३ हैं और ❀ जिससेनामें ४ धनुषधारी ५ अर्जुन ६ सि० हैं. उसीसेनामें ७ लक्ष्मी ८ विजय ९ ऐश्वर्य १० न्याय ११ सि० ❀ निश्चययुक्त १२ मेरी १३ मति १४ सि० है. ❀ तात्पर्य—धृतराष्ट्रसे कहता है कि हे, राजन्! तुम्हारे पुत्रोंकी जय न होगी विजयकी आशा छोड़ो, जिसतरफ श्रीकृष्णचन्द्र महाराज हैं, वेजय होगी, जिनपर कृपादृष्टि श्रीभगवान्की है, वे सदा और परलोकमें परमानन्द भो[illegible] हैं यह सिद्धान्तहै ॥७८॥

श्रीभगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां [illegible] श्रीकृष्णार्जुनसंवादे मोक्षसंन्यासयोगो [illegible] ॥ १८ ॥

समस्त गीताका सार समाप्तिका मंगलाचरण.

परमानन्दपरमात्मा जीवात्मासे अभिन्न हैं. परमानन्दकी इच्छा है जिसको वो सदा परमानन्दकी उपासना कियाकरे. परमानन्दमें सबका संमत है. ब्रह्मवादी, ज्ञानी, उपासक, कर्मी, विषयी, बालक, मूर्ख, पशु, सबमतवाले, पन्थाई, सम्प्रदायी, दिनरात आनन्दके लिये यत्न करते हैं, सब कर्म बुरे भले ईश्वरके भजनतक सबके वोलीसे साधन हैं और आनन्द फल है. सब यह कहते हैं, कि इसबातमें बड़ा आनन्द है, कि जो हम कहते हैं, करते हैं इसहेतुसे आनन्द सबसे बड़ा और परात्परपदार्थहै. सबको प्रिय है किसीका आनन्दसे वैर नहीं. बातभी वो ही सच्ची है, कि जिसको विद्वान् श्रुतियुक्तिसहित कहते हैं और उसका अनुभव समझमें आवे. बहुतलोग तो ऐसा कहते हैं कि, वो बात वेदशास्त्रमें तो लिखी है, परन्तु समझमें नहीं आती इसवास्ते उसमें निश्चय नहीं होता. सबका अनुष्ठान करनेमें मन कच्चा रहता है और बहुतलो... कहते हैं, कि वो बात सममझमें तो आती है, परन्तु वेदविरुद्ध है. इसवास्ते वह बात अच्छी नहीं समझी जाती. इसजगे वो बात लिखी जाती है, कि जो है, वेदोक्तभी हो और अनुभव समझमें भी आवे. जिसआनन्दके वास्ते में सब यत्न करते हैं, वो आनन्द अपना आप आत्माही है औरप्राप्त सदा प्राप्त है. अज्ञानसे कंठभूषणवत् उसको अप्राप्त अपेनेसे जुदसुख ऐसा मानकर उसीकी प्राप्तिके लिये नानाप्रकारके (लौकिक औरपार... ...क) ... करतेहैं. जो वो अज्ञ... ...तारहे, तो आनन्द सदा ... ...द्वान् वेदोक्त ... है ... प... यह बात ...

तमोगुण दूर होनेकेलिये उनका कारण अज्ञानका स्वरूप सुनो.
अज्ञान सत्त्वरजतम इन तीन गुणोंकरके युक्त है. संसारमें स्थूलसूक्ष्म
जितने पदार्थ हैं सब इन तीनगुणोंका कार्यहैं. परमानन्द इन तीनगु-
णोंसे परेहै. देवता मनुष्य पशु इत्यादि इनतीनगुणोंमें मोहित होकर
तमोगुणी रजोगुणी सत्त्वगुणी इस आनन्दको(कि जिससुखका लक्षण
अठारहवें अध्यायमें ३७।३८।३९ इनश्लोकोंमें निरूपणहुआहै) बड़ास-
मझतेहैं. परमानन्दको नहीं जानते.परमानंदको ज्ञानी मुक्त महापुरुष
जानतेहैं. रजोगुणी आनंद दोप्रकारका है, अच्छा बुरा. सावयव भग-
वान्मूर्ति, वैकुंठस्वर्गादिमें जो आनन्द मानते हैं वो आनंद अच्छा है.
लौकिकपदार्थोंमें जो आनंद मानते हैं सो बुरा है. कोई कोई मत-
वाले रजोगुणी आनंदकोही परात्पर मानते हैं और कोई मतवाले
सत्त्वगुणी आनंदको परेसेपरे मानते हैं. रजोगुणी आनंदको क्षणिक
तुच्छ, अल्प ऐसा समझते हैं और यह कहते हैं कि तमोगुणी
आनन्दसे परलोकजन्य रजोगुणी आनंद अच्छा है, इसीवास्ते
उसको अच्छा कहते हैं. इसबातमें लौकिक वैदिक दोनों पुरुषोंका
सम्मत है और रजोगुणी आनन्दके अवधिको जो परेसे परे मानते
हैं, इसबातमें केवल वैदिकमार्गवालोंका संमत है, यौक्तिकलोगोंका
संमत नहीं. कमी विशेषता आनंदके दृष्टान्तसे समझो, तमोगुणी
आनंद, रजोगुणी आनन्द, सत्त्वगुणी परमान्द ये जैसे तीनघटमें
...महा...है एकमें मैला दूसरेमें सामान्यकरके दिखाता है तीसरेमें भले
...पार दिखाता है ऐसेही तमोगुणमें सुख प्रतीत नहीं हो...
...गमें सामान्य करके प्र... ...ता है और
योगया... ...त्कर्ष...में ...

की छाया प्रतीत होती है, जिसकी वो छायाहै. वास्तवमें परमानंद वोही है और सो नित्य है. जितना जल निर्मल ठहरा हुआ होगा, उतनाही मुख अच्छा दिखेगा. इसीप्रकार जितनी अन्तःकरणकी वृत्ति निर्मल और स्थिरहोगी, उतनाही सुख सिवाय अच्छा प्रतीत होगा. आनंदकी प्राप्तिमें अन्तःकरणकी निर्मलता और स्थिरता कारण है. कोई पदार्थ सावयव इसलोकपरलोकका कारण नहीं, वृत्ति पदार्थके संबंधसे स्थिरहोतीहै, और विचारज्ञानसेभीस्थिर होती है. परंतु पदार्थके संबंधसे जो होती है, वो स्थिरता क्षणक्षणमें नष्ट होतीरहती है. इसहेतुसे पदार्थजन्य आनंद क्षणिक है, एकरस नहीं, थोड़ीदेर रहता है. विचारज्ञानयोगसे जो वृत्ति स्थिर होती है, उसमें आनन्द ठहरता है. परमानन्दके ज्ञानसे जब मूलअज्ञानका नाश होजावे, तब ये तीनो वृत्ति नष्टहों. फिर केवलपरमानन्दकी प्राप्ति सदाको होजाती है. इसीपरमानन्दके वास्ते सब इसलोकपरलोकके झगडे हैं. समस्तवेदोंके विधिनिषेधोंका विचार करके देखो. सबका तात्पर्य दुःखकी निवृति और परमानन्दकी प्राप्ति इसमेंही है. शरीरइन्द्रियमनसे बुरे भले जितने कर्म यत्न और विनायत्नके होते हैं, सबमें दुःख सुख है. किसीमें दुःख बहुत सुख थोड़ा. किसी‍ें सुख बहुत दुःख थोड़ा. जिसकर्ममें ४९ भाग दुःख है और ५१ भाग सुख है, वेदमें उसकीभी स्तुति है. जिसकर्ममें सुख बहुत है, उसके आदिमें दुःख तनिक है और पीछे सुख बहुत है. और जिसकर्ममें ५१ भा[illegible] दुःख है और ४९ भाग सुख है, उसकी निन्दाहै. जिसकर्ममें सुख [illegible] उसके आदिमेंही सुख प्रतीत होता है, अन्तमें दुःख हो[illegible] यहांतक है [illegible] में ९९ या ९८ या ९७

किसी किसी कर्ममें सुख है और १ या २ या ३ भाग दुःख है. और किसी किसी कर्ममें १०० में ९९ या ९८-९७ भाग दुःख है, और १ या २ या ३ भाग सुख है. इसी प्रकार ६०।४०।७०।३० ८०।२०।९०।१० इत्यादिभागसे कल्पना करलेना परमानंद पूर्ण सुख एकरस है, कर्मकरनेसे वो नहीं प्राप्तहोता. क्रियाके अभावमें प्राप्त होता है. जिसकर्ममें ५१ भाग दुःख है उसकी वेदमें किसी जगे स्तुति होगी और ५२ भागके अपेक्षासे किसी जगे उसकी निंदा होगी. इसीप्रकार परमानंदकी अपेक्षासे सबकर्मोंकी निंदा है. जो परमानंद प्राप्त है, तो सतोगुणी सुख उसके सामने तुच्छ है. और सतोगुणी सुखके सामने रजोगुणीसुख तुच्छहै. रजोगुणीसुखके सामने तमोगुणीसुख तुच्छहै. मूर्ख वेदोंके तात्पर्यको न समझकर सिद्धांतकी श्रुतियोंका प्रमाण देदेकर मूर्तिमान् परमेश्वर श्रीकृष्णचंद्रादि और पाषाणादिमूर्तियोंकी और तीर्थव्रतोंकी निंदा करने लगते हैं. यह नहीं समझते कि यह उपदेश कैसे पुरुषोंके लिये है. आप तो मलमूत्रके पात्रोंमें आसक्त होकर नीचोंके सामने बंदरकी नांई नाचते हैं. और पुत्रस्त्रीमित्रादिके साथ ममताकरके उनकेलिये दिनरात तेलीके बैलकी नांई घूमते हैं. वहां यह नहीं समझते कि, इन अनित्य दुःखदायी दुर्गन्धरूप ऐसे कुपात्रोंके संबंधसे मुझको क्या प्राप्तहोगा. बहुत लोग तो ज्ञाननिष्ठ हैं जिनमें, ऐसी जो श्रुति स्मृति हैं, उनका अर्थ सीख [illegible] कर्मोंकी निंदाकरने लगते हैं. और बहुत लोग ज्ञाननिष्ठाके [illegible]हत्त्वको न जानकर अपनी मूर्खतासे ज्ञाननिष्ठासे और ज्ञानियोंसे [illegible]बांधकर दोनोंकी निन्दा करने लगते हैं. यह सब निन्दक पापा[illegible]

[illegible]०-पाप और दुःखके भाग के [illegible] उनसे अनज और [illegible]

[illegible] योगया। [illegible]

ले आपसमें लड़ते झगडते हैं. जैसे होसके दूसरेकी निंदा
ो उनकी कर्मनिष्ठा, ज्ञाननिष्ठा और भक्ति है. विद्वान् परमानन्दका जाननेवाला(परमानन्ददेवका उपासक) जीवतेही परमानन्दको भोक्ता है. परमानन्ददेवके उपासकका किसीसे वैर नहीं. क्योंकि सबको आनंदका उपासक जानता है. वास्तवमें सबका इष्टदेव परमानन्ददेव है. कर्म, भक्ति, ज्ञान और ईश्वरादि, ये उसके साधन हैं. आनन्दका उपासक सबकर्मोंमें अपने इष्टदेव परमानन्दकोही देखता है. कोई कर्म ऐसा नहीं, कि जिसमें कुछ आनंद न हो और जो कोई कर्म करता है, वो यही समझकर करता है, कि इसमें आनन्द मिलेगा, यद्यपि कर्ममें यथार्थ परमानन्दकी प्राप्ति नहीं, परन्तु जैसे मित्रके सदृश अन्यको देखकर वा उसके एक अंगके सदृश देखकर, वा उसकी छाया देखकर वा उसकी तसबीरको देखकर, वा उसके वस्त्रादिको देखकर, या सुनकर उस वास्तव मित्रका स्मरण होता है. ऐसेही सबकर्ममें परमानन्द देवका उपासक अपने इष्टदेवपरमानन्दकाही स्मरण ध्यान करता है. सब विपयी मतवालोंसे उसका सम्मत है, जो कोई किसीमतवाला उससे बूझे कि तुम किसके उपासक हो, तुम्हारा क्या मत है. परमानन्दका उपासक यह उत्तर देता है कि जिसके तुम उपासकहो उसीका मैं हूं. जो तुम्हारा मत और इष्टदेव है वोही मेरा मत और इष्टदेव है. फिर वे लोग अपना मत और इष्टदेव रामकृष्णादि इनको बताते हैं, तब परमानंदका उपासक कहता है कि, इष्ट फल होता है, साधन इष्ट नहीं जिस परमानन्दके लिये तुम भक्ति कर्म पूजा पत्री करते हो, वो तुम्हारा परमानन्द इष्टदेव है. चर्चा करते करते पीछे फलमें संमत हो [illegible] है. ऐसा कौन मूर्ख है, कि [illegible]नन्दको फल और पूर्णत्र

सीप्रकार ब[illegible] । और मूर्ख इनके [illegible]

, और
उसका संमत है, क्योंकि परमानंदको सब चाहते हैं पर... व है,
का उपास्य है, इसजगे परमानंद अपने स्वामी इष्टदेवका...
और माहात्म्य संक्षेपकरके कहा है आनंदामृतवर्षिणीमें और इस
परमानन्दप्रकाशिका टीकामें भी किसी किसी जगह परमानंदके
प्राप्तिका साधन और कहीं कहीं साक्षात् परमानंदका स्वरूप और
माहात्म्य निरूपण किया है आनंदगिरिने पढने सुननेवालोंको
परमानंदकी प्राप्ति हो ॥ परमानंदाय नमोनमः ॥ ॥ छ ॥

इति श्रीस्वामिआनंदगिरिविरचितायां श्रीभगवद्गीता-
भाषाटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

श्लो०—पदच्छेदःपदार्थोक्तिर्विग्रहोवाक्ययोजनम् ॥
आक्षेपस्य समाधानं व्याख्यानं पंचलक्षणम् ॥ १ ॥

ॐतत्सत् ॐतत्सत् ॐतत्सत्

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-यन्त्रालय, खेतवाडी–मुंबई.